हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ-परिवर्तन

डा० केशवराम पाल
एम. ए., पी-एच. डी.
प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
मेरठ कालेज, मेरठ

प्राची प्रकाशन
खैरनगर गेट मेरठ

प्रकाशक—प्राची प्रकाशन, २२४, हरि सदन, खैरनगर गेट, मेरठ

प्रथम संस्करण, १९६५

मूल्य बीस रुपये

मुद्रक—प्रभात प्रेस, मेरठ

भारतीय-विद्या के अध्ययन एवं अनुसन्धान-क्षेत्र
में प्रवृत्त होने की प्रेरणा
एवं प्रोत्साहन
देने वाले

श्रद्धेय गुरुवर

डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री

(निदेशक, भारतीय-विद्या संस्थान, दिल्ली)

को

सादर समर्पित

प्रस्तावना

यह तो सभी जानते हैं कि हिन्दी में संस्कृत के तत्सम और उनसे भी बढ़कर अधिक संख्या में तद्भव शब्द विद्यमान हैं। साधारणतः हम ऐसा मान लेते हैं कि इन शब्दों के भी हिन्दी में ठीक-ठीक वही अर्थ हैं जो संस्कृत में हैं। कुछ शब्द तो स्पष्ट ही मूल से बहुत दूर चले गये हैं। उदाहरण के लिये, बुद्धू या लुच्चा जैसे शब्दों से सभी लोग परिचित हैं, परन्तु ऐसा माना जाता है कि यह अपवाद हैं। संस्कृत से लिये गये शब्दों के सम्बन्ध में जो प्रचलित धारणा है वह नितान्त भ्रान्त नहीं है, परन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि शब्दों के अर्थों में काफ़ी परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों का अध्ययन कई दृष्टियों से रोचक है और हमको हिन्दी के क्रमिक विकास और उसके वर्तमान स्वरूप को पहिचानने में सहायक है। इस दृष्टि से डा० केशवराम पाल की "हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ-परिवर्तन" पुस्तक मुझे उपादेय प्रतीत होती है। इसमें विद्वान लेखक ने लगभग ३०० ऐसे शब्दों का संग्रह किया है जो हिन्दी में अपने मूल अर्थों से न्यूनाधिक हट गये हैं। हो सकता है कि किन्हीं शब्दों के सम्बन्ध में दूसरे विद्वानों का डा० केशवराम पाल से मतभेद हो, परन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि सभी लोग उनकी पुस्तक की उपयोगिता को स्वीकार करेंगे।

राज्यभवन जयपुर
अक्तूबर ३०, १९६४ ई०

सम्पूर्णानन्द
राज्यपाल, राजस्थान

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी में प्रचलित लगभग तीन सौ संस्कृत शब्दों में हुये अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। पुस्तक का अधिकतर भाग जुलाई १९५३ से फ़रवरी १९५७ के बीच लिखा गया था, जबकि मैंने आगरा विश्वविद्यालय और भारत सरकार की अनुसन्धानवृत्तियों के अधीन मेरठ कालेज में रहकर उन दिनों के संस्कृतविभागाध्यक्ष डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री के निर्देशन में अनुसन्धान-कार्य किया था और जिस पर सन् १९५७ ई० में मुझे आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। पी-एच० डी० के लिये प्रस्तुत किये गये शोध-प्रबन्ध में केवल दो सौ के लगभग हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों का अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन किया गया था, किन्तु अब पुस्तक में तीन सौ से अधिक संस्कृत शब्दों में हुये अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। इस प्रकार पुस्तक में शोध-प्रबन्ध की अपेक्षा काफ़ी सामग्री बढ़ गई है। शोध-प्रबन्ध की सामग्री में यत्र-तत्र संशोधन एवं परिवर्द्धन भी किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे सभी संस्कृत शब्दों को नहीं लिया जा सका है, जो हिन्दी में प्रचलित हैं और जिनके अर्थों में उनके मूल अर्थों से उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है, क्योंकि ऐसे शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। एक शोध-प्रबन्ध में उन सबको समाविष्ट नहीं किया जा सकता। आशा है पुस्तक के अगले संस्करण में और अधिक शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन प्रस्तुत किया जा सकेगा।

पुस्तक में हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों के वर्तमान अर्थों को दृष्टि में रखकर प्रमुख-प्रमुख अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। सभी अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन करना सम्भव नहीं था, क्योंकि संस्कृत शब्दों के कई हज़ार वर्षों के इतिहास में उनके अनेक अर्थ विकसित होते रहे हैं। पुस्तक में किसी शब्द के एक अर्थ से दूसरे अर्थ के विकास का उल्लेखमात्र ही नहीं किया गया है (जैसा कि अर्थ-विज्ञान के ग्रन्थों में प्रायः होता है), प्रत्युत उस शब्द के किसी अर्थविशेष अथवा विभिन्न अर्थों में प्रयोग के संस्कृत साहित्य से उदाहरण भी दिये गये हैं। हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों के वर्तमान अर्थों को

या तो कोशों के आधार पर या अपनी निजी जानकारी के आधार पर दिया गया है।

सम्पूर्ण पुस्तक को चार भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में भूमिका के दो अध्याय हैं। शेष तीन भागों में, जिनमें १७ अध्याय हैं, हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों में हुये अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों में हुये अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन करते हुये जहाँ तक सम्भव हो सका है, उन शब्दों के अन्य भारतीय (आर्य एवं द्रविड़) भाषाओं में पाये जाने वाले अर्थों को भी प्रदर्शित किया गया है। जहाँ संस्कृत शब्दों के अर्थ-विकास में अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं के शब्दों में हुये अर्थ-विकास से समानता मिलती है, वहाँ अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं के शब्दों में हुये अर्थ-विकास के उदाहरण दिये गये हैं। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि संसार की अनेक भाषाओं में बहुत से भावों के वाचक शब्द समान भावों पर आधारित हैं। अनेक अर्थ-परिवर्तनों के मूल में प्रायः समान मानसिक प्रवृत्तियाँ निहित हैं।

पुस्तक को तैयार करने में जिन लेखकों के ग्रन्थों से सहायता मिली है और जिन विद्वानों से प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा है, उन सभी का मैं हृदय से आभारी हूँ। श्रद्धेय गुरुवर डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री जी का मैं सबसे अधिक कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे अनुसन्धान के लिये प्रस्तुत विषय दिया था और जिनका निर्देशन एवं मार्ग-दर्शन मुझे सदैव प्राप्त होता रहा है। इसके अतिरिक्त मुझे भारतीय-विद्या के अध्ययन एवं अनुसन्धान-क्षेत्र में प्रवृत्त करने का श्रेय भी उन्हीं को है। अतएव अपनी यह कृति उन्हीं को समर्पित कर रहा हूँ। माननीय डा० सम्पूर्णानन्द जी, राज्यपाल राजस्थान का भी मैं बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर अनुगृहीत किया है।

पुस्तक के प्रकाशन के लिये ५०० रुपये उत्तरप्रदेश शासन से और ८७९ रुपये आगरा विश्वविद्यालय से प्रकाशन-अनुदान के रूप में मिले हैं। एतदर्थ मैं उत्तरप्रदेश शासन और आगरा विश्वविद्यालय के सम्बद्ध अधिकारियों का आभारी हूँ।

प्रभात प्रेस के स्वत्वधारी श्री कृष्णावतार जी का भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होने पुस्तक के मुद्रण में पर्याप्त रुचि ली है और पुस्तक का शुद्ध रूप में मुद्रण हो सके इस बात का भरसक प्रयत्न किया है।

—केशवराम पाल

विषय-सूची

प्रथम भाग

भूमिका

द्वितीय भाग

भाव-सादृश्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

तृतीय भाग

भाव-साहचर्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

चतुर्थ भाग

विविध प्रवृत्तियों पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

संक्षेप

संक्षेप		पूर्ण रूप	संक्षेप		पूर्ण रूप
अथर्व०	...	अथर्ववेद	मनु०	...	मनुस्मृति
अमरु०	...	अमरुशतक	महा०	...	महाभारत
अर्थ०	...	कौटिलीय अर्थशास्त्र	महावीर०	...	महावीरचरित
अष्टा०	...	अष्टाध्यायी	मार्कण्डेय०	...	मार्कण्डेयपुराण
उणादि०	...	उणादिसूत्र	मालती०	...	मालतीमाधव
उत्तर०	...	उत्तररामचरित	मालविका०	...	मालविकाग्निमित्र
ऋतु०	...	ऋतुसंहार	मि०	...	मिलाइये
कथा०	...	कथासरित्सागर	मुद्रा०	...	मुद्राराक्षस
कामन्द०	...	कामन्दकीयनीतिसार	मृच्छ०	...	मृच्छकटिक
काव्य०	...	काव्यप्रकाश	मेघ०	...	मेघदूत
किरात०	...	किरातार्जुनीय	याज्ञ०	...	याज्ञवल्क्यस्मृति
कुमार०	...	कुमारसम्भव	रघु०	...	रघुवंश
गरुड०	...	गरुडपुराण	राज०	...	राजतरङ्गिणी
गीत०	...	गीतगोविन्द	रामायण	...	वाल्मीकीय रामायण
चरक०	...	चरकसंहिता	वाक्य०	...	वाक्यपदीय
दश०	...	दशकुमारचरित	वि०	...	विशेषण
नपुं०	...	नपुंसकलिङ्ग	विक्रम०	...	विक्रमोर्वशीय
नारदीय०	...	नारदीयस्मृति	वेणी०	...	वेणीसंहार
निदान०	...	निदानस्थान	शतपथ०	...	शतपथब्राह्मण
नीति०	...	नीतिशतक	शाकु०	...	अभिज्ञानशाकुन्तल
नैषध०	...	नैषधीयचरित	शान्ति०	...	शान्तिशतक
पञ्च०	...	पञ्चतन्त्र	शिशु०	...	शिशुपालवध
पुं०	...	पुंल्लिङ्ग	शुक्र०	...	शुक्रनीति
बुद्ध०	...	बुद्धचरित	सं०	...	संस्कृत
भग०	...	भगवद्गीता	साहित्य०	...	साहित्यदर्पण
भट्टि०	...	भट्टिकाव्य	सिद्धान्त०	...	सिद्धान्तकौमुदी
भागवत	...	भागवतपुराण	सुश्रुत०	...	सुश्रुतसंहिता
भामिनी०	...	भामिनीविलास	सौन्दर०	...	सौन्दरनन्द
मत्स्य०	...	मत्स्यपुराण	स्त्री०	...	स्त्रीलिङ्ग

प्रथम भाग

भूमिका

अध्याय १

विषय-निरूपण

हिन्दी भाषा की शब्दावली में संस्कृत का अंश

हिन्दी भाषा की शब्दावली में संस्कृत शब्दों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी में ये शब्द दो रूपों में पाये जाते हैं, तत्सम रूप में और तद्भव रूप में। अधिकतर तत्सम शब्द संस्कृत से सीधे ग्रहण किये गये हैं, यद्यपि ऐसे भी बहुत से तत्सम शब्द हैं जो प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से आये हैं और हिन्दी के विभिन्न कालों में अपने तत्सम रूप में ही बने रहे हैं, परन्तु ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है। प्राकृत तथा अपभ्रंश-युग की यह प्रवृत्ति रही है कि उस काल में संस्कृत के संयुक्ताक्षरों में उच्चारण-सौकर्य की दृष्टि से वर्ण-परिवर्तन आवश्यकरूपेण हुआ है। परन्तु जो शब्द बोलने में बहुत सरल थे, उनमें वर्ण-परिवर्तन नहीं हुआ और वे शब्द प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से आने पर भी तत्सम रूप में ही बने रहे। तद्भव शब्दों का विकास हिन्दी में या तो संस्कृत से अथवा प्रथम स्तर की प्राकृतों[1] से द्वितीय स्तर की प्राकृतों के

---

१. ग्रियर्सन ने (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया, वोल्यूम १, भाग १, पृष्ठ १२१) में भारतीय आर्य-भाषाओं का उनके विकास-क्रम की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजन किया है, १—प्रथम स्तर की प्राकृत भाषायें (Primary Prakrits), २—द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषायें (Secondary Prakrits), ३—तृतीय स्तर की प्राकृत भाषायें (Tertiary Prakrits)। वैदिक काल की तथा इससे पूर्व की बोलचाल की भाषाओं को, जिससे वैदिक संहिताओं की साहित्यिक भाषा विकसित हुई, प्रथम स्तर की प्राकृत भाषायें कहा जाता है और उनसे जो भाषायें विकसित हुईं और जिनका विकास संस्कृत (जिसका विकास वैयाकरणों द्वारा नियमबद्ध कर देने से रुक गया था) के साथ-साथ आधुनिक आर्य-भाषाओं का विकास प्रारम्भ होने तक अबाधगति से होता रहा, द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषायें कहा जाता है। आधुनिक आर्य-भाषाओं को, जिनका विकास लगभग पिछले नौ सौ वर्षों से हो रहा है, तृतीय स्तर की प्राकृत भाषायें कहा जाता है।

माध्यम से हुआ है। इस प्रकार के तद्भव शब्दों की संख्या बहुत है। जो शब्द हिन्दी में मुण्डा भाषाओं तथा द्रविड़ भाषाओं से आये हैं, उनमें भी ऐसे शब्द प्रचुर संख्या में हैं, जो अत्यन्त प्राचीन काल में ही संस्कृत में मुण्डा और द्रविड़ भाषाओं से ग्रहण किये गये थे और तदनन्तर संस्कृत अथवा संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के माध्यम से हिन्दी में आये हैं।[1] इस प्रकार हिन्दी भाषा की शब्दावली का अधिकांश भाग संस्कृत भाषा की आधार-शिला पर अधिष्ठित है।

---

१. हिन्दी भाषा की शब्दावली में मुण्डा तथा द्रविड़ भाषाओं से आये हुये शब्द भी प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। यह माना जाता है कि आर्यों के भारत में आने से पहिले यहाँ पर विभिन्न भाषा-परिवार थे, जोकि आर्य-भाषा का प्रभुत्व होने पर नष्ट हो गये। इन भाषा-परिवारों में से आजकल मुण्डा और द्रविड़ इन दो भाषा-परिवारों की कुछ भाषायें पायी जाती हैं, जिनसे तुलना करने पर आर्य-भाषाओं पर उनका प्रभाव स्पष्ट प्रकट होता है। हिन्दी भाषा के अनेक तद्भव शब्द मुण्डा और द्रविड़ भाषाओं से संस्कृत और प्राकृत के माध्यम से, अथवा केवल प्राकृत भाषाओं के माध्यम से, अथवा हिन्दी का उन भाषाओं से सीधा सम्पर्क होने पर आये हैं। अनेक तत्सम शब्द भी, जिनको हिन्दी तथा आधुनिक आर्य-भाषाओं में संस्कृत से लिया गया है, मुण्डा तथा द्रविड़ भाषाओं से आये हुये हैं। प्रो० टी० बरो ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत लैंग्वेज' (पृष्ठ ३७८—३७९) में अलाबु, कदली (केला), कर्पास (कपास), जम्बाल (कीचड़), जिम् (जीमना), ताम्बूल (पान), मरिच (मिर्च), लांगल (हल), सर्षप (सरसों) आदि संस्कृत शब्दों को मुण्डा भाषाओं से आया हुआ माना है। एफ० बी० जे० कूपर ने अपनी पुस्तक 'प्रोटो मुण्डा वर्ड्स इन संस्कृत' में आकुल, आटोप, आपीड़, कज्जल, कण्ठ, कनक, कबरी कवल, कुण्ठ, कुब्ज, कोकिल, खड्ग, घट, गण, जाल आदि सैकड़ों संस्कृत शब्दों की उत्पत्ति मुण्डा भाषाओं से दिखलाई है। इसी प्रकार अनेक संस्कृत शब्द द्रविड़ भाषाओं से भी आये हुये माने जाते हैं। प्रो० बरो ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत लैंग्वेज' (पृष्ठ ३८०—३८६) में अनल, अर्क, अलस, उलूखल, कटु, कठिन, काक, कानन, कुटि, कोण, खल, चतुर, तूल, दण्ड, नीर पण्डित, बल, बिल, मयूर, महिला आदि अनेक संस्कृत शब्दों के संस्कृत में द्रविड़ भाषाओं से आने का उल्लेख किया है। किटेल ने अपने कन्नड़-इंगलिश कोश (मंगलौर १८९४) की प्रस्तावना (पृष्ठ १७-४५) में ऐसे सैकड़ों संस्कृत शब्दों की सूची दी है, जो द्रविड़ भाषाओं से आये हुये माने जाते हैं।

केलोग[१], विल्सन[२], कोलब्रुक आदि विद्वानों ने हिन्दी की शब्दावली में संस्कृत के अंश को समस्त शब्दावली का लगभग नव-दशमांश माना है। अन्य भारतीय आर्य-भाषाओं में भी संस्कृत (तत्सम और तद्भव) शब्द प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का अनुमान है कि "आज की किसी भी आधुनिक आर्य-भाषा में संस्कृत शब्दों का परिमाण लगभग पचास प्रतिशत कहा जा सकता है"।[३] दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि द्रविड़ भाषाओं[४] तथा ब्रह्मदेश, स्याम, इण्डोनेशिया, मलयद्वीप, सुमात्रा, यवद्वीप,

---

१. एस० एच० केलोग : ए ग्रामर ऑफ़ दि हिन्दी लैंग्वेज, पृष्ठ ४१—

"We may now pass to the consideration of words of Sanskrit origin, which make up not less than nine-tenths of the language."

२. जे० विल्सन ने मोल्सवर्थ के मराठी कोश (द्वितीय संस्करण) के प्रारम्भ में दिये हुये अपने लेख (Notes on the constituent Elements, page XXII) में लिखा है :—

"Colebrooke expresses it as his opinion that 'nine-tenths of the Hindi dialect may be traced back to Sanskrit'; and perhaps a similar observation may be justly made as to the proportion of Sanskrit words in Marathi when both primitive and modified forms are taken into account."

३. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृष्ठ १३७.

४. "सुसभ्य द्रविड़ भाषाओं पर आर्यभाषा के दोनों रूपों, संस्कृत तथा प्राकृत, का प्रभाव पड़ना ईसा-पूर्व की शताब्दियों में ही आरम्भ हो गया था। प्राचीन तमिल में तमिल वेश में मौजूद प्राकृत शब्दों की संख्या काफ़ी आश्चर्यजनक है; तेलुगु और कन्नड़ में भी प्राकृत शब्द उल्लेखनीय संख्या में हैं; और जहाँ तक विद्वज्जन-व्यवहृत संस्कृत शब्दों का प्रश्न है तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम भाषायें, इनके 'तत्सम' रूपों से, जिनके वर्ण-विन्यास भी ज्यों के त्यों हैं, बिल्कुल लबालब भर गयीं। तमिल भी इस क्रिया से बच न सकी; हाँ, उसने आर्य-शब्दों के वर्ण-विन्यास का आवश्यक रूप से सरलीकरण या तमिलीकरण अवश्य कर लिया। इस प्रकार संस्कृत का हिन्दू जीवन में वही स्थान दक्षिण में भी हो गया, जो उत्तर में था"। सुनीतिकुमार चटर्जी : भारतीय आर्य-भाषा और हिन्दी, पृष्ठ ७१.

बाली तथा बोर्निश्रो द्वीपों की भाषाओं[1] पर भी संस्कृत भाषा का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है।

हिन्दी में संस्कृत (तत्सम) शब्दों का प्रचलन

हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आर्य-भाषाओं का जन्म संस्कृत के वातावरण में होने के कारण उनमें संस्कृत शब्दों का प्रवेश उनके प्रारम्भिक काल से ही आरम्भ हो गया था। अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं में आधुनिक आर्य-भाषायें संस्कृत के सुसमृद्ध शब्द-भण्डार से शब्द ग्रहण करती रहीं। इन भाषाओं के लेखक जिस मात्रा में संस्कृत के ज्ञाता थे, उसी मात्रा में इन भाषाओं में संस्कृत के शब्द आये। यह धारणा कि हिन्दी में संस्कृत शब्दों का प्रयोग गत शताब्दी में ही प्रारम्भ हुआ, ठीक नहीं है। कुछ लोगों का यह कथन कि १९वीं शताब्दी के पण्डितवर्ग ने अंग्रेज़ी से टक्कर दिलाने के लिये बंगला आदि आधुनिक आर्य-भाषाओं को संस्कृत-शब्दावली से लादना प्रारम्भ किया, सर्वथा भ्रमपूर्ण है। हिन्दी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के बहुत से प्राचीन ग्रन्थों में भी संस्कृत शब्दों का काफ़ी प्रयोग पाया जाता है। सूर, तुलसी, केशव आदि के ग्रन्थों में संस्कृत शब्द प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। मराठी भाषा की 'ज्ञानेश्वरी' तथा बंगला के 'चैतन्य-चरितामृत' आदि ग्रन्थों में संस्कृत शब्द प्रचुर संख्या में हैं। यह ठीक है कि गत शताब्दी में जबकि देश में राजनैतिक चेतना के साथ स्वदेश-प्रेम की लहर उठी और सांस्कृतिक चेतना भी उत्पन्न हुई, अधिकतर सभी भारतीय भाषाओं ने अपनी निजी अभिव्यक्तियों के लिये संस्कृत के सुसमृद्ध शब्द-भण्डार से शब्द ग्रहण किये। किन्तु यह स्वाभाविक

---

१. दक्षिणी स्याम (द्वारावती), कम्बोडिया (कम्बुज), तथा अन्नाम (चम्पा) में संस्कृत भाषा का प्रभाव पड़ना ईसवी शताब्दी से पहिले ही प्रारम्भ हो गया था। स्यामी भाषा में संस्कृत शब्द प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। आधुनिक काल में भी यवद्वीपी, बाली और स्यामी भाषा में संस्कृत से शब्द लिये जाते रहे हैं। उनके अनेक शासन-सम्बन्धी अथवा सांस्कृतिक पारिभाषिक शब्द संस्कृत शब्दों, धातुओं और विभक्तियों का आश्रय लेकर बनाये जाते रहे हैं। मलय, सुमात्रा, बोर्निओ, बाली आदि की भाषाओं पर संस्कृत शब्दावली के प्रभाव का विस्तृत विवेचन यूट्रेक्ट यूनिवर्सिटी (हॉलैण्ड) के संस्कृत के प्रोफ़ेसर डा० गोंडा ने अपनी "संस्कृत इन इण्डोनेशिया" नामक पुस्तक में किया है, जिससे बड़े रोचक तथ्यों का पता चलता है।

था। जिस प्रकार फ्रेंच, इटैलियन,स्पैनिश आदि भाषाओं ने अपनी शब्दावली को लैटिन भाषा से शब्द ग्रहण करके समृद्ध किया, उसी प्रकार भारतीय भाषाओं के लिये भी यह स्वाभाविक ही था कि वे अपनी समृद्धि के लिये भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की स्रोत संस्कृत भाषा से शब्द ग्रहण करें। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ी भाषा के सम्पर्क में आने पर आधुनिक काल में जो नवीन भाव आये, उनकी अभिव्यक्ति के लिये भारतीय भाषाओं में संस्कृत शब्दों को ग्रहण करना ही अधिक उचित एवं उपादेय समझा गया। भारतीय संघ के संविधान (अनुच्छेद ३५१) में यह स्पष्ट घोषित किया गया है कि जहाँ तक आवश्यक और वांछनीय हो, हिन्दी के शब्द-भण्डार के लिये मुख्यतया संस्कृत से और गौणतया अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुये उसकी समृद्धि करना संघ का कर्तव्य होगा। आजकल भारत सरकार द्वारा जो वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली बनवाई जा रही है, उसके निर्माण में संस्कृत की ओर झुकाव आवश्यक समझा गया है, क्योंकि शब्दावली के समस्त देश के लिये होने के कारण अहिन्दी भाषी (विशेषकर दक्षिण भारत के) लोगों के लिये संस्कृत के आधार पर निर्मित शब्दावली अधिक ग्राह्य होगी। देश के सभी प्रदेशों की भाषाओं में संस्कृत शब्दों का काफ़ी प्रचलन होने के कारण अधिकतर प्रदेशों के लोगों के लिये ऐसी शब्दावली का समझना अधिक सरल होगा जो संस्कृत के आधार पर बनी हो। इसी कारण अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली को ग्रहण करते हुये भी, अधिकतर सामान्य पारिभाषिक शब्दावली और परिकल्पनात्मक वैज्ञानिक शब्दावली का अखिल भारतीय रूप संस्कृत के आधार पर ही बनाया जाना उचित समझा गया है। इस प्रकार आधुनिक काल में संस्कृत से लिये जाने वाले शब्द दो प्रकार के हैं—एक तो वे जो पहिले से संस्कृत में पाये जाते हैं, कुछ मिलते-जुलते अर्थ के कारण आधुनिक भावों के लिये प्रयुक्त किये जाने लगे हैं, जैसे विज्ञान, नागरिक, सचिव, संसद् आदि; दूसरे वे जो विशिष्ट भावों के लिये संस्कृत की धातु, प्रत्यय, उपसर्ग आदि लगाकर बनाये जा रहे हैं, जैसे Record के लिये 'अभिलेख' (अभि+लेख), Reference के लिये 'अभ्युद्देश' (अभि+उद्देश)। इस प्रकार अनेक संस्कृत शब्दों के विभिन्न कालों में होकर स्वाभाविक रूप से आने के कारण तथा आधुनिक काल में नवीन भावों के लिये अपनाये जाने के कारण आधुनिक हिन्दी में संस्कृत शब्द प्रचुर संख्या में प्रचलित हो गये हैं, और उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों में अर्थ-परिवर्तन

अनेक संस्कृत शब्दों के हिन्दी के विभिन्न कालों में विभिन्न परिस्थितियों में प्रयुक्त होते हुये आने के कारण तथा आधुनिक काल में नवीन भावों के लिये अपनाये जाने के कारण उनके अर्थ संस्कृत में पाये जाने वाले अर्थों से भिन्न हो गये हैं। यह सर्वथा स्वाभाविक है। प्रत्येक भाषा के विकास में जहाँ उसके शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन होता है, वहाँ अर्थ-परिवर्तन भी होता है। केवल कुछ स्पष्ट भावों को व्यक्त करने वाले शब्द (जैसे संख्यासूचक शब्द तथा माता, पिता आदि घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्धों को लक्षित करने वाले शब्द) ही ऐसे होते हैं, जिनके अर्थों में सहस्रों वर्षों बाद तक भी कोई परिवर्तन नहीं होता। किसी भाषा में ऐसे शब्द थोड़ी ही संख्या में होते हैं। अधिकतर शब्दों में तो अर्थ-विकास होता रहता है। अर्थ-परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं—सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि। उन सबको रोका नहीं जा सकता। अतः हिन्दी में भी अनेक संस्कृत शब्दों के अर्थों का भिन्न हो जाना स्वाभाविक है।

अर्थ-विकास की दृष्टि से हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों को निम्न श्रेणियों में रक्खा जा सकता है :—

(i) ऐसे शब्द जिनका आधुनिक अर्थ संस्कृत में पाये जाने वाले अर्थों से सर्वथा भिन्न हो गया है, जैसे—प्रबन्ध[१], प्रस्ताव[२], परिवार[३] आदि।

(ii) वे शब्द जिनका अर्थ यद्यपि हिन्दी में संस्कृत से ग्रहण किया गया है, तथापि एकाध अन्य अर्थ भी विकसित हो गया है, जैसे—घण्टा[४], धूप[५] आदि।

---

१. हिन्दी में 'प्रबन्ध' शब्द अधिकतर 'व्यवस्था, इन्तज़ाम' अर्थ में प्रचलित है, जबकि संस्कृत में इसके अर्थ हैं–'अविच्छिन्नता', 'साहित्यिक रचना' आदि।

२. हिन्दी में 'प्रस्ताव' शब्द 'उपस्थित मन्तव्य' अर्थ में प्रचलित है, जबकि संस्कृत में इसके अर्थ हैं—'प्रसंग', 'अवसर' आदि।

३. हिन्दी में 'परिवार' शब्द 'कुटुम्ब' अर्थ में प्रचलित है, जबकि संस्कृत में इसके अर्थ हैं—'परिचारकवर्ग', 'अनुयायिवर्ग' आदि।

४. हिन्दी में 'घण्टा' शब्द 'घड़ियाल' (जिसको बजाकर किसी बात की सूचना दी जाती है) और 'साठ मिनट का समय' (Hour) अर्थ में प्रचलित है, जबकि संस्कृत में इसका अर्थ केवल 'घड़ियाल' है।

५. हिन्दी में 'धूप' शब्द 'मिश्रित गन्धद्रव्य' और 'सूर्य का ताप और प्रकाश' अर्थों में प्रचलित है, जबकि संस्कृत में इसका अर्थ है—'मिश्रित गन्धद्रव्य'।

(iii) वे शब्द जिनका हिन्दी में प्रचलित अर्थ संस्कृत से भिन्न तो नहीं है (अर्थात् संस्कृत से ही ग्रहण किया हुआ है), किन्तु जिनका संस्कृत में मुख्य अथवा मूल अर्थ भिन्न है, जैसे—वंश[1], गुण[2], दक्षिणा[3] आदि।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के शब्द हिन्दी में काफ़ी संख्या में प्रचलित हैं। यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ में अधिकतर ऐसे ही शब्दों के अर्थ-विकास का विवेचन किया गया है, जिनका हिन्दी में कोई न कोई नया अर्थ विकसित हुआ है, तथापि बहुत से ऐसे शब्दों को भी सम्मिलित कर लिया गया है, जिनका हिन्दी में प्रचलित अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। ऐसे शब्दों को उनके रोचक अर्थ-विकास को प्रदर्शित करने के लिये सम्मिलित किया गया है। हिन्दी में बहुत से ऐसे संस्कृत शब्द प्रचलित हैं, जिनका वर्तमान अर्थ यद्यपि संस्कृत में मिल जाता है, तथापि संस्कृत में उनके मुख्य अथवा मूल अर्थ और ही रहे हैं, जैसे 'प्रार्थना' शब्द के हिन्दी में प्रचलित 'निवेदन' और 'याचना' अर्थ यद्यपि संस्कृत में भी मिल जाते हैं, तथापि संस्कृत में 'प्रार्थना' शब्द का 'अभिलाषा' अर्थ में प्रचुर प्रयोग हुआ है। पीछे उल्लिखित वंश, गुण, दक्षिणा आदि शब्दों के भी हिन्दी में प्रचलित अर्थ यद्यपि संस्कृत से भिन्न नहीं हैं, तथापि उनके मूल अर्थ (जिनसे कि बाद के अर्थों का विकास हुआ है) अवश्य भिन्न रहे हैं। ऐसे शब्दों के अर्थ-विकास को जानना हिन्दी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं के ज्ञाताओं के लिये परम उपयोगी होगा। हिन्दी में प्रचलित ऐसे संस्कृत शब्द काफ़ी संख्या में हैं, जिनके अर्थ-विकास का विवेचन किया जा सकता है, परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐसे सभी शब्दों को सम्मिलित करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त संस्कृत शब्दों के सभी अर्थों के विकास का

---

१. हिन्दी में 'वंश' शब्द 'कुल' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में भी यह अर्थ पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में इसका मौलिक अर्थ है–'बांस', जिससे कि 'कुल' अर्थ का विकास हुआ है।

२. हिन्दी में 'गुण' शब्द 'विशेषता', 'श्रेष्ठता' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में भी ये अर्थ पाये जाते हैं, किन्तु संस्कृत में 'गुण' शब्द का मौलिक अर्थ है–'डोरी, लड़', जिससे कि 'विशेषता' आदि अर्थों का विकास हुआ है।

३. हिन्दी में 'दक्षिणा' शब्द का अर्थ है—'यज्ञ आदि कर्म अथवा किसी शुभ कार्य के अवसर पर ब्राह्मण अथवा पुरोहित को दिया जाने वाला धन अथवा भेंट'। संस्कृत में भी यह अर्थ पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में इसका मौलिक अर्थ है—'दुधारू गाय', जिससे कि बाद का अर्थ विकसित हुआ है।

विवेचन करना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि संस्कृत भाषा के इतिहास के कई हज़ार वर्षों के काल में संस्कृत शब्दों के अनेक अर्थ विकसित हुये हैं (किसी किसी शब्द के तो बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस अर्थ पाये जाते हैं)। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में सीमित शब्दों के मुख्य-मुख्य अर्थों के विकास का विवेचन किया जा रहा है।

संस्कृत शब्दों में अर्थ-परिवर्तन से भ्रान्ति

बहुत से संस्कृत शब्दों के हिन्दी में भिन्न अर्थ में प्रचलित हो जाने के कारण बहुधा भ्रान्तिवश संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में भी उन शब्दों का वह अर्थ ही कर दिया जाता है जोकि आजकल हिन्दी में प्रचलित है। इस प्रकार की भूल बहुधा हिन्दी और संस्कृत के बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा भी कर दी जाती है। उदाहरणार्थ, हिन्दी में 'विनय' शब्द के अधिकतर 'नम्रता' अर्थ में प्रचलित होने के कारण संस्कृत साहित्य में भी बहुधा उसका अर्थ 'नम्रता' कर दिया जाता है। संस्कृत के प्रसिद्ध सुभाषित 'विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्' में 'विनय' शब्द का अर्थ बहुधा हिन्दी और संस्कृत के बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा भी 'नम्रता' ही किया जाता है। यद्यपि संस्कृत में 'विनय' शब्द का 'नम्रता' अर्थ भी पाया जाता है, किन्तु उस अर्थ में 'विनय' शब्द का प्रयोग बाद के संस्कृत साहित्य में हुआ है। संस्कृत में 'विनय' शब्द का मुख्य अर्थ है—'आत्म-संयम', 'सदाचार'। प्रस्तुत सुभाषित में 'विनय' शब्द का अर्थ 'आत्मसंयम' अथवा 'सदाचार' ही दिखाई पड़ता है और उस अर्थ को करने से श्लोक का भाव बहुत सुन्दर और उपयुक्त हो जाता है। विद्या से आत्म-संयम अथवा सदाचार की ही प्राप्ति होती है, 'नम्रता' अर्थ कर देने से सुभाषित का वास्तविक तात्पर्य और भाव-सौन्दर्य बहुत अंश तक नष्ट हो जाता है। विद्या से आत्मसंयम अथवा सदाचार की प्राप्ति होना माना जाने के कारण ही रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा प्राचीन काव्य-ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर 'विनय' शब्द का प्रयोग 'विद्या' के साथ पाया जाता है, यथा—'विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे' (भगवद्गीता)। बौद्ध-साहित्य में भी 'विनय' शब्द का 'आत्मसंयम' अथवा 'सदाचार' अर्थ में ही प्रयोग किया गया है। बौद्धों के धर्म-ग्रन्थ 'त्रिपिटक' के एक भाग (जिसमें आत्मसंयम अथवा सदाचार के नियमों का संग्रह है) का नाम 'विनयपिटक' अर्थात् 'आत्मसंयम के नियमों की पिटारी' है। इसी प्रकार परिवार, प्रार्थना आदि अनेक संस्कृत शब्दों का अर्थ यद्यपि संस्कृत में हिन्दी में प्रचलित आधुनिक अर्थ से भिन्न

है, किन्तु बहुधा भ्रान्तिवश इनका वह अर्थ ही समझ लिया जाता है जोकि हिन्दी में प्रचलित है।

अतः हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों का अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि जिन संस्कृत शब्दों का अर्थ आधुनिक हिन्दी में भिन्न हो गया है, उनके संस्कृत में पाये जाने वाले अर्थों पर प्रकाश पड़ेगा, जिससे कि संस्कृत साहित्य में भी उन शब्दों का हिन्दी में प्रचलित अर्थ समझे जाने की भ्रान्ति के दूर होने में सहायता मिलेगी।

संस्कृत में हिन्दी में प्रचलित अर्थों का प्रवेश

हिन्दी में अनेक संस्कृत शब्दों के भिन्न अर्थ में प्रचलित हो जाने से एक यह समस्या भी उत्पन्न हो गयी है कि संस्कृत भाषा के व्यवहार में भी संस्कृत शब्दों का प्रयोग उन्हीं अर्थों में किया जाने लगा है, जिनमें कि वे आजकल हिन्दी में प्रचलित हैं, जैसे कि 'प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग आजकल संस्कृत के व्यवहार में 'इन्तज़ाम' अर्थ में इसीलिये किया जाने लगा है, क्योंकि यह शब्द हिन्दी में 'इन्तज़ाम' अर्थ में प्रचलित है, जबकि संस्कृत में 'प्रबन्ध' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'प्रबन्ध' शब्द का अर्थ है—'साहित्यिक रचना', 'अविच्छिन्न क्रम' आदि। संस्कृत में 'इन्तज़ाम' के भाव के लिये 'व्यवस्था', 'आयोजन' आदि शब्द विद्यमान हैं।

संस्कृत के जो शब्द हिन्दी में ऐसे नये भाव या विचार प्रकट करने लगे हैं, जिनमें कि उन शब्दों का प्रयोग संस्कृत में नहीं होता था और जिन नवीन भावों के लिये संस्कृत में दूसरे शब्द भी नहीं हैं, उनके लिये उन शब्दों का हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत में भी प्रयुक्त होना स्वाभाविक है, परन्तु ऐसे भावों को संस्कृत में प्रकट करने के लिये यथासम्भव उन्हीं संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिये, जिन शब्दों का प्रयोग उन नवीन भावों के लिये न केवल हिन्दी में, प्रत्युत अधिकतर अन्य भारतीय भाषाओं (विशेषकर आर्य-भाषाओं) में भी होता हो, यथा धन्यवाद, प्रकाशन, सम्पादन आदि शब्द नवीन भावों के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं और उनका उन अर्थों में प्रयोग प्रायः सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में पाया जाता है। अतः उनका संस्कृत में भी प्रयोग उचित समझा जाता है। परन्तु जिन भावों को हम संस्कृत शब्दों द्वारा हिन्दी में आज नये रूप से प्रकट करने लगे हैं और जिन भावों के लिये संस्कृत में दूसरे शब्द विद्यमान हैं, यदि उन भावों को प्रकट

करने के लिये संस्कृत में भी उन्हीं शब्दों का प्रयोग होने लगा तो संस्कृत शब्दों के अर्थ समझने में एक बड़ी उलझन पैदा हो जायगी। इसलिये उन भावों को प्रकट करने के लिये, जिनके लिये संस्कृत में पहिले से शब्द विद्यमान हैं, पहिले से विद्यमान संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग किया जाना चाहिये, यद्यपि ऐसा करना बड़ा कठिन है, क्योंकि हिन्दी के राष्ट्र-भाषा होने के कारण उसका व्यापक प्रसार होने से उसमें ग्रहण किये संस्कृत शब्दों का संस्कृत में भी आना स्वाभाविक है।

अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं पर दुष्प्रभाव

राष्ट्र-भाषा हिन्दी में अनेक संस्कृत शब्दों के संस्कृत से भिन्न अर्थ में प्रचलित होने का एक दुष्परिणाम यह होगा कि हिन्दी का राष्ट्र-भाषा के रूप में देश के अन्य भागों (दक्षिण भारत, बंगाल, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों) में प्रसार होने पर उन शब्दों के भिन्न अथवा परिवर्तित अर्थ भी वहाँ पहुचेंगे, जो न केवल उन प्रदेशों की भाषाओं में उन्हीं शब्दों के ठीक अर्थ में होने वाले व्यवहार में एक उलझन उपस्थित करेंगे, अपितु उन प्रदेशों के संस्कृत-अध्ययन में भी भ्रान्त या परिवर्तित अर्थों को प्रस्तुत करके एक कठिन समस्या उपस्थित कर देंगे। यह भी एक प्रमुख कारण है जिससे कि कुछ वर्ष पूर्व देश में राष्ट्र-भाषा के प्रश्न पर वाद-विवाद छिड़ने पर दक्षिण भारत के बहुत से विद्वानों ने संस्कृत-निष्ठ हिन्दी की अपेक्षा सरल संस्कृत को राष्ट्र-भाषा के रूप में अधिष्ठित करने का समर्थन किया था। डा० कुंहनराजा ने अद्यार लाइब्रेरी बुलेटिन, वोल्यूम १२, पार्ट ४ (दिसम्बर १९४८) में राष्ट्र-भाषा की समस्या पर अपने सम्पादकीय लेख में लिखा था—"हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिये कि क्या यह अच्छा नहीं है कि हम संस्कृत-निष्ठ हिन्दी की अपेक्षा सरल संस्कृत को राष्ट्र-भाषा के रूप में अपनायें[1]। हिन्दी में संस्कृत शब्दों के अर्थ उन शब्दों के संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में पाये जाने वाले

---

१. जबकि दक्षिण भारत के विद्वान् संस्कृत-निष्ठ हिन्दी को भी राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार न करके सरल संस्कृत को राष्ट्र-भाषा बनाने का समर्थन करते हैं, उत्तरी भारत में यह अवस्था है कि कुछ लोग संस्कृत-निष्ठ हिन्दी का भी घोर विरोध करते हैं, संस्कृत की तो बात ही दूर रही। श्री मदन गोपाल द्वारा एक पुस्तक 'This Hindi and Devanagari' लिखी गई है, जिसमें संस्कृत-निष्ठ हिन्दी को 'bastard child of Banaras' (पृष्ठ १५१), और तत्सम शब्दों का प्रचलन करने के प्रयत्न को "Pure folly, miscalled brahmanism, child of ignorance, malice and obscurantism" (पृष्ठ २५, ४६) कहा गया है।

अर्थों से भिन्न हो सकते हैं"।[1] इसी लेख में उन्होंने आगे कहा है—"संस्कृत-निष्ठ हिन्दी में भी यह पर्याप्त नहीं है कि उसमें संस्कृत शब्द प्रचुर संख्या में भर दिये जायें। संस्कृत शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त किये जाने चाहियें, जिसमें कि वे संस्कृत में हैं और जिसमें कि वे अन्य भाषायी प्रदेशों में समझे जाते हैं। अन्यथा, संस्कृत की निधि से शब्द लेने से कोई लाभ नहीं है, इससे तो इसके विपरीत, अर्थ के विषय में गड़बड़ी ही फैलेगी"।[2]

कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृत के जो शब्द हिन्दी में भिन्न अर्थों में प्रचलित हो गये हैं उन पर विचार करने के लिये भारतवर्ष की समस्त भाषाओं के विद्वानों अथवा भाषा-शास्त्रियों की एक परिषद् का निर्माण किया जाना चाहिये। वह परिषद् इस बात का निर्णय करे कि क्या ऐसे संस्कृत शब्दों को जो सभी भारतीय भाषाओं में अथवा अधिकतर भाषाओं में एक ही अर्थ में प्रचलित हो गये हैं, राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ग्रहण कर लिया जाये। जो संस्कृत शब्द अधिकतर भाषाओं में उस अर्थ में प्रचलित नहीं हैं जिसमें कि हिन्दी में हैं, उनके विषय में भी परिषद् विचार करे कि उन संस्कृत शब्दों का हिन्दी में उन अर्थों में प्रयोग कहाँ तक उचित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों का अध्ययन करते हुये बहुत से शब्दों के अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में पाये जाने वाले अर्थों को भी दिखाया गया है, जिससे उन शब्दों के अर्थों में, अन्य भारतीय भाषाओं में, हिन्दी से जो भेद है उस पर भी प्रकाश पड़ेगा।

---

1. "We must also consider whether it is not better to have a simplified Sanskrit as the common language, rather than a Sanskritized Hindi. Sanskrit words in Hindi may have a significance different from their significations in Sanskrit itself and in other languages." Language Problem in India (The Adyar Library Bulletin pamphlet series No. 13) p. 15.

2. "Even in Sanskritized Hindi, it is not enough if Sanskrit words are profusely imported into it; the Sanskrit words should be used in the sense in which they are known in Sanskrit and in which they are understood in the other linguistic regions. Otherwise, there is no advantage in tapping the wealth of Sanskrit; on the other-hand it may lead to confusion in the matter of interpretation." Ibid., p. 16.

संस्कृत शब्दों के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन का 'अर्थ-विज्ञान' की दृष्टि से महत्त्व

प्रस्तुत ग्रन्थ में हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों के अर्थ-विकास का अध्ययन होने के कारण उन शब्दों के संस्कृत भाषा में विकसित हुये अर्थों पर भी प्रकाश पड़ा है, जैसे 'विनय' शब्द के अर्थ-विकास के अध्ययन से संस्कृत भाषा में ही विकसित हुये आत्मसंयम, सदाचार, शिष्टाचार, नियन्त्रण आदि विभिन्न अर्थ प्रकाश में आये हैं। इस प्रकार सस्कृत शब्दों में संस्कृत भाषा में ही हुये अर्थ-परिवर्तनों का भी विश्लेषण हुआ है। संस्कृत भाषा के विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक भाषा होने के कारण तथा संसार का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य संस्कृत में ही होने के कारण, संस्कृत शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों का अध्ययन अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत शब्दों के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से हमें ऐसी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हो सकती है, जो अर्थ-विज्ञान नामक नवीन विज्ञान के विकास में सहायक हो सके। इस दृष्टि से संसार की कोई भी भाषा संस्कृत से अधिक समृद्ध नहीं है, क्योंकि संस्कृत के पास कई हज़ार वर्षों का विशाल साहित्य मौजूद है, जिसमें संस्कृत शब्दों के अर्थों के इतिहास को सूक्ष्मतापूर्वक खोजा जा सकता है और अर्थ-विज्ञान-सम्बन्धी विभिन्न प्रवृत्तियों का पता लगाया जा सकता है।

संस्कृत शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों का प्रस्तुत अध्ययन अपने प्रकार का सर्वप्रथम प्रयास है। संस्कृत के किसी शब्द अथवा शब्दों के अर्थ-विकास पर प्रकाश डालने वाले कुछ लेख आदि तो अनुसन्धान-पत्रिकाओं में मिल जाते हैं, किन्तु संस्कृत शब्दों के अर्थ-विकास का व्यवस्थित विवेचन अभी तक नहीं किया गया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के रीडर डा० हरदेव बाहरी ने 'हिन्दी सीमैण्टिक्स' विषय पर कुछ कार्य किया है। किन्तु उन्होंने ध्वनि और अर्थ का सम्बन्ध, अर्थ का विकास, तत्सम शब्द, तद्भव शब्द, वाक्य, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, व्याकरण, पर्यायवाची शब्द, नानार्थक शब्द आदि विभिन्न विषयों पर अर्थ-वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है।[1]

---

१. डा० हरदेव बाहरी को 'हिन्दी सीमैण्टिक्स' विषय पर सन् १९५० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधि मिली थी। उनका यह ग्रन्थ १९५९ में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था।

उनके ग्रन्थ में तत्सम शब्द बहुत कम संख्या में आ पाये हैं। इसके अतिरिक्त उसमें अर्थ-परिवर्तनों का केवल निर्देशमात्र किया गया है, विस्तृत विश्लेषण नहीं किया गया है। संस्कृत साहित्य से उदाहरण आदि भी नहीं दिये गये हैं। डा० बाबूराम सक्सेना की भी 'अर्थ-विज्ञान' नाम की एक छोटी सी पुस्तक है,[1] जिसमें हिन्दी के कुछ शब्दों में हुये अर्थ-परिवर्तनों का उल्लेखमात्र किया गया है। इस पुस्तक में भी थोड़े से तत्सम शब्द आ पाये हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों के अर्थ-विकास का व्यवस्थित विवेचन करने की दिशा में यह पहिला प्रयत्न है।

सांस्कृतिक तथ्यों पर प्रकाश

अर्थ-परिवर्तन भाषा के आन्तरिक पक्ष से सम्बन्ध रखता है, अतः शब्दों के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से उसके बोलने वाले जनसमुदाय की सभ्यता और संस्कृति के विषय में अनेक तथ्यों का उद्‌घाटन होता है। संस्कृत शब्दों के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अनेक बातों का पता चलता है। बहुत सी प्रथायें, जो आजकल प्रचलित नहीं हैं और जो प्राचीन काल में प्रचलित थीं, प्रकाश में आती हैं, उदाहरणार्थ 'सौगन्ध' शब्द के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से प्राचीन भारत में गुरुजनों अथवा माता-पिता द्वारा प्रेम के कारण छोटे लोगों अथवा बच्चों के सिर सूँघने की प्रथा का पता चलता है। सिर सूँघने की प्रथा आजकल प्रचलित नहीं है। 'तिलाञ्जलि' शब्द के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से किसी के मरने पर अञ्जलि में जल और तिल लेकर उसके नाम से छोड़ने की हिन्दुओं में प्रचलित प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। 'पिण्ड छूटना' मुहावरे में प्रयुक्त 'पिण्ड' शब्द के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से धार्मिक हिन्दुओं में प्रचलित 'किसी के मरने पर पिण्ड देने' की प्रथा का पता चलता है। इसी प्रकार अन्य बहुत सी प्रथाओं तथा सामाजिक अवस्थाओं का पता चलता है।

शब्दों के अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन से उनके बोलने वाले जनसमुदाय की स्वाभाविक मानसिक प्रवृत्तियों का भी पता चलता है। विण्ड्रीज़ का कथन है—"हम विभिन्न अर्थ-परिवर्तनों के परीक्षण के आधार पर लोगों के मनो-

---

१. यह पुस्तक डा० बाबूराम सक्सेना द्वारा पटना यूनिवर्सिटी की संरक्षा में मार्च १९४७ में रामदीन रीडरशिप व्याख्यानमाला के अन्तर्गत 'अर्थ-विज्ञान' विषय पर दिये गये आठ व्याख्यानों का संग्रह है। यह पटना यूनिवर्सिटी द्वारा ही १९५१ में प्रकाशित की गई थी।

विज्ञान की, जो उनकी बोलचाल की भाषाओं में प्रमाणित होता है, कल्पना कर सकते हैं। इस अध्ययन के लिये अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि अपेक्षित है, परन्तु फिर भी यह महान् यत्न करना ही चाहिये। यह सम्भव है कि उससे सही निष्कर्ष न निकाले जा सकें और अन्त में सब लोगों में उन्हीं सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का पता लगे, जो मानवीय स्वभाव में अपरिहार्य रूप से सर्वत्र पायी जाती हैं। किन्तु हो सकता है कि हम कतिपय सीमाओं को स्पष्ट कर सकें और भाव तथा अर्थ इत्यादि के सूक्ष्म अन्तर का क्रम स्थापित कर सकें।"[1] हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से हमें भारतीयों की बहुत सी मानसिक प्रवृत्तियों का पता चलता है। यद्यपि ये प्रवृत्तियाँ अन्य जन-समुदायों में पायी जाने वाली प्रवृत्तियों के समान ही हैं, जैसे अशोभन अथवा अश्लील बातों अथवा कार्यों को अच्छे शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। हिन्दी में 'पेशाब' के लिये 'लघुशङ्का' शब्द प्रचलित है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'थोड़ा सङ्कोच'। 'टट्टी' के लिये 'शौच' शब्द प्रचलित है, जिसका मौलिक अर्थ है 'शुद्धि'। बहुत से शब्दों के अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन से समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों का भी पता चलता है, जैसे कतिपय भयङ्कर वस्तुओं का नामोल्लेख करना अशुभ समझा जाने के कारण उनको श्रेष्ठ नाम दे दिये जाते हैं। अशिक्षित तथा अन्धविश्वासी लोगों में चेचक को माता, शीतला आदि नामों से पुकारा जाता है। हैज़ा अथवा प्लेग आदि भयङ्कर बीमारियों के फैलने को 'महामारी' फैलना कहा जाता है। 'महामारी' का अर्थ है 'दुर्गा'। ऐसी बीमारियों को देवी का प्रकोप माना जाने के कारण ही उनको देवी के वाचक शब्दों द्वारा लक्षित किया जाने लगा है।

---

1. "We can imagine a psychology of peoples, based upon the examination of diverse semantic changes, attested in the languages they speak. This study would call for considerable subtlety of mind, but it would be worth-while attempting. It is possible that no accurate conclusions could be drawn therefrom, and that in the end practically the same psychological tendencies would be discovered in all peoples—the inevitable tendencies of human spirit. But we could perhaps define certain limits and establish certain nuances." Language, p. 209.

अध्याय २

अर्थ-वैज्ञानिक विवेचन

(अ) आधुनिक काल में अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन

अर्थ-विज्ञान की परिभाषा

शब्दों के अर्थ और उनके परिवर्तनों का व्यवस्थित अध्ययन ज्ञान की जिस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है, उसे भाषा-वैज्ञानिक 'अर्थ-विज्ञान' (Semantics)[1] कहते हैं। अर्थ-विज्ञान की परिभाषा बाल्डविन (Baldwin) ने अपने दर्शन एवं मनोविज्ञान के कोश में इस प्रकार की है—"अर्थ-विज्ञान

१. इस विज्ञान के नाम के विषय में विद्वानों में मत-भेद है। अधिकतर यूरोपीय भाषाओं में इसके लिये 'अर्थ' (meaning) और 'विज्ञान' (science) के लिये प्रयुक्त होने वाले शब्दों को मिलाकर पृथक्-पृथक् शब्द बना लिये गये हैं। Sematology (जिसका प्रयोग प्रो० सईस ने भी किया है), Semology, Semasiology और Semantics आदि बहुत से नामों में से आजकल Semasiology और Semantics अधिक प्रचलित हैं। इन दोनों में से Semantics, जिसका प्रयोग ब्रेआल ने भी किया है, अपेक्षाकृत सरल और अधिक प्रचलित है। किन्तु इस शब्द के प्रयोग का भाषा-विज्ञान के अतिरिक्त एक अन्य क्षेत्र भी है। दर्शनशास्त्र की कतिपय आधुनिक धाराओं में इस शब्द का प्रयोग सङ्केतों और सङ्केतित पदार्थों के सम्बन्धों के अध्ययन के लिए सामान्य रूप में किया जाता है। इस प्रकार यह शब्द द्व्यर्थक हो जाता है। इस कारण प्रो० स्टेर्न आदि कुछ भाषा-वैज्ञानिक Semasiology शब्द का प्रयोग करते हैं और Semantics शब्द को उपर्युक्त भाषा-विज्ञानेतर क्षेत्र के लिए छोड़ देते हैं। किन्तु अधिकतर विद्वान् भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत आने वाले अर्थ-विज्ञान के लिए भी Semantics शब्द का ही प्रयोग करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में Semantics शब्द को अपनाया गया है और हिन्दी में इसके लिए 'अर्थ-विज्ञान' शब्द का प्रयोग किया गया है।

ऐतिहासिक शब्दार्थों एवं शब्दों के अर्थों में परिवर्तनों के इतिहास एवं विकास का व्यवस्थित विवेचन करने वाला विज्ञान है" ।[1]

आधुनिक अर्थ-विज्ञान का इतिहास

अर्थ-विज्ञान आधुनिक भाषा-विज्ञान की नवीनतम शाखा है। इसका इतिहास अधिक से अधिक एक शताब्दी प्राचीन है। गत शताब्दी में जबकि 'भाषा-विज्ञान' नामक नवीन विज्ञान का जन्म हुआ और विद्वानों ने भाषा के विभिन्न अङ्गों का व्यवस्थित अध्ययन करना प्रारम्भ किया, तो भाषा के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी पक्ष की ओर भी विद्वानों का ध्यान गया। सन् १८२६–२७ में लैटिन भाषाओं पर भाषण देते हुये के० रेज़िग (K. Reisig) ने शब्दों के अर्थों के वैज्ञानिक और व्यवस्थित अध्ययन के महत्त्व की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। रेज़िग ने ही सर्वप्रथम अपनी 'लैटिन भाषा-विज्ञान' नामक पुस्तक में, व्याकरण के एक पृथक् अङ्ग के रूप में, 'अर्थ-विज्ञान' (Semantics) को स्थान दिया। वस्तुतः गत शताब्दी के अन्त और वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में ही अर्थ-विज्ञान का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन प्रारम्भ हुआ। डर्मेस्टेटर (Darmesteter), ब्रेआल (Breal), एर्डमैन (Erdmann), जैबर्ग (Jaberg), मीलेट (Meillet), पॉल (Paul) और वुण्ड्ट (Wundt) आदि विद्वानों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ इसी काल में प्रकाशित हुये।

अर्थ-विज्ञान विषय का व्यवस्थित अध्ययन सर्वप्रथम फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् ब्रेआल द्वारा प्रस्तुत किया गया। १८९७ में इस विषय पर उनकी 'Essai de Semantique' नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई।[2] विषय की दुरूहता के कारण ब्रेआल को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उसने पुस्तक के प्रारम्भ में अपना अनुभव लिखा है—"विषय की दुरूहता से बार-बार प्रतिक्षिप्त होकर मैंने पुस्तक को कभी भी न छूने की प्रतिज्ञा की। अन्त में इस पुस्तक

---

१. "Semantics is the doctrine of historical word-meanings, the systematic discussion of the history and development of changes in the meanings of words". Baldwin, Dictionary of Philosophy and Psychology.

२. मिसेज़ हेनरी कस्ट द्वारा किया हुआ इस पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद "Essay on Semantics" नाम से सन् १९०० ई० में लन्दन से प्रकाशित हुआ था। यह पुस्तक आजकल उपलब्ध नहीं है।

को, जिसको मैं अब तक कई बार छोड़ चुका हूँ और कई बार प्रारम्भ कर चुका हूँ, प्रकाशित करने का निश्चय कर लिया है।" प्रोफ़ेसर जे० पी० पोस्टगेट ने भी इस विषय पर अनुसन्धान-कार्य सन् १८७७ में प्रारम्भ किया था, किन्तु आवश्यक सामग्री के अभाव तथा विषय की दुरूहता के कारण उसे बीच में ही यह विषय छोड़ना पड़ा था। कुछ समय पश्चात् उसने इसी विषय पर कार्य करना पुनः प्रारम्भ किया। सन् १८९६ में यूनिवर्सिटी कालेज लन्दन के उद्घाटन के अवसर पर पोस्टगेट ने अर्थ-विज्ञान (Semantics) विषय पर भाषण देते हुए अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन के महत्त्व पर अत्यधिक प्रकाश डाला। अर्थ-विज्ञान के क्षेत्र में जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् पॉल की भी बहुत महत्त्वपूर्ण देन है। उसने अपनी पुस्तक 'Prinzipien der sprachgeschichte' (1880) में कई अध्यायों में इस विषय का निरूपण किया है। पॉल की पुस्तक के आधार पर स्ट्रॉंग (Strong), लॉगमैन (Logemann) और व्हीलर (Wheeler) ने 'इण्ट्रोडक्शन टु दि हिस्ट्री ऑफ़ लैंग्वेज' नाम की पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं के विषय में पॉल के विचार कहाँ तक सही उतरते हैं। ब्रुगमैन (Brugmann), बेख्टेल (Bechtel), हीडरगेन (Heedergen) और स्वीट (Sweet) आदि विद्वानों ने भी अर्थ-विज्ञान के विकास में पर्याप्त सहयोग दिया है।

१९१३ में Kr. Nyrop ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'Grammaire Historique de la langue Franchise' के चतुर्थ भाग में अर्थ-विज्ञान का विस्तृत निरूपण किया। १९२० के आस-पास अर्थवैज्ञानिक अन्वेषण में विशेष प्रगति हुई। फाल्क (Falk), हेट्ज़फ़ेल्ड (Hetzfeld), कार्नोइ (Carnoy) और वेलैण्डर (Wellander) आदि विद्वानों के कई प्रामाणिक ग्रन्थ इसी काल में प्रकाशित हुये। इन ग्रन्थों में अर्थ-विज्ञान-विषयक विचारधारा अपने विकसित रूप में सामने आई। प्रो० हंस स्पर्बर (Hans Sperber) ने एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उसने अर्थ के ऐतिहासिक अध्ययन में फ्रॉडियन (Freudian) विचार-धारा का अनुसरण किया।

सन् १९३१ में प्रो० जी० स्टेर्न (G. Stern) की 'Meaning and Change of Meaning' नाम की बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हुई। स्टेर्न ने अंग्रेज़ी शब्दों में हुये अर्थ-परिवर्तनों का विशद विवेचन किया है और तर्कशास्त्र (Logic) और मनोविज्ञान (Psychology) के दृष्टिकोण से भी भाषा-विषयक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। अर्थ-विज्ञान की कुछ नवीन

प्रवृत्तियों का भी उसने विश्लेषण किया है। अर्थ-वैज्ञानिक तथ्यों का विश्लेषण करने में उसे लगभग ८ वर्ष पहले प्रकाशित हुई ऑग्डेन और रिचार्ड्स की 'Meaning of Meaning'[1] नाम की पुस्तक से विशेष सहायता मिली।

इसके पश्चात् अर्थ के अनुसन्धान में एक नवीन दार्शनिक प्रणाली का जन्म हुआ, जिसको Semantics नाम से ही सम्बोधित किया जाता है। इस नये अर्थ-विज्ञान (Semantics) में अर्थ-तत्त्व की समस्याओं पर तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से विचार किया जाने लगा। इस नवीन दार्शनिक प्रणाली ने भी यद्यपि भाषा-विषयक अर्थ-वैज्ञानिक अध्ययन में सहयोग दिया है, किन्तु आजकल इन दोनों अर्थ-विज्ञानों में महान् अन्तर हो गया है। ऐसा होते हुए भी प्रो० अर्बन जैसे कतिपय विचारक इन दोनों अर्थ-विज्ञानों की एकता पर बल देते हैं। उनका कथन है कि "(दार्शनिक समस्याओं पर विचार किये विना) भाषा-वैज्ञानिक अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता और न तर्कशास्त्री और दार्शनिक ही भाषागत विश्लेषण विना अपनी

१. यह उल्लेखनीय है कि ऑग्डेन और रिचार्ड्स की 'Meaning of Meaning' नाम की पुस्तक अर्थ-विषयक अनुसन्धान में एक दार्शनिक दृष्टिकोण उपस्थित करती है। दार्शनिक अर्थ-विज्ञान, तार्किक-निश्चयवाद (Logical positivism) की एक शाखा है। ऑग्डेन और रिचार्ड्स ने लेडी वेल्बी (Welby 1837–1912) की विचारधारा से प्रभावित होकर १९२३ में यह पुस्तक लिखी थी। १९३३ में पोलिश गणितशास्त्री A. Korzybski ने 'Science and Sanity' नाम की पुस्तक लिखी, जिसमें उसने अधिकतर उन्हीं विचारों का प्रतिपादन किया जो ऑग्डेन और रिचार्ड्स के थे। कोर्ज़िब्स्की ने अपनी विचारधारा को सामान्य अर्थ-विज्ञान (General Semantics) नाम दिया। स्टुअर्ट चेज़ (Stuart Chase), एच० आर० वैल्पोल (H. R. Walpole), टी० सी० पोलक और हयकवा (Hayakawa) आदि विद्वानों द्वारा प्रचारित यह विचारधारा (अर्थात् General Semantics) अमेरिका में अनेक अनुयायियों को आकृष्ट कर रही है। इस सामान्य अर्थ-विज्ञान की एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् (International Society for General Semantics) भी है, जिसके द्वारा ई० टी० सी० (ETC : A Review of General Semantics) नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की जाती है। एस० आइ० हयकवा (S. I. Hayakawa) इस पत्रिका के सम्पादक हैं।

समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।"[१]

सन् १९५१ में अर्थ-विज्ञान विषय पर ग्लासगो यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर स्टीफ़ेन उलमान की दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुईं; १—'Principles of Semantics,' और २—'Words and Their Use'. 'Principles of Semantics' में उलमान ने अर्थ-विज्ञान की विचारधारा के क्रमिक-विकास का विशद निरूपण किया है। अर्थ-विज्ञान के क्षेत्र में हुए लगभग सभी महत्त्व-पूर्ण अनुसन्धानों की चर्चा की है, और साथ ही अपनी विचारधारा भी प्रस्तुत की है। 'Words and Their Use' यद्यपि एक छोटी सी पुस्तक है, किन्तु इसमें अर्थ-वैज्ञानिक विचारधारा का बड़ी सरल एवं उत्तम रीति से विवेचन किया गया है।

(आ) भारतीय विचारकों के अर्थ-तत्त्व-विषयक विचार

जैसा कि पहिले बतलाया जा चुका है, अर्थ और उसके परिवर्तनों का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन आधुनिक काल में ही प्रारम्भ हुआ है। इससे पहिले अर्थ-तत्त्व के विषय में सामान्य धारणायें प्रचलित थीं। उनका कोई वैज्ञानिक स्वरूप नहीं था। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने भी भाषा के अर्थ-सम्बन्धी पक्ष पर विचार किया है और अर्थ-तत्त्व की कतिपय मौलिक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अवलोकन किया है।

भारत में अर्थ-विषयक अध्ययन का प्रारम्भ

शब्दों के अर्थ-विषयक अध्ययन का अपरिपक्व प्रारम्भ सर्वप्रथम ब्राह्मण-ग्रन्थों में दिखाई पड़ता है, जहाँ कि कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति देने तथा अर्थ समझाने का प्रयत्न किया गया है, यद्यपि उनकी व्युत्पत्तियाँ कहीं-कहीं केवल कल्पना पर आधारित हैं। वैदिक काल में जब वैदिक भाषा में जन-साधारण की भाषा से अन्तर आने लगा था तो संहिताओं की भाषा को शुद्ध बनाये रखने के लिये वैदिक ऋषियों ने पद-पाठ और प्रातिशाख्यों आदि की रचना की तथा अर्थ-अध्ययन की दृष्टि से वैदिक शब्दों के संग्रह-ग्रन्थ बनाये। वैदिक शब्दों के इन संग्रह-ग्रन्थों को 'निघण्टु' कहा जाता है। आजकल

१. "The linguist cannot solve his problems (without entrenching on the philosophical) nor can the logician and the philosopher solve theirs without linguistic analysis". Language and Reality, p. 39.

केवल एक निघण्टु उपलब्ध है, जिसकी व्याख्या के रूप में यास्क का निरुक्त है। बहुत से लोगों का अनुमान है कि उपलब्ध निघण्टु भी यास्कनिर्मित ही है। ऐसा माना जाता है कि उस काल में बहुत से निघण्टु तथा उनकी व्याख्या के रूप में बहुत से निरुक्त रहे होंगे। यास्क ने निरुक्त में निघण्टु के प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ पर विचार किया है। यास्क का निरुक्त व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विचार का विश्व में प्राचीनतम ग्रन्थ कहा जा सकता है। डा० लक्ष्मणस्वरूप का कथन है कि "जहाँ तक व्युत्पत्ति और अर्थ-विचार का सम्बन्ध है, यास्क, प्लेटो और अरिस्टोटल जैसे बड़े से बड़े प्राचीन ग्रीक लेखकों से बहुत आगे है"।[१]

यास्क के कुछ विचार और उनकी ब्रेआल के विचारों से तुलना

यास्क ने निरुक्त में अर्थ-विज्ञान की कतिपय मौलिक समस्याओं पर भी विचार किया है; उदाहरणार्थ, पदार्थों को नाम किस प्रकार दिये जाते हैं, इस विषय में उसके विचार बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। यास्क का मत है कि सब नाम धातुज हैं। प्रत्येक नाम, जो भी किसी पदार्थ को दिया जाता है, वह किसी क्रिया-विशेष के आधार पर दिया जाता है।

यास्क प्रश्न उठाता है—

"यदि सब नाम धातुज हों तो जो कोई भी प्राणी उस कर्म को करे, उन सब प्राणियों को उसी नाम से कहा जाना चाहिये। जो कोई भी मार्ग में दौड़े, उसे 'अश्व'[२] कहा जाना चाहिये। जो कोई भी वस्तु (सुई, भाला आदि) चुभे, उसे 'तृण'[३] कहा जाना चाहिये (केवल घास के तिनके

---

१. "Who (Yask) as far as Etymology and Semantics are concerned, is far in advance of the greatest of ancient Greek writers like Plato and Aristotle". Lakshman Sarup, The Nighaṇṭu and the Nirukta, Introduction p. 3.

२. 'अश्व' शब्द की व्युत्पत्ति √अश् (पहुँचना, व्याप्त करना) धातु से की जाती है, अर्थात् 'जो मार्ग में दौड़े' (अश्वः कस्मात् ? अश्नुते अध्वानम्; निरुक्त २.२६)। यदि कर्म के अनुसार नाम दिया जाये तो जो कोई भी व्यक्ति मार्ग में दौड़े उसे 'अश्व' कहा जाना चाहिये।

३. 'तृण' शब्द √तृ (चुभना) धातु से व्युत्पन्न माना जाता है, अर्थात् 'जो चुभें'। यदि कर्म के अनुसार नाम दिया जाये तो प्रत्येक चुभने वाली वस्तु को 'तृण' कहा जाना चाहिये।

को नहीं)।"[१]

"यदि सब नाम धातुज हों तो जो वस्तु जितनी क्रियाओं से युक्त हों, उतनी ही क्रियाओं से उसके नामों का ग्रहण हो। ऐसा होने पर खम्भे (स्थूणा)[२] को दरशया (गड्ढे में पड़ा हुआ) और सञ्जनी (बल्लियों को सम्भालने वाला) भी कहा जाना चाहिये।"[३]

यास्क उत्तर देता है—

"जो यह कहा कि जो कोई भी प्राणी उस कर्म को करे, उन सब प्राणियों को उसी नाम से कहा जाना चाहिये, सो देखते हैं कि समान कर्म करने वालों में से कुछ को उस नाम की प्राप्ति होती है, कुछ को नहीं, यथा—तक्षा, परिव्राजक, भूमिज आदि।"[४] 'तक्षा' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—'लकड़ी को काटने वाला' (तक्षतीति), किन्तु प्रत्येक लकड़ी को काटने वाले को 'तक्षा' नहीं कहा जाता, 'बढ़ई' को ही 'तक्षा' कहा जाता है। 'परिव्राजक' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—'घूमने वाला' (परिव्रजतीति), किन्तु प्रत्येक घूमने वाले को 'परिव्राजक' नहीं कहा जाता, केवल 'संन्यासी' को 'परिव्राजक' कहा जाता है। 'जीवन' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—'जिलाने वाला,

---

१. अथ चेत् सर्वाण्याख्यातजानि स्युर्यः कश्च तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत् सत्त्वं तथाचक्षीरन्। यः कश्चाध्वानमश्नुवीताश्वः स वचनीयः स्यात्। यत् किञ्चित् तृन्द्यात्तृणं तत्। निरुक्त १. ११.

२. 'स्थूणा' शब्द की व्युत्पत्ति √स्था (खड़ा होना) धातु से मानी जाती है, अर्थात् 'जो खड़ा हो' (तिष्ठतीति)। यदि खम्भे को खड़ा होने के कारण 'स्थूणा' कहा जाये, तो वह अन्य जितनी भी क्रियाओं से युक्त है, उतनी ही क्रियाओं से उसके नामों का ग्रहण होना चाहिये, अर्थात् गड्ढे में पड़ा हुआ होने के कारण उसे 'दरशया' भी कहा जाना चाहिये, और बल्लियों को सम्भालने वाला होने के कारण 'सञ्जनी' भी कहा जाना चाहिये।

३. अथ चेत् सर्वाण्याख्यातजानि नामानि स्युर्यावद्भिर्भावैः संप्रयुज्येत तावद्भ्यो नामधेयप्रतिलम्भः स्यात्। तत्रैवं स्थूणा दरशया वा सञ्जनी च स्यात्। निरुक्त १. ११.

४. यथो एतद् यः कश्च तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत्सत्त्वं तथाचक्षीरन्निति। पश्यामः समानकर्मणां नामधेयप्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा तक्षा परिव्राजको जीवनो भूमिज इति। निरुक्त १. १२.

जीवन देने वाला' (जीवयतीति), किन्तु प्रत्येक जीवनप्रद वस्तु (अन्न, दूध आदि) को 'जीवन' नहीं कहा जाता, 'पानी' को ही 'जीवन' कहा जाता है। इसी प्रकार 'भूमिज' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—'भूमि में उत्पन्न होने वाला' (भूमौ जायते भूमिजः), किन्तु भूमि में उत्पन्न होने वाले (कीट, पतङ्ग आदि) प्रत्येक पदार्थ को 'भूमिज' नहीं कहा जाता, अधिकतर 'वृक्ष' को 'भूमिज' कहा जाता है। एक वस्तु के कितनी ही क्रियाओं से सम्बद्ध होने पर भी उसका नाम किसी विशेष क्रिया के आधार पर पड़ जाता है, अन्य क्रियाओं के आधार पर नहीं। अनेक क्रिया वाली किसी वस्तु के तत्तत्क्रिया-जन्य अनेक नाम नहीं होते।

वस्तुओं के नाम किसी एक अंश या क्रिया-विशेष के आधार पर पड़ने के कारण उनके नामों को पूर्ण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि किसी वस्तु के एक अंश अथवा क्रिया-विशेष के आधार पर पड़े हुये नाम द्वारा उस वस्तु के समस्त गुणों का बोध नहीं होता (यास्क ने शब्दों को अपूर्ण रूप में नाम देने की इस प्रवृत्ति का जो अवलोकन किया है, उससे ब्रेआल के निम्न कथन की तुलना की जा सकती है—

"अब तक जो कुछ कहा जा चुका है उससे एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है। (वह यह कि) यह एक असन्दिग्ध तथ्य है कि भाषा पदार्थों को अपूर्ण और अयथार्थ (inaccurate) रूप में लक्षित करती है। अपूर्ण : इसलिये क्योंकि जब हम सूर्य (sun)[१] को चमकता हुआ कहते हैं, तो जो कुछ भी सूर्य के विषय में कहा जा सकता है, वह सब हम नहीं कह चुके अथवा घोड़े (horse)[२] के विषय में जब हम कहते हैं कि वह दौड़ता है, हम सब कुछ नहीं कह चुके। अयथार्थ : इसलिये क्योंकि हम सूर्य को, जब वह छिप गया हो, यह नहीं कह सकते कि वह चमकता है अथवा घोड़े को, जब वह विश्राम कर रहा हो अथवा जब घायल हो या मर गया हो, यह नहीं कह सकते कि वह दौड़ता है।"

---

१. अंग्रेज़ी के sun शब्द की उत्पत्ति जिस धातु से हुई है, उसका अर्थ 'चमकना' है। अतः सूर्य को चमकने वाला माना जाने के कारण ही sun कहा गया।

२. अंग्रेज़ी का horse शब्द लैटिन के curro शब्द से सम्बद्ध है, जिसका अर्थ है—'दौड़ना'। 'दौड़ने वाला' होने के कारण ही 'घोड़े' को horse कहा गया।

"नाम पदार्थों के सङ्केत होते हैं। उनमें केवल उतनी ही मात्रा में सत्य निहित रहता है, जितना कि एक नाम में हो सकता है और वह (मात्रा) पदार्थ के पूर्ण स्वरूप के अनुपात में बहुत कम होती है। भाषा के लिये यह असम्भव होगा कि वह एक शब्द में उन सब भावों को समाहित कर सके, जिनको वह वस्तु अथवा पदार्थ मस्तिष्क में जागृत करता है। अतः भाषा पदार्थ के अनेक रूपों में से किसी एक रूप को चुनने के लिये विवश होती है।"[१]

शब्दशक्तियाँ

प्राचीन भारतीय वैयाकरणों, दार्शनिकों तथा साहित्य-शास्त्रियों ने शब्द और अर्थ के स्वरूप, शब्द और अर्थ के सम्बन्ध, शब्द की शक्ति आदि विषयों पर बहुत सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया है, जिससे शब्द और अर्थ से सम्बद्ध अनेक अर्थ-वैज्ञानिक समस्याओं पर प्रकाश पड़ता है।

संस्कृत साहित्यशास्त्र में यह स्थापित किया गया है कि शब्द में एक ऐसी विशेषता निहित होती है, जिसके कारण शब्द की अर्थ में प्रवृत्ति होती है। शब्द की अर्थ में प्रवृत्ति करने वाली इस विशेषता को 'शक्ति' कहा गया है

१. "One conclusion is to be drawn from all that has gone before. It is an undoubted fact that language designates things in an incomplete and inaccurate manner. Incomplete : since we have not exhausted all that can be said of the sun when we have declared it to be shining, or of the horse when we say that it trots. Inaccurate : since we can not say of the sun that it shines when it has set, or of the horse that it trots when it is at rest, or when wounded or dead."

"Substantives are signs attached to things : they contain exactly that amount of truth which can be contained by a name, an amount which is of necessity small in proportion to the reality of the object ..It will be impossible for language to introduce into the word all the ideas which this entity or object awakens in the mind. Language is therefore compelled to choose." Breal, M. : Semantics, Ch. XVIII Eng. Trans. by Cust, p. 171, 172 Quoted from The Nighaṇṭu and the Nirukta, Introduction, p. 71.

और उसको तीन प्रकार का माना गया है—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना।[१]

शब्दों के वाच्यार्थ (अर्थात् साक्षात् सङ्केतित अर्थ) का बोध कराने वाली शक्ति को 'अभिधा' कहा जाता है। अभिधा शक्ति द्वारा ज्ञात होने वाले अर्थ को 'मुख्यार्थ' भी कहा जाता है।[२]

वाच्यार्थ की अनुपपत्ति होने (अर्थात् न बन पड़ने) पर जिस शक्ति द्वारा उससे सम्बद्ध किसी अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे 'लक्षणा' शक्ति कहा जाता है।[३] उसके द्वारा ज्ञात होने वाले अर्थ को 'लक्ष्यार्थ' कहा जाता है। 'लक्षणा' शक्ति द्वारा शब्द के वाच्यार्थ से भिन्न उससे सम्बद्ध अन्य अर्थ का बोध होने के कारण अर्थ-विज्ञान में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उससे शब्दों के अर्थ-विकास की प्रक्रिया पर कुछ प्रकाश पड़ता है। पतञ्जलि ने बतलाया है कि अन्य में अन्य का ज्ञान चार प्रकार से होता है; तत्स्थता, तद्धर्मता, तत्समीपता और तत्साहचर्य द्वारा,[४] यथा—'मञ्चा हसन्ति' में तत्स्थता के कारण मञ्चस्थ बालकों को 'मञ्च', 'गौर्वाहीकः' में जाड्यगुण की समानता (ताद्धर्म्य) के कारण वाहीक को 'गौ', 'गङ्गायां घोषः' में समीपस्थता के कारण 'घोष' को गङ्गा में, 'कुन्तान् प्रवेशय' में साहचर्य के कारण 'भाले वालों' को 'कुन्त' कहा गया है। शब्द की लक्षणा शक्ति का विस्तृत निरूपण मम्मट के काव्यप्रकाश (द्वितीय उल्लास) तथा विश्वनाथ के साहित्यदर्पण आदि साहित्य-शास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में किया गया है।

जब किसी शब्द या वाक्य से वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ का भी बोध होता है, तो वह 'व्यञ्जना' शक्ति द्वारा होता है।[५]

---

१. सा च वृत्तिस्त्रिधा। शक्तिर्लक्षणा व्यञ्जना च। मञ्जूषा पृष्ठ १६.
वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः।
व्यङ्ग्यो व्यञ्जनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः॥ साहित्य० २.३.

२. स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते। काव्य० २.८.

३. मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया॥ काव्य० २.९.

४. चतुर्भिः प्रकारैस्तस्मिन् स इत्येतद् भवति, तात्स्थ्यात्, ताद्धर्म्यात्, तत्सामीप्यात्, तत्साहचर्यादिति। महाभाष्य ४.२. ४८.

५. उदाहरणार्थ, 'सूर्योऽस्तङ्गतः' इतना कहने से 'शाम हो गई' इस वाच्यार्थ का बोध हो जाता है। किन्तु, किसने किससे कहा, इस बात पर

विश्वनाथ ने व्यञ्जना शक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है—"जब अभिधा और लक्षणा शक्तियाँ अपना-अपना अर्थ बताकर अलग हट जाती हैं, तब जिस शक्ति द्वारा दूसरा अधिक अर्थ भासित होता है, वह 'व्यञ्जना' शक्ति होती है। अर्थ-द्योतन की यह शक्ति शब्द में, अर्थ में, प्रकृति, प्रत्यय आदि में रहती है।"[१]

इस प्रकार व्यञ्जना शक्ति द्वारा वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ का बोध होने पर भी अन्य अर्थों का बोध होने से शब्दों के अर्थ-विकास की प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ता है। व्यञ्जना अथवा ध्वनि-सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम आनन्दवर्धन ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ध्वन्यालोक में किया। आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक पर आचार्य अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोकलोचन नामक टीका लिखी है, जिसमें उसने आनन्दवर्धन द्वारा प्रतिपादित व्यञ्जना अथवा ध्वनि के सिद्धान्त का विशद विश्लेषण किया है। इसके पश्चात् आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ काव्यप्रकाश (द्वितीय तथा पञ्चम उल्लास) में व्यञ्जना अथवा ध्वनि के सिद्धान्त की स्थापना करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। विश्वनाथ आदि बाद के साहित्याचार्यों ने भी व्यञ्जना अथवा ध्वनि के सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन किया है।

पर्यायवाची शब्द और नानार्थक शब्द

संस्कृत वैयाकरणों ने 'अनेक शब्दों के एक अर्थ' और 'एक शब्द के अनेक अर्थ' होने की समस्या पर भी विचार किया है। पतञ्जलि ने इस विषय में कहा है कि बहुत से शब्द एक अर्थ वाले होते हैं, यथा इन्द्र के लिये शक्र, पुरुहूत, पुरन्दर आदि शब्द पाये जाते हैं और एक शब्द के बहुत से अर्थ भी होते हैं, यथा अक्ष, पाद और माष शब्द के बहुत से अर्थ होते

विचार करने से इस वाक्य के जो अन्य विभिन्न अर्थ निकलते हैं, वे व्यञ्जना शक्ति द्वारा ही निकलते हैं। यदि चरवाहा अपने साथी से कहता है, तो इसका अभिप्राय है कि अब पशुओं को वापिस ले चलो, यदि खेल के मैदान में खड़ा हुआ खिलाड़ी कहता है, तो इसका अभिप्राय है कि खेलना बन्द करो, यदि छात्रावास में पढ़ते हुये एक छात्र अपने किसी दूसरे साथी से कहता है, तो इसका अभिप्राय है कि अब पढ़ना बन्द करो, आदि।

१. विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यतेऽपरः।
सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ॥ साहित्य० २.१२.

हैं।[१] संस्कृत में ऐसे बहुत से कोश हैं, जिनमें पर्यायवाची तथा नानार्थक शब्द दिये हुये हैं।

अर्थ-निर्णय के साधन

शब्दों के अनेक अर्थ होने पर किसी विशेष प्रसङ्ग में उनके अर्थों का निश्चय किस प्रकार किया जाये, इस विषय पर भी प्राचीन भारतीय वैयाकरणों, साहित्यशास्त्रियों तथा दार्शनिकों ने विचार किया है। बृहद्देवता में कहा गया है कि वैदिक मन्त्रों तथा साधारण वाक्यों में अर्थ का निश्चय प्रयोजन, प्रकरण, लिङ्ग, औचित्य, देश और काल को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिये।[२] भर्तृहरि ने भी अर्थ-निर्णय के इन्हीं साधनों को माना है। उसने केवल इतना परिवर्तन किया है कि 'लिङ्ग' के स्थान पर 'वाक्य' कर दिया है।[३] ऐसे स्थलों पर, जहाँ शब्दों का अर्थ अस्पष्ट अथवा सन्दिग्ध हो, ठीक अर्थ का निश्चय करने के साधनों की एक अन्य लम्बी सूची भी भर्तृहरि द्वारा दी गई है। उसने कहा है—"शब्दार्थ के सन्दिग्ध अथवा अस्पष्ट होने पर संसर्ग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, अर्थ (प्रयोजन), प्रकरण, लिङ्ग, अन्य शब्द का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति और स्वर आदि भी सही अर्थ का निर्णय करने में विशेष स्मृति के हेतु होते हैं"।[४] अर्थ-निश्चय के इन साधनों को, जो वस्तुतः प्रसङ्ग से ही सम्बन्ध रखते हैं, भर्तृहरि के बाद के नागेश[५] आदि वैयाकरणों तथा मम्मट,[६] विश्वनाथ,[७] हेमचन्द्र,[८] जगन्नाथ पण्डित[९]

---

१. बहवो हि शब्दा एकार्था भवन्ति। तद्यथा इन्द्रः शक्रः पुरुहूतः। एकश्च शब्दो बह्वर्थः। तद्यथा अक्षाः पादाः माषाः इति। महाभाष्य १.३.१.६.

२. अर्थात्प्रकरणाल्लिङ्गादौचित्याद्देशकालतः।
मन्त्रेष्वर्थावबोधः स्यादितरेष्विति च स्थितिः॥ बृहद्देवता २. ११८.

३. वाक्यात्प्रकरणादर्थादौचित्याद्देशकालतः।
शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलम्॥ वाक्य० २.३१६.

४. संसर्गो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य संनिधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥ वाक्य० २.३१७–३१८.

५. लघुमञ्जूषा पृष्ठ ११०. ६. काव्य० उल्लास २.

७. साहित्य० परिच्छेद २. ८. काव्यानुशासन पृष्ठ ३९.

९. रसगङ्गाधर पृष्ठ ११८–१२६ आदि।

आदि साहित्यशास्त्रियों ने भी माना है और इनका विशद विवेचन किया है। अर्थ-निर्णय में ये किस प्रकार सहायक होते हैं, इसके स्पष्टीकरण के लिये नीचे इनका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. **संसर्ग**—'संसर्ग' किसी वस्तु के किसी अन्य वस्तु के साथ सम्बन्ध को कहते हैं। संसर्ग के निर्देश से भी अर्थ का निर्णय किया जाता है, जैसे संस्कृत में 'हरि' शब्द के बन्दर, शेर, विष्णु आदि कई अर्थ हैं, किन्तु यदि 'सशङ्खचक्रो हरिः' कहें तो यहाँ 'हरि' का अर्थ 'विष्णु' ही होगा, क्योंकि शङ्ख और चक्र का संसर्ग विष्णु के साथ ही माना जाता है।

२. **विप्रयोग**—'विप्रयोग' का अर्थ है 'वियोग, अलगाव'। जिस वस्तु का किसी के साथ संयोग रहता हो, उसका वियोग दिखाने से, उसी का बोध होगा, जैसे 'अशङ्खचक्रो हरिः' में 'हरि' से 'विष्णु' का बोध होगा।

३. **साहचर्य**—दो वस्तुओं के साहचर्य के निर्देश से भी अर्थ का निश्चय होता है, जैसे राम और लक्ष्मण का साहचर्य होने के कारण 'रामलक्ष्मणौ' में 'राम' से 'दाशरथि राम' का ही बोध होगा।

४. **विरोधिता**—जिनका विरोध प्रसिद्ध है, उनके विरोधी का उल्लेख होने से भी अर्थ का निश्चय होता है, जैसे 'कर्णार्जुनौ' में 'अर्जुन' से 'पार्थ अर्जुन' का ही बोध होगा, 'कार्तवीर्य' का नहीं, क्योंकि कर्ण और पार्थ अर्जुन का विरोध प्रसिद्ध है।

५. **अर्थ**—'अर्थ' का अभिप्राय है 'प्रयोजन'। वाक्य बोलने के प्रयोजन के निर्देश से भी अर्थ का निश्चय होता है, जैसे वन्दना प्रयोजन होने पर 'स्थाणुं भज भवच्छिदे' में 'स्थाणु' का अर्थ 'शिव' होगा, 'खम्भा' नहीं।

६. **प्रकरण**—'प्रकरण' का अर्थ है 'प्रसङ्ग'। प्रसङ्ग के ज्ञान से भी अर्थ का निश्चय होता है, जैसे यदि भोजन का प्रसङ्ग है, तो 'सैन्धवमानय' में 'सैन्धव' का अर्थ 'नमक' होगा और यदि प्रस्थान का प्रसङ्ग है, तो 'सैन्धव' का अर्थ 'घोड़ा' होगा।

७. **लिङ्ग**—'लिङ्ग' का अर्थ है 'चिह्न, लक्षण'। किसी वस्तु के किसी विशेष चिह्न अथवा लक्षण से भी अर्थ का निर्णय होता है, जैसे कामदेव का चिह्न मकर होने से 'कुपितो मकरध्वजः' में 'मकरध्वज' से 'कामदेव' का ही बोध होगा, 'समुद्र' का नहीं।

८. **अन्य शब्द का सान्निध्य**—अन्य शब्द की समीपता से भी अर्थ का

निश्चय हो जाता है, जैसे 'रामो जामदग्न्यः' में 'जामदग्न्य' की समीपता के कारण 'राम' से 'परशुराम' का बोध होता है।

९. **सामर्थ्य**—जिसमें उस भाव या कार्य को करने का सामर्थ्य होगा, उसी अर्थ का बोध होगा, जैसे 'मधुमत्तः कोकिलः' में 'मधु' का अर्थ 'वसन्त' है, 'शहद', 'सुरा' या 'राक्षस' नहीं, क्योंकि वसन्त में ही कोयल को मस्त करने का सामर्थ्य है।

१०. **औचित्य**—'औचित्य' का अर्थ है 'उपयुक्तता'। वाक्य में जो अर्थ उपयुक्त अथवा उचित होगा, उसी का ग्रहण होगा, जैसे 'पातु वो दयितामुखम्' में 'मुख' का अर्थ 'साम्मुख्य' लिया जायगा, 'मुँह' नहीं, क्योंकि 'साम्मुख्य' अर्थ ही उचित है।

११. **देश**—'देश' का अर्थ है 'स्थान'। देश (स्थान) का निर्देश होने से भी नानार्थक शब्द के अर्थ का निश्चय होता है, जैसे 'भात्यत्र परमेश्वरः' में 'अत्र' (यहाँ) का निर्देश होने से 'परमेश्वर' शब्द का अर्थ 'राजा' होगा, 'शिव' नहीं।

१२. **काल**—'चित्रभानुः' शब्द का अर्थ 'सूर्य' भी है और 'आग' भी है, किन्तु यदि 'निशि चित्रभानुः' कहें तो 'निश्' (रात्रि) का निर्देश होने के कारण 'चित्रभानुः' से 'अग्नि' का बोध होगा, और यदि 'दिवा चित्रभानुः' कहें तो 'सूर्य' का।

१३. **व्यक्ति**—'व्यक्ति' का अर्थ है 'लिङ्ग'—पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, नपुंसक लिङ्ग आदि। एक ही शब्द के विभिन्न लिङ्गों में प्रयुक्त होने पर विभिन्न अर्थ हो सकते हैं, जैसे 'मित्र' शब्द का पुंल्लिङ्ग में 'सूर्य' और नपुंसक लिङ्ग में 'दोस्त' अर्थ होता है; 'गो' शब्द का पुंल्लिङ्ग में 'बैल' और स्त्रीलिङ्ग में 'गाय' अर्थ होता है; 'आम्र' शब्द पुंल्लिङ्ग होने पर वृक्षवाची होता है, और नपुंसक लिङ्ग होने पर फलवाची होता है।

१४. **स्वर**—वैदिक साहित्य में स्वर के प्रयोग का बड़ा महत्त्व है। वैदिक मन्त्रों में स्वर के निर्देश से शब्दों के अर्थ का निर्णय करने में बड़ी सहायता मिलती है। स्वर के अशुद्ध प्रयोग से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इस विषय में 'इन्द्रशत्रुः' वाली किंवदन्ती प्रसिद्ध ही है। कहा जाता है कि एक बार असुरों ने इन्द्र को परास्त करने के उद्देश्य से अभिचार-यज्ञ कराया। असुरों का नेता वृत्र था। वह इन्द्र को मारना चाहता था। इसी मनोकामना की पूर्ति के

लिये यज्ञ कराया गया। यज्ञ में ऋत्विज् ने 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' का उच्चारण करते हुए 'इन्द्रशत्रुः' शब्द का अन्तोदात्त के स्थान पर आद्योदात्त उच्चारण कर दिया। 'इन्द्रशत्रुः' का अन्तोदात्त उच्चारण करने पर तत्पुरुष समास होने के कारण 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' का अर्थ होता 'इन्द्र का शत्रु (नाशक) वृद्धि को प्राप्त हो'; किन्तु आद्युदात्त उच्चारण कर दिये जाने पर बहुव्रीहि समास हो जाने के कारण उसका अर्थ हो गया 'इन्द्र है शत्रु (नाशक) जिसका वह वृद्धि को प्राप्त हो।' कहा जाता है कि इस प्रकार विपरीत अर्थ हो जाने के कारण युद्ध में वृत्र मारा गया। इस घटना का उल्लेख पाणिनीय-शिक्षा[1] तथा शतपथब्राह्मण[2] आदि में भी पाया जाता है।

समास से अर्थ-भेद

दो पदों के समस्त हो जाने पर बहुधा वे किसी एक विशिष्ट वस्तु को लक्षित करने लगते हैं। उनके पृथक्-पृथक् अर्थों का बोध नहीं होता, जैसे—गौरखर, कृष्णसर्प, लोहितशालि आदि शब्द क्रमशः 'खर', 'सर्प', और 'शालि' (चावल) की जाति-विशेष का बोध कराते हैं।[3] ओदनपाकी, शङ्खपुष्पी, शङ्कुकर्णी, दासीफली, दर्भमूली आदि शब्द ओषधिविशेष का बोध कराते हैं,[4] उनके पृथक्-पृथक् अर्थों का बोध नहीं होता।

उपसर्ग-संयोग से अर्थ-भेद

उपसर्ग के संयोग से शब्द और धातुओं के अर्थ में अन्तर पड़ जाता है, इसका उल्लेख विभिन्न व्याकरण-ग्रन्थों में किया गया है। यजुःप्रातिशाख्य ८·५४ तथा ऋक् प्रातिशाख्य १२·२५ में कहा गया है कि उपसर्ग अर्थ में विशेषता उत्पन्न कर देता है।[5] कात्यायन और पतञ्जलि ने भी कहा है कि उपसर्ग

---

१. मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥
श्लोक ५२.

२. अथ यदब्रवीत् इन्द्रशत्रुर्वर्धस्वेति तस्मादु हैनं इन्द्र एव जघान।
१.६.३.१.

३. पदवाच्यो यथा नार्थः कश्चिद् गौरखरादिषु।
सत्यपि प्रत्ययेऽत्यन्तः समुदाये न गम्यते॥ वाक्य० २. २१८.

४. ओषधिविशेषे रूढ़ा एते। अष्टाध्यायी ४. १. ६४.

५. उपसर्गो विशेषकृत्।

धात्वर्थ में विशेषता उत्पन्न करने वाला होता है।[१] भट्टोजिदीक्षित ने कहा है कि 'उपसर्ग के संयोग से धातु का अर्थ बहुत दूर चला जाता है'।[२] उपसर्ग के संयोग से धातु अकर्मक से सकर्मक भी हो जाती है।[३]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय वैयाकरणों, साहित्य-शास्त्रियों तथा दार्शनिकों ने शब्दों और अर्थों की विभिन्न प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अवलोकन किया है। शब्द और अर्थ से सम्बद्ध विभिन्न प्रवृत्तियों के उनके विवेचन के अध्ययन से अर्थ-विज्ञान की कतिपय जटिल समस्याओं का समाधान करने में सहायता मिल सकती है।

(इ) अर्थ-परिवर्तनों का वर्गीकरण

किसी भाषा के शब्दों में हुये अर्थ-परिवर्तनों का निश्चित श्रेणियों में विभाजन करना बड़ा कठिन कार्य है। कुछ विद्वानों की तो यह धारणा है कि अर्थ-परिवर्तनों के वर्गीकरण की निर्दोष एवं त्रुटिरहित योजना बनाना सम्भव ही नहीं है। गोल्ड्सटकर ने लिखा है—"अर्थ-परिवर्तन के नियमों का अभी पता नहीं लगाया जा सका है और सम्भवतः उनका पता लगाया भी नहीं जा सकता। अर्थ-परिवर्तन की कुछ प्रवृत्तियों और घटनाओं का रोचक पर्यवेक्षण किया जा सकता है, इससे आगे जाना कठिन है। अर्थ के परिवर्तनों के मूल में अकेला मन ही कारण है। अतएव हम उन जटिल मानसिक व्यापारों को, जो एक अर्थ को दूसरे में परिवर्तित कर देते हैं, नियमों में बांधने की आशा नहीं कर सकते। हम इतना कह सकते हैं कि कुछ शब्दों के अर्थ में विस्तार हो जाता है, कुछ के अर्थ में सङ्कोच हो जाता है, और कुछ के अर्थ सर्वथा भिन्न हो जाते हैं, और कभी-कभी हम भावों के उन सम्बन्धों का भी पता लगा सकते हैं, जो अर्थों में परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं। परन्तु हम ऐसे मूलभूत सिद्धान्तों की स्थापना नहीं कर सकते, जो यह निर्धारित करते हों कि अमुक प्रकार के शब्दों के अर्थों में सङ्कोच की अपेक्षा विस्तार ही अवश्य होगा अथवा विस्तार की अपेक्षा सङ्कोच ही अवश्य होगा।"[४]

---

१. क्रियाविशेषक उपसर्गः। महाभाष्य १.३.१.

२. उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारप्रतिहारवत् ॥ सिद्धान्त० ८.४.१८.

३. अकर्मका अपि वै सोपसर्गाः सकर्मका भवन्ति। महाभाष्य १.१.४३.

४. टी० जी० गोल्ड्सटकर : इण्ट्रोडक्शन टु दि नेचुरल हिस्ट्री ऑफ़ लैंग्वेज, पृष्ठ ३७३.

प्रो० हंस स्पर्बर का भी ऐसा ही मत है। उसका कथन है—"अर्थ-विज्ञान द्वारा प्रस्तुत ऐसे समस्त प्रश्नों में जिनका हल अभी नहीं हो सका है, मुझे और कोई प्रश्न निर्णय के लिये इतना अधिक अपरिपक्व नहीं दिखाई पड़ता, जितना यह। यह ध्यान में रखना चाहिये कि अर्थ-परिवर्तन की घटनायें जो अभी तक कुछ पूर्णता के साथ खोजी जा सकी हैं, उनकी संख्या अधिक से अधिक कुछ दर्जन है। तथ्यों के इतने अपूर्ण संग्रह के आधार पर सामान्यतः प्रामाणिक माने जाने वाले वर्गीकरण के ढाँचे को बनाने का विचार वनस्पति-शास्त्रीय ऐसी योजना से अधिक आशाजनक प्रतीत नहीं होता, जिसे कि किसी ऐसे व्यक्ति ने बनाया हो जिसे चिनार, कुकुरमुत्ता और गुलबहार के विषय में ही विस्तृत ज्ञान हो।"[१] सी० डी० बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुए पर्यायवाची शब्दों के कोश के प्राक्कथन में अर्थ-परिवर्तन की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए लिखा है—"अर्थ-परिवर्तनों के मूल में निहित भाव-सम्पर्क इतने मिश्रित होते हैं कि उन (अर्थ-परिवर्तनों) का कठोर वर्गीकरण सम्भव नहीं है। बहुत से अर्थ-परिवर्तनों को विभिन्न प्रकार से देखा जा सकता है। किसी भी अर्थ में प्रत्येक शब्द का अपना निजी अर्थ-सम्बन्धी इतिहास होता है। फिर भी अर्थ-परिवर्तनों के कुछ वर्ग तो ऐसे हैं जिनको पहिचानना सरल है।"[२] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अर्थ-परिवर्तनों की प्रक्रिया बड़ी जटिल और मिश्रित होने के कारण उनका वर्गीकरण करना बड़ा कठिन कार्य है।

उपर्युक्त कठिनता के होते हुए भी अर्थ-विज्ञान के प्रमुख विद्वानों ने इस समस्या पर विस्तारपूर्वक विचार किया है और अर्थ-परिवर्तनों के वर्गीकरण की कोई न कोई नई योजना प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार अर्थ-परिवर्तनों के बहुत से वर्गीकरण मिलते हैं। उन सबके गुण-दोषों का विवेचन करना यहाँ अपेक्षित नहीं है। यहाँ केवल प्रमुख-प्रमुख वर्गीकरणों का उल्लेख किया जा रहा है।

अर्थ-परिवर्तनों का सर्वप्रथम उल्लेखनीय वर्गीकरण मिशेल ब्रेआल का है, जिसे तर्कसङ्गत वर्गीकरण (Logical Classification) कहा जाता है। अपनी पुस्तक Essai de Semantique में ब्रेआल ने इसका प्रतिपादन

१. Einfuhrung in die Bedentungslohre, पृष्ठ ९३.

२. ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, प्रीफ़ेस, पृष्ठ vi.

किया है। ब्रेआल ने पता लगाया कि अर्थों के परिवर्तनों के सम्बन्ध में तीन सम्भावनायें होती हैं, (१) नवीन अर्थ पहिले अर्थ से विस्तृत हो जाता है, अथवा (२) नवीन अर्थ पहिले अर्थ से सङ्कुचित हो जाता है, अथवा (३) नवीन अर्थ पहिले अर्थ से सर्वथा पृथक् हो जाता है। इस प्रकार उसने अर्थ-परिवर्तन की तीन दिशायें मानी हैं; १. अर्थ-विस्तार (Expansion of Meaning), २. अर्थ-सङ्कोच (Contraction of Meaning), ३. अर्थादेश (Transference of Meaning)।

१. **अर्थ-विस्तार**—जब शब्दों का अर्थ किसी विशिष्ट अर्थ से हटकर सामान्य हो जाता है, तो उसे अर्थ-विस्तार कहते हैं। संस्कृत में पहिले 'प्रवीण' शब्द का अर्थ 'वीणावादन में चतुर' (प्रकृष्टो वीणायाम्) था, किन्तु बाद में इसका अर्थ विस्तृत होकर 'चतुर' हो गया। इसी प्रकार 'कुशल' शब्द का अर्थ पहिले 'कुशों का काटने वाला' (कुशं लातीति) था। कुशों को काटने में चातुर्य की आवश्यकता होती है। अतः भाव-साहचर्य से 'कुशल' शब्द का अर्थ विस्तृत होकर 'चतुर' हो गया। पहिले अंग्रेज़ी के arrive (लैटिन adripare, फ्रेंच arriver) शब्द का अर्थ 'तट पर पहुँचना' था, किन्तु बाद में इसके अर्थ में विस्तार हो गया और किसी भी स्थान पर पहुँचने के लिये arrive शब्द प्रचलित हो गया।

२. **अर्थ-सङ्कोच**—जब शब्दों का अर्थ किसी सामान्य अथवा विस्तृत अर्थ से विशिष्ट हो जाता है, तो उसे अर्थ-सङ्कोच कहते हैं। संस्कृत में 'मृग' शब्द का अर्थ पहिले 'पशु' था। हाथी के लिये 'हस्तिन् मृग' शब्द का प्रयोग पाया जाता है ('सिंह' के लिये प्रयुक्त 'मृगेन्द्र' शब्द में 'मृग' शब्द 'पशु' अर्थ में अब भी विद्यमान है)। किन्तु बाद में 'मृग' शब्द का अर्थ सङ्कुचित होकर 'हरिण' (पशुविशेष) हो गया। अंग्रेज़ी के deer शब्द का भी 'हरिण' अर्थ इसी प्रकार विकसित हुआ है। deer शब्द का अर्थ भी पहिले 'पशु' ही था।

३. **अर्थादेश**—जब शब्द के मौलिक अर्थ से सम्बन्ध न रखने वाला कोई बाह्य भाव अनजाने में उस अर्थ के साथ जुड़ जाता है और धीरे-धीरे समय पाकर वह ही उस शब्द का मुख्यार्थ बन कर मौलिक अर्थ से सर्वथा भिन्न हो जाता है तो उसे अर्थादेश कहते हैं। 'पाषण्ड' शब्द का अर्थ पहिले 'वेद-विरुद्ध आचरण करने वाला' अथवा 'नास्तिक' था। अधिकतर कापालिकों और बौद्धों के लिये 'पाषण्ड' शब्द का प्रयोग किया जाता था। किन्तु बाद में कापालिकों तथा बौद्धों के ढोंगी तथा व्यभिचारी हो जाने पर 'पाषण्ड' शब्द के साथ ढोंग तथा

व्यभिचार के भाव का साहचर्य हो गया और कालान्तर में यह शब्द 'ढोंग' अथवा 'आडम्बर' को ही लक्षित करने लगा। 'असुर' शब्द का अर्थ पहिले 'देवता' था। ऋग्वेद की प्रारम्भिक ऋचाओं में 'असुर' शब्द का प्रयोग 'देवता' अर्थ में पाया जाता है, किन्तु 'असुर' (ईरानी अहुर) के ईरानियों का देवता होने के कारण, ईरानियों के प्रति तिरस्कार की भावना प्रकट करने के लिए आर्यों द्वारा 'असुर' शब्द का प्रयोग 'राक्षस' अर्थ में किया जाने लगा।

ब्रेआल के इस वर्गीकरण की विशेषता इसकी पूर्णता है। यह असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि अर्थ-परिवर्तन की उपर्युक्त तीन श्रेणियों के अतिरिक्त चौथी श्रेणी नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त यह वर्गीकरण सरल भी है। किसी भी अर्थ-परिवर्तन का सरलतापूर्वक वर्गीकरण किया जा सकता है। किन्तु ये विशेषतायें होते हुये भी इस वर्गीकरण में एक बहुत बड़ा दोष है। यह वर्गीकरण केवल अर्थ-परिवर्तनों के बाह्य स्वरूप का विश्लेषण करता है, उनके कारणों तथा ऐतिहासिक, मानसिक और सामाजिक भूमिका आदि के महत्त्वपूर्ण पक्ष का विश्लेषण नहीं करता। उलमान ने लिखा है कि "यह वर्गीकरण अर्थ-परिवर्तनों के बाह्यस्वरूप का वर्गीकरण है, इससे विश्लेषित प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता। जब हम यह कहते हैं कि poison शब्द का अर्थ सङ्कुचित हो गया है, तो हमें वस्तुतः जो कहना चाहिये था, वह कहा ही नहीं गया। अर्थापकर्ष उत्पन्न करने वाली मानसिक प्रवृत्तियों, अर्थ-परिवर्तन से पूर्व की अवस्थाओं तथा मुख्य कारणों का कोई विवेचन ही नहीं किया गया।"[1] आजकल अर्थ-परिवर्तनों के मूल में पाई जाने वाली मानसिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण की ओर अर्थ-विज्ञान के विद्वानों का अधिक झुकाव है। अतः ब्रेआल का उपर्युक्त वर्गीकरण अब अधिक सन्तोषजनक नहीं समझा जाता।

यूरोप के कई विद्वानों ने अर्थ-परिवर्तनों का मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के अनुसार विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। इनमें स्वीडिश विद्वान् एरिक वेलैण्डर

---

1. "It is purely formal system giving no information whatever about the background of the processes examined. When we have stated that 'poison' has narrowed its range, we have said next to nothing that really matters. The psychological forces responsible for the deterioration in meaning, the immediate conditions and ultimate causes of the change have remained unexplained." Ullamann, S.: Words and Their Use (Chapter 3).

(Erik Wellander) और प्रो० जी० स्टेर्न (G. Stern) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रो० जी० स्टेर्न ने अपनी पुस्तक 'मीनिंग एण्ड चेञ्ज ऑफ़ मीनिंग' में अंग्रेज़ी शब्दों में हुये अर्थ-परिवर्तनों का विशद विवेचन किया है। उसने अर्थ-परिवर्तनों को सात मुख्य भागों तथा बहुत से उप-विभागों में बाँटा है। उसका वर्गीकरण अनुभवाश्रित वर्गीकरण (Empirical Classification) कहलाता है। सबसे अधिक सन्तोषजनक वर्गीकरण व्यावहारिक वर्गीकरण (Functional Classification) है, जिसका प्रतिपादन प्रो० उलमान ने अपनी पुस्तक Principles of Semantics में किया है। इस वर्गीकरण के बिकास में वुण्ड्ट (Wundt), शुखार्ट (Schuchardt), राउडेट (Roudet) और गोम्बोक्ज़ (Gombocz) आदि विद्वानों का काफ़ी योगदान माना जाता है। यह वर्गीकरण अन्य सब वर्गीकरणों से बाद का है, अतः इसमें यथा-सम्भव अन्य वर्गीकरणों की विशेषताओं का भी समावेश करने का प्रयत्न किया गया है। प्रो० उलमान ने अपनी पुस्तक 'वर्ड्स एण्ड देयर यूज़' में भी मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण (Psychological Classification) शीर्षक से इसी वर्गीकरण का प्रतिपादन किया है।

उलमान ने अर्थ-परिवर्तनों को दो भागों में बाँटा है, (अ) भाषायी रूढ़िवादिता (अर्थात् शब्दों को ज्यों का त्यों अपनाये रखने) की प्रवृत्ति के कारण होने वाले अर्थ-परिवर्तन, (ब) भाषायी नवीनता (अर्थात् शब्दों के नये अर्थ विकसित हो जाने) के कारण होने वाले अर्थ-परिवर्तन। प्रत्येक भाषा में दूसरे प्रकार के अर्थ-परिवर्तन ही अधिक होते हैं। इनके उलमान ने तीन भेद किये हैं—

१. नामों अर्थात् शब्दों के संक्रम :
   (अ) भाव-सादृश्य पर आधारित शब्द-संक्रम;
   (ब) भाव-साहचर्य पर आधारित शब्द-संक्रम।

२. भावों के संक्रम :
   (अ) नामों अर्थात् शब्दों के सादृश्य पर आधारित भाव-संक्रम;
   (ब) नामों अर्थात् शब्दों के साहचर्य पर आधारित भाव-संक्रम।

३. मिश्रित अर्थ-परिवर्तन।

अर्थ-परिवर्तनों के इस वर्गीकरण का आधार शब्दों के नये और पुराने अर्थों के बीच पाया जाने वाला सम्बन्ध है। अर्थ-परिवर्तनों का विश्लेषण करते हुये यह बात स्पष्टतः दृष्टिगत होती है कि किसी शब्द के नये और

पुराने अर्थ में किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य होता है, चाहे वह दूर का ही क्यों न हो। सम्बन्ध दो शब्दों अथवा दो भावों अथवा शब्दों और भावों के बीच हो सकता है। मुख्यतः सम्बन्ध दो प्रकार का होता है, एक तो दो शब्दों में किसी भाव के सादृश्य पर आधारित और दूसरा दो शब्दों के साहचर्य पर आधारित। शब्दों के बीच अथवा भावों के बीच सम्बन्ध इन दोनों में से किसी भी प्रकार का हो सकता है अर्थात् दो शब्दों के भावों में सादृश्य का सम्बन्ध हो सकता है, दो शब्दों में (ध्वनि के) सादृश्य का सम्बन्ध हो सकता है, दो शब्दों के भावों में साहचर्य का सम्बन्ध हो सकता है, दो शब्दों में साहचर्य का सम्बन्ध हो सकता है, साहचर्य और सादृश्य का मिश्रित सम्बन्ध भी हो सकता है। अतएव उलमान द्वारा अर्थ-परिवर्तनों को उपर्युक्त तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अर्थ-परिवर्तनों का वर्गीकरण करते हुये यद्यपि उलमान के वर्गीकरण से पर्याप्त सहायता ली गई है, तथापि उसका पूर्णतः अनुकरण नहीं किया गया है। यहाँ न तो भाषायी रूढ़िवादिता के कारण होने वाले अर्थ-परिवर्तनों का अलग वर्ग बनाया गया है और न मिश्रित अर्थ-परिवर्तनों का। इसके अतिरिक्त किसी श्रेणी-विशेष में किसी शब्द के केवल एक विशिष्ट अर्थ-परिवर्तन का ही उल्लेख नहीं किया गया है, प्रत्युत प्रसङ्गवश उस शब्द के अन्य अर्थ-परिवर्तनों का भी उल्लेख कर दिया गया है। अर्थ-विज्ञान के अन्य लेखकों के समान अर्थ-परिवर्तनों के वर्गीकरण की समस्या मेरे सामने भी रही है। प्रस्तुत ग्रन्थ में किसी शब्द के एक अर्थ से दूसरे अर्थ के विकास का उल्लेखमात्र ही नहीं किया गया है (जैसा कि अर्थ-विज्ञान के बहुत से ग्रन्थों में मिलता है), प्रत्युत उस शब्द के किसी अर्थ-विशेष अथवा विभिन्न अर्थों में प्रयोग के संस्कृत साहित्य से उदाहरण भी दिये गये हैं। हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों के वर्तमान अर्थों को या तो कोशों के आधार पर या अपनी निजी जानकारी के आधार पर दिया गया है (क्योंकि बहुत से शब्दों के नवीन अर्थ कोशों में नहीं मिलते)। संस्कृत भाषा का कई हज़ार वर्षों का इतिहास होने के कारण कालक्रम से संस्कृत शब्दों के अनेक अर्थ विकसित होते रहे हैं। किसी-किसी शब्द के तो बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस अर्थ पाये जाते हैं। संस्कृत के विशाल साहित्य में संस्कृत शब्दों के अनेक अर्थों में प्रयोग के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। आधुनिक काल में भी हिन्दी में ग्रहण करने पर संस्कृत शब्दों के बहुत से अर्थ विकसित हो गये हैं। जैसा कि पहिले भी अध्याय १ में

उल्लेख किया गया है, संस्कृत शब्दों के सभी अर्थों के विकास का विवेचन करना बहुत बड़ा कार्य है। उसको एक शोधग्रन्थ में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। अतः यहाँ संस्कृत शब्दों के प्रमुख-प्रमुख अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। किसी शब्द के मुख्य अर्थ-परिवर्तन को दृष्टि में रखकर उसे किसी श्रेणी में रक्खा गया है। यद्यपि अर्थ-विज्ञान की दृष्टि से यह अधिक ठीक होता कि किसी श्रेणी में रक्खे गये शब्दों के उन्हीं अर्थ-परिवर्तनों को वहाँ दिखाया जाता, जो वस्तुतः उस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं, किन्तु इससे किसी शब्द के कई अथवा बहुत से अर्थ-परिवर्तनों को कई अथवा बहुत से स्थानों पर रक्खा जाने के कारण ग्रन्थ सामान्य पाठकों के लिये जटिल एवं रोचकता-रहित हो जाता। इसलिये संस्कृत शब्दों के मुख्य अर्थ-परिवर्तनों को दृष्टि में रखकर ही उन्हें किसी न किसी श्रेणी में रक्खा गया है और प्रसङ्गवश उनके अन्य अर्थ-परिवर्तनों का भी उल्लेख कर दिया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में जहाँ सामान्य पाठकों की रुचि का ध्यान रक्खा गया है, वहाँ अर्थ-विज्ञान के ढाँचे को भी अपनाने का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अर्थ-परिवर्तनों को तीन भागों में रक्खा गया है—

१. भाव-सादृश्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन।

२. भाव-साहचर्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन।

३. विविध प्रवृत्तियों पर आधारित अर्थ-परिवर्तन।

इस प्रकार भूमिका-सहित प्रस्तुत ग्रन्थ के चार भाग हो जाते हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट करना वांछनीय है, वह यह कि अर्थ-परिवर्तनों के वर्गीकरण का कठोर ढाँचा बनाया जाना सम्भव नहीं है। बहुत से अर्थ-परिवर्तन ऐसे होते हैं, जिन्हें कई श्रेणियों में रक्खा जा सकता है। बहुत से अर्थ-परिवर्तनों में कई प्रवृत्तियाँ मिली रहती हैं। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में विवेचित बहुत से अर्थ-परिवर्तनों के विषय में ऐसा लग सकता है कि इन्हें एक श्रेणी के स्थान पर दूसरी श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

द्वितीय भाग

भाव-सादृश्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

द्वितीय भाग

भाव-सादृश्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

जब कोई शब्द अपने मौलिक अर्थ से मिलते-जुलते किसी अन्य भाव को भी लक्षित करने लगता है, तो इस प्रकार हुये अर्थ-परिवर्तन को भाव-सादृश्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन कहते हैं, उदाहरणार्थ 'पैर' के वाचक 'पाद' शब्द द्वारा जब भाव-सादृश्य से कुर्सी, चारपाई आदि के पावे को भी लक्षित किया जाने लगा तो 'पाद' शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो गया।

अर्थ-विज्ञान में अर्थ-परिवर्तनों की इस श्रेणी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उपमा तथा उससे सम्बद्ध अन्य बहुत से अलङ्कार इसी के अन्तर्गत आते हैं और जिनसे शब्दों के अर्थों में परिवर्तन बहुत शीघ्र हो जाता है। किसी वस्तु, क्रिया, भाव, गुण आदि के वाचक शब्द द्वारा उसके मूल भाव से मिलते-जुलते अन्य भाव को लक्षित करने की प्रवृत्ति सभी भाषाओं में मुख्य रूप से पायी जाती है।

सादृश्यों के अनुसार भाव-सादृश्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तनों को निम्न अध्यायों में रक्खा गया है :—

(अ) भौतिक पदार्थों का सादृश्य,
(आ) शारीरिक अवस्था का सादृश्य,
(इ) भौतिक पदार्थों के गुणों और विशेषताओं का सादृश्य,
(ई) भौतिक क्रियाओं और अवस्थाओं का सादृश्य,
(उ) विविध आलङ्कारिक प्रयोग,
(ऊ) नवीन भावों के लिये गृहीत संस्कृत शब्द।

जैसा कि पहिले भी उल्लेख किया गया है, अर्थ-परिवर्तनों का वर्गीकरण ऐसा कठोर होना कठिन है कि किसी श्रेणी के अर्थ-परिवर्तन को दूसरी श्रेणी में न रक्खा जा सके। अतः विभिन्न अध्यायों में आये हुये बहुत से शब्द ऐसे दिखाई पड़ सकते हैं कि उनको अन्य अध्याय में भी रक्खा जा सकता है।

अध्याय ३

भौतिक पदार्थों का सादृश्य

यह सारा जगत् भौतिक तत्त्वों का बना हुआ है। समस्त जड़ वस्तुयें, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सृष्टि के प्राणी, वनस्पति-जगत् सभी भौतिक तत्त्वों से बने हैं। मनुष्य के भौतिक पदार्थों अथवा वस्तुओं से आवृत जगत् में उत्पन्न होने के कारण उसकी भाषा पर भी भौतिक तत्त्वों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। मनुष्य जब जन्म लेता है, तो उसके चारों ओर भौतिक पदार्थ ही रहते हैं। सर्वप्रथम वह भौतिक पदार्थों का ही ज्ञान प्राप्त करता है। उसके पश्चात् वह खाना-पीना, आना-जाना आदि भौतिक क्रियाओं को सीखता है। भौतिक पदार्थों के सान्निध्य में विचरण करने के कारण मनुष्य में यह स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है कि वह भौतिक वस्तुओं अथवा पदार्थों को लक्षित करने वाले शब्दों से अन्य सदृश वस्तुओं अथवा भावों को भी लक्षित करने लगता है। इस प्रकार विभिन्न भौतिक वस्तुओं अथवा पदार्थों को लक्षित करने वाले शब्दों से भाव-सादृश्य के आधार पर विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है।

संसार में विभिन्न प्रकार के भौतिक पदार्थ अथवा वस्तुयें हैं। उनके सादृश्य से होने वाले अर्थ-परिवर्तनों को विभिन्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में भौतिक पदार्थों अथवा वस्तुओं के सादृश्य से होने वाले अर्थ-परिवर्तनों को निम्न श्रेणियों में रक्खा गया है—

(अ) शारीरिक अवयवों का सादृश्य ;
(आ) पेड़-पौधों तथा उनके अवयवों का सादृश्य ;
(इ) पशु-पक्षियों तथा उनके अवयवों, क्रियाओं आदि का सादृश्य ;
(ई) द्वार, मार्ग, स्रोत, नाली आदि का सादृश्य ;
(उ) अन्य विविध भौतिक पदार्थों अथवा वस्तुओं का सादृश्य।

(अ) शारीरिक अवयवों का सादृश्य

कतिपय शारीरिक अवयवों के वाचक शब्दों से भाव-सादृश्य के आधार पर विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है। इसका कारण यह प्रतीत होता

है कि शारीरिक अवयव मनुष्य के सबसे निकट होते हैं। दैनिक कार्यों में उनका प्रयोग होते रहने से, सादृश्य स्थापित करने के लिये मनुष्य के मस्तिष्क में उनका ध्यान शीघ्र आता है। इसी कारण शारीरिक अवयवों के वाचक शब्दों द्वारा उनसे समानता रखने वाली अन्य वस्तुओं को स्वाभाविक रूप में लक्षित कर दिया जाता है। पैर, मुख, शिर, पृष्ठ आदि शरीर के विभिन्न अवयवों के वाचक शब्दों से भाव-सादृश्य के आधार पर विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है। यहाँ इस प्रकार के केवल थोड़े से शब्दों का अर्थ-विकास दिखाया जा रहा है।

जङ्घा

हिन्दी में 'जङ्घा' स्त्री० शब्द 'जाँघ' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'जङ्घा' स्त्री० शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'जङ्घा' शब्द का प्रयोग 'घुटने और टखने के बीच के भाग' के लिये पाया जाता है। ऋग्वेद में 'जङ्घा' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है, जैसे—

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्याम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥

ऋग्वेद १. ११६. १५.

"रात्रि के समय में खेल राजा के युद्ध में, उसकी सम्बन्धिनी विश्पला नाम की स्त्री की पक्षी के पंख के समान टाँग टूट गई। आपने उसको तुरन्त ही शत्रु के गुप्त धनों की ओर चलने के लिये घुटने और टखने के बीच का भाग लोहे का दे दिया।"

इसी प्रकार ऋग्वेद १०.११८.८ में भी 'जङ्घा' शब्द इसी अर्थ में मिलता है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'जङ्घा' शब्द का प्रयोग 'घुटने और टखने के बीच के भाग' के लिये ही पाया जाता है, जैसे[1]—

चत्वार्यरत्निकास्थीनि जङ्घयोस्तावदेव तु। याज्ञ० २.८६.

---

१. याज्ञवल्क्यस्मृति २.८७ पर विज्ञानेश्वर की टीका में 'जानु' की परिभाषा करते हुये कहा गया है—

'जङ्घोरुसन्धिर्जानुः' अर्थात् जङ्घा (घुटने और टखने के बीच के भाग) और ऊरु की सन्धि को घुटना कहते हैं।

"चार, कोहनी और मूठ के बीच के भाग (अरत्निक) की हड्डियाँ होती हैं और उतनी ही दोनों जङ्घाओं (घुटने और टखने के बीच के भागों) की।"

'जङ्घा' शब्द का 'जाँघ' (ऊरु) अर्थ इस शब्द के 'घुटने और टखने के बीच का भाग' अर्थ से ही विकसित हुआ है। टाँग में घुटने से ऊपर का भाग भी घुटने से नीचे के भाग के सदृश होता है। दोनों भागों की लम्बाई समान ही होती है। अतः 'घुटने से नीचे के भाग' (अर्थात् घुटने और टखने के बीच के भाग) के लिये प्रयुक्त 'जङ्घा' शब्द द्वारा भाव-सादृश्य से 'घुटने से ऊपर के भाग' (अर्थात् ऊरु) को भी लक्षित किया जाने लगा। ऐसा प्रतीत होता है कि 'जङ्घा' शब्द के 'जाँघ' अर्थ के विकसित होने से पहिले 'जङ्घा' शब्द टाँग के दोनों भागों ('ऊरु' और 'घुटने और टखने के बीच के भाग') अथवा सम्पूर्ण टाँग के लिये प्रचलित रहा होगा, किन्तु बाद में 'जङ्घा' शब्द 'टाँग के ऊपर के भाग' (ऊरु) के लिये ही अधिक प्रचलित हो जाने के कारण उसका पहिला अर्थ (घुटने और टखने के बीच का भाग) सर्वथा लुप्त हो गया। हिन्दी में 'जङ्घा' शब्द से विकसित हुआ 'जाँघ'[1] तद्भव शब्द भी 'ऊरु' अर्थ में ही प्रचलित है।

हिन्दी के अतिरिक्त गुजराती[2], बंगला[3] और उड़िया[4] आदि भाषाओं में भी 'जङ्घा' शब्द 'जाँघ' (ऊरु) अर्थ में प्रचलित है। तमिल[5] में 'चंकम्', तेलुगु[6] में 'जङ्घा' और मलयालम[7] में 'जंघ' शब्दों का अर्थ 'घुटने और टखने के बीच का भाग' ही है। कश्मीरी भाषा में 'ज़ंग्' और सिन्धी में 'जंघ' शब्द, जोकि

---

१. यह उल्लेखनीय है कि 'जाँघ' शब्द अधिकतर आधुनिक आर्य-भाषाओं में 'ऊरु' अर्थ में ही प्रचलित है; मिलाइये—कश्मीरी ज़ंग्, पश्चिमी पहाड़ी (चमेआली) जङ्घ्, कुमाउवीं जाङ्, असमिया जाङ्, बंगला जाङ्, उड़िया जङ्घ्, हिन्दी जाँघ, पंजाबी जङ्घ्, सिन्धी जङ्घ्, गुजराती जाँघ= ऊरु; मराठी जाँघ्, और सिंहली दंग='घुटने और टखने के बीच का भाग'; रोमानी चंग=घुटना; डार्डिक (तोर्वाली) जङ्ग् और लंहदा जङ्घ्=टाँग। आर०एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज (जाँघ)।

२. बी० एन० मेहता : मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

३. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

४. व्यवहारकोश। ५. तमिल लेक्सीकन।

६. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

७. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

'जङ्घा' के ही तद्भव रूप हैं, 'पांव' अर्थ में भी पाये जाते हैं।

'जङ्घा' शब्द भारत-यूरोपीय *ĝhengh से विकसित हुआ माना जाता है। इससे सम्बद्ध शब्द कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी पाये जाते हैं। अवेस्तन भाषा में zanga शब्द 'टखना' अर्थ में, लिथुआनियन में żengti शब्द 'पग, कदम' अर्थ में, गोथिक में gaggan और प्राचीन नोर्स में ganga 'जाना, चलना' अर्थ में पाये जाते हैं।[1] प्राचीन ग्रीक में *tzaggarios* और आधुनिक ग्रीक में tsaggares शब्द जूता बनाने वाले 'चर्मकार' के लिये पाये जाते हैं,[2] जोकि प्राचीन ग्रीक के *tzagga*, *tzaggion* (एक प्रकार का जूता) से बने हैं।

पद

हिन्दी में 'पद' पुं० शब्द अधिकतर 'योग्यता या कार्य के अनुसार नियत स्थान' (जैसे अध्यक्ष-पद, सचिव-पद, पदाधिकारी आदि में), 'किसी पद्य या छन्द का चरण या चतुर्थांश' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'पद' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु संस्कृत में 'पद' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'पैर' है।[3] 'पद' शब्द के इसी अर्थ से संस्कृत में 'पग'[4] (कदम), 'पदचिह्न',[5]

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (४.३५; leg), पृष्ठ २४२.

२. वही (६.५४; shoemaker, cobbler) पृष्ठ ४३१.

३. शिखरिषु पदं न्यस्य (मेघ० १३), संस्कृत में 'पदं कृ' का प्रयोग आलङ्कारिक रूप में 'प्रवेश करना' अर्थ में भी पाया जाता है, जैसे—कृतं वपुषि नवयौवनेन पदम् (कादम्बरी १३७)।

४. तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा। शाकु० २.१२.

'आकाश' को विष्णु का पग माना जाने के कारण संस्कृत में 'पद' शब्द का प्रयोग 'आकाश' अर्थ में भी पाया जाता है, जैसे—

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः। रघु० १३. १.

यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी में 'पग' शब्द भी संस्कृत के 'पदक' (प्राकृत पअक, पक) से विकसित हुआ है।

५. पदैर्गृह्यते चौरः। याज्ञ० २. २८६.
पदमनुविधेयं च महताम्। नीति० २८.

'स्थिति'[१], 'स्थान', 'पद'[२] (rank, position, post), 'अवसर', 'विषय'[३], 'आश्रयस्थान', 'घर'[४], 'विभक्तियुक्त या पूर्ण शब्द',[५] 'किसी श्लोक आदि का चौथाई भाग'[६], 'भाग', 'बहाना'[७] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। 'पद' शब्द के पग, पदचिह्न, स्थिति, स्थान आदि अर्थ भाव-साहचर्य से विकसित हुये हैं, और 'योग्यता या कार्य के अनुसार नियत स्थान' (post, rank) अर्थ का विकास भाव-सादृश्य से इस शब्द के 'स्थान' अर्थ से हुआ है। 'पद' शब्द का 'किसी श्लोक या छन्द आदि का चतुर्थांश' अर्थ पशु के एक पैर (जोकि चारों पैरों का चतुर्थ भाग होता है) के सादृश्य पर विकसित हुआ है।

पाद

हिन्दी में 'पाद' पुं० शब्द अधिकतर 'किसी श्लोक या छन्द आदि का चतुर्थांश' अर्थ में प्रचलित है। 'पाद' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में 'पाद' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'पैर' है। 'पाद' शब्द के 'पैर'[८] अर्थ से ही संस्कृत में 'किरण'[९], 'चारपाई आदि का पावा', 'वृक्ष की जड़'[१०], 'पर्वत की तलैटी'[११], 'चतुर्थ भाग'[१२], 'चरण', 'किसी पुस्तक के

१. आत्मा परिश्रमस्य पदमुपनीतः। शाकु० अङ्क १.
२. यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयः। शाकु० ४. १७.
३. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः। शाकु० १.२२.
४. अविवेकः परमापदां पदम्। किरात० २. १४.
५. सुप्तिङन्तं पदम्। अष्टाध्यायी १. ४. १४.
६. त्रिपदा गायत्री। आप्टे के कोश से उद्धृत।
७. द्रुततरपदपातमापपात प्रियमिति कोपपदेन कापि सख्या।
शिशु० ७. १४
८ तयोर्जगृहतुः पादान्। रघु० १.५७.

संस्कृत में 'पाद' शब्द का प्रयोग अतिशय आदर प्रदर्शित करने के लिये पूज्य अथवा श्रद्धास्पद व्यक्तियों के नामों तथा सम्बोधन-सूचक शब्दों के साथ लगाकर भी किया जाता है, जैसे—मृष्यन्तु लवस्य बालिशतां तातपादाः (उत्तर० अङ्क ६)। हिन्दी में प्रचलित 'पूज्यपाद' शब्द में भी 'पाद' शब्द इसी अर्थ में है।

९. बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम्। पञ्च० १. ३२८.
१०. 'पादप' (वृक्ष अथवा पौधा) शब्द में 'पाद', 'वृक्ष की जड़' अर्थ में ही है, क्योंकि इसका मूल अर्थ है— 'जड़ को पीने वाला'।
११. रेवां द्रक्ष्यसि उपलविषमे विन्ध्यपादे। मेघ० १९.
१२. क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति। मनु० ८.२४१

अध्याय का एक (चतुर्थ) भाग'[1] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। 'पाद' शब्द का 'पावा' अर्थ पैर या टाँग के सादृश्य से तथा 'वृक्ष की जड़' और 'पर्वत की तलैटी' आदि अर्थ पैरों के मनुष्य-शरीर में नीचे के भाग में होने के भाव-सादृश्य से विकसित हो गये हैं। 'पाद' शब्द के 'चौथाई भाग,' 'श्लोक या छन्द के चार चरणों में से एक चरण', 'किसी पुस्तक के अध्याय का एक (चतुर्थ) भाग' आदि अर्थों का विकास पशु के एक पैर (जोकि चारों पैरों का चतुर्थ भाग होता है) के सादृश्य से हुआ है।

आजकल अंग्रेज़ी के footnote शब्द के लिये अपनाये गये 'पाद-टिप्पणी'[2] शब्द में 'पाद' शब्द 'पृष्ठ का नीचे का भाग' अर्थ में है। 'पैर' मनुष्य-शरीर में नीचे के भाग में होते हैं, अतः भाव-सादृश्य से पृष्ठ के नीचे के भाग में लिखी गई टिप्पणी को 'पाद-टिप्पणी' कहा गया। यह उल्लेखनीय है कि 'पाव' (चौथाई) और 'पावा' (कुर्सी, चारपाई आदि की टाँग) शब्द संस्कृत के 'पाद' शब्द से ही विकसित हुये तद्भव शब्द हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 'पाद' शब्द का इन अर्थों में प्रयोग संस्कृत में भी पाया जाता है।

पृष्ठ

हिन्दी में 'पृष्ठ' पुं०-शब्द अधिकतर 'पन्ने का एक ओर का भाग, सफा' (page) अर्थ में प्रचलित है। 'पीछे का भाग' तथा 'पीठ' अर्थ में 'पृष्ठ' शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है। संस्कृत में 'पृष्ठ' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'पीठ' है। मनुष्यों की पीठ, पीछे की ओर होती है, अतः सादृश्य से 'पीछे के भाग' के लिये भी 'पृष्ठ' शब्द प्रचलित हुआ। इसी सादृश्य से 'पत्र या दस्तावेज़ आदि के पिछले भाग'[3] अथवा 'दूसरी ओर' आदि के लिये भी संस्कृत में 'पृष्ठ' शब्द का प्रयोग पाया जाता है।'किसी पत्र या दस्तावेज़ आदि के पिछले भाग' या 'दूसरी ओर' को 'पृष्ठ' पीठ के 'दूसरी ओर' अर्थात् पीछे की ओर होने के सादृश्य से ही कहा गया होगा।

---

१. अष्टाध्यायी, ब्रह्मसूत्र आदि बहुत से ग्रन्थों में एक अध्याय के चार भाग किये गये हैं और प्रत्येक का नाम 'पाद' रक्खा गया है।

२. वह टिप्पणी जो किसी ग्रन्थ अथवा लेख आदि में पृष्ठ के नीचे सूचना, निर्देश आदि के लिये लिखी जाती है।

३. लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेद्दत्वार्णिको धनम्। याज्ञ० २.९३.

पशुओं की पीठ ऊपर की ओर होती है, अतः भाव-सादृश्य से 'किसी वस्तु के ऊपरी भाग' अथवा 'तल' को भी 'पीठ' के वाचक 'पृष्ठ' शब्द द्वारा लक्षित किया गया। प्राचीनकाल में साधारणतया भोज-पत्रों आदि पर लिखा जाता था और लिखने का कार्य एक ओर होता था। किसी पत्ते आदि पर जिस ओर लिखा जाता था, वह उसका ऊपरी भाग ही होता था, अतः उसको भी 'ऊपरी भाग' के वाचक 'पृष्ठ' शब्द द्वारा लक्षित किया। आधुनिक काल में जब लिखने का कार्य कागज़ पर होने लगा और उसके दोनों ओर लिखा जाने लगा, तो उसके दोनों ओर के भागों को 'पृष्ठ' ही कहा गया।

'सफा' (page) अर्थ में 'पृष्ठ' शब्द हिन्दी एवं संस्कृत भाषाओं के अतिरिक्त बंगला, असमिया और उड़िया भाषाओं में भी पाया जाता है।[१]

मुख

हिन्दी में 'मुख' पुं० शब्द 'किसी प्राणी अथवा वस्तु का मुँह' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'मुख' नपुं० शब्द का यह अर्थ पाया जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'मुख' शब्द के (तथा 'मुख' से बने हुये कतिपय अन्य शब्दों के) भाव-सादृश्य के आधार पर विकसित हुये कई अन्य अर्थ भी पाये जाते हैं। संस्कृत में 'मुख' शब्द का 'किसी प्राणी अथवा वस्तु का मुँह', 'किसी पदार्थ का सामने वाला ऊपरी खुला भाग' (जैसे नदी[२], घर, कोटर[३] आदि का मुँह) आदि अर्थ तो पाये ही जाते हैं, इनके अतिरिक्त अग्रभाग[४], सामना, नोक[५], दिशा[६], प्रारम्भ[७], मुख्य[८] आदि अर्थों का भी विकास पाया जाता है। हिन्दी में प्रचलित कतिपय संयुक्त शब्दों में 'मुख' शब्द के 'अग्रभाग', 'सामना', 'दिशा' आदि अर्थ निहित हैं। 'मुखपृष्ठ' (किसी पुस्तक में सबसे ऊपर का पृष्ठ), 'मुखचित्र' (किसी पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर या बिल्कुल

१. व्यवहारकोश।
२. नदीमुख। रघु० ३.२८.
३. कोटरमुख। शाकु० १.१४.
४. हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम्। विक्रम० ३.६.
५. पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः। कुमार० ५.५४.
६. जैसे 'अन्तर्मुख' शब्द में।
७. सखीजनोद्वीक्षणकौमुदीमुखम्। रघु० ३.१.
८. बन्धोन्मुक्त्यै खलु मखमुखान्कुर्वते कर्मपाशान्। भामिनी० १.२१.

प्रारम्भ में दिया हुआ चित्र) आदि शब्दों में 'मुख' शब्द का अर्थ 'अग्रभाग अथवा ऊपरी भाग' ही है। 'सम्मुख' (सम्+मुख=सामने), 'विमुख' (वि+मुख=जिसने किसी से मुँह मोड़ लिया हो, विरत, उदासीन, अप्रसन्न), 'पराङ्मुख' (पराञ्च्+मुख=मुँह फेरे हुये, उदासीन, विरुद्ध), 'अन्तर्मुख' (अन्तर्+मुख=अन्दर की ओर को प्रवृत्त), 'बहिर्मुख' (बहिस्+मुख=बाहर की ओर को मुँह किये हुये, बाहर की ओर को प्रवृत्त) आदि शब्दों में 'मुख' शब्द अपने विभिन्न अर्थों में विद्यमान है। 'मुख्य' शब्द का मौलिक अर्थ 'मुख-सम्बन्धी' था, किन्तु मुख के शरीर का प्रधान अङ्ग होने के कारण भाव-सादृश्य से 'प्रधान' के लिये 'मुख्य' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। 'मुख्य' से विकसित हुये तद्भव शब्द 'मुखिया' में यह अर्थ विद्यमान है। 'प्रमुख' (प्र+मुख) शब्द का भी 'प्रधान' अर्थ 'मुख्य' शब्द के समान ही विकसित हुआ है।

शीर्षक

हिन्दी में 'शीर्षक' पुं० शब्द का अर्थ है 'वह शब्द या पद जो विषय का परिचय कराने के लिये लेख या ग्रन्थ आदि के ऊपर रहता है।' संस्कृत में 'शीर्षक' नपुं० शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'शीर्षक' शब्द का मौलिक अर्थ है 'सिर'[1]। 'सिर' मनुष्य के शरीर में सबसे ऊपर का भाग होता है, अतः किसी ग्रन्थ या लेख में परिचय कराने के लिये सबसे ऊपर जो शब्द अथवा पद होता है, भाव-सादृश्य से उसको भी 'सिर' के वाचक 'शीर्षक' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। वस्तुतः अंग्रेज़ी के head और heading आदि शब्दों के अनुकरण पर उस शब्द या पद के लिये, जो विषय का परिचय कराने के लिये किसी ग्रन्थ या लेख के ऊपर रहता है, 'शीर्षक' शब्द अपनाया गया है। अंग्रेज़ी के head शब्द का भी मौलिक अर्थ 'सिर' ही है।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'सिर' के वाचक 'शिरस्' शब्द के भी, भाव-सादृश्य के आधार पर, 'किसी वस्तु का ऊपरी भाग'[2], 'पर्वत की चोटी'[3],

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।
संस्कृत में 'शीर्षक' शब्द के 'सिर' अर्थ के अतिरिक्त उससे विकसित हुये 'खोपड़ी', 'टोपी', 'पगड़ी', 'निर्णय' आदि अर्थ भी पाये जाते हैं।

२. शिरसि मसीपटलं दधाति दीपः। भामिनी० १.७४.

३. हिमगौरैरचलाधिपः शिरोभिः। किरात० ५.१७.

'वृक्ष की फुनगी', 'अग्रभाग'[१] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

(आ) पेड़-पौधों तथा उनके अवयवों का सादृश्य

मनुष्य-जीवन का वनस्पति-जगत् के साथ सम्बन्ध आदि काल से है। मानवीय सभ्यता का प्रारम्भ ही जंगलों में हुआ है। प्राचीनकाल में अधिकतर लोग जंगलों में ही अपना जीवन बिताते थे, खुले प्रकृति-जगत् में विचरण करते थे। इस कारण उनके जीवन पर प्राकृतिक परिस्थितियों का सर्वाङ्गीण प्रभाव होता था। वृक्षों, उनके अवयवों तथा विशेषताओं आदि के वाचक शब्दों द्वारा सादृश्य के आधार पर अन्य वस्तुओं तथा क्रियाओं को लक्षित किया जाना इस बात का प्रबल प्रमाण है। पेड़-पौधों के मनुष्य के दैनिक जीवन में काम में आने के कारण उनके विभिन्न गुणों अथवा विशेपताओं के सादृश्य के आधार पर उनके वाचक शब्दों द्वारा अन्य वस्तुओं अथवा क्रियाओं को लक्षित किया जाना स्वाभाविक ही है। अर्थ-विकास की यह प्रवृत्ति सभी प्राचीन भाषाओं में पाई जाती है। किन्तु प्राचीन भारतीय सभ्यता तो थी ही अरण्य-सभ्यता। हमारे सारे वैदिक साहित्य का प्रणयन जंगलों में ही ऋषि-मुनियों के आश्रमों में हुआ था। इस कारण संस्कृत के अनेक शब्दों के अर्थ-विकास में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है।

काण्ड

हिन्दी में 'काण्ड' पुं० शब्द अधिकतर 'घटना' अर्थ में प्रचलित है (जैसे 'अग्निकाण्ड', 'हत्याकाण्ड' आदि शब्दों में)। रामायण आदि ग्रन्थों के प्रसङ्ग में 'ग्रन्थ का विभाग' अर्थ भी समझा जाता है। 'काण्ड' शब्द का 'घटना' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'काण्ड' पुं० एवं नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'किसी बाँस, सरकण्डे अथवा गन्ने आदि का एक पोरुए से दूसरे पोरुए तक का भाग'[२]। काठकसंहिता (३४.५) में सरकण्डे की पोरियों से बनी हुई एक प्रकार की बाँसुरी को, जिसका प्रयोग महाव्रत उत्सव में किया जाता था, 'काण्ड-वीणा' कहा गया है। संस्कृत में 'काण्ड' शब्द के 'किसी बाँस, सरकण्डे अथवा गन्ने आदि का एक पोरुए से दूसरे पोरुए तक का भाग' अर्थ से ही 'वृक्ष का तना',

१. पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी। शाकु० ७.२६.

२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

'डण्ठल'[१], 'शाखा', 'भाग', 'किसी ग्रन्थ का एक भाग'[२], 'किसी कार्य या विषय का विभाग'[३], 'भुजा अथवा टाँग की (लम्बी) हड्डी', 'अवसर'[४] आदि विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है। यह स्पष्ट है कि 'काण्ड' शब्द के 'भुजा अथवा टाँग की हड्डी' अर्थ का विकास 'तने' के सादृश्य पर और 'किसी ग्रन्थ का एक भाग' (काण्ड), अथवा 'किसी कार्य या विषय का विभाग' अर्थ 'किसी बाँस, सरकण्डे आदि के एक पोरुए से दूसरे पोरुए तक के भाग' के सादृश्य के आधार पर विकसित हुआ है।[५] हिन्दी में 'काण्ड' शब्द का प्रयोग पृथक् शब्द के रूप में बहुत कम किया जाता है। रामायण आदि ग्रन्थों के प्रसङ्ग में 'पुस्तक के भाग' के लिये तथा 'अग्निकाण्ड', 'हत्याकाण्ड' आदि संयुक्त शब्दों में किसी 'घटना' के लिये 'काण्ड' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'काण्ड' शब्द का 'घटना' अर्थ इस शब्द के 'किसी कार्य या विषय का विभाग' अथवा 'अवसर' अर्थ से भाव-सादृश्य के आधार पर विकसित हुआ प्रतीत होता है।

प्रकाण्ड

हिन्दी में 'प्रकाण्ड' वि० शब्द 'बहुत बड़ा' अर्थ में प्रचलित है (जैसे–अमुक व्यक्ति अमुक विषय का प्रकाण्ड विद्वान् है)। यद्यपि संस्कृत में 'प्रकाण्ड' शब्द का 'बहुत बड़ा' अर्थ नहीं पाया जाता, तथापि कुछ समस्त पदों के अन्त में उससे मिलता-जुलता 'श्रेष्ठ अथवा सर्वोत्कृष्ट' अर्थ पाया जाता है, जैसे—

स एष रामश्चरिताभिरामो धर्मैकवीरः पुरुषप्रकाण्डः। महावीर० ५.४८.

इसी प्रकार नैषध० ७.९३ में 'ऊरुप्रकाण्ड' शब्द में और महावीर० ४.३५ में 'क्षत्रप्रकाण्ड' शब्द में 'प्रकाण्ड' शब्द इसी अर्थ में है।

---

१. लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदे। उत्तर० ३.१६.

२. जैसे वाल्मीकीय रामायण के सात काण्ड।

३. जैसे 'कर्मकाण्ड' शब्द में।

४. मिलाइये, 'अकाण्ड' वि० = 'जिसका उचित समय अथवा अवसर न हो,' जैसे—अकाण्डपाण्डुरघनप्रस्पर्धि। महावीर० ५.३९.

५. यह उल्लेखनीय है कि 'पर्वन्' (हिन्दी 'पर्व') शब्द का भी 'पुस्तक का भाग' अर्थ 'काण्ड' शब्द के समान ही, इस शब्द के मौलिक अर्थ 'दो गाँठों के बीच का भाग' से विकसित हुआ है।

वस्तुतः संस्कृत में 'प्रकाण्ड' पुं० एवं नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है— 'वृक्ष का तना' (जड़ से लेकर शाखाओं तक), जैसे—

कदलीप्रकाण्डरुचिरोरुतरुः । शिशु० ६.४५.

'प्रकाण्ड' शब्द का 'सर्वोत्कृष्ट' अथवा 'श्रेष्ठ' अर्थ इसके 'वृक्ष का तना' अर्थ से ही विकसित हुआ है। वृक्ष में तने का भाग सर्वोत्कृष्ट होता है, क्योंकि वह अन्य शाखाओं की अपेक्षा स्थूल और बड़ा होता है तथा सारे वृक्ष का भार सम्भालता है। इसी भाव-सादृश्य से 'श्रेष्ठ अथवा सर्वोत्कृष्ट' को आलङ्कारिक रूप में 'प्रकाण्ड' कहा गया। आधुनिक काल में 'प्रकाण्ड' शब्द मिलते-जुलते भाव 'बहुत बड़ा' को भी व्यक्त करने लगा है।

फल

हिन्दी में 'फल' पुं० शब्द 'किसी वृक्ष का फल', 'परिणाम' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'फल' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'फल' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'वृक्ष का फल' है। ऋग्वेद में 'फल' शब्द का प्रयोग मुख्यतः वृक्ष के फल के लिये ही पाया जाता है,[१] जैसे—

वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु। ऋग्वेद ३.४५.४.

लौकिक संस्कृत साहित्य में भी वृक्ष के फल के लिये 'फल' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलम् (शाकु० ७.३०)।

'वृक्ष के फल' के भाव-सादृश्य के आधार पर ही संस्कृत में 'फल' शब्द के 'फसल'[२] (खेती की पैदावार), 'परिणाम'[३], 'पुरस्कार'[४], 'कर्म'[५], 'उद्देश्य'[६], 'लाभ'[७], 'सन्तान'[८] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। हिन्दी में भी

१. मैकडॉनेल और कीथ : वैदिक इण्डैक्स, भाग २; तथा मोनियर विलियम्स।

२. कृषिफलम्। मेघ० १६.

३. अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते। हितोपदेश १.८३.

४. फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम्। रघु० १२.३७.

५. ब्रवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम्। नैषध० २.४८.

६. किमपेक्ष्य फलम्। किरात० २.२१.

७. जगता वा विफलेन किं फलम्। भामिनी० २.६१.

८. फलप्रवृत्तावुपस्थितायामपि। रघु० १४.३९.

संस्कृत के सदृश ही 'फल' शब्द (वृक्ष से उत्पन्न खाने का) 'फल', 'परिणाम' आदि अर्थों में प्रचलित है। सफल, विफल, असफल, सफलता, विफलता आदि शब्दों में 'फल' शब्द अपने विकसित 'परिणाम' अथवा 'उद्देश्य' अर्थ में विद्यमान है, जैसे—'सफल' शब्द का मूल अर्थ है—'सार्थक, जिसने प्रयत्न करके कार्य या उद्देश्य सिद्ध कर लिया हो।'

मूल

हिन्दी में 'मूल' शब्द पुं० के रूप में 'वृक्ष की जड़', 'उद्भवस्थल', 'तली', ''स्वयं ग्रन्थकार का लिखा हुआ वाक्य या लेख, जिस पर टीका की जाती है', 'मूलधन' आदि अर्थों में और विशेषण के रूप में 'आद्य, प्रधान' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'मूल' शब्द के ये अर्थ पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'मूल' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'वृक्ष की जड़' है। इसके 'वृक्ष की जड़' अर्थ से ही संस्कृत में भाव-सादृश्य के आधार पर 'किसी वस्तु का नीचे का भाग'[१], 'किसी वस्तु का छोर, जिससे वह किसी अन्य वस्तु से जुड़ी हो'[२], 'प्रारम्भ'[३], 'आधार', 'उद्भवस्थल'[४], 'पाद-देश'[५] (तली), 'टीका से भिन्न मूल कृति', 'किसी राजा का अपना प्रदेश'[६], 'मूलधन' आदि अर्थों का विकास हुआ है। 'वृक्ष की जड़' वृक्ष के नीचे के भाग में होती है और उस पर ही सारे वृक्ष का भार होता है, अतः किसी वस्तु के नीचे के भाग, पाद-देश (तली), उद्भवस्थल, मूलधन आदि को भी भाव-सादृश्य से 'मूल' कहा गया।

'मौलिक' शब्द, जिसका प्रयोग आजकल 'मुख्य' अर्थ में अथवा उस भाव, विचार, निबन्ध अथवा ग्रन्थ आदि के लिये किया जाता है, जो किसी का अनुवाद अथवा अनुकरण न हो, अपनी उद्भावना से निकला हो, 'मूल' से ही बना हुआ एक विशेषण शब्द है। अतः इसका वास्तविक अर्थ है 'मूल-सम्बन्धी, मूलगत'। यह स्पष्ट है कि 'मौलिक' शब्द का उपर्युक्त आधुनिक अर्थ 'मूल' के भाव-सादृश्य के आधार पर ही विकसित हुआ है। 'मौलिक' शब्द का 'जो

१. प्राचीमूले। मेघ० ८९.

२. जैसे—पादमूलम्, कर्णमूलम्, ऊरुमूलम् आदि शब्दों में।

३. आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि। शाकु० अङ्क १.

४. रक्षोगृहे स्थितिर्मूलम्। उत्तर० १.६.

५. जैसे—पर्वतमूलम्, गिरिमूलम् आदि शब्दों में।

६. स गुप्तमूलप्रत्यन्तम्। रघु० ४.२६.

किसी का अनुवाद, अनुकृति आदि न हो, बल्कि अपनी उद्भावना से निकला हो' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता ।

वंश

हिन्दी में 'वंश' पुं० शब्द 'कुल, परिवार' अर्थ में प्रचलित है । 'वंश' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है । किन्तु संस्कृत में 'वंश' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'बाँस' । ऋग्वेद में 'वंश' शब्द का प्रयोग' बाँस' अर्थ में ही पाया जाता है, जैसे—

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतु उद्वंशमिव येमिरे । ऋग्वेद १.१०.१.

"शतक्रतु इन्द्र, गायक तुम्हारे उद्देश्य से गान करते हैं । पूजक तुम्हारी अर्चना करते हैं । जिस प्रकार नट बाँस को ऊँचा करते हैं, उसी प्रकार स्तुति करने वाले ब्राह्मण तुम्हें ऊँचा उठाते हैं ।"

ऋग्वेद में 'वंश' शब्द का प्रयोग केवल इसी स्थल पर पाया जाता है । यहाँ 'वंश' शब्द का अर्थ 'बाँस' है । आगे के वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'वंश' शब्द का 'बाँस' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है । हिन्दी का 'बाँस' शब्द 'वंश' शब्द से ही विकसित हुआ तद्भव शब्द है ।

बाँस में क्रमशः अर्थात् एक के बाद एक पाई जाने जाने वाली गाँठों के सादृश्य के आधार पर[1] वैदिक साहित्य में 'बाँस' के वाचक 'वंश' शब्द का 'ऋषियों अथवा आचार्यों की परम्परा' अर्थ विकसित हुआ । शतपथब्राह्मण (१०.६.५.९), बृहदारण्यक उपनिषद् (६.३.१४), शाङ्खायन आरण्यक (१५.१), वंश-ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में 'वंश' शब्द 'ऋषि-परम्परा' अर्थ में मिलता है । 'ऋषि-परम्परा' को लक्षित करने के लिये सादृश्य के आधार पर 'बाँस' के वाचक 'वंश' शब्द को अपनाया गया, इससे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वैदिक काल के पारिवारिक जीवन में बाँसों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था । घरेलू कार्यों में बाँसों का प्रयोग अत्यधिक किया जाता था । 'वंश' शब्द के 'बल्ली', 'छत की ऊपरी मुख्य बल्ली, शहतीर' अर्थ से भी यही प्रकट होता है कि उन दिनों घर की छत बनाने में बाँसों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता था ।

---

१. मैकडॉनेल और कीथ : वैदिक इण्डैक्स, भाग २, पृष्ठ २३६ (from the analogy of the successive joints of the bamboo) ।

'बाँस' में एक के बाद एक पाई जाने वाली गाँठों के सादृश्य के आधार पर ही 'वंश-परम्परा अथवा कुल' के लिये 'बाँस' का वाचक 'वंश' शब्द प्रचलित हुआ[1]। वस्तुतः 'कुल' और 'बाँस' के विकास का सादृश्य बड़ा विलक्षण है। जिस प्रकार एक बाँस से उसकी गाँठों से बहुत से बाँस फूट पड़ते हैं और फिर उनकी गाँठों से बहुत से बाँस फूटते हैं, उसी प्रकार एक मनुष्य के कुछ सन्तान होती हैं, फिर उन सन्तानों के कुछ सन्तान होती हैं, और फिर उनके और। इस प्रकार यह क्रम प्रायः निरन्तर जारी रहता है।

संस्कृत में 'वंश' शब्द का प्रयोग बाँस, ऋषि-परम्परा, कुल आदि के अतिरिक्त 'बाँसुरी'[2], 'एक सी वस्तुओं का समूह'[3] तथा 'रीढ़ की हड्डी' आदि अर्थों में भी पाया जाता है।

'वंश' शब्द का 'बाँसुरी' अर्थ तो भाव-साहचर्य से विकसित हुआ, क्योंकि पहिले बाँसुरी अधिकतर बाँस की ही बनाई जाती थी। 'समूह' और 'रीढ़ की हड्डी' अर्थ क्रमशः 'परिवार' और 'बाँस' के भाव-सादृश्य के आधार पर विकसित हुये। 'रीढ़ की हड्डी' को हिन्दी में भी 'वंश' से विकसित हुये तद्भव 'बाँस' शब्द द्वारा लक्षित किया जाता है। आजकल हिन्दी में 'वंश' शब्द केवल 'कुल' अर्थ में ही प्रचलित है, 'बाँस' अर्थ सर्वथा लुप्त हो गया है। यह उल्लेखनीय है कि जबकि तत्सम 'वंश' शब्द में इतना अर्थ-भेद हो गया है, उसके तद्भव रूप 'बाँस' में अधिक अर्थ-भेद नहीं हुआ है।

शाखा

हिन्दी में 'शाखा' स्त्री० शब्द अधिकतर 'वृक्ष की टहनी', 'किसी मूल वस्तु का उसी रूप में अथवा उसी प्रकार का निकला हुआ अङ्ग', 'किसी संस्था का वह अङ्ग जो दूर रहकर भी उसके अधीन और उसके अनुसार कार्य करता हो' (जैसे किसी दुकान या बैंक आदि की शाखा) आदि अर्थों में प्रचलित है। 'शाखा' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि 'शाखा' शब्द का मौलिक अर्थ 'वृक्ष की टहनी' है।

संस्कृत में 'शाखा' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'पेड़ की टहनी' के लिये

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी (from its resemblance to the succession of joints in a bamboo)।

२. कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्। रघु० २.१२

३. सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः। रघु० ७.३९.

पाया जाता है।[1] बाद में इसी अर्थ से भाव-सादृश्य के आधार पर 'शरीर का अवयव' (अङ्गुलि, भुजा, टाँग आदि)[2], 'भाग अथवा विभाग', 'किसी शास्त्र अथवा विद्या के अन्तर्गत उसका कोई भेद', 'वेद की संहिताओं के पाठ तथा क्रमभेद जो कई ऋषियों ने अपने गोत्र या शिष्य-परम्परा में चलाये थे'[3] आदि अर्थों का विकास हुआ।

[इ] पशु-पक्षियों तथा उनके अवयवों, क्रियाओं आदि का सादृश्य

प्राचीन काल में लोगों के जंगलों में रहने के कारण पशु-पक्षियों से उनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। आजकल भी बहुत से पशु पाले जाते हैं। मैदानों, उद्यानों, भवनों आदि में पक्षियों की उपस्थिति पाई जाती है। पशु-पक्षियों के मनुष्य-जीवन के साथ सम्बन्ध का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है कि आजकल भी बहुत से पशु-पक्षियों की गतिविधि अथवा बोली से शुभाशुभ का अनुमान लगाया जाता है। प्राचीन भारत में तो शुभाशुभ का ज्ञान प्राप्त करने की यह रीति अत्यधिक प्रचलित थी।[4] पशु-पक्षियों का मनुष्य-जीवन के साथ सम्बन्ध होने के कारण मनुष्यों का उनके तथा उनके अवयवों अथवा उनकी विशेषताओं के वाचक शब्दों द्वारा भाव-सादृश्य के आधार पर अन्य सदृश वस्तुओं अथवा भावों को लक्षित करने लगना स्वाभाविक है। पशु-पक्षियों और उनके अवयव आदि के वाचक बहुत से शब्दों का बड़ा रोचक अर्थ-विकास मिलता है।

(१) पशुओं तथा उनकी क्रियाओं आदि का सादृश्य

वत्स

हिन्दी में 'वत्स' पुं० शब्द 'बेटा' अर्थ में दो रूपों में प्रचलित है,

---

१. ऋग्वेद १.८.८, ७.४३.१; अथर्ववेद ३.६.८, १०.७.२१ आदि।

२. मिलाइये, शाखा=अङ्गुलि, निघण्टु २.५.

३. ऋग्वेद आदि संहिताओं की कई शाखायें मानी जाती हैं। यह कहा जाता है कि पहिले ऋग्वेद की ५ शाखायें प्रचलित थीं, जिनमें से अब केवल शाकल्य शाखा अवशिष्ट है। इसी प्रकार यजुर्वेद की ८६ शाखाओं में से ५ अथवा ६, सामवेद की एक हज़ार शाखाओं में से एक अथवा दो और अथर्ववेद की ९ शाखाओं में से एक अवशिष्ट है।

४. देखिये 'शकुन' शब्द का अर्थ-विकास।

एक तो पुत्र के लिये, और दूसरे किसी भी बच्चे या आयु में पुत्र के समान व्यक्ति के लिये स्नेहपूर्ण सम्बोधन के रूप में। 'वत्स' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु संस्कृत में 'वत्स' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'बछड़ा' है। ऋग्वेद में 'वत्स' शब्द का प्रयोग 'बछड़ा' अर्थ में ही पाया जाता है,[1] जैसे—सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्—'रस्सी से बछड़े के समान वसिष्ठ को छोड़ दो' (७.८६.५)। बछड़ा गाय की प्रिय सन्तान होती है। अतः भाव-सादृश्य से कालान्तर में 'बछड़े' का वाचक 'वत्स' शब्द सामान्य रूप में 'किसी भी पशु के बच्चे या सन्तान' के लिये भी प्रचलित हो गया।

आप्टे ने 'वत्स' पुं० शब्द की व्युत्पत्ति √वद् धातु से सः प्रत्यय (उणादि ३.६१) लगकर मानी है। यह व्युत्पत्ति काल्पनिक प्रतीत होती है। इसकी इसके मूल अर्थ से सङ्गति नहीं बैठती। मोनियर विलियम्स, मैकडॉनेल आदि ने 'वत्स' शब्द की व्युत्पत्ति किसी प्राचीन 'वतस्' शब्द से मानी है (जो संस्कृत में प्रचलित नहीं रहा)। इसके सजातीय शब्द कुछ अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी मिलते-जुलते अर्थों में पाये जाते हैं।[2]

'वत्स' शब्द का 'बेटा' अर्थ इस शब्द के 'बछड़ा' अर्थ से ही विकसित हुआ है। वैदिक काल में कृषि एवं पशु-पालन ही प्रमुख व्यवसाय होने के कारण लोगों का गाय, बैल आदि पाले जाने वाले पशुओं से घनिष्ठ सम्पर्क रहता था। इसका उन लोगों की भावाभिव्यक्ति पर भी प्रभाव पड़ा। ऋग्वेद

---

१. ऋग्वेद ३.३३.३, ४.१८.१० आदि।

२. लैटिन भाषा में vitulus शब्द 'बछड़ा' अर्थ में पाया जाता है। 'छोटे बछड़े' के वाचक लैटिन vitellus से विकसित हुये इटैलियन vitello, फ्रेंच veau और रूमानियन vitel शब्द 'बछड़ा' अर्थ में ही मिलते हैं। ग्रीक भाषा की बोलियों में ετᾶον, ετελον शब्दों का अर्थ 'एक वर्ष का पशु का बच्चा' है और ετοσ शब्द का अर्थ 'वर्ष' है। 'मेंढ़े' के लिये पाये जाने वाले प्राचीन नोर्स वेद्र डैनिश vœdder, स्वीडिश vädur, प्राचीन अंग्रेज़ी weder, प्राचीन हाई जर्मन widar, आधुनिक हाई जर्मन widder शब्द; 'भेड़ का बच्चा' अर्थ में पाया जाने वाला गोथिक विद्रुस् शब्द; और 'बधिया किया हुआ मेंढ़ा' अर्थ में पाया जाने वाला मध्यकालीन और आधुनिक अंग्रेज़ी wether शब्द भी इसी से सम्बद्ध बताये जाते हैं। सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ १५५, १५७-५८.

की अनेक उपमायें तथा अन्य अलङ्कार विभिन्न पशुओं के सादृश्य पर आधारित हैं। गाय और बछड़ों से तो वैदिक काल के लोगों का सबसे अधिक सम्पर्क था। गाय को अपने बच्चे से अत्यधिक स्नेह होता है। वह उससे पृथक् नहीं होना चाहती। चरने के लिये जंगल में अनिच्छा से ही जाती है। शाम को लौटते हुये बच्चे से प्यार के कारण रम्भाती हुई आती है। ऋग्वेद के अनेक प्रसङ्गों में गाय का अपने बच्चे के प्रति उत्कट प्रेम स्पष्ट प्रकट होता है। गाय का जो सम्बन्ध अपने बच्चे (बछड़े अथवा बछिया) से होता है, वही माता-पिता का अपने पुत्र या पुत्री से होता है। अतः माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को भी सादृश्य से 'बछड़े या बच्चे' के वाचक 'वत्स' शब्द द्वारा लक्षित किया गया।[१] कालान्तर में 'बछड़े' का भाव लुप्त हो गया और 'वत्स' शब्द का 'बेटा' अर्थ ही समझा जाने लगा। संस्कृत साहित्य में 'बेटा' अर्थ में 'वत्स' शब्द का और 'बेटी' अर्थ में 'वत्सा' शब्द का प्रचुर प्रयोग मिलता है।

कालान्तर में 'वत्स' शब्द के अर्थ में कुछ और विस्तार हुआ और अपने पुत्र-पुत्री के अतिरिक्त सामान्य रूप में किसी भी स्नेहपात्र लड़के-लड़की या आयु में अपने पुत्र-पुत्री के समान किसी भी पुरुष, स्त्री को स्नेहपूर्वक सम्बोधन करते हुये क्रमशः 'वत्स', 'वत्सा' कहा जाने लगा।

सिंहावलोकन

हिन्दी में 'सिंहावलोकन' पुं० शब्द का अर्थ है—'आगे बढ़ते हुये पीछे की बातों पर दृष्टिपात अथवा विचार करना।' जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को करते हुये पहिले किये हुये कार्य पर भी दृष्टिपात अथवा विचार करता है, तो उसे 'सिंहावलोकन' कहा जाता है। यह वस्तुतः संस्कृत साहित्य में उपलब्ध 'सिंहावलोकन-न्याय' का भाव है। लोक अथवा शास्त्र में विशिष्ट प्रसङ्ग में प्रयुक्त होने वाले, कहावत की तरह के, दृष्टान्त-वाक्य को 'न्याय' कहते हैं। सिंह की यह आदत होती है कि वह अपने शिकार की खोज में आगे बढ़ते हुये

१. कृषि एवं पशु-पालन से सम्बन्धित व्यक्तियों में आजकल भी बहुधा इस प्रकार भी भावाभिव्यक्ति मिल जाती है। युवा पुत्र के मर जाने पर बहुत सी ग्रामीण महिलाओं को 'अरे मेरे बछड़े' कह कर रुदन करते हुये देखा जाता है। 'अरे मेरे बछड़े' वाक्य में 'बछड़े' शब्द का प्रयोग जिस भाव से होता है, उसी ने 'बेटा' अर्थ में 'वत्स' शब्द को प्रचलित कराया है।

कभी-कभी गर्दन मोड़कर पीछे की ओर भी देखता रहता है, यह सोचते हुये कि कहीं उसके आस-पास ही कोई प्राप्त करने योग्य वस्तु न हो। सिंह शिकार मार लेने पर भी, इस विचार से कि कहीं शिकार पर अधिकार जमाने के लिये कोई अन्य प्रतिद्वन्द्वी न आ जाये, आगे-पीछे देखता रहता है। सिंह के इस अवलोकन (अर्थात् आगे-पीछे देखने) के अनुकरण पर ही कोई कार्य करते हुये पिछले कार्य अथवा उससे सम्बद्ध पिछली बातों पर दृष्टिपात अथवा विचार करने को आलङ्कारिक रूप में 'सिंहावलोकन' कहा गया। आजकल यह आलङ्कारिक भाव लुप्त हो गया है। 'पिछली बातों पर विचार करना', 'सिंहावलोकन' शब्द का सामान्य अर्थ बन गया है।

(२) पक्षियों तथा उनके अवयवों, क्रियाओं आदि का सादृश्य

पक्ष

हिन्दी में 'पक्ष' पुं० शब्द अधिकतर 'ओर, तरफ़', 'दल', 'पखवाड़ा' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'पक्ष' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'पक्ष' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'पंख, पर' है। इसी अर्थ से विकसित होते-होते 'कन्धा'[१], 'कोख', 'सेना का एक बाज़ू', 'किसी वस्तु का आधा', 'पखवाड़ा'[२] (जो १५ दिन का होता है), 'दल'[३], 'तरफ़, ओर', 'किसी दल का अनुयायी'[४], 'वर्ग'[५], 'समूह', 'वादविवाद का एक पक्ष'[६], 'विवादग्रस्त विषय' आदि अनेक अर्थ विकसित हुये हैं। चिड़िया, कबूतर, चील आदि को 'पक्षी' उनके पक्ष (पंख) होने के कारण ही कहा गया। 'पक्षी' के दो ओर पंख (पक्ष) होते हैं। अतः इस सादृश्य से किसी भी वस्तु, समूह, व्यक्ति आदि के एक 'भाग' को 'पक्ष' कहा जाने लगा। एक महीने के दो भाग १५, १५ दिन के होते हैं। अतः '१५ दिन के समय' को एक 'पक्ष' कहा गया। हिन्दी में १५ दिन के समय के लिये प्रचलित 'पखवाड़ा' शब्द में

---

१. स्तम्बेरमा उभयपक्षविनीतनिद्राः। रघु० ५.७२.

२. तमिस्रपक्षे (रघु० ६.३४); इसी प्रकार कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष आदि।

३. प्रमुदितवरपक्षम्। रघु० ६.८६.

४. शत्रुपक्षो भवान्। हितोपदेश १.

५. जैसे—अरिपक्ष, मित्रपक्ष आदि।

६. जैसे—पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष आदि।

'पक्ष' का तद्भव रूप विद्यमान है। संस्कृत में मनुष्य के 'कन्धे' के लिये भी 'पक्ष' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। कन्धे मनुष्य के दोनों ओर होते हैं, अतः पक्षी के दोनों ओर 'पंख' होने के सादृश्य से 'कन्धे' को 'पक्ष' कहा गया। युद्ध में लड़ती हुई सेनाओं में दो दल होते हैं, उनमें से प्रत्येक 'दल' के लिये 'पक्ष' शब्द प्रचलित हुआ। फिर किसी भी प्रकार के 'दल' या 'ओर' के लिये भी 'पक्ष' शब्द प्रयुक्त होने लगा, जैसे 'शत्रुपक्ष', 'वरपक्ष' आदि। किन्हीं दो व्यक्तियों अथवा दलों में वादविवाद या झगड़ा होने पर उनमें से प्रत्येक को 'पक्ष' कहा जाता है और यदि कोई किसी एक व्यक्ति या दल का समर्थन करता है, तो उसे 'पक्ष लेना' कहा जाता है। हिन्दी में इन अर्थों के अतिरिक्त 'पक्ष' शब्द का एक अन्य अर्थ भी विकसित हो गया है। वह है 'पहलू', जैसे—अमुक बात का एक पक्ष (पहलू) और है।

पक्षपात

हिन्दी में 'पक्षपात' पुं० शब्द का अर्थ है—'औचित्य या न्याय का विचार छोड़कर किसी एक पक्ष के अनुरूप होने वाली प्रवृत्ति या सहानुभूति और उस पक्ष का समर्थन।' 'पक्षपात' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे—पक्षपातमत्र देवी मन्यते (मालविका० अङ्क १)। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि 'पक्षपात' शब्द 'पक्ष' (पंख) शब्द से मिलकर बना है। अतः इसका शाब्दिक अर्थ है—'पंखों का गिरना'। संस्कृत में ही 'पक्ष' शब्द के 'दल', 'तरफ़, ओर' आदि अर्थ विकसित हो जाने के कारण 'किसी पक्ष के प्रति सहानुभूति होने अथवा उसका समर्थन करने' को 'पक्षपात' कहा गया।

संस्कृत में 'पक्षपात' शब्द का प्रयोग 'तरफ़दारी' के अतिरिक्त 'स्नेह, अनुराग' अर्थ में भी पाया जाता है, जैसे—

वीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजां भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः।

"कामना-रहित, मुक्ति चाहने वाले महात्माओं का भी सज्जनों के प्रति अनुराग हो जाता है" (किरात० ३.१२)।

'पक्ष लेना' अर्थ में 'पक्षपात' शब्द कुछ अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी पाया जाता है, जैसे—मराठी, गुजराती, उड़िया, कन्नड़—'पक्षपात';

पञ्जाबी—'पखपात'; तेलुगु—'पक्षपातमु'; तमिल—'पच्चपादम्'; मलयालम—'पक्षपातम्'।

पतङ्ग

हिन्दी में 'पतङ्ग' स्त्री० शब्द 'गुड्डी' अर्थात् एक ऐसे कागज़ के खिलौने के लिये प्रचलित है, जो बाँस की कमानियों के ढाँचे पर पतला कागज़ मढ़कर बनाया जाता है और जिसे तागे से बाँधकर आकाश में उड़ाया जाता है। 'पतङ्ग' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'पतङ्ग' शब्द 'पक्षी'[1], 'शलभ'[2], भुनगा', 'सूर्य'[3], 'एक प्रकार की गेंद'[4] आदि अर्थों में मिलता है। वस्तुतः 'पतङ्ग' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है 'उड़ते हुये अथवा उछलते हुये जाने वाला' (पतन् उत्प्लवन् गच्छतीति)। पक्षी, शलभ आदि उड़ने अथवा उछलने वाले जीव होते हैं। सूर्य को भी प्राचीन काल में आकाश में चलता हुआ माना जाता था। गेंद भी उछलती है। अतः संस्कृत में पक्षी, शलभ, सूर्य, गेंद आदि के लिये 'पतङ्ग' शब्द प्रचलित हुआ। इनमें से 'पक्षी' अर्थ में 'पतङ्ग' शब्द का प्रयोग अधिक मिलता है। 'गुड्डी' नाम का खिलौना आकाश में उड़ता हुआ ऐसा दिखाई पड़ता है मानो कि कोई पक्षी उड़ रहा हो। अतः पक्षी के सादृश्य से 'गुड्डी' के लिये 'पक्षी' का वाचक 'पतङ्ग' शब्द प्रचलित हुआ। यह भी हो सकता है कि 'गुड्डी' के लिये 'पतङ्ग' शब्द के सर्वप्रथम प्रयोक्ता के मस्तिष्क में उसका मूल भाव 'उड़ते हुये अथवा उछलते हुये जाने वाला' भी रहा हो।

हिन्दी में 'पतङ्ग' शब्द 'गुड्डी' अर्थ में कब प्रचलित हुआ, यह निश्चय-पूर्वक कहना कठिन है। यह भी निश्चित ज्ञात नहीं है कि भारत में खिलौने के रूप में 'पतङ्ग' (गुड्डी) का कब प्रचलन हुआ। संसार के कुछ देशों में पतङ्ग उड़ाने की प्रथा बहुत प्राचीन बताई जाती है। ग्रीक लोगों में चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी पूर्व में पतङ्ग खिलौने के प्रचलन का अनुमान लगाया गया है। चीन में छठी शताब्दी में इसका प्रचलन हुआ माना जाता है और

---

१. नृपः पतङ्गं समधत्त पाणिना। नैषध० १.१२४.

२. यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः। भग० ११.२९.

३. विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम्। उत्तर० ६.१२.

४. योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गः। भागवत-पुराण ५.२.१४.

जहाँ से सम्भवतः सातवीं शताब्दी में इसका प्रचलन मुस्लिम देशों में हुआ। डा० पी० के० गोड़े ने विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यों से उद्धरण देते हुये और कई विद्वानों के विचार प्रकट करते हुये अपना यह मत प्रस्तुत किया है कि भारत में खिलौने के रूप में पतङ्ग (गुड्डी) उड़ाने का प्रचलन १५०० ई० के पश्चात् हुआ।[1] विभिन्न भारतीय भाषाओं में 'गुड्डी' के लिये पृथक्-पृथक् शब्द मिलते हैं। 'गुड्डी' के लिये 'पतङ्ग' शब्द हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती और कश्मीरी भाषाओं में भी पाया जाता है।[2] सन्त तुकाराम ने अपनी पुस्तक मन्त्रगीता[3] में, जोकि बेण्ड्रे (Bendre) के अनुसार १६४३ ई० के पूर्व लिखी गई थी, 'गुड्डी' अर्थ में 'पतङ्ग' शब्द का प्रयोग किया है। यह सम्भव है कि 'गुड्डी' अर्थ में 'पतङ्ग' शब्द सर्वप्रथम मराठी भाषा में ही प्रचलित हुआ हो और बाद में हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में ग्रहण कर लिया गया हो।

यह उल्लेखनीय है कि कुछ अन्य भाषाओं में भी 'गुड्डी' के लिये ऐसे शब्द पाये जाते हैं, जो मूलतः पक्षी अथवा किसी विशिष्ट पक्षी के वाचक थे। अंग्रेज़ी भाषा में 'गुड्डी' के लिये प्रचलित kite[4] शब्द का मूल अर्थ 'चील' है। असमिया भाषा में 'चिला' का अर्थ 'चील' भी है और 'गुड्डी' भी।

विहङ्गावलोकन और विहङ्गमदृष्टि

हिन्दी में 'किसी विषय अथवा वस्तु को सरसरी दृष्टि से देखने' (सामान्य रूप में निरीक्षण) के लिये 'विहङ्गावलोकन' शब्द प्रचलित है (जैसे—मैंने

---

१. इण्डियन लिंग्विस्टिक्स वोल्यूम १७ (१९५५–५६), जून १९५७, तारापुरवाला मेमोरियल वोल्यूम में डा० पी० के० गोड़े का "Some Notes on the History of Kite in India and Outside" नाम का लेख, पृष्ठ ९७।

२. व्यवहारकोश।

३. तेथें पुण्य पाप नोकरवे स्वरूप उड़वी संकल्प पतंग ते। अभङ्ग १९७.३.

४. शोर्टर ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ १०८८ में kite शब्द का खिलौना अर्थ देते हुये १६६४ ईसवी का निर्देश दिया हुआ है। अतः भारतीय भाषाओं में 'पतङ्ग' के वाचक शब्दों के इससे पहिले के प्रयोग पाये जाने के कारण इस बात की सम्भावना नहीं है कि मराठी, हिन्दी आदि भाषाओं में अंग्रेज़ी के kite शब्द के अनुकरण पर 'गुड्डी' के लिये 'पतङ्ग' शब्द अपनाया गया हो।

अमुक लेख का विहङ्गावलोकन-मात्र किया है)। 'सामान्य रूप में अवलोकन' के लिये 'विहङ्गमदृष्टि' डालना भी कहा जाता है (जैसे—मैंने अमुक लेख पर विहङ्गमदृष्टि डाली)। किसी विषय अथवा वस्तु के सामान्य रूप में अवलोकन को पक्षियों (विहङ्गों) के देखने (अवलोकन) के सादृश्य के आधार पर ही आलङ्कारिक रूप में 'विहङ्गावलोकन' कहा गया। पक्षी जब आकाश में उड़ता है तो उसको दिखलाई तो बहुत दूर तक की वस्तुयें देती हैं, किन्तु वह उन सब वस्तुओं को स्पष्ट रूप में नहीं देख पाता। वह सारे दृश्य का सामान्य पर्यवेक्षण-मात्र कर पाता है। इसी भाव-सादृश्य से किसी विषय के सामान्य पर्यवेक्षण को 'विहङ्गावलोकन' कहा जाने लगा। संस्कृत में 'विहङ्गावलोकन' और 'विहङ्गमदृष्टि' आदि का प्रयोग नहीं पाया जाता, 'विहङ्ग' और 'विहङ्गम' शब्द 'पक्षी' अर्थ में अवश्य पाये जाते हैं। इनको प्रस्तुत अर्थों में आधुनिक काल में ही प्रयुक्त किया जाने लगा है। सम्भवतः अंग्रेज़ी के "bird's eye-view" और "bird's eye" वाक्य-खण्डों के भाव को व्यक्त करने के लिये हिन्दी में 'विहङ्गावलोकन' और 'विहङ्गम-दृष्टि' शब्दों को बना लिया गया है।

(ई) द्वार, मार्ग, स्रोत, नाली आदि का सादृश्य

साधारणतया यह देखा जाता है कि द्वार, मार्ग, स्रोत, नाली आदि को लक्षित करने वाले बहुत से शब्द भाव-सादृश्य से 'ढंग' अथवा 'विधि' के भावों को लक्षित करने लगते हैं। द्वार, मार्ग, स्रोत, नाली आदि किन्हीं वस्तुओं को ले जाने के साधन होते हैं, जैसे मार्ग से मनुष्य, पशु, वाहन आदि आदि आते-जाते हैं, नाली के द्वारा पानी ले जाया जाता है अथवा स्वयं प्रवाहित होता है। द्वार, मार्ग, स्रोत, नाली आदि के किन्हीं वस्तुओं को ले जाने के साधन होने के कारण ही भाव-सादृश्य से किसी कार्य को करने के साधन-भूत ढंग अथवा विधि को उनके वाचक शब्दों द्वारा आलङ्कारिक रूप में लक्षित किया जाने लगता है। हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों में भी 'ढंग' अथवा 'विधि' के वाचक कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं, जो मूलतः द्वार, मार्ग, स्रोत, नाली आदि के वाचक थे। यह उल्लेखनीय है कि बक ने अपने 'प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश' में 'विधि' (manner) के भाव का विकास जिन भावों से पाया जाना लिखा है, उनमें 'मार्ग, सड़क' (way, road) का भाव भी है।

द्वारा

हिन्दी में 'द्वारा' अव्यय शब्द अधिकतर 'ज़रिये से, साधन से' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—अमुक व्यक्ति द्वारा, अमुक क्रिया द्वारा, अमुक कार्य द्वारा आदि)। 'द्वारा' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'द्वारा' शब्द का मौलिक अर्थ है—'दरवाज़े से'। 'द्वारा' शब्द 'द्वार्' (दरवाज़ा) शब्द में तृतीया विभक्ति लगकर बना है।[1] ऋग्वेद तथा अथर्ववेद आदि ग्रन्थों में दरवाज़े के लिये 'द्वार' के अतिरिक्त 'द्वार्' शब्द का भी प्रयोग पाया जाता है। वस्तुतः 'द्वार्' शब्द प्राचीन है, 'द्वार' तो बाद में विकसित हुआ है। ऋग्वेद में 'द्वार्' शब्द अधिकतर बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है, जैसे—वि श्रयन्ताम् द्वारः—'दरवाज़े खोल दिये जायें' (ऋग्वेद १.१३.६)।

'द्वारा' शब्द का 'ज़रिये से, साधन से' अर्थ इस शब्द के 'दरवाज़े से' अर्थ से 'पद्धति' तथा 'प्रणाली' आदि शब्दों के समान ही भाव-सादृश्य से विकसित हुआ है। दरवाज़ा किसी घिरे हुये स्थान या भवन आदि में प्रवेश करने का साधन होता है। उससे ही किसी घिरे हुये स्थान या भवन आदि में प्रवेश किया जाता है। साधन होने के भाव-सादृश्य से ही 'से, ज़रिये से, साधन से' के भाव को 'दरवाज़े से' के वाचक 'द्वारा' शब्द द्वारा लक्षित किया जाना प्रारम्भ हुआ। यह उल्लेखनीय है कि 'ज़रिये से, साधन से, से' अर्थ में 'द्वारा' शब्द बंगला, असमिया, उड़िया, तेलुगु आदि अन्य भारतीय भाषाओं में भी पाया जाता है।[2]

पदवी

हिन्दी में 'पदवी' स्त्री० शब्द 'शासन, संस्था आदि की ओर से कसी को दी जाने वाली आदर या योग्यतासूचक उपाधि' के लिये प्रचलित है। 'पदवी' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'पदवी' (तथा 'पदवि') स्त्री० शब्द का मूल अर्थ है 'मार्ग, पथ'। इस अर्थ में लौकिक संस्कृत साहित्य में 'पदवी' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—

> श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
> सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते। शाकु० ४.१३.

"वही यह साँवक की मुट्ठियों से पाला हुआ, पुत्र के समान माना हुआ मृग तेरे मार्ग को नहीं छोड़ रहा है।"

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

२. व्यवहारकोश।

संस्कृत में 'मार्ग' अर्थ में 'पदवी' शब्द का भाव-सादृश्य से आलङ्कारिक रूप में भी प्रयोग पाया जाता है, जैसे—अनुयाहि साधुपदवीम्—'साधुओं के मार्ग का अनुसरण करो' (नीति० ७७)।

मार्ग, जिस पर कोई व्यक्ति चलता है, स्थान भी होता है। किसी मार्ग पर चलते हुये ही गन्तव्य-स्थान तक पहुँचा जाता है। अतः मार्ग के वास्तविक एवं आलङ्कारिक भाव के साथ स्थान का सम्बन्ध होने के कारण कालान्तर में मार्गवाची 'पदवी' शब्द 'स्थान' अथवा 'पद' आदि को भी लक्षित करने लगा। संस्कृत में 'पदवी' शब्द के इस अर्थ में प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं[1], जैसे—एतत् स्तोत्रं प्रपठता विचार्य गुरुवाक्यतः। प्राप्यते ब्रह्मपदवी सत्यं सत्यं न संशयः।। तत्त्वमसि-स्तोत्र १२.

संस्कृत में 'पदवी' शब्द के 'स्थान' या 'पद' अर्थ में पाये जाने के कारण भाव-सादृश्य से हिन्दी में 'शासन संस्था आदि की ओर से किसी को दी जाने वाली आदर या योग्यतासूचक उपाधि' को भी 'पदवी' कहा जाने लगा है। यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी में 'पदवी' शब्द का 'मार्ग' अर्थ प्रचलित नहीं है।

पद्धति

हिन्दी में 'पद्धति' स्त्री० शब्द 'प्रणाली, ढंग' अर्थ में प्रचलित है (जैसे शिक्षा-पद्धति, विचार-पद्धति, रहन-सहन की पद्धति आदि)। 'पद्धति' शब्द का यह अर्थ तो संस्कृत में नहीं पाया जाता, तथापि इससे मिलता-जुलता 'परिपाटी'[2] अर्थ अवश्य पाया जाता है (जोकि मार्गवाची 'पद्धति' शब्द का आलङ्कारिक रूप में प्रयोग करने से विकसित हो गया है), जैसे—इयं हि रघुसिंहानां वीरचारित्रपद्धतिः—'यह रघुवंश के वीरों के आचरण की परिपाटी है' (उत्तर० ५.२२)।

संस्कृत में 'पद्धति' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है 'मार्ग, पथ' (पद्भ्यां हन्यते; पद+हन्+क्तिन्)। संस्कृत साहित्य में 'मार्ग, पथ' अर्थ में 'पद्धति'

---

१. अथ तेन सिंहाय अमात्यपदवी प्रदत्ता। पञ्च० १.२५८।

२. पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम्—'वेद के मार्ग को दिखाने वाले बड़े लोग मलिन मार्ग (परिपाटी) का अवलम्बन नहीं करते हैं' (रघु० ३.४६)।

शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—रिपुश्रियां साञ्जनवाष्पसेके बन्दीकृतानामिव पद्धती द्वे—'अञ्जन और आँसुओं से काली पड़ी ये रेखायें मानो बन्दी की हुई शत्रुओं की राज्यलक्ष्मियों के आने के दो मार्ग हैं' (रघु० ६.५५)।

'पद्धति' शब्द का हिन्दी में प्रचलित 'प्रणाली, ढंग' अर्थ इस शब्द के आलङ्कारिक प्रयोगों में उपलब्ध 'मार्ग, परिपाटी' अर्थ का ही कुछ विकसित रूप है। मूलतः 'पद्धति' शब्द उस 'मार्ग' को लक्षित करता था, जिससे कोई व्यक्ति जाता है, किन्तु बाद में यह शब्द उस 'मार्ग या ढंग' को भी लक्षित करने लगा, जिससे कोई कार्य किया जाता है। इस प्रकार 'पद्धति' शब्द के अर्थ में विस्तार होकर 'प्रणाली, ढंग' अर्थ विकसित हो गया।

यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी के way शब्द का भी 'प्रकार, ढंग' अर्थ 'पद्धति' शब्द के समान ही इस शब्द के मौलिक अर्थ 'मार्ग' (way=road) से विकसित हुआ है। प्राचीन अंग्रेज़ी में weg और मध्यकालीन अंग्रेज़ी में weie, waye शब्द 'सड़क' (road) के ही वाचक थे। आजकल way शब्द का प्रयोग 'सड़क, मार्ग' अर्थ में बहुत कम पाया जाता है (अधिकतर highway, railway आदि शब्दों में यह अर्थ विद्यमान मिलता है)। आयरिश भाषा के conar शब्द का भी 'प्रकार' अर्थ इसके मूल अर्थ 'सड़क' (road) से विकसित हुआ है।[1]

संस्कृत में 'पद्धति' शब्द का प्रयोग 'विशिष्ट धार्मिक कृत्यों, संस्कारों आदि के विधि-विधान का विवेचन करने वाले प्रक्रिया-ग्रन्थ' तथा 'जाति, व्यवसाय आदि के सूचक उपनाम या उपाधि'[2] (जैसे—दास, गुप्त, वसु आदि) के लिये भी पाया जाता है। इन अर्थों का विकास भी 'पद्धति' शब्द के 'मार्ग, परिपाटी' अर्थ से ही हुआ है।

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (९.९९२; way, manner), पृष्ठ ६५७, और (१०.७१; road), पृष्ठ ७१८.

२. जिस प्रकार 'पद्धति' शब्द के 'मार्ग' अर्थ से 'उपाधि' अर्थ का विकास हुआ है, उसी प्रकार 'पदवी' शब्द का भी 'मार्ग' अर्थ से 'उपाधि' अर्थ विकसित हुआ है।

प्रणाली

हिन्दी में 'प्रणाली' स्त्री० शब्द 'पद्धति, ढंग, रीति' अर्थ में प्रचलित है (जैसे शिक्षाप्रणाली, कार्यप्रणाली, बिचारप्रणाली आदि)। संस्कृत में 'प्रणाली' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'प्रणाली' शब्द का मौलिक अर्थ है—'नाली' अथवा 'पतनाला'[1], जैसे—

कौशल्या व्यसृजद्बाष्पं प्रणालीव नवोदकम्। रामायण २.६२.१०.

"कौशल्या के नेत्रों से आँसुओं की धारा उसी भाँति बही, जिस भाँति नाली से वर्षा का जल बहता है।"

'प्रणाली' शब्द के 'नाली' अथवा 'पतनाला' अर्थ से ही हिन्दी में प्रचलित 'पद्धति, ढंग, रीति' अर्थ का विकास हुआ है। हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, नेपाली आदि भाषाओं में भी 'प्रणाली' शब्द का 'पद्धति, ढंग, रीति' अर्थ पाया जाता है।

'नाली' अथवा 'पतनाला' पानी ले जाने का एक मार्ग अथवा साधन होता है। अतः भाव-सादृश्य से किसी कार्य को करने के मार्ग, साधन अथवा ढंग को 'प्रणाली' कहा गया। पहिले 'प्रणाली' शब्द का प्रयोग आलङ्कारिक रूप में किया गया होगा। बाद में आलङ्कारिक भाव लुप्त हो गया और 'पद्धति, ढंग, रीति' ही 'प्रणाली' शब्द का सामान्य अर्थ बन गया। आजकल हिन्दी में 'प्रणाली' शब्द का 'नाली' अथवा 'पतनाला' अर्थ सर्वथा लुप्त हो गया है।

यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी के channel शब्द का 'कोई काम करने या कोई चीज़ कहीं भेजने का उचित, उपयुक्त और नियत मार्ग या साधन' अर्थ (जैसे—through proper channel) भी 'प्रणाली' शब्द के वर्तमान अर्थ के समान ही विकसित हुआ है। 'चैनेल' शब्द का मौलिक अर्थ है—'जल के दो बड़े भागों को मिलाने वाला छोटा जल-मार्ग।'

रीति

हिन्दी में 'रीति' स्त्री० शब्द 'ढंग, प्रकार' और 'चलन, परिपाटी' अर्थों में प्रचलित है। 'रीति' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु

---

१. हा चारुदत्तेत्यभिभाषमाणा वाष्पं प्रणालीभिरिवोत्सृजन्ति—"हा चारुदत्त, इस प्रकार कहती हुई, पतनालों से जलपात के समान आँसू गिरा रही हैं" (मृच्छ० १०. ११)।

संस्कृत में 'रीति' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है 'गति'। ऋग्वेद में इस अर्थ में[१] और भाव-सादृश्य के आधार पर इससे विकसित हुये धारा, प्रवाह[२], स्रोत[३] आदि अर्थों में 'रीति' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

'रीति' शब्द के धारा, प्रवाह, स्रोत आदि अर्थों से ही 'प्रणाली' शब्द के समान भाव-सादृश्य के आधार पर संस्कृत में 'ढंग, प्रकार',[४] 'चलन, परिपाटी,' 'शैली' आदि अर्थों का विकास हुआ है। साहित्यशास्त्र में पदरचना की तीन या चार रीतियाँ अर्थात् शैलियाँ मानी गई हैं।[५] हिन्दी में साहित्यशास्त्र-सम्बन्धी प्रसङ्गों में 'रीति' शब्द 'शैली' अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

(उ) अन्य विविध भौतिक पदार्थों अथवा वस्तुओं का सादृश्य

विभिन्न प्रकार की भौतिक वस्तुओं अथवा पदार्थों को लक्षित करने वाले शब्दों से भाव-सादृश्य के आधार पर विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है। बहुधा भौतिक पदार्थों के वाचक शब्द भाव-सादृश्य से सूक्ष्म भावों को लक्षित करने लगते हैं। बहुधा एक भौतिक पदार्थ अथवा वस्तु को लक्षित करने वाला शब्द भाव-सादृश्य से किसी अन्य भौतिक पदार्थ या वस्तु को लक्षित करने लगता है। प्रस्तुत परिच्छेद में उपर्युक्त चार श्रेणियों के

---

१. तामस्य रीतिं परशोरिव—'उसकी परशु के समान उस गति को' (ऋग्वेद ५.४८.४)।

२. वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपाम्—'द्युलोक से बरसते हुये जलों का प्रवाह कीजिये' (ऋग्वेद ९.१०८.१०); इसी प्रकार 'रीतिरपाम्'—'जलों की धारा या प्रवाह' (ऋग्वेद ६.१३.१)।

३. यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक्—'जिस ब्रह्मणस्पति ने गायों को बाहर किया, उसने द्युलोक के लिये उनको विभक्त किया। महान् स्रोत की तरह गायें अपने बल से पृथक्-पृथक् चली गईं' (ऋग्वेद २.२४.१४)।

४. उक्तरीत्या, अनयैव रीत्या आदि।

५. पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्।
उपकर्त्री रसादीनां सा पुनः स्याच्चतुर्विधा॥
वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा॥ साहित्य० ६२४-५

अतिरिक्त अन्य विविध प्रकार के भौतिक पदार्थों अथवा वस्तुओं के वाचक शब्दों से विभिन्न अर्थों का विकास दिखाया गया है।

अवकाश

हिन्दी में 'अवकाश' पुं० शब्द, 'खाली समय' (फुरसत), 'छुट्टी', 'काम या नौकरी से अलग होना' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'अवकाश' शब्द का 'खाली समय' अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु अन्य अर्थ संस्कृत में नहीं मिलते। संस्कृत में 'अवकाश' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'जगह', विशेष रूप से 'खुली जगह'। संस्कृत साहित्य में 'खुली जगह' अर्थ में 'अवकाश' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ।। मनु० ३.२०७.

"खुली जगहों, पवित्र स्थानों और नदी के तीरों पर तथा निर्जन स्थानों में श्राद्ध करने से पितर सदा प्रसन्न होते हैं।"

'अवकाश' शब्द के 'खुली जगह' अर्थ से ही संस्कृत में भाव-सादृश्य से 'खाली समय' अथवा 'बीच का समय' अर्थ विकसित हुआ। 'अवकाश' शब्द के 'खुली जगह', 'जगह' आदि अर्थ तथा उससे विकसित हुये 'बीच का समय'[1] आदि अर्थ शतपथब्राह्मण में भी पाये जाते हैं।[2] 'अवकाश' शब्द के 'जगह, स्थान'[3] अर्थ से संस्कृत में 'प्रवेश'[4], 'उचित अवसर, अवसर'[5] आदि विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है।

हिन्दी में 'अवकाश' शब्द के 'खाली समय' अर्थ में ग्रहण कर लिये जाने पर उसे 'छुट्टी', 'सेवा-अवधि समाप्त होने पर कार्य या नौकरी से अलग होने' (रिटायर होने) आदि के लिये भी प्रयुक्त किया जाने लगा, क्योंकि 'छुट्टी' में

---

१. अथ यान्यूर्ध्वानि क्रयादहानि तस्मिन्नवकाशेऽध्वर्युरग्निं चिनोति । क्वो हि चिनुयान्न च सोऽवकाशः ।। "और तब सोम खरीदने के बाद जो दिन होते हैं, उस 'बीच के समय' में अध्वर्यु अग्निचयन करता है। किन्तु वह कब चिने, यदि वह 'बीच का समय' न हो।" शतपथ० ६.२.२.२६.

२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

३. अवकाशं किलोदन्वान्रामायाभ्यर्थितो ददौ। रघु० ४.५८.

४. (छाया) शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा। शाकु० ७.३२.

५. ताते चापद्वितीये वहति रणधुरां को भयस्यावकाशः। वेणी० ३.५.

भी व्यक्ति अपने निश्चित कार्य से मुक्त हो जाता है और रिटायर हो जाने पर भी। रिटायर होने के लिये 'अवकाश-ग्रहण' और 'रिटायर्ड' के लिये 'अवकाश-प्राप्त' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

आडम्बर

हिन्दी में 'आडम्बर' पुं० शब्द 'ऊपरी बनावट, दिखावा' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'आडम्बर' पुं० शब्द का यह अर्थ पाया जाता है, जैसे—निर्गुणः शोभते नैव विपुलाडम्बरोऽपि ना—'निर्गुण व्यक्ति शोभा नहीं पाता, चाहे वह कितना भी ऊपरी बनावट करने वाला क्यों न हो' (भामिनी० १.११५)।

वस्तुतः संस्कृत में 'आडम्बर' शब्द का मौलिक अर्थ है 'ढोल'। वाजसनेयि-संहिता (३०. १९) में 'ढोल बजाने वाले' के लिये 'आडम्बराघात' शब्द का प्रयोग मिलता है[१]।

'आडम्बर' शब्द के 'ढोल' अर्थ से संस्कृत में 'ढोल की ध्वनि' अर्थ विकसित हुआ और फिर भाव-सादृश्य से 'किसी भी प्रकार की ध्वनि'[२], 'कोलाहल', 'मेघों के गर्जन'[३], 'हाथियों के गर्जन'[४] आदि को 'आडम्बर' कहा जाने लगा।

कोलाहल अथवा ध्वनि करने की क्रिया किसी न किसी मानसिक भावना से प्रेरित होती है। अभिमान, दर्प, हर्ष, क्रोध आदि के कारण कोलाहल किया जा सकता है। अतः (मोनियर विलियम्स और आप्टे आदि के) संस्कृत कोशों में दिये हुये 'आडम्बर' शब्द के 'दर्प', 'अभिमान', 'हर्ष', 'क्रोध' आदि अर्थों का भी विकास स्वाभाविक प्रतीत होता है। 'आडम्बर' शब्द के 'दर्प' अथवा 'अभिमान' अर्थ से ही 'ऊपरी बनावट, दिखावा' अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि प्रायः दर्प अथवा अभिमान के कारण ही ऊपरी बनावट अथवा दिखावे का आयोजन किया जाता है।

---

१. Āḍambara was a kind of 'drum'. A 'drummer' (Āḍambarāghāta) is mentioned in the list of victims at the Puruṣamedha ('human sacrifice') in the Vājasaneyisaṃhitā (XXX.19). Macdonell & Keith : Vedic Index, Vol.1, (Āḍambara).

२. असारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान्।
न हि तादृग्ध्वनिः स्वर्णे यथा कांस्ये प्रजायते।। शब्दकल्पद्रुम।

३. धातः किं नु विधौ विधातुमुचितो धाराधराडम्बरः। भामिनी० १.३.

४. दन्तिनामाडम्बररवेण। कादम्बरी १.१४.

बंगला भाषा में 'आडम्बर' शब्द 'शान अथवा ठाठबाट' अर्थ में प्रचलित है, जैसे—'उत्सवटि महा आडम्बर सम्पन्न हइयाछे' (उत्सव बड़े ठाठबाट के साथ मनाया गया)।[1] तेलुगु[2] भाषा में 'आडम्बरमु', कन्नड़[3] भाषा में 'आडम्बर', मलयालम[4] भाषा में 'आडम्बरम्' और तमिल[5] भाषा में 'आटम्परम्' शब्द 'शान, ठाठबाट' अर्थ में ही पाये जाते हैं। 'आडम्बर' शब्द संस्कृत में द्रविड़ भाषाओं से आया हुआ माना जाता है। किटेल[6] का मत है कि 'आडम्बर' शब्द 'आडम्' (द्रविड़ आडु = moving, playing) और 'परे' (pare = 'पलक, ढोल') से मिलकर बना है।

आदर्श

हिन्दी में 'आदर्श' पुं० शब्द 'नमूना', 'अनुकरणीय वस्तु', 'अनुकरणीय सिद्धान्त', 'ऐसी पूर्णता, जिससे आगे विचार ही न किया जा सके' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'नमूना' और 'अनुकरणीय वस्तु' (वह जिसके रूप और गुण आदि का अनुकरण किया जाये) अर्थ तो संस्कृत में भी कतिपय स्थलों पर पाये जाते हैं, परन्तु 'अनुकरणीय सिद्धान्त' और 'ऐसी पूर्णता जिससे आगे विचार ही न किया जा सके' अर्थ संस्कृत में नहीं पाये जाते। इन अर्थों का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

संस्कृत में 'आदर्श' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'दर्पण' (आदृश्यतेऽत्र; आङ् + दृश् + घञ्)। संस्कृत साहित्य में 'आदर्श' शब्द का प्रयोग अधिकतर इसी अर्थ में पाया जाता है।[7] यह उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य में 'आदर्श' (दर्पण) शब्द केवल उपनिषदों तथा आरण्यकों में पाया जाता है,[8] इससे पूर्व नहीं।

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

२. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

३. एफ० किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।

४. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

५. तमिल लेक्सीकन।

६. कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी (प्रस्तावना)।

७. यथादर्शो मलेन च (भग० ३.३८); कुमार० ७.२२; रघु० १७.२७ आदि।

८. बृहदारण्यक उपनिषद् २.१.६, ३.६.१५; छान्दोग्य उपनिषद् ८.७.४; ऐतरेय आरण्यक ३.२.४; शाङ्खायन आरण्यक ८.७ आदि।

संस्कृत में 'आदर्श' शब्द के 'मूल लेख अथवा ग्रन्थ जिसका अनुकरण करके अन्य प्रतियाँ की जायें', 'किसी पुस्तक की अक्षरशः अनुरूप लिखी हुई प्रति', 'टीका', 'नमूना', 'अनुकरणीय वस्तु' आदि विभिन्न अर्थों का विकास हुआ है।

किसी 'मूल लेख अथवा ग्रन्थ' को 'आदर्श' सम्भवतः इसलिये कहा गया होगा, क्योंकि वह अनुकरण करके तैयार की जाने वाली अन्य प्रतियों के लिये दर्पण-तुल्य होता है। उस (मूल लेख अथवा ग्रन्थ) को सावधानीपूर्वक देख-देखकर ही उसकी प्रतियाँ तैयार की जाती हैं। यह भी हो सकता है कि 'आदर्श' शब्द का मूल अर्थ 'जिस पर देखा जाये' (आदृश्यतेऽत्र) होने के कारण व्युत्पत्तिमूलक अर्थ में ही 'मूल लेख अथवा ग्रन्थ' को (जिसको देख-देखकर अन्य प्रतियाँ की जाती है) 'आदर्श' कहा जाने लगा हो। किसी 'लेख अथवा ग्रन्थ की अक्षरशः अनुरूप लिखी गई प्रति' को 'आदर्श' (दर्पण) इसलिये कहा गया होगा, क्योंकि मूल लेख अथवा ग्रन्थ उसमें पूर्ण रूप से ज्यों का त्यों प्रतिबिम्बित होता है। 'टीका' में भी मूल ग्रन्थ प्रतिबिम्बित रहता है। उससे ग्रन्थ के भाव की सही-सही जानकारी प्राप्त होती है। इसी कारण उसे भाव-सादृश्य से आलङ्कारिक रूप में 'आदर्श' (दर्पण) कहा जाने लगा होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'आदर्श' शब्द का 'नमूना' या 'अनुकरणीय वस्तु' अर्थ इसके 'मूल लेख अथवा ग्रन्थ, जिसका अनुकरण करके अन्य प्रतियाँ तैयार की जायें' अर्थ से भाव-सादृश्य के आधार पर आलङ्कारिक रूप में प्रयोग के कारण विकसित हुआ है. जैसा कि आप्टे के संस्कृत-इंगलिश कोश में भी सङ्केत मिलता है। 'मूल लेख अथवा ग्रन्थ', अनुकरण करके तैयार की जाने वाली प्रतियों के लिये 'नमूना' या 'अनुकरणीय' होता है, अतः सम्भवतः इसी सादृश्य से किसी 'नमूने' या 'अनुकरणीय वस्तु' के लिये 'आदर्श' शब्द प्रचलित हुआ होगा। संस्कृत साहित्य में 'नमूना' या 'अनुकरणीय' अर्थ में जो प्रयोग मिलते हैं[1], उनसे भी ऐसा ही प्रकट होता है।

'आदर्श' शब्द का 'अनुकरणीय सिद्धान्त' अर्थ 'अनुकरणीय वस्तु' अर्थ का ही विकसित रूप है। 'अनुकरणीय सिद्धान्त' के अनुकरणीय होने के कारण उसके लिये 'आदर्श' शब्द प्रचलित हुआ। 'आदर्श' शब्द का 'ऐसी पूर्णता, जिससे आगे विचार ही न किया जा सके' अर्थ अंग्रेज़ी के ideal शब्द से आया

---

१. 'आदर्शः शिक्षितानाम्' (मृच्छ० १.४८), 'आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्' (कादम्बरी ५); 'आदर्शः गुणानाम्' आदि।

है। ideal शब्द के भाव के लिये भाव-सादृश्य से 'आदर्श' शब्द के अपनाये जाने से यह अर्थ-विकास हुआ है।

'आदर्श' शब्द के 'नमूना', 'अनुकरणीय वस्तु', 'अनुकरणीय सिद्धान्त' आदि अर्थ बंगला और गुजराती भाषाओं में भी पाये जाते हैं। तेलुगु भाषा में भी 'आदर्शमु' शब्द के ये ही अर्थ हैं। किटेल के कन्नड़-इंगलिश कोश के अनुसार कन्नड़ भाषा में 'आदर्श' शब्द का, गण्डर्ट के मलयालम-इंगलिश कोश के अनुसार मलयालम भाषा में 'आदर्शम्' शब्द का, और तमिल लेक्सीकन के अनुसार तमिल भाषा में 'आतरिचम्' शब्द का अर्थ 'दर्पण' ही है। सिन्धी भाषा में 'आरसी', मराठी में 'आरसा' और गुजराती में 'आरिसो' शब्द, जो कि 'आदर्श' के ही तद्भव रूप हैं, 'दर्पण' के वाचक हैं।[1]

यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी में 'आदर्श' शब्द से विकसित हुये 'आरसी' शब्द का अर्थ 'हाथ का एक आभूषण' (जिसमें एक छोटा सा शीशा जड़ा रहता है) है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले 'आरसी' किसी छोटे शीशे को कहा जाता होगा, बाद में छोटा शीशा जड़ा होने के कारण भाव-साहचर्य से, हाथ के इस आभूषण को भी 'आरसी' कहा जाने लगा होगा। आजकल 'आरसी' शब्द से शीशे का भाव सर्वथा लुप्त हो गया है। अब यह केवल एक आभूषण-विशेष को लक्षित करता है।

गुण

हिन्दी में 'गुण' पुं० शब्द 'विशेषता', 'उत्तमता', 'सद्गुण', 'स्वभाव, धर्म', 'प्रकृति का धर्म' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'गुण' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'गुण' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'रस्सी की लड़' (strand) अथवा 'डोरी' था। इसी से अन्य सब अर्थ विकसित हुये हैं।

कीथ[2] के अनुसार संस्कृत में 'रस्सी की लड़' अर्थ में 'गुण' शब्द का प्रयोग

---

१. व्यवहारकोश।

२. पाठक कमेमोरेशन वोल्यूम में ए० बी० कीथ का 'दि एटिमोलोजी ऑफ़ गुण' नाम का लेख (पृष्ठ ३१३)।

सर्वप्रथम तैत्तिरीयसंहिता[१] में पाया जाता है। रस्सी, दो या अधिक लड़ों को बटकर (अर्थात् संयुक्त करके) बनाई जाती है। वे लड़ उस रस्सी के घटक (बनाने वाले) मुख्यावयव (constituent parts) होते हैं। लड़ों (गुण) के रस्सी के घटक (मुख्यावयव) होने के कारण ही बाद में भाव-सादृश्य से किसी वस्तु के मुख्य अवयवों, मुख्य विशेषताओं अथवा स्वभावों को भी 'गुण' कहा गया। 'गुण' शब्द के 'मुख्यावयव' (constituent) अर्थ का सङ्केत सर्वप्रथम अथर्ववेद[२] में मिलता है, जहाँ कि 'गुण' शब्द का शाब्दिक अर्थ तो 'लड़ अथवा डोरी' ही है, किन्तु आलङ्कारिक रूप में शरीर में पाये जाने वाले सत्त्व, रजस्, और तमस् नाम के तीन स्वभावों या धर्मों को लक्षित किया गया है। इस स्थल पर ग्रिफ़िथ[३] और व्हिटनी[४] ने भी 'गुण' शब्द से 'शरीर के स्वभाव या धर्म' की ओर सङ्केत होने की सम्भावना को माना है। मूर ने लिखा है कि 'यह सम्भव है कि यहाँ तीन गुणों (मूलभूत धर्मों) की ओर सर्वप्रथम निर्देश हो, जोकि बाद में भारतीय दार्शनिक विचारधारा में अत्यधिक प्रसिद्ध हुये।'[५]

---

१. त्रिरात्रेणैवेमं लोकं कल्पयति त्रिरात्रेणान्तरिक्षं त्रिरात्रेणामुं लोकं यथा गुणे गुणमन्वस्यत्येवमेव तल्लोके लोकमन्वस्यति धृत्या अशिथिलंभावाय (७.२.४.२)। सायण ने 'यथा गुणे गुणमन्वस्यति' की व्याख्या करते हुये लिखा है—

'यथा लोके त्रिवृद्रज्जुं सिसृक्षुः पुरुष एकस्मिन्सूत्रे द्वितीयं सूत्रं योजयति ततस्तृतीयमपि योजयति एवमेतेन त्रिरात्रेण पुनः पुनरभ्यस्तेनैतस्मिंल्लोके प्रथमं समर्थे सति ततो द्वितीयं तृतीयं च लोके समर्थं करोति।'

२. पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्—'तीन लड़ों (डोरियों) रूपी स्वभावों से आवृत नौ द्वारों वाला कमल रूपी शरीर' (१०.८.४३)।

३. "Enclosed with triple bands and bonds : or which the three Qualities enclose." Griffith : Atharvaveda English Translation, Vol. II, p. 41.

४. "The three guṇas are probably the three temperaments familiar under that name later." Whitney : Atharvaveda Samhitā, English Translation, p. 601.

५. "It is possible......that there may be here a first reference to the three guṇas (Fundamental Qualities) afterwards so celebrated in Indian philosophical speculation." Quoted in Griffith's Atharvaveda English Translation, Vol. II, p. 41.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अथर्ववेद के उपर्युक्त मन्त्र में 'गुण' शब्द का प्रयोग 'स्वभाव, धर्म' अर्थ में सर्वप्रथम आलङ्कारिक रूप में किया गया है (यद्यपि मौलिक अर्थ 'लड़ या डोरी' ही है), शरीर के तीन स्वभावों या धर्मों की रस्सी की तीन लड़ों के रूप में कल्पना की गई है। जिस प्रकार एक रस्सी तीन लड़ों से मिलकर बनी हुई होती है, उसी प्रकार शरीर तीन स्वभावों या धर्मों (सत्त्व, रजस् और तमस्) से बना हुआ कहा गया है। शरीर के तीन स्वभावों या धर्मों (रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण) के लिये 'गुण' शब्द प्रचलित हो जाने पर बाद में इसके 'सद्गुण,[१] अच्छाई', 'उपयोग[२], लाभ', 'प्रभाव'[३] आदि अर्थ भी विकसित हुये।

संस्कृत में 'गुण' शब्द के 'रस्सी की लड़' अर्थ से 'रस्सी'[४], 'धनुष की डोरी'[५], 'बाजे की डोरी'[६] आदि अर्थों का भी विकास पाया जाता है।

'गुण' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। आप्टे ने 'गुण' शब्द को √गुण्+अच् से और मोनियर विलियम्स ने √ग्रह् धातु से व्युत्पन्न माना है। प्रो० राइस[७] ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि 'गुण' शब्द 'गो' के दुर्बल रूप से 'न' (तद्धित) प्रत्यय लगकर बना है (ण प्राकृत के प्रभाव से हो गया है), और इसका मौलिक अर्थ 'बैल का' या 'बैल-सम्बन्धी' था। उसके अनुसार अर्थ का विकास इस प्रकार हुआ—(१) बैल का, या बैल अथवा साँड-सम्बन्धी (विशेषण), (२) बैल की स्नायु (संज्ञा), (३) स्नायु, (४) धनुष की डोरी (प्रत्यञ्चा), (५) रस्सी की लड़ (strand), डोरी, (६) विशेषता (quality), (७) उत्तमता (virtue)। इनमें से अन्तिम चार अर्थ संस्कृत में पाये जाते हैं।

डा० कीथ ने के० बी० पाठक स्मारक ग्रन्थ में अपने 'दि एटिमोलोजी ऑफ़ गुण' नाम के लेख में प्रो० राइस के इस विचार का खण्डन किया है। कीथ

---

१. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि। किरात० ८.३७.

२. कः स्थानलाभे गुणः। पञ्च० २.२०.

३. सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्। शाकु० ७.४.

४. तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः। हितोपदेश १.३५.

५. गुणकृत्ये धनुषो नियोजिता। कुमार० ४.१५

६. या बिभर्ति कलवल्लकीगुणस्वानमानम्। शिशु० ४.५७.

७ लैंग्वेज, ६ (१९३०), पृष्ठ ३६—४०.

ने बतलाया है कि संस्कृत में संज्ञा अथवा विशेषण शब्दों में 'न' (तद्धित) प्रत्यय लगाकर विशेषण शब्द बनाये जाने की प्रवृत्ति अधिक प्रमाणित नहीं होती, और न प्राकृत में 'गोण' (बैल) शब्द के पाये जाने से ही इस विचार की पुष्टि होती है, क्योंकि 'गोण' शब्द की भी उत्पत्ति अनिश्चित है। पिशेल[१] ने इस शब्द को 'गूर्ण' अथवा 'गवन' से व्युत्पन्न माना है।

'गुण' शब्द के अर्थ-विकास को प्रो० राइस के मतानुसार मानने पर 'बैल का' या 'बैल-सम्बन्धी', 'बैल की स्नायु' और 'स्नायु' इन तीन अर्थों का होना मानना पड़ता है, जोकि संस्कृत में कहीं नहीं पाये जाते। यह कहा जाता है कि कल्पित अर्थों का होना इस तथ्य से सिद्ध होता है कि संस्कृत में 'गो' शब्द का प्रयोग 'बैल की स्नायु' अर्थ में पाया जाता है। वस्तुतः इस कल्पित अर्थ के पाये जाने का प्रमाण अपर्याप्त है। धनुष के सम्बन्ध में प्रयुक्त किये जाने पर 'गो' शब्द धनुष की डोरी के रूप में प्रयुक्त स्नायु को लक्षित करता है, यह विचार इस तथ्य से स्थापित किया गया है कि अथर्ववेद ७.५०.९ में 'स्नावन्' शब्द का प्रयोग 'धनुष की डोरी' के लिये पाया जाता है। किन्तु यह तर्क कि क्योंकि स्नायु के धनुष की डोरी के रूप में प्रयुक्त किये जाने का एक स्थान पर स्पष्ट सङ्केत मिलता है, अतः 'गो' शब्द का अर्थ भी 'बैल की स्नायु' है, सर्वथा अग्राह्य है। प्राचीन काल में भारतीयों द्वारा धनुष की डोरी के लिये स्नायु का भी प्रयोग पाया जाने से यह बात सिद्ध नहीं होती कि वे धनुष की डोरी के लिये केवल स्नायु का ही प्रयोग करते थे। कीथ ने बताया है कि यह माना जाना कि वैदिक काल में धनुष की डोरी 'स्नायु' की ही बनाई जाती थी, सर्वथा अयुक्त है। 'स्नायु' और 'स्नावन्' आदि शब्द सामान्य रूप में 'धनुष की डोरी' के लिये प्रयुक्त किये जाते हों, यह बात नहीं है। रामायण, महाभारत तथा अग्निपुराण में धनुष की डोरी के 'सन' की बनाई जाने के अनेक प्रमाण मिलते हैं।

अतः यह माना जाना कि 'गुण' शब्द का मौलिक अर्थ 'बैल का' अथवा 'बैल-सम्बन्धी' था, सर्वथा अनुपयुक्त है। इसके अतिरिक्त यह मानना भी बड़ा कठिन है कि 'रस्सी की लड़' (strand) अर्थ 'धनुष की डोरी' अर्थ से विकसित हुआ। कीथ ने अपने लेख में इस बात का उल्लेख किया है कि न तो ग्रीक शब्द neuron से (जिसका अर्थ 'स्नायु' अथवा 'स्नायु-निर्मित प्रत्यञ्चा' है) 'रस्सी की लड़' अर्थ विकसित हुआ, न लैटिन के nervus से और न जर्मन

१. Grammatik der prakrit sprachen, 393.

के sehne से । इस तथ्य से यह सम्भावना प्रकट होती है कि 'रस्सी की लड़' अर्थ 'स्नायु' अथवा 'स्नायु-निर्मित प्रत्यञ्चा' से विकसित नहीं हुआ ।

कीथ ने अवेस्ता के gaono और उससे सम्बद्ध ईरानी शब्दों से 'गुण' शब्द का सम्बन्ध माना है । उसने बतलाया है कि इन शब्दों का मूल अर्थ 'बाल' था (जैसा कि बार्थोलोमी ने भी माना है) । यदि 'गुण' शब्द का मौलिक अर्थ 'बाल' मान लिया जाये, तो बालों को गूँथने की प्रक्रिया से 'लड़' अर्थ का विकसित होना माना जा सकता है । यह विशेष उल्लेखनीय है कि ईरानी भाषा के gaono शब्द के 'विशेषता' (quality) और 'रंग' (colour) अर्थ भी पाये जाते हैं । आधुनिक फ़ारसी में भी रंग, रूप, प्रकार आदि अर्थों में इससे सम्बद्ध 'गून' (gūn) शब्द मिलता है ।[1] कुछ अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी इससे सम्बद्ध शब्द पाये जाते हैं ।[2] अतः 'गुण' और 'gaono' शब्दों के स्वरूप और अर्थ की समानता से यह सम्भव प्रतीत होता है कि ये दोनों शब्द किसी एक सामान्य स्रोत से ही विकसित हुये हों ।

कीथ की इस कल्पना में कि 'गुण' शब्द का मौलिक अर्थ 'बाल' था, कुछ सत्य हो सकता है । हमारी ग्रामीण भाषा में कुम्हारों की शब्दावली में एक 'गूण' शब्द पाया जाता है, जिसका अर्थ है—'एक प्रकार का बोरा, जो बालों अथवा ऊन को बटकर बनाये गये डोरों से बुनकर बनाया जाता है ।' कुम्हार लोग इसे अनाज आदि सामान को भरकर ले जाने के काम में लाते हैं । गाँवों में आजकल भी कुम्हार लोग 'गूण' बनाने के लिये बालों अथवा ऊन को तकली पर ऐंठते हुये देखे जाते हैं । यह हो सकता है कि यह 'गूण' शब्द मूलतः बालवाची 'गुण' शब्द से सम्बद्ध हो और उसका मौलिक अर्थ 'बाल'

---

१. गून—Colour, species, form, figure, external appearance, mode, manner, kind etc. Steingass, F. : Persian-English Dictionary.

२. लिथुआनियन gauras 'बाल', अधिकतर बहु० gaurai 'शरीर पर उगे बाल, बालों का जूड़ा'; लेटिश gauri 'गुप्ताङ्गों पर उगे बाल'; आधुनिक आयरिश guaire 'कड़े बाल'; नॉर्वेजियन kaur 'मेमने की ऊन' । इन शब्दों तथा उपर्युक्त अवेस्तन और फ़ारसी शब्दों में भारत-यूरोपीय *geu धातु निहित मानी जाती है । सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (४.१४; hair), पृष्ठ २०४.

होने के कारण बाद में भाव-साहचर्य से उसका अर्थ 'बालों के द्वारा बनाये जाने वाला बोरा' विकसित हो गया हो। यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में भी 'बोरा' अर्थ में 'गोणी' शब्द पाया जाता है।[1] यह सम्भव है कि संस्कृत का 'गोणी' शब्द भी इसी स्रोत से विकसित हुआ हो। फ़ारसी भाषा में एक 'गूनन्द' शब्द पाया जाता है, जिसका अर्थ है—'बोरा बनाने वाला।'[2] 'गूनन्द' शब्द के 'बोरा बनाने वाला' अर्थ से 'गुण' जैसा बोरा बनाने की ओर सङ्केत हो सकता है।

तालिका

हिन्दी में 'तालिका' स्त्री० शब्द 'सूची' (list) अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'तालिका' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'तालिका' स्त्री० शब्द का अर्थ है—'ताली, करतलध्वनि', जैसे[3]—

यथैकेन न हस्तेन तालिका सम्पद्यते।
तथोद्यमपरित्यक्तं न फलं कर्मणः स्मृतम् ।। पञ्च० २.१३५.

"जिस प्रकार एक हाथ से ताली नहीं बजती, उसी प्रकार यत्न के विना कर्म का फल नहीं होता, ऐसा कहा गया है।"

हिन्दी शब्द सागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश आदि हिन्दी के कोशों में 'तालिका' शब्द का 'कुञ्जी' अर्थ भी दिया हुआ है। यद्यपि हिन्दी में आजकल 'कुञ्जी' अर्थ में 'तालिका' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता, तद्भव 'ताली' शब्द का प्रयोग किया जाता है, तथापि उपर्युक्त कोशों में दिये गये इस अर्थ से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि 'तालिका' शब्द 'कुञ्जी' अर्थ में प्रचलित अवश्य रहा होगा। 'तालक' पुं० शब्द का 'ताला' अर्थ तो मोनियर विलियम्स और आप्टे आदि के कोशों में भी मिलता है। तालिका' शब्द के 'सूची' (list) अर्थ का विकास इस शब्द के 'कुञ्जी' अर्थ से ही हुआ प्रतीत होता है। जिस प्रकार आजकल हिन्दी में 'कुञ्जी' (जिसका मौलिक अर्थ 'ताली' है) 'किसी पुस्तक का अर्थ स्पष्ट करने वाली पुस्तक' को कहा जाने लगा है, उसी प्रकार 'किसी

१. गोणीं जनेन स्म निधातुमुद्धृतामनुक्षणं नोक्षतरः प्रतीच्छति।
शिशु० १२.१०.

२. स्टीनगैस : पर्शियन-इंगलिश डिक्शनरी।

३. उच्चाटनीयः करतालिकानां दानादिदानीं भवतीभिरेषः।
नैषध० ३ ७.

विषय अथवा पुस्तक की सूची' को जो उसके विषयों को स्पष्ट रूप में सामने प्रस्तुत कर देती है, 'कुञ्जी' के वाचक 'तालिका' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा होगा।

'तालिका' शब्द का 'सूची' (list) अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है।[१] यह सम्भव है कि इस अर्थ में यह शब्द बंगला भाषा से ही आया हो।

पात्र

हिन्दी में 'पात्र' पुं० शब्द 'बरतन', 'कुछ पाने या लेने के योग्य व्यक्ति' (जैसे दानपात्र, कृपापात्र आदि में), 'नाटक में अभिनय करने वाला' (नट), 'कथानक, उपन्यास आदि में वह व्यक्ति जिसका कथावस्तु में कोई स्थान हो या कुछ चरित्र दिखाया गया हो' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'पात्र' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'पात्र' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'पानी पीने का बरतन'।[२] 'पानी पीने का बरतन' अर्थ से सामान्य रूप में 'बरतन' और फिर 'वह जिसमें कुछ रक्खा जा सके' अर्थ विकसित हुआ। ऋग्वेद में तथा बाद के वैदिक साहित्य में 'पात्र' शब्द का प्रयोग 'पानी पीने का बरतन' अथवा 'बरतन'[३] अर्थ में ही पाया जाता है। 'कुछ पाने या लेने के योग्य व्यक्ति' अर्थ वैदिक साहित्य में नहीं पाया जाता। 'पात्र' शब्द का 'कुछ पाने या लेने के योग्य व्यक्ति' अर्थ महाभारत तथा उसके बाद के लौकिक संस्कृत साहित्य में पाया जाता है।[४] यह स्पष्ट है कि पहिले 'कुछ पाने अथवा लेने के योग्य व्यक्ति' को 'पात्र', बरतन की किसी वस्तु को धारण करने की योग्यता के भाव-सादृश्य के आधार पर आलङ्कारिक रूप में कहा गया होगा। बाद में आलङ्कारिक भाव लुप्त हो गया और 'योग्य' अथवा 'कुछ पाने अथवा लेने के योग्य' को 'पात्र' सामान्य रूप में कहा जाने लगा।

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

२. Pātra, primarily 'a drinking vessel' (from pā, 'to drink') denotes a vessel generally both in the Rigveda and later. It was made either of wood or of clay. Keith and Macdonell : Vedic Index of Names and Subjects, s. v.

३. सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषाम् (ऋग्वेद १.१७५.३); 'पात्र' शब्द का 'बरतन' अर्थ में लौकिक संस्कृत साहित्य में भी प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—पात्रे निधायार्घ्यम् (रघु० ५.२)।

४. वित्तस्य पात्रे व्ययः। नीति० ८२.

नाटक में 'अभिनेता'[१] को 'पात्र' उसके अभिनय करने के योग्य होने के कारण ही कहा गया होगा, किन्तु बाद में भाव-सादृश्य से नाटक के चरित्रों (जिनका कथावस्तु में कोई स्थान हो, या चरित्र दिखाया गया हो) को भी 'पात्र' कहा गया। नाटक के चरित्रों के सादृश्य से आजकल हिन्दी में उपन्यासों आदि के चरित्रों को भी 'पात्र' कहा जाता है।

पेट

हिन्दी में 'पेट' पुं० शब्द 'उदर' (शरीर में छाती से नीचे का अङ्ग, जिसमें पहुँचकर भोजन पचता है) अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'पेट' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'पेट' शब्द के अर्थ हैं 'थैला', 'पिटारी' आदि।[२] संस्कृत में 'थैला', 'पिटारी', 'सन्दूक' आदि अर्थों में 'पेटा', 'पेटी', 'पेटक' आदि शब्द भी पाये जाते हैं।

'पेट' शब्द का 'उदर' अर्थ इस शब्द के 'थैला' अर्थ से ही विकसित हुआ है। 'उदर', शरीर के मध्य-भाग में थैले के समान ही होता है। पाचक रस बनाने वाले और भोजन पचाने वाले सब अङ्ग जैसे आमाशय, जिगर, तिल्ली, गुर्दे आदि इसी के अन्तर्गत रहते हैं। 'उदर' के 'थैले' के समान होने के कारण ही पहिले उसको आलङ्कारिक रूप में अथवा व्यंग्यपूर्वक 'पेट' (थैला) कहा गया होगा। जिस प्रकार आजकल भी किसी के 'पेट' को हँसी में 'ढोल' आदि कह दिया जाता है (जैसे—किसी व्यक्ति को बहुत अधिक खाते हुये देखकर बहुधा कोई मित्र हँसी में कह देता है कि 'अरे भाई तुम्हारा ढोल अभी भरा है या नहीं'), उसी प्रकार 'उदर' को 'पेट' (थैला) पहिले हँसी में व्यंग्यपूर्वक कहा गया होगा, किन्तु बाद में हँसी अथवा व्यंग्य का भाव लुप्त हो गया और 'पेट' सामान्य रूप में 'उदर' को लक्षित करने लगा।

'उदर' अर्थ में 'पेट' शब्द का प्रयोग पश्चिमी पहाड़ी (रामबानी, भद्रवाही, भटियाली) कुमायुँवी, असमिया, बंगला, उड़िया, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती आदि भाषाओं में भी पाया जाता है। मराठी में 'पेट' के लिये 'पोट्' शब्द प्रचलित है। मराठी में 'पेट' शब्द का अर्थ है 'सन्दूक' (जो संस्कृत में भी पाया जाता है)। प्राकृत में 'पेट्ट', 'पोट्ट', 'पुट्ट' आदि शब्द, जो सम्बद्ध हैं,

---

१. तत्प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः। शाकु० अङ्क १.

२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

'उदर' अर्थ में पाये जाते हैं।[1] तेलुगु भाषा में भी 'उदर' के लिये 'पोट्ट' शब्द पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि मोनियर विलियम्स और आप्टे आदि ने अपने कोशों में 'पेट', 'पेट्टा', 'पेटी' आदि शब्दों के 'थैला', 'टोकरी' आदि अर्थ दिये हैं, किन्तु संस्कृत साहित्य में प्रयोग के उद्धरण या निर्देश नहीं दिये हैं। मोनियर विलियम्स ने संस्कृत कोशकारों का निर्देश दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'पेट' शब्द संस्कृत में भी द्रविड़ भाषाओं से आया है। किटेल ने अपने कन्नड़ भाषा के कोश की प्रस्तावना (पृष्ठ ३४) में पिट, पिटक, पेट, पेटा, पेटी, पेटक, पेटाक, पेटिका आदि शब्दों को संस्कृत में द्रविड़ भाषाओं से आया हुआ माना है। प्रो० बरो ने भी अपनी पुस्तक 'संस्कृत लैंग्वेज' (पृष्ठ ३८४) में 'पिटक' शब्द के द्रविड़ भाषाओं से आने का उल्लेख किया है और द्रविड़ भाषाओं में इससे मिलते-जुलते पाये जाने वाले शब्द दिये हैं।

यह उल्लेखनीय है कि कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'थैले' के वाचक शब्दों का 'पेट' अर्थ विकसित हुआ है। आयरिश भाषा में bolg शब्द के अर्थ 'थैला' और 'पेट' दोनों हैं। अवेस्तन भाषा में 'पेट' के लिये पाये जाने वाले maršū शब्द का भी मूल अर्थ सम्भवतः 'थैला' ही था।[2]

भाजन

हिन्दी में 'भाजन' पुं० शब्द अधिकतर 'कुछ पाने या लेने के योग्य' अर्थ में प्रचलित है (जैसे स्नेहभाजन, श्रद्धाभाजन आदि में)। 'भाजन' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[3] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'भाजन' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ 'बरतन' है, जैसे[4]—पुष्पभाजनम्-'फूलों का बरतन' (शाकु० अङ्क ४)।

संस्कृत में 'भाजन' शब्द का 'कुछ पाने या लेने के योग्य' अर्थ 'पात्र' शब्द के समान ही इसके मौलिक अर्थ 'बरतन' से भाव-सादृश्य के आधार पर

---

१. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।

२. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (४.४६), पृष्ठ २५३–५४.

३. भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। कादम्बरी १०८.

४. सोऽहं सपर्याविधिभाजनेन। रघु० ५.२२.

आलङ्कारिक रूप में प्रयोग के कारण विकसित हुआ है। हिन्दी में 'भाजन' शब्द का प्रयोग 'कुछ पाने अथवा लेने के योग्य' अर्थ में ही किया जाता है, 'बरतन' अर्थ में नहीं किया जाता।

रश्मि

हिन्दी में 'रश्मि' स्त्री०[1] शब्द 'किरण' अर्थ में प्रचलित है। 'रश्मि' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'रश्मि' पुं० शब्द का मूल अर्थ है 'रस्सी'। प्राचीन काल में रथ आदि में घोड़ों को जोतने के लिये प्रायः रस्सियाँ अथवा रस्से ही लगाम के रूप में प्रयोग में लाये जाते थे, अतः 'रस्सी' का वाचक 'रश्मि' शब्द 'लगाम' को भी लक्षित करने लगा। ऋग्वेद में 'रश्मि' शब्द का प्रयोग सामान्य रूप में 'रस्सी'[2] और 'लगाम'[3] दोनों अर्थों में पाया जाता है। इनके अतिरिक्त कोड़ा, नापने की रस्सी,[4] (आलङ्कारिक रूप में) अङ्गुलि आदि अर्थ भी मिलते हैं। लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'रस्सी'[5], 'लगाम'[6] आदि अर्थों में 'रश्मि' शब्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है।

'रश्मि' शब्द के 'किरण' अर्थ का विकास इसके 'लगाम' अर्थ से हुआ है। भारतीय आर्य-धर्म में अत्यन्त प्राचीन काल से सूर्य के रथ की कल्पना की की गई है, जिसमें सात घोड़े जुड़े हुये माने जाते हैं।[7] ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में सूर्य की किरणों को उसके घोड़ों की लगामों के रूप में मानकर भाव-सादृश्य से 'रश्मि' कहा गया होगा। बाद में 'रश्मि' शब्द 'किरण' के

---

१. यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी में 'रश्मि' शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, जबकि संस्कृत में यह पुं० शब्द है।

२. ऋग्वेद १.२८.४, ४.२२.८, ८.२५.१८ आदि।

३. सप्तरश्मिर्वृषभः—'सात लगामों वाला साँड' (ऋग्वेद २.१२.१२), यतरश्मयः (५.६२.४), ८.७.८, १०.१३०.७ आदि।

४. ऋग्वेद ८.२५.१८.

५. अपतद्देवराजस्य मुक्तरश्मिरिव ध्वजः (रामायण ४.१७.२)।

६. मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकायाः—'लगामों के ढीली छोड़ देने पर अत्यधिक चौड़े शरीर के अगले भाग वाले' (शाकु० १.८); रश्मिसंयमनात्—'लगामों के खींच लेने के कारण' (शाकु० अङ्क १); किरात० ७.१९ आदि।

७. मिलाइये, ऋग्वेद १.५०.८, १.५०.९, ५.४५.९ आदि।

लिये सामान्य रूप में प्रचलित हो गया। 'रश्मि' शब्द का 'किरण' अर्थ ऋग्वेद[1] में ही विकसित पाया जाता है। इसके बाद के वैदिक[2] एवं लौकिक[3] संस्कृत साहित्य में इसका 'किरण' अर्थ में प्रचुर प्रयोग हुआ है और धीरे-धीरे यह अर्थ ही प्रमुखता को प्राप्त करता चला गया है, यद्यपि बहुधा 'रस्सी', 'लगाम' आदि अर्थों में भी लौकिक संस्कृत साहित्य में 'रश्मि' शब्द का प्रयोग होता रहा है। हिन्दी में 'रश्मि' शब्द का केवल 'किरण' अर्थ ही प्रचलित रह गया है, अन्य अर्थ लुप्त हो गये हैं।

संस्कृत में 'रश्मि' पुं० शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न प्रकार से की जाती है। मोनियर विलियम्स आदि आधुनिक आलोचक विद्वानों का मत है कि यह शब्द संस्कृत में लुप्त हुई √रश् 'बाँधना' धातु से बना है, जोकि 'रशना' और 'राशि' शब्दों में भी दिखाई पड़ती है। इसका भारत-यूरोपीय रूप *rek̂, reĝ 'बाँधना' माना जाता है। 'पालों के डण्डों को कसकर बाँधने का चमड़े का पट्टा' अर्थ में उपलब्ध ऐंग्लो सैक्शन भाषा का rakka शब्द इसी का सजातीय है। यास्क[4] ने 'रश्मि' शब्द की व्युत्पत्ति √यम् धातु से मानी है, अर्थात् 'जो नियन्त्रित रखता है।' आप्टे के कोश में 'रश्मि' शब्द की व्युत्पत्ति √अश् 'व्याप्त करना' धातु से मानी गई है (अश्नुते व्याप्नोतीति; अश् + मि धातो रशादेशश्च)। यह व्युत्पत्ति स्पष्टतः 'किरण' अर्थ को दृष्टि में रखकर कल्पित की गई है, अतः अविश्वसनीय है। वस्तुतः 'रश्मि' शब्द की व्युत्पत्ति √रश् 'बाँधना' धातु से ही मानना उचित प्रतीत होता है।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'रश्मि' शब्द के समान ही 'अभीशु' और 'प्रग्रह' शब्दों का भी 'किरण' अर्थ इनके 'लगाम' अर्थ से ही विकसित हुआ है।[5]

---

१. १.३५.७, ४.५२.७, ७.३६.१ आदि।

२. अथर्व० २.३२.१, १२.१.१५; तैत्तिरीयब्राह्मण ३.१.१.१; शतपथ-ब्राह्मण ९.२.३.१४ आदि।

३. ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः (शाकु० ७.६); नैषध० २२.५६ आदि।

४. निरुक्त २.१५.

५. 'अभीशु' शब्द ऋग्वेद एवं बाद के वैदिक साहित्य में 'लगाम' अर्थ में मिलता है। किन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य में इसके 'लगाम' और 'किरण'

सूत्र

हिन्दी में 'सूत्र' पुं० शब्द 'धागा, डोरा', 'थोड़े शब्दों में कहा हुआ वह पद या वचन जिसमें बहुत और गूढ़ अर्थ हों', 'सुराग' (clue; जैसे—इस घटना का 'सूत्र' मिल गया है), 'स्रोत' (source; जैसे—विश्वस्त 'सूत्र' से ज्ञात हुआ है) आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में 'सूत्र' शब्द के पहिले दो अर्थ तो पाये जाते हैं, किन्तु अन्तिम दो अर्थात् 'सुराग' और 'स्रोत' अर्थ नहीं पाये जाते। अन्तिम (दो) अर्थों का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

संस्कृत में 'सूत्र'[1] नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'धागा, डोरा'। वैदिक[2] साहित्य एवं लौकिक[3] संस्कृत साहित्य में 'सूत्र' शब्द का 'धागा, डोरा' अर्थ में प्रचुर प्रयोग मिलता है। संस्कृत में 'सूत्र' शब्द के 'धागा अथवा डोरा' अर्थ से ही 'तन्तु'[4], 'यज्ञोपवीत'[5], 'संक्षिप्त रूप में बनाया हुआ नियम या सिद्धान्त', 'थोड़े अक्षरों या शब्दों में कहा हुआ ऐसा पद या वचन जो बहुत अर्थ प्रकट करता हो'[6] आदि अर्थों का विकास हुआ हैं।

किसी 'संक्षिप्त पद या वचन' को 'सूत्र' इस भाव-सादृश्य से कहा गया होगा कि जैसे कोई डोरा (सूत्र) अपने में पिरोई गई सभी वस्तुओं (माला आदि के दानों) को सम्भाले रहता है, उनमें ओत-प्रोत रहता है, उसी प्रकार

दोनों अर्थ पाये जाते हैं। इससे (सम्भवतः अशुद्ध रूप में प्रचलन के कारण) विकसित 'अभीषु' शब्द भी इन दोनों अर्थों में मिलता है। 'प्रग्रह' शब्द 'लगाम' अर्थ में सर्वप्रथम सम्भवतः कठोपनिषद् में प्रयुक्त हुआ है। लौकिक संस्कृत साहित्य में इसके भी 'लगाम' और 'किरण' दोनों अर्थ पाये जाते हैं।

१. 'सूत्र' शब्द √ सीव् 'सीना' धातु से निष्पन्न माना जाता है। इससे ही सम्बद्ध लिथुआनियन भाषा में siūti 'सीना' धातु से निष्पन्न siulas शब्द 'धागा, डोरा' अर्थ में मिलता है। सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ ४१४.

२. अथर्व० ३.९.३, १८.८.३७; शतपथ० ३.२.४.१४, ७.३.२.१३; छान्दोग्योपनिषद् ६.८.२ आदि।

३. मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः। रघु० १.४.

४. सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रसूत्रं मृणालादिव राजहंसी। विक्रम० १.१८.

५. शिखासूत्रवान् ब्राह्मणः। तर्ककौमुदी।

६. जैसे—अष्टाध्यायी के (व्याकरण-सम्बन्धी) सूत्र।

वह पद भी उससे सम्बद्ध बहुत से भावों को अपने अन्दर सन्निहित रखता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक ऐसा काल भी आता है, जिसमें अधिकतर ग्रन्थ सूत्र-शैली में लिखे गये। बाद में सूत्रों के संग्रह-ग्रन्थों को भी 'सूत्र' नाम से ही कहा गया, जैसे—आपस्तम्बसूत्र, बौधायनसूत्र आदि। संस्कृत साहित्य में कर्मकाण्ड, दर्शनशास्त्र और व्याकरण-विषयक सूत्रग्रन्थ पाये जाते हैं।

'सूत्र' शब्द का 'सुराग, पता' अर्थ इस शब्द के 'डोरे' अथवा 'धागे' अर्थ से ही विकसित हुआ है। जैसे किसी धागे के उलझे हुये होने पर उसका कोई किनारा मिल जाने पर वह सारा धागा सुलझ जाता है, उसी प्रकार किसी बहुत बड़ी बात, घटना, रहस्य आदि के विषय में, किसी ऐसी बात का पता लग जाने को, जिससे कि धीरे-धीरे उस सम्पूर्ण बात, घटना, रहस्य आदि का पता लगाया जा सके, आलङ्कारिक रूप में उसका 'सूत्र' मिल जाना कहा गया होगा। 'सूत्र' शब्द का 'स्रोत' (source) अर्थ इस शब्द के 'सुराग, पता' अर्थ से ही विकसित हुआ प्रतीत होता है। सम्भवत: 'सुराग' के सादृश्य पर ही किसी सूचना या समाचार मिलने के स्थान अथवा स्रोत को भी 'सूत्र' कहा जाने लगा होगा। यह उल्लेखनीय है कि 'सूत्र' शब्द का 'सुराग' (clue) अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है।[1]

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

अध्याय ४

शारीरिक अवस्था का सादृश्य

जो शब्द रोग, कष्ट, पीड़ा, थकान आदि की किसी शारीरिक अवस्था को लक्षित करते हैं, बहुधा कालान्तर में भाव-सादृश्य से किसी मानसिक अवस्था अथवा भाव को भी लक्षित करने लगते हैं। हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में भी कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनमें अर्थ-विकास की यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

आतङ्क

हिन्दी में 'आतङ्क' पुं० शब्द 'रौब, दबदबा' तथा 'भय' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'आतङ्क' शब्द का 'भय'[1] अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे—पुरुपायुपजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः—'पुरुप की आयु (सौ वर्ष) तक जीने वाली, निर्भय और ईतिरहित' (रघु० १.६३)।

किन्तु संस्कृत में 'आतङ्क' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'रोग', 'शारीरिक बीमारी'[2], जैसे—

दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणं गामथापि वा ।
दृष्ट्वा पथि निरातङ्कं कृत्वा तु ब्रह्महा शुचिः ।। याज्ञ० ३.२४५ ||

संस्कृत में 'आतङ्क' शब्द के 'शारीरिक बीमारी' अर्थ से भाव-सादृश्य के कारण 'मानसिक पीड़ा' अथवा 'सन्ताप' अर्थ विकसित हुआ। संस्कृत में 'मानसिक पीड़ा' अथवा 'सन्ताप' अर्थ में 'आतङ्क' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—किं नु खलु तस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्—'कौन जाने उसका यह सन्ताप उन्हीं के कारण हो' (शाकु० अङ्क ३)। भय, आपत्ति या अनिष्ट की आशङ्का से मन में उत्पन्न होने वाला विकार या भाव होता है, अतः वह भी 'मानसिक पीड़ा' के अन्तर्गत आ जाता है। भय के भाव का

---

१. दत्तातङ्कोऽङ्गनानाम्। रत्नावली २.२.

२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

'मानसिक पीड़ा' के भाव के साथ सम्बन्ध होने के कारण कालान्तर में उसे 'मानसिक पीड़ा' के वाचक 'आतङ्क' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। 'भय अथवा त्रास' अर्थ से ही 'रौब अथवा दबदबा' अर्थ विकसित हुआ, क्योंकि भय के कारण ही रौब अथवा दबदबा उत्पन्न होता है। जिस व्यक्ति का किसी को भय होता है, उसका रौब अथवा दबदबा होता ही है। यदि यह कहा जाय कि 'अमुक राजा की दमनकारी नीति से लोगों में बड़ा आतङ्क फैला हुआ है' तो इस वाक्य में 'आतङ्क' शब्द के भय अथवा त्रास अर्थ में प्रयुक्त रहने पर भी 'रौब अथवा दबदबा' होने का भाव भी ध्वनित होता है।

आतुर

हिन्दी में 'आतुर' वि० शब्द 'व्याकुल', 'उतावला, उत्सुक' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'आतुर' शब्द का 'उतावला, उत्सुक' अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[1] किन्तु संस्कृत में 'आतुर' वि० शब्द का मौलिक अर्थ है 'रोगी', 'शारीरिक रोग से पीडित'। ऋग्वेद में भी 'आतुर' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में पाया जाता है, जैसे—ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम— 'हे अश्विनौ, उन्हीं रक्षणों के साथ बहुत ही शीघ्र हमारे पास आओ और रोगी की चिकित्सा करो' (ऋग्वेद ८.२२.१०)।

'आतुर' शब्द के 'शारीरिक दृष्टि से रोगी' अर्थ से भाव-सादृश्य के आधार पर 'मन में व्यथित' अर्थ भी विकसित हुआ। बाद में 'आतुर' शब्द 'पीड़ित' अर्थ में सामान्य रूप में प्रचलित हो गया; 'शारीरिक पीड़ा से युक्त' अथवा 'मानसिक पीड़ा से युक्त' अथवा दोनों प्रकार की पीड़ाओं से युक्त को 'आतुर' कहा जाने लगा। मदनातुर[3], कामातुर, भयातुर, व्याध्यातुर आदि शब्दों में 'आतुर' शब्द का प्रयोग 'पीड़ित' अर्थ में सामान्य रूप में ही है।

'मानसिक व्यथा अथवा पीड़ा' के अन्तर्गत व्याकुलता, बेचैनी अथवा अधीरता आदि के भाव भी आ जाते हैं, क्योंकि ये सब चिन्ता, भय, आशङ्का, उत्सुकता आदि से उत्पन्न मानसिक विकार होते हैं। इस कारण भाव-साहचर्य से

---

१. अत्यन्तातुर इव कार्यसिद्धिं प्रार्थ्यमानो मे रोचसे। मालविका० अङ्क २.

२. आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः। मनु० ४.१८४.

३. रावणावरजा तत्र राघवं मदनातुरा। रघु० १२.३२.

'आतुर' शब्द के व्याकुल, बेचैन, अधीर आदि अर्थ भी विकसित हो गये।

हिन्दी में 'आतुर' शब्द व्याकुल, बेचैन, उतावला आदि अर्थों में ही प्रचलित है। 'पीड़ित' तथा 'रोगी' आदि अर्थ लुप्त हो गये हैं। यह उल्लेखनीय है कि बंगला भाषा में 'आतुर शब्द का 'रोगी' अर्थ आजकल भी प्रचलित है।[१]

क्लिष्ट

हिन्दी में 'क्लिष्ट' वि० शब्द का अर्थ है—'जिसका अर्थ कठिनता से निकले', 'कठिन'। 'क्लिष्ट' शब्द का 'जिसका अर्थ कठिनता से निकले' अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु 'कठिन' अथवा 'मुश्किल' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। हिन्दी में 'क्लिष्ट' शब्द का 'कठिन' अथवा 'मुश्किल' अर्थ इस शब्द के 'जिसका अर्थ कठिनता से निकले' अर्थ से ही विकसित हुआ है, क्योंकि जिसका अर्थ कठिनता से निकलता है, वह 'कठिन' अथवा 'मुश्किल' होता ही है।

संस्कृत में 'क्लिष्ट' (क्लिश्+क्त) वि० शब्द का मौलिक अर्थ है—'पीड़ित, कष्ट में पड़ा हुआ'। इस शब्द के 'पीड़ित'[२] अर्थ से ही संस्कृत में 'सन्तप्त', 'म्लान'[३], 'धुंधला'[४], 'तितर-बितर'[५] (अव्यवस्थित), 'आहत'[६], 'असङ्गत'[७], 'वह जिसका अर्थ कठिनता से निकले' आदि अर्थों का विकास हुआ है। साहित्य-शास्त्र के ग्रन्थों में 'क्लिष्ट' शब्द का प्रयोग 'जिसका अर्थ कठिनता से निकले' अर्थ में पाया जाता है। 'क्लिष्टपदत्व' काव्य का एक दोष माना गया है। मम्मट ने काव्यप्रकाश (७.१४) में 'क्लिष्ट-पद' की परिभाषा इस प्रकार की है:—क्लिष्टं यतोऽर्थप्रतिपत्तिर्व्यवहिता—'क्लिष्ट

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

२. अङ्गमनङ्गक्लिष्टं सुखयेदन्या न मे करस्पृशात्। विक्रम० ३.१६.

३. इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति (शाकु० ५.१९); क्लिष्टकान्तेः (मेघ० २.२४)।

४. हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषीव मुखानि वः। कुमार० २. १९.

५. अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेशरम्। शाकु० ७.१४.

६. अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयम्। शाकु० ६.१९.

७. जैसे—'माता मे वन्ध्या' इस वाक्य को 'क्लिष्ट' अर्थात् असङ्गत माना जाता है।

पद वह है जिसकी अर्थ-प्रतिपत्ति व्यवहित हो (रुकी हुई हो, विलम्ब से हो)'। मम्मट ने 'क्लिष्टपदत्व' का उदाहरण दिया है :—

अत्रिलोचनसम्भूतज्योतिरुद्गमभासिभिः ।
सदृशं शोभतेऽत्यर्थं भूपाल तव चेष्टितम् ॥

यहां 'अत्रिलोचनसम्भूतज्योतिरुद्गमभासिभिः' (अत्रि मुनि के लोचन से उद्भूत ज्योति अर्थात् चन्द्रमा के उदय से विकसित होने वाले अर्थात् कुमुदों) इस समस्त पद से जो 'कुमुद' अर्थ निकलता है, वह विलम्ब से निकलता है। अतः यह पद 'क्लिष्ट' है।

यह स्पष्ट है कि 'क्लिष्ट' शब्द का यह अर्थ इसके 'पीड़ित' अथवा 'कष्ट में फँसा हुआ' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि 'जिसका अर्थ कष्ट (कठिनता) से निकले' उसे 'क्लिष्ट' कहा गया है। भाव-सादृश्य से ही 'जिसका अर्थ कठिनता से निकले', उसे 'क्लिष्ट' कहा जाने लगा है।

'क्लिष्ट' शब्द के इसी (अर्थात् 'जिसका अर्थ कठिनता से निकले') अर्थ से ही हिन्दी में 'कठिन' अथवा 'मुश्किल' अर्थ विकसित हो गया है। किसी भी ऐसे पाठ अथवा प्रश्न को जिसका समझना अथवा हल करना कठिन हो, 'क्लिष्ट' कह दिया जाता है। हिन्दी में 'क्लिष्ट' शब्द के पीड़ित, सन्तप्त, कष्ट में फँसा हुआ, म्लान, तितर-बितर, आहत, असङ्गत आदि अर्थ सर्वथा लुप्त हो गये हैं। 'जिसका अर्थ कठिनता से निकले' अर्थ तथा उससे विकसित हुये 'कठिन' अथवा 'मुश्किल' अर्थ में 'क्लिष्ट' शब्द का प्रयोग किया जाता है। मराठी[1] में भी 'क्लिष्ट' शब्द अधिकतर 'कठिन' अथवा 'कष्टकर' अर्थ में प्रचलित है। बंगला[2] में 'क्लिष्ट' शब्द के 'पीड़ित,' 'सताया हुआ', 'थका हुआ' आदि अर्थ प्रचलित हैं, 'कठिन' अथवा 'मुश्किल' अर्थ नहीं। तमिल[3] में 'किलिष्टम्' का अर्थ है—'दुर्बोधता, अबोध्यता' (unintelligibility).

क्लेश

हिन्दी में 'क्लेश' पुं० शब्द 'मानसिक कष्ट', 'झगड़ा, लड़ाई' आदि अर्थों में प्रचलित है। साहित्यिक हिन्दी में 'क्लेश' शब्द का प्रयोग 'मानसिक कष्ट'

---

१. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

३. तमिल लेक्सीकन।

अर्थ में ही किया जाता है, 'झगड़ा अथवा लड़ाई' अर्थ में 'क्लेश' शब्द का प्रयोग बोलचाल की भाषा (मुख्यत: ग्रामीण भाषा) में किया जाता है। 'क्लेश' शब्द का 'मानसिक कष्ट' अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'क्लेश' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'शारीरिक कष्ट अथवा पीड़ा'[१]। इसी अर्थ से 'खेद' शब्द के समान ही भाव-सादृश्य के आधार पर 'मानसिक कष्ट'[२] अथवा 'दु:ख' अर्थ का विकास हुआ है। संस्कृत में 'क्लेश' शब्द का प्रयोग सामान्य रूप में 'कष्ट' अथवा 'दु:ख' (जिसके अन्तर्गत शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कष्ट आ जाते हैं) अर्थ में भी पाया जाता है। वस्तुत: 'शारीरिक कष्ट' और 'मानसिक कष्ट' इन दोनों भावों को पृथक्-पृथक् करना बड़ा कठिन है, क्योंकि बहुधा इन दोनों भावों का साहचर्य रहता है (जैसे यदि एक व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से पीड़ित है, तो उसे मानसिक कष्ट होना भी स्वाभाविक है)। संस्कृत में 'क्लेश' शब्द का प्रयोग 'कठिनता' अर्थ में भी पाया जाता है,[३] जोकि स्पष्टत: 'कष्ट' अर्थ से ही विकसित हुआ है।

ग्रामीण बोलचाल की भाषा में 'क्लेश' शब्द का 'झगड़ा अथवा लड़ाई' अर्थ इस शब्द के 'मानसिक कष्ट' अर्थ से ही विकसित हुआ है। साधारणतया, ऐसे घरेलू झगड़ों को 'क्लेश' कहा जाता है, जिनमें घर से सदस्यों में परस्पर मनोमालिन्य उत्पन्न हो जाता है और मानसिक कष्ट होता है। इस प्रकार 'झगड़े' अथवा 'लड़ाई' के साथ 'मानसिक कष्ट' के भाव का साहचर्य होने के कारण 'मानसिक कष्ट' के वाचक 'क्लेश' शब्द का 'झगड़ा' अथवा 'लड़ाई' अर्थ विकसित हो गया है।

'क्लेश' शब्द के 'कष्ट', 'पीड़ा', 'दु:ख' आदि अर्थ मराठी[४], गुजराती[५], बंगला[६] और कन्नड़[७] भाषाओं में भी पाये जाते हैं। तमिल[८] में 'किलेचम्',

---

१. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते। कुमार० ५.८६.
२. क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्। भग० १२.५.
३. कथञ्चित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम्। रघु० १३.१३.
४. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।
५. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।
६. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।
७. एफ़० किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।
८. तमिल लेक्सीकन।

तेलुगु[1] में 'क्लेशमु' और मलयालम[2] में 'क्लेशम्' शब्द के भी ये ही अर्थ हैं।

खिन्न

हिन्दी में 'खिन्न' वि० शब्द 'मन में दुःखी, उदास' अर्थ में प्रचलित है। 'खिन्न' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'खिन्न' शब्द का मौलिक अर्थ 'पीड़ित, थका हुआ' है। 'खिन्न' शब्द √खिद् धातु में क्त प्रत्यय लगकर बना है। √खिद् धातु का मूल अर्थ 'दबाना, पीटना' माना जाता है[3]। इससे ही 'पीड़ित होना, थकना' अर्थ विकसित हुआ है। संस्कृत में 'खिन्न' शब्द का 'थका हुआ' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है[4]। शारीरिक दृष्टि से 'पीड़ित' अथवा 'थका हुआ' अर्थ से ही भाव-सादृश्य के आधार पर मानसिक क्षेत्र में 'मन में दुःखी[5], उदास' अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा। हिन्दी में बाद में विकसित हुआ यह अर्थ ही प्रचलित रह गया है।

खेद

हिन्दी में 'खेद' पुं० शब्द 'किसी उचित, आवश्यक या प्रिय बात के न होने पर मन में होने वाला दुःख, अफ़सोस' अर्थ में प्रचलित है, (जैसे—मुझे खेद है कि मैं आपका यह कार्य नहीं कर सका)।

संस्कृत में 'खेद' पुं० शब्द (जोकि √खिद् धातु में भावे घञ् प्रत्यय लगकर बना है) का मौलिक अर्थ है—'शारीरिक थकान[6], शारीरिक कष्ट'। 'शारीरिक थकान' अथवा 'शारीरिक कष्ट' अर्थ से भाव-सादृश्य के आधार पर मानसिक क्षेत्र में 'मानसिक कष्ट', 'शोक', 'दुःख' आदि अर्थों का विकास

---

१. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

२. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

३. मोनियर विलियम्स; लैटिन भाषा का caedere 'काटना, पीटना' शब्द सम्भवतः √खिद् धातु से ही सम्बद्ध है।

४. खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य—'थक-थककर पर्वतों की चोटियों पर पग रखकर अर्थात् ठहरकर' (मेघ० १३); मेघ० ४०; शिशु० ६.११ आदि।

५. गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु (वेणी० १.११)।

६. तरङ्गवातेन विनीतखेदः—'लहरों की वायु से थकावटरहित होकर' (रघु० १३.३५); अध्वखेदं नयेथाः—'मार्ग की थकावट को दूर कर लेना' (मेघ० ३२); अध्वसञ्जातखेदात्—'मार्ग में चलने से उत्पन्न थकावट से' (उत्तर० १.२४)।

हुआ।[1] संस्कृत में 'खेद' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'शारीरिक कष्ट, शारीरिक थकान' अर्थ में ही पाया जाता है, 'मानसिक कष्ट', 'शोक', 'दुःख' आदि अर्थों में अपेक्षाकृत कम प्रयोग पाया जाता है।

संस्कृत में 'खेद' शब्द का प्रयोग 'कष्ट' अथवा 'पीड़ा' अर्थ में सामान्य रूप में भी पाया जाता है[2], जिसके अन्तर्गत शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कष्ट आ जाते हैं। संस्कृत में 'खेद' शब्द का एक अर्थ 'कामवासना' भी पाया जाता है। इस अर्थ में 'खेद' शब्द का प्रयोग पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में किया है।[3] 'कामवासना' को 'खेद' सम्भवतः इस भाव-साहचर्य से कहा गया होगा, क्योंकि 'कामवासना' में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उत्तेजना होती है। मानसिक या शारीरिक कष्ट में भी एक प्रकार की उत्तेजना होती है।

हिन्दी में 'खेद' शब्द के 'शारीरिक थकान', 'शारीरिक कष्ट', 'कष्ट अथवा पीड़ा' (सामान्य रूप में), 'कामवासना' आदि अर्थ सर्वथा लुप्त हो गये हैं। 'मानसिक कष्ट अथवा दुःख' का थोड़ा हल्का भाव आधुनिक 'अफ़सोस' अर्थ में विद्यमान है।

'खेद' शब्द का 'शोक या दुःख' अर्थ मराठी[4], गुजराती[5], बंगला[6], कन्नड़[7] भाषाओं में भी पाया जाता है। मलयालम[8] में 'खेदम्', तेलुगु[9] में 'खेदमु' और

---

१. खेदं त्यक्त्वा पुनः सर्वं वनमेव विचिन्वताम्—'शोक को छोड़कर पुनः इस सारे वन को ही भलीभाँति खोजा जाये' (रामायण ४.४६.७)।

२. इहार्थमेके प्रविशन्ति खेदं स्वगार्थमन्ये श्रममाप्नुवन्ति—'कोई इस लोक के लिये कष्ट करते हैं, कोई स्वर्ग के लिये श्रम करते हैं' (बुद्ध० ७.२४)।

३. तथा खेदात्स्त्रीषु प्रवृत्तिर्भवति समानश्च खेदविगमो गम्यायां चागम्यायां च। महाभाष्य-भूमिका (वार्त्तिक १)।

४. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

५. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

६. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

७. एफ़० किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।

८. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

९. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

तमिल[१] में 'केतम्' शब्द का भी यही अर्थ है। तमिल में अन्त्येष्टि-कर्मों (funeral rites) को 'केत कारियम्' (खेद-कार्य) कहा जाता है।[२]

यह उल्लेखनीय है कि शारीरिक कष्ट अथवा पीड़ा के वाचक शब्दों से मानसिक कष्ट अथवा दुःख को लक्षित किये जाने की प्रवृत्ति अन्य भाषाओं में भी पायी जाती है। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है कि grief और sorrow के वाचक शब्दों में कतिपय शब्द वे ही हैं, जोकि शारीरिक कष्ट अथवा पीड़ा (physical pain) के लिये पाये जाते हैं।[३] आधुनिक अंग्रेज़ी में pain शब्द अधिकतर 'शारीरिक पीड़ा' के लिये प्रयुक्त किया जाता है, जबकि फ्रेंच भाषा में इसका सजातीय peine शब्द (और इटैलियन में pena शब्द) अधिकतर 'मानसिक कष्ट अथवा दुःख' (grief, sorrow) अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।[४]

ग्लानि

हिन्दी में 'ग्लानि' स्त्री० शब्द अधिकतर 'अपनी दशा या दोष आदि देखकर मन में होने वाला खेद', 'पश्चात्ताप' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में 'ग्लानि' शब्द के ये अर्थ नहीं पाये जाते।

'ग्लानि' शब्द √ग्लै धातु से नि प्रत्यय लगकर बना है। √ग्लै धातु का प्रयोग संस्कृत में 'क्षीण होना,' 'म्लान होना', 'ह्रास होना', 'थक जाना' 'अरुचि करना' आदि अर्थों में पाया जाता है। णिजन्त √ग्लै धातु का प्रयोग भी 'मुरझा देना, म्लान करना',[५] 'क्षीण करना'[६] आदि अर्थों में पाया जाता है। इस प्रकार संस्कृत में 'ग्लानि' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ 'ह्रास' अथवा

---

१. तमिल लेक्सीकन।

२. वही।

३. Several of the words for 'grief, sorrow' are the same as those for physical 'pain, suffering.' Buck, C. D. : A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages (16.32 ; grief, sorrow), p. 1118.

४. वही (१६.३१ ; pain, suffering), पृष्ठ १११५.

५. ग्लयपति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः। शाकु० ३.१६.

६. व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्। कुमार० ५.२९.

'क्षीणता' है, जैसे[१]—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत—'हे अर्जुन, जब-जब धर्म का 'ह्रास' होता है' (भग० ४.७)।

'ग्लानि' शब्द के 'ह्रास' अथवा 'क्षीणता' अर्थ से 'थकावट' अर्थ विकसित हुआ। 'थकावट', शारीरिक क्षीणता ही होती है, अतः इस भाव-सादृश्य से 'थकावट' के लिये 'ग्लानि' शब्द का प्रयोग होने लगा। संस्कृत में 'ग्लानि' शब्द का 'थकावट' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में कितने ही स्थलों पर 'ग्लानि' शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है, जैसे[२]—

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः॥ मेघ० ३०.

"जहां शरीर के अङ्गों को सुहाने वाला शिप्रा का वायु सम्भोग के लिये चाटुकारिता करने वाले प्रियतम की भाँति स्त्रियों की सम्भोग-जनित थकावट को दूर करता है।"

संस्कृत में 'ग्लानि' शब्द के 'क्षीणता' अथवा 'ह्रास' अर्थ से भाव-सादृश्य के आधार पर मानसिक क्षेत्र में 'मानसिक शिथिलता' तथा 'अरुचि' आदि अर्थों का विकास हुआ। 'ग्लानि' शब्द का प्रयोग बहुधा 'मनस्' के साथ भी पाया जाता है, जैसे—मनश्च ग्लानिमृच्छति —'मन शिथिलता को प्राप्त होता है' (मनु० १.५३)।

'मानसिक शिथिलता' के साथ बहुधा अरुचि, घृणा, खेद, पश्चात्ताप आदि भावों का साहचर्य होता है, अतः 'ग्लानि' शब्द के ये अर्थ भी विकसित हो गये हैं। साहित्य-शास्त्र में 'ग्लानि' एक व्यभिचारी भाव माना गया है,[३] जोकि मनस्ताप आदि से उत्पन्न निष्प्राणता (निरुत्साहिता) आदि की कारण एक चित्तवृत्ति-विशेष होती है। हिन्दी में 'ग्लानि' शब्द 'अपनी दशा या दोष आदि देखकर मन में होने वाला खेद,' 'पश्चात्ताप', 'घृणा' आदि अर्थों में प्रचलित है। इन अर्थों का विकास इस शब्द के 'अरुचि' अर्थ से हुआ है, जोकि संस्कृत में भी पाया जाता है।

मराठी भाषा में 'ग्लानि' शब्द के 'शारीरिक थकावट', 'मानसिक

---

१. आत्मोदयः परग्लानिर्द्वयं नीतिरितीयती। शिशु० २.३०.
२. अङ्गग्लानिं सुरतजनिताम्। मेघ० ७२.
३. निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूया मदश्रमाः। काव्य० ४.३१.

शिथिलता', 'नम्र प्रार्थना' आदि अर्थ पाये जाते हैं।[1] बंगला में 'ग्लानि' शब्द के 'थकावट' और 'मानसिक शिथिलता' आदि अर्थों के अतिरिक्त 'मिथ्या अभियोग लगाना,' 'मिथ्या दोषारोपण,' 'अपयश (मानहानि) करना' (slander) आदि अर्थ भी पाये जाते हैं, जैसे—ग्लानि करा=मिथ्या दोषारोपण करना, मानहानि करना (falsely accuse, slander)।[2]

विषण्ण

हिन्दी में 'विषण्ण' वि० शब्द का अर्थ है—'खिन्न, दुःखी, उदास'। 'विषण्ण' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'विषण्ण' शब्द के वि उपसर्गपूर्वक √सद् 'बैठना' धातु में क्त प्रत्यय लगकर बने होने के कारण इसका मूल अर्थ है—'अलग बैठा हुआ' (वि=अलग; सद्=बैठना)। खिन्न होने अथवा दुःखी होने के भाव का अलग बैठने के भाव के साथ भी कुछ सम्बन्ध है, क्योंकि खिन्न अथवा दुःखी होने पर मनुष्य प्रायः अलग बैठ जाता है, अपनी अवस्था के विषय में सोचता रहता है, उसे कुछ नहीं सुहाता। अतः प्रारम्भ में इस प्रकार के भाव-सम्बन्ध के कारण ही 'खिन्न अथवा दुःखी' को आलङ्कारिक रूप में 'विषण्ण' कहा गया होगा।

स्वास्थ्य

जिस प्रकार एक ही शब्द भाव-सादृश्य से शारीरिक कष्ट, पीड़ा आदि एवं मानसिक सन्ताप, दुःख आदि दोनों प्रकार के भावों को लक्षित करने लगता है, उसी प्रकार कोई शब्द बहुधा शारीरिक सुख, मानसिक सुख, सन्तोष आदि के भावों को भी लक्षित करने लगता है।

हिन्दी में 'स्वास्थ्य' पुं० शब्द अधिकतर 'शारीरिक दशा' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—आजकल आपका स्वास्थ्य कैसा है?)। 'स्वास्थ्य' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में 'स्वास्थ्य' नपुं० शब्द का मूल अर्थ है 'स्वस्थ होने का भाव'। 'स्वस्थ' (स्व+स्थ) वि० शब्द का वास्तविक अर्थ है—'अपने में स्थित', 'अपनी स्वाभाविक दशा में'। 'स्वस्थ' शब्द के इसी अर्थ से 'सुखी' अर्थ विकसित हुआ और शारीरिक दृष्टि से सुखी (अर्थात् नीरोग) तथा मन में सुखी (अर्थात् सन्तुष्ट) दोनों को भाव-सादृश्य से 'स्वस्थ' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। इस प्रकार संस्कृत में 'स्वस्थ'

---

१. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

शब्द का प्रयोग 'सुखी',[१] 'जिसका चित्त ठिकाने हो', 'सन्तुष्ट', 'नीरोग' आदि अर्थों में पाया जाता है। तदनुसार 'स्वास्थ्य' शब्द का प्रयोग संस्कृत में 'शारीरिक दशा', 'शारीरिक आरोग्यता' आदि अर्थों के अतिरिक्त 'सुख', 'सन्तोष' आदि अर्थों में भी पाया जाता है, जैसे—शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्—'शकुन्तला को पति के घर भेजकर अब मुझे सन्तोष हुआ है' (शाकु० अङ्क ४)।

यह उल्लेखनीय है कि 'शारीरिक दशा', 'स्वस्थता' (health) अर्थ में 'स्वास्थ्य' (=स्वास्थ्य) शब्द बंगला, असमिया और उड़िया भाषाओं में भी पाया जाता है।[२]

---

१. मनांसि शङ्के कठिनानि नृणां स्वस्थास्तथा ह्यध्वनि वर्तमानाः।

बुद्ध० ३.६१.

२. व्यवहारकोश।

अध्याय ५

भौतिक पदार्थों के गुणों अथवा विशेषताओं का सादृश्य

जो शब्द किन्हीं भौतिक पदार्थों के गुणों अथवा विशेषताओं को लक्षित करते हैं, बहुधा कालान्तर में भाव-सादृश्य से अन्य विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म भावों को भी लक्षित करने लगते हैं। हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों में ऐसे शब्द काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं।

(अ) स्पर्श-सम्बन्धी विशेषता का सादृश्य

कठिन

हिन्दी में 'कठिन' वि० शब्द 'दुष्कर' अथवा 'मुश्किल' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'कठिन' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। यद्यपि मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत भाषा के कोश में यह (difficult) अर्थ दिया है और इस अर्थ में प्रयोग के विषय में मेघदूत, सुश्रुत और पञ्चतन्त्र आदि का निर्देश दिया है, तथापि संस्कृत में 'कठिन' शब्द का यह अर्थ सन्दिग्ध प्रतीत होता है, क्योंकि न तो संस्कृत के अन्य (आप्टे आदि के) कोशों में यह अर्थ दिया है और न 'कठिन' शब्द के इस अर्थ में प्रयोग का कोई उदाहरण हमारे देखने में आया है। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में 'difficult' के लिये संस्कृत भाषा का 'दुष्कर' शब्द दिया है, 'कठिन' नहीं।[१] इससे भी संस्कृत में 'कठिन' शब्द के 'दुष्कर' अर्थ में प्रयोग के विषय में सन्देह की पुष्टि होती है।

संस्कृत में 'कठिन' वि० शब्द का मौलिक अर्थ है 'सख्त, कड़ा', जैसे[२]—
तप: शरीरै: कठिनैरुपार्जितम् (कुमार० ४.२९)।

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (९.९७; difficult), पृष्ठ १५०.

२. कठिनविषमामेकवेणीं सारयन्तीम्। मेघ० ९२.

भौतिक स्थूल वस्तुएं ही सख्त होती हैं। संस्कृत में 'शर्करा' और 'खड़िया' के लिये 'कठिना' शब्द का (और 'खड़िया' के लिये 'कठिनी' शब्द का भी) प्रयोग पाया जाता है। 'शर्करा' और 'खड़िया' आदि के सख्त होने के कारण ही उनको 'कठिना' अथवा 'कठिनी' कहा गया।

संस्कृत में 'कठिन' शब्द का प्रयोग 'निष्ठुर'[1] और 'उग्र'[2] आदि अर्थों में भी पाया जाता है। 'कठिन' शब्द के इन अर्थों का विकास इस शब्द के 'सख्त' अर्थ ही से हुआ है। भौतिक स्थूल पदार्थों के सख्त होने के भाव-सादृश्य से हृदय के सख्त होने तथा पीड़ा आदि के उग्र होने को भी 'कठिन' कहा गया।

'कठिन' शब्द का 'दुष्कर' अथवा 'दुस्साध्य' अर्थ भी 'सख्त' होने के भाव-सादृश्य से आलङ्कारिक रूप में प्रयोग के कारण विकसित हुआ है। 'कठिन' शब्द का 'दुष्कर' अर्थ बंगला[3], गुजराती[4] और कन्नड़[5] भाषाओं में भी पाया जाता है। मलयालम[6] में 'कठिनम्' और तमिल[7] में 'कठिण' का भी यह अर्थ मिलता है। गैलेट्टी ने अपने तेलुगु भाषा के कोश में 'कठिनमु' शब्द का अर्थ 'सख्त' और 'निष्ठुर' दिया है। 'दुष्कर' अर्थ में 'कठिन' से विकसित हुये कुछ शब्द अन्य आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में भी पाये जाते हैं; जैसे—पञ्जाबी 'कठण'; मराठी 'कठिण'; बंगला 'कठिण'।[8]

'कठिन' शब्द को द्रविड़ भाषाओं से आया हुआ माना जाता है। प्रो० टी० बरो ने अपनी पुस्तक संस्कृत लैंग्वेज (पृष्ठ ३८०) में 'कठिन' शब्द को द्रविड़ भाषाओं से आया हुआ ही माना है। (मिलाइये, तमिल कट्टि 'कोई

---

१. कठिनाः खलु स्त्रियः (कुमार० ४.५); विमृज कठिने मानमधुना (अमरु० ६)।

२. नितान्तकठिनां रुजं मम न वेद सा मानसीम्—'वह मेरी इस अत्यन्त उग्र मानसिक पीड़ा को नहीं जानती है' (विक्रम० २.११)।

३. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

४. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

५. किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।

६. गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

७. तमिल् लेक्सीकन।

८. व्यवहारकोश।

सख्त वस्तु'; कन्नड़ कडुगु 'सख्त होना', गट्टि 'कड़ापन'; तूलू गट्टि 'सख्त'; तेलुगु कट्टीडि 'कठोरहृदय', गट्टि 'सख्त')। किटेल ने भी अपने कन्नड़ भाषा के कोश की प्रस्तावना (पृष्ठ ३६) में 'कठिन' शब्द को संस्कृत में द्रविड़ भाषाओं से आया हुआ माना है।

'कठिन' शब्द के समान ही 'सख्त, कड़ा' के वाचक कुछ अन्य संस्कृत शब्दों के भी विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है।

कठोर वि० शब्द हिन्दी में 'सख्त, कड़ा' अर्थ में भी प्रचलित है और कर्कश, निष्ठुर आदि अर्थों में भी प्रचलित है। यह शब्द मूलतः 'सख्त, कड़ा'[१] का वाचक था, जिससे संस्कृत भाषा में भी इसके 'निष्ठुर',[२] 'तीक्ष्ण'[३] (पैना), 'पूर्ण',[४] 'पूर्णविकसित'[५] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

कर्कश वि० शब्द हिन्दी में 'कठोर', 'तीव्र', 'निर्दय', 'उग्र' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में इसका भी मूल अर्थ 'सख्त, कड़ा'[६] था, जिससे 'कठोर', 'निष्ठुर',[७] 'उग्र', 'अत्यधिक',[८] 'अत्यासक्त'[९] आदि विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है।

दारुण

हिन्दी में 'दारुण' वि० शब्द 'कठोर', 'निर्दय', 'भयङ्कर', 'तीव्र, उग्र आदि अर्थों में प्रचलित है। 'दारुण' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते

१. कठोरास्थिग्रन्थि··· । मालती० ५.३४.

२. अयि कठोर यशः किल ते प्रियम् (उत्तर० ३.२७); इसी प्रकार 'कठोरहृदय', 'कठोरचित्त' आदि में।

३. कठोराङ्कुश । शान्तिशतक १.२२.

४. कठोरगर्भां जानकीं विमुच्य । उत्तर० अङ्क १.

५. कलाकलापालोचनकठोरमतिभिः । कादम्बरी ७.

६. सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलौ । रघु० ३.५५.

७. तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः । रामायण ३.५३.६.

८. तस्य कर्कशविहारसम्भवम् । रघु० ८.६८.

९. नानागन्धर्वमिथुनैः पानसंसर्गकर्कशैः । रामायण ४.६७.४५.

हैं। किन्तु संस्कृत में 'दारुण'[१] शब्द का मूल अर्थ था—'कड़ा, सख्त'। इसी से ही संस्कृत में भाव-सादृश्य के आधार पर आलङ्कारिक रूप में प्रयोग के कारण कठोर,[२] निर्दय,[३] भयङ्कर[४], तीव्र[५], उग्र आदि अर्थ विकसित हुये हैं।

निष्ठुर

हिन्दी में 'निष्ठुर' वि० शब्द अधिकतर 'निर्दय' अर्थ में प्रचलित है। 'निष्ठुर' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'निष्ठुर' शब्द का मूल अर्थ था 'सख्त, कड़ा'। इसी अर्थ से संस्कृत में 'निष्ठुर' शब्द के 'तीक्ष्ण'[६], 'निर्दय'[७] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। 'निर्दय, क्रूर' अर्थ में 'निष्ठुर' शब्द बंगला, असमिया और उड़िया भाषाओं में भी पाया जाता है।

'सख्त, कड़ा' अर्थ वाले शब्दों से 'निष्ठुर', 'दुष्कर' आदि अर्थों का विकास अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है। बक[८] ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय

---

१. इससे सम्बद्ध शब्द कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'कड़ा, सख्त' अर्थ में पाये जाते हैं, जैसे—लैटिन में dūrus, इटैलियन में duro, फ्रेंच में dur, स्पैनिश में duro शब्द 'कड़ा, सख्त' के ही वाचक हैं। कुछ सम्बद्ध शब्द भिन्न अर्थ में भी मिलते हैं, जैसे—आयरिश में dūr, वेल्श में dur, ब्रेटन में dir शब्द 'इस्पात' अर्थ में, लिथुआनियन में drūtas 'दृढ़, ठोस' अर्थ में, ग्रीक में δρυσ और आयरिश में daur शब्द 'बलूत वृक्ष' अर्थ में पाये जाते हैं। ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ १०६४.

२. शोकदारुणाः (वाचः)। उत्तर० ३.३४.

३. पशुमारणकर्मदारुणः। शाकु० ६.१.

४. दारुणाः शराः। शाकु० ६.२८.

५. दारुणो दीर्घशोकः। उत्तर० ३.५.

६. संरब्धहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः। शिशु० ५.४६.

७. अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः। रघु० ८.६५.

८. "Another source is 'hard' vs. 'soft', through the notion of 'resistant', notably in ME, NE hard, but incipiently elsewhere (e.g. Lat. dūrum est 'it is difficult', freq. in Horace; less clearly in NHG hartes leben, etc.). Buck, C. D.: A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages (9. 97; difficult), p. 651.

भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है कि difficult अर्थ के विकास का स्रोत 'सख़्त' (मृदु का विपरीत) भी है। अंग्रेज़ी भाषा के hard शब्द का मौलिक अर्थ 'सख़्त' ही है। इसके भी 'निष्ठुर' (जैसे—hard-hearted में), 'दुष्कर' (जैसे—hard task में) आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

(आ) आकार-सम्बन्धी विशेषता का सादृश्य

सरल

हिन्दी में 'सरल' वि० शब्द अधिकतर 'आसान'[१], 'निश्छल', 'सीधासादा'[२] आदि अर्थों में प्रचलित है। 'सीधा' (अवक्र) अर्थ में 'सरल' शब्द का प्रयोग अधिकतर गणित में किया जाता है।[३] संस्कृत में 'सरल' शब्द का प्रयोग 'सीधा' (अवक्र) और 'निश्छल अथवा सीधासादा'[४] आदि अर्थों में तो पाया जाता है, किन्तु 'आसान' अर्थ में नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'सरल' वि० शब्द का मौलिक अर्थ है 'सीधा' (अवक्र)। संस्कृत में पीतदारु वृक्ष के लिये भी 'सरल' शब्द का प्रयोग पाया जाता है।[५] सम्भवतः 'पीतदारु' के बिल्कुल सीधा होने के कारण ही उसको 'सरल' कहा गया होगा। अवक्र (सरल) होना भौतिक पदार्थों में पाया जाने वाला गुण है। किन्तु भाव-सादृश्य से 'निश्छल अथवा सीधेसादे' को भी आलङ्कारिक रूप में 'सरल' कहा जाने लगा। हिन्दी में 'आसान' को 'सरल' पहिले भाव-सादृश्य से आलङ्कारिक रूप में कहा गया होगा, किन्तु बाद में आलङ्कारिक भाव लुप्त हो गया और 'आसान' ही 'सरल' शब्द का सामान्य अर्थ बन गया। आजकल हिन्दी में 'निश्छल', 'सीधासादा' और 'आसान' ही 'सरल' शब्द के सामान्य अर्थ समझे जाते हैं।

'सरल' शब्द के समान ही 'ऋजु' शब्द का भी मौलिक अर्थ 'सीधा' (अवक्र) ही है।[६] इसके भी संस्कृत में 'सीधासादा', 'ईमानदार' आदि अर्थों का

---

१. जैसे—सरल कार्य, सरल प्रश्न आदि।

२. जैसे—सरल स्वभाव, सरल प्रकृति आदि।

३. जैसे—सरल रेखा।

४. सरले साहसरागं परिहर। मालती० ६.१०.

५. विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्। कुमार० १.६.

६. उमां स पश्यन् ऋजुनैव चक्षुषा। कुमार० ५.३२.

विकास पाया जाता है।[१] इसी प्रकार संस्कृत में 'आर्जव' शब्द के 'सीधापन' (अवक्रता)[२] अर्थ से 'सरलता, स्वभाव में सीधापन'[३], 'ईमानदारी'[४], 'सादगी' आदि अर्थों का विकास हुआ है।

(इ) अन्य गुणों का सादृश्य

घृणा

हिन्दी मे 'घृणा' शब्द 'नफ़रत' अथवा 'अरुचि' अर्थ में प्रचलित है। 'घृणा' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'घृणा' शब्द के कई अन्य अर्थ भी पाये जाते हैं, जोकि अधिक प्रचलित रहे हैं।

'घृणा' शब्द 'घृण' शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप है। संस्कृत में 'घृण' पुं० शब्द का मूल अर्थ 'गरमी' प्रतीत होता है। ऋग्वेद में 'घृण' शब्द का प्रयोग 'गरमी' या 'धूप' अर्थ में पाया जाता है, जैसे[५]—आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः (ऋग्वेद ६.१५.५)।

संस्कृत में 'घृण' शब्द का 'गरमी, धूप' अर्थ होने के कारण ही किसी के प्रति दया अथवा अनुकम्पा के भाव को भाव-सादृश्य से 'घृणा' (स्त्री०) कहा गया। किसी के प्रति सहानुभूति, अत्यनुराग, दया अथवा अनुकम्पा का भाव होने पर हृदय कुछ द्रवित होता है। हृदय की कठोरता दूर होकर उसके प्रति हृदय में कोमल भाव उदित होते हैं। कोई भौतिक वस्तु गरमी के कारण ही द्रवित होती है, अतः पहिले हृदय को द्रवित करने वाले 'दया' अथवा 'अनुकम्पा' के भाव को भाव-सादृश्य से 'गरमी' के वाचक 'घृणा' शब्द द्वारा आलङ्कारिक रूप में लक्षित किया गया होगा। बाद में आलङ्कारिक भाव लुप्त हो जाने पर 'दया अथवा करुणा' ही 'घृणा' शब्द का सामान्य अर्थ समझा जाने लगा। इसी प्रकार के भाव-सम्बन्ध से हिन्दी में किसी के प्रति दया करने को आलङ्कारिक रूप 'पिघलना' अथवा 'द्रवीभूत होना' कह दिया जाता

---

१. मोनियर विलियम्स।

२. दूरं यात्युदरं च रोमलतिका नेत्रार्जवं धावति। साहित्यदर्पण।

३. अहिंसा क्षान्तिरार्जवम्। भग० १३.७.

४. ददर्श गोपानुपधेनु पाण्डवः कृतानुकारानिव गोभिरार्जवे।
किरात० ४.१३.

५. परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः। ऋग्वेद ५.७३.५.

है। यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी भाषा में भी किसी के प्रति दया, सहानुभूति, उत्साह आदि के भावों को warm feelings कहा जाता है।

संस्कृत में 'घृणा' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'दया' अथवा 'अनुकम्पा' अर्थ में ही पाया जाता है, जैसे[१]—तां विलोक्य वनितावधे घृणां पत्रिणा सह मुमोच राघवः (रघु० ११.१७)।

दया, करुणा आदि के भाव का बहुधा 'अरुचि' और 'नफ़रत' के भाव के साथ भी सम्बन्ध होता है। किसी व्यक्ति को बड़ी गन्दी और निकृष्ट स्थिति में देखकर जहाँ उस व्यक्ति के प्रति मन में कुछ दया या करुणा की भावना उत्पन्न होती है, वहाँ उस व्यक्ति और उसकी स्थिति के प्रति अरुचि और नफ़रत भी उत्पन्न होती है (जैसे कि बहुधा बहुत से सम्पन्न लोगों को अत्यन्त गन्दी बस्तियों में रहने वालों, सिकलीगरों, गाडियालुहारों आदि को देखकर होती है)। सम्भवतः इसी भाव-सम्बन्ध के कारण 'अरुचि' अथवा 'नफ़रत' को 'दया' के वाचक 'घृणा' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा होगा। संस्कृत में 'घृणा' शब्द का प्रयोग अरुचि[२], अवज्ञा[३], नफ़रत[४] आदि अर्थों में भी काफ़ी पाया जाता है।

'नफ़रत' अर्थ में 'घृणा' शब्द कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में भी पाया जाता है, जैसे—बंगला, असमिया, उड़िया—घृणा; पंजाबी—घिरणा।[५]

प्रताप, ताप, अनुताप, पश्चात्ताप, सन्ताप आदि

हिन्दी में 'प्रताप' पुं० शब्द 'वीरता', 'पराक्रम', 'तेज', 'शक्ति और वीरता आदि का प्रभाव' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'प्रताप' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु संस्कृत में 'प्रताप' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'उष्णता, ताप'। संस्कृत साहित्य में 'उष्णता, ताप' अर्थ में 'प्रताप'

---

१. न शशाक घृणाचक्षुः परिमोक्तुं रथेन सः। रामायण २.४५.१६.

२. तत्याज तोषं परपुष्टघुष्टे घृणाञ्च क्वणिते वितेने। नैषध० ३.६०.

३. अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा। नैषध० १.२०.

४. दृष्ट्वा च तं तादृशं नरकवासिनोऽप्युद्वेगकरं समुत्पन्नघृणोऽन्तरात्मन्यकरवम्। कादम्बरी ३३९ (पी०एल० वैद्य द्वारा सम्पादित)।

५. व्यवहारकोश।

शब्द का काफ़ी प्रयोग पाया जाता है, जैसे—

अमी च कथमादित्याः प्रतापक्षतिशीतलाः । कुमार० २.२४.

'प्रताप' शब्द के 'उष्णता, ताप' अर्थ से ही 'वीरता', 'पराक्रम', 'तेज', 'शक्ति और वीरता आदि का प्रभाव' आदि अर्थों का विकास हुआ है।

जिसके शरीरस्थ ख़ून में उष्णता या गरमी होती है और उसके परिणाम-स्वरूप कुछ करने का उत्साह या जोश होता है, वह ही लड़ाई आदि में वीरता या पराक्रम दिखा सकता है। इस प्रकार उष्णता के भाव का वीरता या पराक्रम के भाव के साथ सम्बन्ध होने के कारण प्रारम्भ में 'वीरता', 'पराक्रम' आदि को 'उष्णता या गरमी' के वाचक 'प्रताप' शब्द द्वारा आलङ्कारिक रूप में लक्षित किया गया होगा। बाद में ये 'प्रताप' शब्द के सामान्य अर्थ बन गये। शारीरिक 'तेज' भी शरीर में विद्यमान 'उष्णता या गरमी' अर्थात् शक्ति का प्रभाव होता है, इस कारण उसे भी 'उष्णता या गरमी' के वाचक 'प्रताप' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। सम्भवतः शारीरिक 'तेज' के सादृश्य से ही 'शक्ति और वीरता आदि के दूसरों पर होने वाले प्रभाव' के लिये भी 'प्रताप' शब्द प्रचलित हुआ। संस्कृत साहित्य में मनुष्य की वीरता तथा पराक्रम आदि के प्रभाव की उपमा बहुधा सूर्य के ताप अथवा तेज से दी गई है, जैसे—प्रतापस्तस्य भानोश्च युगपद्व्यानशे दिशः (रघु० ४.१५)।

संस्कृत में 'उष्णता, ताप' के वाचक कई अन्य शब्दों के भी सूक्ष्म मानसिक भावों का विकास पाया जाता है। **ताप** शब्द का मौलिक अर्थ 'उष्णता अथवा गरमी'[1] है। संस्कृत में इसके 'उष्णता' अथवा 'गरमी' अर्थ से पीड़ा[2], कष्ट, दुःख[3], शोक आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

'ताप' शब्द का 'पीड़ा' अथवा 'दुःख' अर्थ विकसित होने के कारण ही संस्कृत में 'कोई अनुचित कार्य करके बाद में उसके लिये होने वाले दुःख' अर्थात् 'पछतावे' के लिये **अनुताप** और **पश्चात्ताप**[4] शब्द प्रचलित हुये। इन

---

१. अर्कमयूखतापः । शाकु० ४.१०.

२. समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयोः । शाकु० ३.९.

३. तापत्रयम् =आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक नाम के संसार के तीन प्रकार के दुःख।

४. 'पश्चात्ताप' शब्द आजकल हिन्दी में बहुधा अशुद्ध रूप में 'पश्चाताप' लिखा जाता है। शब्द के वास्तविक रूप (पश्चात् + ताप) को न समझने के कारण ही ऐसी भूल होती है।

दोनों शब्दों का मूल अर्थ है—'बाद में (अनु, पश्चात्) होने वाला दुःख (ताप)'। हिन्दी में भी 'अनुताप' व 'पश्चात्ताप' शब्द 'पछतावा'[1] अर्थ में ही प्रचलित हैं।

'सन्ताप' शब्द का भी मौलिक अर्थ 'ताप' अथवा 'उष्णता' है।[2] इसी अर्थ से बाद में दुःख, कष्ट, मानसिक पीड़ा[3], मनोव्यथा, तपस्या अथवा तपस्या से उत्पन्न शारीरिक कष्ट[4] आदि अर्थ विकसित हुये। हिन्दी में 'सन्ताप' शब्द का 'मानसिक पीड़ा' अथवा 'मनोव्यथा' अर्थ ही प्रचलित है।

प्रसन्न

हिन्दी में 'प्रसन्न' वि० शब्द 'हर्षित, खुश' अर्थ में प्रचलित है। 'प्रसन्न' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[5] किन्तु संस्कृत में 'प्रसन्न' (प्र+सद्+क्त) शब्द का मौलिक अर्थ है 'स्वच्छ, शुद्ध'। इस अर्थ में 'प्रसन्न' शब्द का संस्कृत साहित्य में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे[6]—कूलङ्कषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च—'किनारों को तोड़ने वाली नदी जैसे स्वच्छ जल को और किनारे के वृक्ष को' (शाकु० ५.२१)।

संस्कृत में 'प्रसन्न' शब्द मूलतः भौतिक पदार्थों के स्वच्छ अथवा निर्मल होने को लक्षित करता था। पानी, आकाश, चन्द्रमा आदि के लिये 'प्रसन्न' शब्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'प्रसन्न' शब्द के 'स्वच्छ, निर्मल' अर्थ से ही 'हर्षित' अर्थ विकसित हुआ है। जब कोई व्यक्ति हर्षित होता है तो उसका मन चिन्ता, भय, दुःख आदि से रहित होता है। उसके मुख पर एक ऐसी विशेष प्रकार की (निर्मलता की) झलक होती है, जिससे यह स्पष्ट आभास हो जाता है कि वह 'प्रसन्न' है। अतः किसी व्यक्ति के हर्षित होने पर उसको 'प्रसन्न' पहिले भाव-सादृश्य के आधार पर आलङ्कारिक रूप में कहा गया

---

१. 'पछतावा' शब्द 'पश्चात्ताप' का ही तद्भव रूप है।

२. सन्तापदग्धस्य शिखण्डियूनो वृष्टेः पुरस्तादचिरप्रभेव ! मालती० ३.४.

३. न सन्तापच्छेदो हिमसिरसि वा चन्द्रमसि वा। मालती० १.३१.

४. सन्तापे दिशतु शिवाः शिवां प्रसक्तिम्। किरात० ५.५०.

५. अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय—'क्या महर्षि ने हर्षित होकर तुमको भली प्रकार से शिक्षित करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के लिये आज्ञा दे दी है' (रघु० ५.१०)।

६. छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम्। रघु० १३.२.

होगा। 'मुँह' के वाचक मुख, वदन आदि शब्दों के साथ 'प्रसन्न' शब्द का प्रयुक्त किया जाना भी इस शब्द के 'हर्षित' अर्थ के विकास में सहायक प्रतीत होता है। संस्कृत में ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं, जहाँ कि हर्ष के चिह्नों से युक्त मुख को निर्मल चन्द्रमा के समान कहा गया है, जैसे—

तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ॥ रघु० २.६८.

मुख पर मन के भाव झलकते हैं। इस कारण हर्ष की अवस्था में मुख को 'प्रसन्न' (निर्मल) कहा जाने पर, मन को भी 'प्रसन्न' कहा जाने लगा होगा।

संस्कृत में 'प्रसन्न' शब्द का प्रयोग 'ठीक, सही' अर्थ में भी पाया जाता है, जैसे[1]—प्रसन्नप्रायस्ते तर्कः (मालती० अङ्क १)।

हिन्दी में 'प्रसन्न' शब्द केवल 'हर्षित' अर्थ में ही प्रयुक्त किया जाता है, निर्मल, स्वच्छ आदि अर्थ सर्वथा लुप्त हो गये हैं। बंगला,[2] मराठी,[3] गुजराती,[4] कन्नड़[5] और मलयालम[6] आदि भाषाओं में भी 'प्रसन्न' शब्द का 'हर्षित' अर्थ पाया जाता है। तेलुगु भाषा में 'प्रसन्नमु' शब्द का अर्थ 'स्वच्छ, उज्जवल' ही है।[7]

यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी के glad शब्द के 'प्रसन्न' अर्थ का विकास भी लगभग इसी प्रकार के भाव से हुआ है। Glad शब्द जर्मन भाषा के glatt, डच के glad और लैटिन के glaber शब्द से सम्बन्ध रखता है, जिनका अर्थ है 'चिकना' (smooth)।[8]

प्रसाद

हिन्दी में 'प्रसाद' पुं० शब्द अधिकतर 'कृपा, अनुग्रह', 'देवता को चढ़ाने

१. प्रसन्नस्ते तर्कः। विक्रम० अङ्क २.
२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।
३. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।
४. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।
५. किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।
६. गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।
७. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।
८. हेनरी ब्रेट : वांडरिंग अमंग वर्ड्स, पृष्ठ १८६.

के पश्चात् भक्तों में बाँटा जाने वाला खाद्य-पदार्थ' आदि अर्थों में प्रचलित है। काव्य के गुणों के प्रसङ्ग में 'प्रसाद' शब्द का प्रयोग 'स्पष्टता' अर्थ में भी किया जाता है। 'प्रसाद' शब्द के 'कृपा, अनुग्रह' आदि अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु 'देवता को चढ़ाने के पश्चात् भक्तों में बाँटा जाने वाला खाद्य-पदार्थ' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। इस अर्थ का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

'प्रसाद' शब्द प्र-पूर्वक √ सद् धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में 'प्रसाद' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'स्वच्छता, निर्मलता, उज्ज्वलता', जैसे—

अतिथिं नाम काकुत्स्थात्पुत्रं प्राप कुमुद्वती।
पश्चिमाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना॥ रघु १७.१.

"कुमुद्वती ने कुश से अतिथि नामक पुत्र को उसी प्रकार प्राप्त किया, जिस प्रकार चेतना (बुद्धि) रात्रि के अन्तिम प्रहर से उज्ज्वलता को प्राप्त करती है।"

संस्कृत में जल की 'निर्मलता'[1] और बुद्धि की 'स्पष्ट'[2] आदि के लिये 'प्रसाद' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में 'प्रसाद' (स्पष्टता) काव्य का एक गुण माना गया है। मम्मट ने 'प्रसाद' की परिभाषा इस प्रकार की है—

शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः॥ का० उल्लास ८.

'प्रसाद' शब्द के 'स्पष्टता' अथवा 'स्वच्छता' (निर्मलता) अर्थ से 'प्रसन्नता'[3], 'कृपा, अनुग्रह'[4] आदि अर्थ 'प्रसन्न' शब्द के समान ही भाव-सादृश्य के आधार पर विकसित हुये हैं।[5] यह स्पष्ट है कि कृपा अथवा अनुग्रह के भाव

१. गङ्गा रोधःपतनकलुषा गृह्णतीव प्रसादम्। विक्रम० ९८.

२. प्राप्तबुद्धिप्रसादाः। शिशु० ११.६.

३. इत्या प्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव। रघु० १.

४. भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि। रघु० २.२२.

५. 'प्रसन्न' और 'प्रसाद' शब्दों से फ़ारसी भाषा के 'पसन्द' शब्द का भी कुछ सम्बन्ध प्रतीत होता है। 'पसन्द' शब्द 'प्रसन्न' और 'प्रसाद' शब्द से रूप

का प्रसन्नता के भाव के साथ सम्बन्ध है, क्योंकि किसी के प्रसन्न होने पर ही उसकी कृपा होती है। देवता को चढ़ाने के पश्चात् जो खाद्य-पदार्थ भक्तों में बाँटा जाता है, उसको भी 'प्रसाद' कहा जाता है। देवता की कृपा के रूप में माना जाने के कारण ही उसको 'प्रसाद' कहा गया।

मर्यादा

हिन्दी में 'मर्यादा' स्त्री० शब्द 'आचार की सीमा', 'प्रतिष्ठा', 'नियम', 'शिष्टाचार का बन्धन' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'मर्यादा' शब्द का प्रयोग इन अर्थों में पाया जाता है, जैसे—

अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात्परिजनस्य च।
मर्यादायाममर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति सर्वदा ॥ पञ्च० १.१५३.

संस्कृत में 'मर्यादा' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'भूमि की सीमा', जैसे—

मर्यादायाः प्रभेदे च सीमातिक्रमणे तथा।
क्षेत्रस्य हरणे दण्डा अधमोत्तममध्यमाः ॥ याज्ञ० २.१५५.

'मर्यादा' शब्द का मौलिक अर्थ 'भूमि की सीमा' होने के कारण ही भाव-सादृश्य से 'आचार की सीमा', 'शिष्टाचार के बन्धन' आदि को 'मर्यादा' शब्द द्वारा लक्षित किया गया। बाद में 'मर्यादा' (अर्थात् शिष्टाचार के बन्धन अथवा नियम) का पालन करने से कुल की प्रतिष्ठा अथवा मान होने के कारण भाव-साहचर्य से 'मर्यादा' शब्द के 'मान' अथवा 'प्रतिष्ठा' आदि अर्थ भी विकसित हो गये।

विशद

हिन्दी में 'विशद' वि० शब्द 'स्पष्ट' अर्थ में प्रचलित है, (जैसे—विशद वर्णन, विशद निरूपण, विशद विवेचन आदि)। आजकल इसका 'विस्तृत' अर्थ भी विकसित हो गया है। विशद निरूपण, विशद निरूपण, विशद विवेचन

और भाव दोनों दृष्टियों से मिलता है। 'पसन्द' शब्द का अर्थ है—'रुचि के अनुकूल, अच्छा जान पड़ने वाला', 'मन को अच्छा लगने की वृत्ति या भाव'। हो सकता है कि 'पसन्द' शब्द प्र-पूर्वक सद् धातु से सम्बद्ध हो। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद में 'प्रसन्न' तथा 'प्रसाद' शब्द नहीं पाये जाते, 'प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट' अर्थ में 'प्रसत्त' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, जैसे—इह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः (ऋग्वेद ५.६०.१)।

आदि प्रयोगों में 'विशद' शब्द का बहुधा 'विस्तृत' अर्थ समझा जाता है। 'विशद' शब्द का 'विस्तृत' अर्थ इस शब्द के 'स्पष्ट' अर्थ से ही विकसित हुआ है। प्रायः स्पष्ट होने के भाव का विस्तृत होने के भाव के साथ सम्बन्ध रहता है। किसी व्याख्या अथवा विवरण की स्पष्टता के लिए यह आवश्यक होता है कि उसका निरूपण विस्तृत रूप में किया जाये। इसी भाव-सम्बन्ध के कारण 'विशद व्याख्या', 'विशद विवरण' आदि प्रयोगों में 'स्पष्ट' के वाचक 'विशद' शब्द का 'विस्तृत' अर्थ समझा जा लगा है।

संस्कृत में 'विशद' वि० शब्द का मौलिक अर्थ—'स्पष्ट, उज्ज्वल अथवा चमकीला' है। पहिले भौतिक पदार्थों के स्वच्छ अथवाउज्ज्वल होने को 'विशद' कहा जाता था। संस्कृत में जल, मोती[१], चाँदनीआदि के उज्ज्वल होने के लिये 'विशद' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता। बाद में भाव-सादृश्य से अन्य वस्तुओं (दृष्टि[३], बुद्धि आदि) के निर्मल अथवा स्पष्ट होने के लिये भी 'विशद' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा।

संस्कृत में 'विशद' शब्द के 'स्वच्छ अथवा उज्ज्वल' अर्थ 'प्रसन्न' शब्द के समान ही 'हर्षित' (प्रसन्न) अथवा 'सन्तुष्ट' अर्थ का विकास पाया जाता है, जैसे—जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा (शाकु० ४.२१)।

शोक

हिन्दी में 'शोक' पुं० शब्द 'किसी प्रिय वस्तु अथवा व्यक्ति (मित्र, सम्बन्धी आदि) के वियोग अथवा नाश से मन में बार-बार होने वाली पीड़ा अथवा दुःख' के लिये प्रयुक्त होता है। 'शोक' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'शोक' पुं० शब्द का मूल अर्थ है 'ज्वाला, दीप्ति, ताप'। वैदिक साहित्य में इन अर्थों में 'शोक' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। 'ज्वाला अथवा ताप' के वाचक 'शोक' शब्द का कालान्तर में भाव-सादृश्य से मानसिक क्षेत्र में आलङ्कारिक रूप में 'मानसिक पीड़ा अथवा दुःख' के लिये

१. निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः। रघु० ५.७०.

२. अन्वभुङ्क्त सुरतश्रमापहां मेघमुक्तविशदां स चन्द्रिकाम्। रघु० १९.३९.

३. योगनिद्रान्तविशदैः पावनैरवलोकनैः। रघु० १०.१४.

प्रयोग होने लगा[१]। 'शोक' शब्द के इस अर्थ का विकास ऋग्वेद में ही हो गया था। लौकिक संस्कृत साहित्य में केवल यही अर्थ प्रचलित रहा और आजकल भी हिन्दी तथा अन्य विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रचलित है। 'शोक' शब्द के ज्वाला, दीप्ति, ताप आदि अर्थ वैदिक साहित्य में ही मिलते हैं, लौकिक संस्कृत साहित्य में नहीं मिलते।

स्नेह

हिन्दी में 'नेह' पुं० शब्द अधिकतर 'प्रेम, प्यार' अर्थ में प्रचलित है। 'स्नेह' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे—अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेुु—'इनके प्रति मेरा सहोदर जैसा प्रेम है' (शाकु० अङ्क १)।

संस्कृत में 'स्नेह' पुं० शब्द का मूल अर्थ है—'चिकनाई'[२] अथवा 'चिपचिपाहट' यह शब्द √ स्निह्[३] 'चिपकना' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगकर बना है। तेल चिकनाई से युक्त होता है, अतः संस्कृत में भाव-साहचर्य से 'चिकनाई' के वाचक 'स्नेह' शब्द का 'तेल'[४] अर्थ भी विकसित पाया जाता है।

---

१. यह लेखनीय है कि संस्कृत में 'शुच्' स्त्री० शब्द का 'मानसिक पीड़ा, दुःख' अर्थ भी शोक' शब्द के समान ही इसके 'ज्वाला, ताप' अर्थ से विकसित हुआ है।

२. 'स्नेह (चिकनाई) वैशेषिक दर्शन के चौबीस गुणों में से एक गुण माना गया है सुश्रुतसंहिता, याज्ञ०, तर्कसंहिता आदि में भी 'स्नेह' शब्द का 'चिकनाई अर्थ में प्रयोग मिलता है।

३. √ स्निह् धातु सम्भवतः भारत-यूरोपीय *snigwh से सम्बद्ध है, जिससे विकसित शब्द बहुत सी भारत-यूरोपीय भाषाओं में 'बर्फ़' अर्थ में पाये जाते हैं, जैसे—लैटिन nix, इटैलियन neve, फ्रेंच neige, स्पैनिश nieve; आयरिश snechte; गोथिक snaiws, प्राचीन नोर्स snœr, डैनिश sne, स्वीडिश snö, प्राचीन अंग्रेज़ी snāw, मध्यकालीन एवं आधुनिक अंग्रेज़ी snow, डच sneeuw, प्राचीन हाई जर्मन snēo, मध्यकालीन हाई जर्मन snē, आधुनिक हाई जर्मन schnee; लिथुआनियन sniegas, लेटिश sniegs; चर्चस्लैविक sněgŭ, सर्बोक्रोशियन snijeg, बोहेमियन sníh, पोलिश śnieg, रशन sneg. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१.७६), पृष्ठ ६६.

४. निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान्। रघु० १२.१.

'स्नेह' शब्द के 'चिपचिपाहट' अथवा 'चिकनाई' अर्थ से ही 'प्रेम' अर्थ का विकास हुआ है। जब किसी व्यक्ति का किसी अन्य के प्रति प्रेम होता है, तो उसके मन में अन्य व्यक्ति के प्रति कुछ लगाव या आसक्ति होती है। उस 'लगाव' को ही पहिले भाव-सादृश्य से आलङ्कारिक रूप में 'चिकनाई' अथवा 'चिपचिपाहट' के वाचक 'स्नेह' शब्द द्वारा लक्षित किया गया होगा। बाद में वह 'लगाव, प्रेम या अनुराग' ही 'स्नेह' शब्द का सामान्य अर्थ समझा जाने लगा। √ स्निह् धातु का भी 'प्रेम करना' अर्थ इसके मूल अर्थ 'चिपकना' से विकसित हुआ है।

'स्नेह' शब्द 'प्रेम' अर्थ में कतिपय अन्य भारतीय भाषाओं में भी पाया जाता है, जैसे—बंगला, असमिया, उड़िया–'स्नेह'; कश्मीरी–'स्नेह्'; मलयालम– 'स्नेहम्'।[१]

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि हिन्दी में 'स्नेह' शब्द का 'चिकनाई' अथवा 'तेल' अर्थ प्रचलित नहीं है, तथापि √स्निह् धातु में क्त प्रत्यय लगकर बना हुआ 'स्निग्ध' वि० शब्द केवल 'चिकना' अर्थ में ही प्रचलित है, जबकि संस्कृत में उसके 'चिकना'[२] अर्थ के अतिरिक्त प्रिय[३], स्नेही, चमकीला[४], दयालु[५], मनोहर[६], सघन[७] (गाढ़ा) आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। संस्कृत में 'स्निग्ध' (पुं०) शब्द का प्रयोग 'मित्र' अथवा 'प्रियजन'[८] अर्थ में भी पाया जाता है।

---

१. व्यवहारकोश।

२. स्निग्धवेणीसवर्णे। मेघ० १८.

३. नादस्तावद्विकलकुररीकूजितस्निग्धतारः। मालती० ५.१०.

४. कनकनिकषस्निग्धा विद्युत् प्रिया न ममोर्वशी। विक्रम० ४.१.

५. प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः। मेघ० १६.

६. स्निग्धगम्भीरनिर्घोषम्। रघु० १.३६.

७. स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु। मेघ० १.

८. विज्ञैः स्निग्धैरुपकृतमपि द्वेष्यतामेति कैश्चित्। हितोपदेश २.१४६.

अध्याय ६

भौतिक क्रियाओं और अवस्थाओं का सादृश्य

जिस प्रकार भौतिक पदार्थों को लक्षित करने वाले शब्दों के भाव-सादृश्य से अनेक अर्थ विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार भौतिक क्रियाओं अथवा अवस्थाओं को लक्षित करने वाले शब्दों के भी भाव-सादृश्य से अनेक अर्थ विकसित हो जाते हैं। भौतिक क्रियाओं अथवा अवस्थाओं के वाचक शब्द बहुलतया मानसिक भावों अथवा अन्य विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म भावों को लक्षित करने लगते हैं। प्रायः सभी भाषाओं में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म भावों के लिये भौतिक क्रियाओं अथवा अवस्थाओं के वाचक शब्द अपनाये जाते हैं। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है—"वस्तुतः यह मान लिया जाना चाहिये कि सभी भावात्मक अभिव्यक्तियाँ तथा ऐन्द्रियिक-ज्ञान-सम्बन्धी और विचार-प्रक्रियाओं से सम्बन्धित अभिव्यक्तियाँ अन्ततः भौतिक क्रियाओं अथवा अवस्थाओं पर आधारित होती हैं। यह बात शब्दों के इतिहास में, या तो किसी भाषा के इतिहास के किसी काल में दिखाई पड़ने वाले प्रयोग के परिवर्तन में, अथवा अन्य भाषाओं में पाये जाने वाले सजातीय शब्दों से, बहुत अधिक मात्रा में प्रकट होती है। किन्तु सजातीय शब्दों के कुछ वर्गों में भावात्मक मूल्य इतना अधिक प्रचलित है कि मूलभूत भौतिक मूल्य का कोई भी चिह्न नहीं बचा है, जिससे उसका निर्धारण अत्यधिक काल्पनिक अथवा सन्दिग्ध होता है।"[१]

१. "It must be assumed, of course, that all expressions of emotion, as well as those for sense-perceptions and thought processes, rest ultimately on physical actions or situations. In large measure this is shown in the history of the words, either in a shift of application observable within the historical period of a given language or by the cognates in other languages. But in some groups of cognates an emotional value is so widespread that no certain trace is left of the underlying physical value, so that its determination is highly speculative or hopeless." A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages, p. 1085.

अनेक संस्कृत शब्दों के अर्थ-विकास में यह बात स्पष्ट रूप से और अत्यधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है। यहाँ इस प्रकार के हिन्दी में प्रचलित कुछ संस्कृत शब्दों के अर्थ-विकास का विवेचन किया जा रहा है।

अनुरोध

हिन्दी में 'अनुरोध' पुं० शब्द 'विनयपूर्वक आग्रह' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'अनुरोध' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

'अनुरोध' पुं० शब्द अनु उपसर्गपूर्वक √ रुध् 'रोकना' धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में अनु-पूर्वक √ रुध् धातु का प्रयोग रोकना[1], घेरना[2], बाँधना, आचरण करना[3], अनुसरण करना[4] प्रेम करना, आदरपूर्वक मानना[5], लगे हुये होना, प्रसन्न (तुष्ट) करना,[6] प्रार्थना करना[7] आदि अर्थों में पाया जाता है। अनु-पूर्वक √ रुध् का मौलिक अर्थ 'रोकना' होने के कारण ही संस्कृत में 'अनुरोध' शब्द के इष्ट-सम्पादन,[8] किसी की इच्छा की पूर्ति करना[9],

---

१. शिलाभिर्ये मार्गमनुरुन्धन्ति—'शिलाओं से जो मार्ग को रोकते हैं' (महाभारत)।

२. रुद्रानुचरैर्मखो महान्·········अन्वरुध्यत। भागवत-पुराण।

३. अनुरुध्यादघं त्र्यहम्। मनु० ५.६३.

४. स्वधर्ममनुरुन्धन्ते नातिक्रमम्—'अपने धर्म का अनुसरण करते हैं-धर्म का अतिक्रमण नहीं करते' (किरात० ११.७८)।

५. अनुरुध्यस्व भगवतो वसिष्ठस्यादेशम्—'भगवान् वसिष्ठ के आदेश को आदरपूर्वक मानो' (उत्तर० अङ्क ४)।

६. इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धाम्—'इत्यादि सैकड़ों प्रिय वचनों से भोली सीता को तुष्ट करके' (उत्तर० ३.२६)।

७. आगमनाय अनुरुध्यमानः। कादम्बरी २७७.

८. तदनुरोधात् कठोरगर्भामपि वधूं जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र गतः—'उनके इष्ट का सम्पादन करने के विचार से पूर्णगर्भ वाली वधू जानकी को भी छोड़कर गुरुजन वहाँ चले गये हैं' (उत्तर० अङ्क १)।

९. लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुरोधेन याथातथ्येन पण्डितम्॥

'लोभी को धन से, अभिमानी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को उसका मनोरथ पूरा करके और पण्डित को ज्यों की त्यों सच-सच कहकर वश में करना चाहिये' (हितोपदेश, सन्धि० श्लोक १०३)।

विचार[1], आदर[2], रुचि, प्रेम, आसक्ति[3], प्रेरणा, निवेदन[4] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। जब कोई व्यक्ति किसी की इच्छा के अनुसार उसके अभीष्ट की पूर्ति करता है, तो वह अपनी इच्छा को उसके अनुसार ठहराता अथवा रोकता है। इसी कारण किसी व्यक्ति के 'इष्ट-सम्पादन' अथवा 'अभीष्ट की पूर्त्ति' को मूलतः 'रोकना' के वाचक 'अनुरोध' शब्द द्वारा लक्षित किया गया होगा। 'किसी का अनुसरण करने', 'आदर करने', 'प्रेम करने', 'आसक्त होने' आदि में भी मन को किसी व्यक्ति के प्रति रोका जाता है, उसके प्रति लगाया जाता है। किसी व्यक्ति को किसी कार्य के करने के लिये प्रेरित करने अथवा उससे कोई कार्य कराने के लिये निवेदन करने में भी उसको उस ओर प्रवृत्त करना होता है। इसी कारण आदर, प्रेम, आसक्ति आदि के लिये भी 'अनुरोध' शब्द प्रचलित हुआ।

'अनुरोध' शब्द का 'विनयपूर्वक आग्रह' अर्थ यद्यपि संस्कृत में नहीं पाया जाता, तथापि उससे मिलते-जुलते 'प्रेरणा', 'निवेदन' आदि अर्थ पाये जाते हैं। किसी से विनयपूर्वक किसी बात के लिये आग्रह करने में कुछ प्रेरणा और निवेदन का भाव भी रहता है। अतः भाव-साहचर्य से 'विनयपूर्वक आग्रह' के लिये 'अनुरोध' शब्द प्रचलित हो गया है।

'अनुरोध' शब्द का 'आग्रह' अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है। बंगला में 'अनुरोध' शब्द का 'प्रार्थना' अथवा 'निवेदन' अर्थ भी है (यथा—ताहार अनुरोधे=उसकी प्रार्थना से)।[5] मराठी तथा गुजराती भाषाओं में 'अनुरोध' शब्द का 'आग्रह' अर्थ नहीं पाया जाता। मराठी में 'अनुरोध' शब्द के अर्थ हैं—रुख, मान्यता, झुकाव।[6] गुजराती में 'अनुरोध' शब्द का अर्थ

---

१. नानुरोधोऽस्त्यनध्याये—'अनध्याय का कोई विचार नहीं है' (मनु० २. १०५)।

२. कविपरिश्रमानुरोधाद्वा—'कवि के परिश्रम के प्रति आदर की दृष्टि से' (वेणी० अङ्क १)।

३. इहैति हित्वा स्वजनं परत्र प्रलभ्य चेहापि पुनः प्रयाति।
गत्वापि तत्राप्यपरत्र गच्छत्येवं जने त्यागिनि कोऽनुरोधः॥

बुद्ध० ६.३६.

४. विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव। शिशु० २०.८१.

५. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

६. वैशम्पायन : मराठी से हिन्दी शब्द-संग्रह।

है 'अनुसार', यथा—आ कायदाना अनुरोधे = इस नियम के अनुसार ।[१]

अभियुक्त

हिन्दी में 'अभियुक्त' शब्द 'अपराधी' अर्थात् 'वह जिस पर अभियोग लगाया गया हो' अर्थ में प्रचलित है। 'अभियुक्त' का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'अभियुक्त' शब्द का मौलिक अर्थ है 'लगा हुआ।' शतपथब्राह्मण में अभि+युज् का प्रयोग (गाड़ी आदि में घोड़े को) 'लगाने' के लिये पाया जाता है। संस्कृत में 'अभियुक्त' शब्द का प्रयोग अधिकतर लगा हुआ, व्यस्त[२], अवहित[३], भली-भाँति अभिज्ञ[४], विद्वान्[५], आक्रमण किया गया[६], अपराधी, वह जिस पर अभियोग लगाया गया हो[७] आदि अर्थों में पाया जाता है। 'अभियुक्त' शब्द के मौलिक अर्थ 'लगा हुआ' से ही भाव-सादृश्य के कारण उपर्युक्त 'व्यस्त', 'अवहित', 'वह जिस पर अभियोग लगाया गया हो' आदि अर्थ विकसित हुये हैं। 'अपराधी' पर अपराध अथवा दोष लगा हुआ होने के कारण ही उसको 'अभियुक्त' कहा गया।

हिन्दी में 'अभियुक्त' शब्द केवल 'अपराधी' (वह जिस पर अभियोग लगाया गया हो) अर्थ में ही प्रयुक्त किया जाता है, व्यस्त, अवहित, भली-भाँति अभिज्ञ, विद्वान्, आक्रमण किया गया आदि अर्थ सर्वथा लुप्त हो गये हैं।

अभियोग

हिन्दी में 'अभियोग' पुं० शब्द 'अपराध लगाना' (अपराधविशेष का

---

१. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

२. स्वस्वकर्मण्यधिकतरमभियुक्तः परिजनः। मुद्रा० अङ्क १.

३. इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा। उत्तर० ३.३०.
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। भग० ९.२२.

४. शास्त्रेष्वभियुक्तानां पुरुषाणाम्। कुमारिल (आप्टे के कोश से उद्धृत)।

५. न हि शक्यते दैवमन्यथाकर्तुमभियुक्तेनापि। कादम्बरी ६२.
अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदमन्यथा मन्यन्ते। वेणी० अङ्क २.

६. अभियुक्तं त्वयैनं ते गन्तारस्त्वामतः परे। शिशु० २.१०१.
स हि भृशमभियुक्तो यद्युपेयाद् विनाशम्। मुद्रा० ३.२५.

७. येनाहमभियुक्त इव प्रयामि। मृच्छ० ९.९.
अभियुक्तोऽभियोगस्य यदि कुर्यादपह्लवम्। नारदीयस्मृति (व्यवहारतत्त्व)।

आरोप) अथवा 'मुकदमा' अर्थ में प्रचलित है। 'अभियोग' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[1] किन्तु संस्कृत में अभियोग (अभि+युज्+भावे घञ्) पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'लगाना, आरोप'। शतपथब्राह्मण में अभि+युज् का प्रयोग 'किसी विशिष्ट कार्य में लगाना' (जैसे घोड़े को गाड़ी में लगाना) अर्थ में पाया जाता है।[2] संस्कृत में 'अभियोग' शब्द के 'लगाना, आरोप' अर्थ से ही विकसित हुये अभ्यास[3], लगन, उद्योग[4], प्रयत्न, किसी बात की जानकारी करने या उसे सीखने के लिये उसमें अत्यनुराग[5] अथवा मनोनिवेश, विद्वत्ता[6], आक्रमण[7] आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। अभ्यास, प्रयत्न, उद्योग, मनोनिवेश आदि में अपने मन तथा शरीर को लगाना पड़ता है। अतः भाव-सादृश्य से 'अभियोग' शब्द के ये अर्थ विकसित हो गये हैं। 'अभियोग' शब्द का मौलिक अर्थ 'लगाना, आरोप' होने के कारण ही भाव-सादृश्य के आधार पर 'अपराध लगाने' अथवा 'अपराध-विशेष के आरोप' के लिये भी 'अभियोग' शब्द का प्रयोग किया गया।

यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी के charge शब्द के 'दोषारोपण', 'आक्रमण करना' आदि अर्थ भी 'अभियोग' शब्द के समान ही विकसित हुये हैं। charge शब्द का मौलिक अर्थ है—'भार डालना'।

अवगाहन

हिन्दी में 'अवगाहन' पुं० शब्द का प्रयोग 'स्नान', 'गम्भीरतापूर्वक अनुशीलन' आदि अर्थों में किया जाता है। संस्कृत में भी 'अवगाहन' शब्द के ये दोनों अर्थ पाये जाते हैं। किन्तु संस्कृत में 'अवगाहन' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'डुबकी लगाना, स्नान', जैसे—दग्धानामवगाहनाय विधिना रम्यं

---

१. अभियोगमनिस्तीर्य नैनं प्रत्यभियोजयेत्। याज्ञ० २.९.

२. तद्यां गतिमभियुङ्क्ते तां गतिं गत्वान्ततो विमुञ्चते।
शतपथ० १.८.३.२७.

३. गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाभियोगजाम्—गुरुसेवा, तप, तन्त्र, मन्त्र और योगाभ्यास से उत्पन्न (मालती० ९.५१)।

४. सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः। नीति० ७३.

५. अनेन मत्प्रियाभियोगेन स्मारयसि मे पूर्वशिष्यां सौदामिनीम्।
मालती० अङ्क १.

६. अभियोगश्च शब्दादेरशिष्टानां अभियोगश्चेतरेषाम्। शारीरभाष्य ॥

७. मौर्येन्दोर्द्विषदभियोग इत्यवैति। मुद्रा० १.१७.

सरो निर्मितम्—'सन्तप्त लोगों के स्नान के लिये ब्रह्मा ने रमणीय सरोवर बना दिया है' (शृङ्गारतिलक १)।

संस्कृत में 'अवगाहन' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'डुबकी लगाना' अथवा 'स्नान' अर्थ में ही पाया जाता है। 'अवगाहन' शब्द का 'गम्भीरतापूर्वक अध्ययन अथवा अनुशीलन' अर्थ इस शब्द के भाव-सादृश्य के आधार पर आलङ्कारिक रूप में प्रयुक्त किये जाने के कारण विकसित हुआ है। पहिले किसी ग्रन्थ अथवा शास्त्र के गम्भीरतापूर्वक अध्ययन को 'अवगाहन' (डुबकी लगाना) आलङ्कारिक रूप में कहा गया होगा। बाद में आलङ्कारिक भाव लुप्त हो गया और 'गम्भीरतापूर्वक अध्ययन' ही 'अवगाहन' शब्द का सामान्य अर्थ बन गया, जैसे—सञ्जीवकेनापि अनेकशास्त्रावगाहनात् उत्पन्नबुद्धिप्रागल्भ्येन (पञ्च० १)।

आग्रह

हिन्दी में 'आग्रह' पुं० शब्द 'हठ' अथवा 'ज़िद' अर्थ में प्रचलित है। 'आग्रह' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[1] किन्तु संस्कृत में 'आग्रह' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'पकड़ना'। आ-पूर्वक √ ग्रह् धातु का प्रयोग संस्कृत में 'पकड़ना' अर्थ में पाया जाता है।

'आग्रह' शब्द के 'पकड़ना' अर्थ से ही भाव-सादृश्य के आधार पर इसका मन में किसी विचार को 'पकड़ना अथवा लगाना', 'आसक्ति' का भाव भी विकसित हुआ। किसी कार्य के लिये 'हठ' अथवा 'ज़िद' करने में भी कोई मनुष्य उस कार्य के प्रति अपने मन के भाव को बड़ी तत्परता-पूर्वक पकड़े रहता है। इसी भाव-सादृश्य से 'आग्रह' शब्द का 'हठ' अथवा 'ज़िद' अर्थ विकसित हुआ है।

आन्दोलन

हिन्दी में 'आन्दोलन' पुं० शब्द 'किसी बात के लिये व्यापक सामूहिक प्रयत्न' अथवा 'हलचल' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—स्वतंत्रता आन्दोलन, गोवध-विरोधी आन्दोलन आदि)। संस्कृत में 'आन्दोलन' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'आन्दोलन' नपुं० (आन्दोल्+भावे ल्युट्) शब्द का मौलिक अर्थ है 'हिलना'। संस्कृत में 'आन्दोलन' शब्द का प्रयोग प्रायः इसी

---

१. इत्याग्रहाद्वदन्तं तं स पिता तत्र नीतवान्। कथा० २५.९९.

अर्थ में पाया जाता है, जैसे[1]—'चामरान्दोलनादुद्वेलद्भुजवल्लिकङ्कण-झनत्कारः—'चामर के हिलने से भुजलता के हिल जाने से उत्पन्न कङ्कण की ध्वनि' (उद्भट)।

संस्कृत में 'आन्दोलन' शब्द का आलङ्कारिक रूप में प्रयोग मन आदि के आन्दोलित होने के लिये तो पाया जाता है, किन्तु हिन्दी में प्रचलित 'किसी बात के लिये व्यापक सामूहिक प्रयत्न' अथवा 'हलचल' अर्थ आधुनिक काल में ही विकसित हुआ है। वस्तुतः 'किसी बात के लिये व्यापक सामूहिक प्रयत्न' अथवा 'हलचल' अंग्रेज़ी के movement शब्द द्वारा प्रस्तुत नवीन भाव है। movement शब्द का मौलिक अर्थ 'हिलना' होने के कारण उस भाव के लिये हिन्दी में भी 'हिलना' अर्थ वाले 'आन्दोलन' शब्द को अपना लिया गया है।

अंग्रेज़ी के movement शब्द का भी 'हिलना' अर्थ से ही भाव-सादृश्य के आधार पर 'मानसिक भावों अथवा विचारों की उत्तेजना' अर्थ विकसित हुआ और फिर उससे 'उथल-पुथल करने वाला प्रयत्न, किसी बात के लिये व्यापक सामूहिक प्रयत्न' अथवा 'हलचल' अर्थ विकसित हुआ है।

आस्था

हिन्दी में 'आस्था' स्त्री० शब्द 'श्रद्धा', 'आदर', 'विश्वास' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'आस्था' शब्द के ये अर्थ पाये जाते हैं, किन्तु संस्कृत में 'आस्था' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'जमाव, स्थिति' (आ+स्था+अङ्)। इसी से 'आस्था' शब्द के अन्य विभिन्न अर्थों का विकास हुआ है। संस्कृत में 'आ+स्था' का प्रयोग 'किसी वस्तु पर खड़े होना अथवा ठहरना', 'चढ़ना' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—आस्थाय नावं रामस्तु शीघ्रं सलिलमत्यगात् (रामायण)।

आ+स्था के मौलिक अर्थ 'किसी वस्तु पर खड़े होना, ठहरना', 'चढ़ना' से 'अभ्यास करना'[2], 'आश्रय लेना' आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। 'किसी वस्तु पर खड़े होना अथवा ठहरना' एक भौतिक क्रिया है। भाव-सादृश्य से किसी के प्रति मन में श्रद्धा, आदर, विश्वास आदि भावों को भी 'आस्था' कहा गया, क्योंकि ये भाव भी मन में ठहरते हैं अथवा जमते हैं। संस्कृत में

---

१. दोरान्दोलन=हाथ हिलना (प्रबोधचन्द्रोदय २.३४)।
२. आस्थाय योगम्—'योग का अभ्यास करके' (सौन्दर० ५.३२)।

'आस्था' शब्द का प्रयोग श्रद्धा, आदर[1], आशा[2], विश्वास आदि अर्थों में पाया जाता है।

कोप, प्रकोप

हिन्दी में 'कोप' पुं० शब्द 'क्रोध' अर्थ में प्रचलित है। 'कोप' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'कोप' शब्द के इस अर्थ का विकास एक भौतिक भाव से हुआ है। 'कोप' शब्द √कुप् धातु से बना है। संस्कृत में √कुप् धातु का मूल अर्थ था 'इधर-उधर उड़ना, चक्कर काटना'। ऋग्वेद में प्र-पूर्वक √कुप् धातु का प्रयोग इसी अर्थ में उपलब्ध होता है, जैसे—यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्—'जिसने इधर-उधर उड़ते हुये[3] (पक्षयुक्त) पर्वतों को शान्त किया' (२.१२.२)। √कुप् धातु के 'इधर-उधर उड़ना, चक्कर काटना' अर्थ से 'उत्तेजित होना', 'उबलना' आदि अर्थों का विकास हुआ[4]। फिर कालान्तर में 'क्रुद्ध होने' के लिये √कुप् धातु का प्रयोग होने लगा, जिसके मूल में क्रोध से उत्तेजित होने अथवा क्रोध से उबलने का भाव था।

सुश्रुतसंहिता में शरीरस्थ धातुओं (वात, पित्त, कफ़) की उत्तेजना को 'कोप' कहा गया है। उत्तेजना अथवा उबलना अर्थ से 'क्रोध' अर्थ का विकास होने पर 'अत्यधिक क्रोध' को 'प्रकोप' कहा गया। प्र उपसर्ग का प्रयोग अधिकतर 'प्रकर्ष' अर्थ में होता है। अतः उपर्युक्त विभिन्न अर्थों में √कुप् और प्र-पूर्वक √कुप् धातु के प्रयोगों में उनके अर्थों में केवल मात्रा का ही अन्तर

---

१. मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः। रघु० १०.४३.

२. जयलक्ष्म्यां बबन्धास्थाम्। राज० ५.२४५.

३. इस स्थल पर सायण ने भी अपनी टीका में 'प्रकुपितान्' का अर्थ कुछ इसी प्रकार का अर्थात् 'इतस्ततश्चलितान्' किया है।

४. यह उल्लेखनीय है कि √कुप् धातु से सम्बद्ध शब्द कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी पाये जाते हैं, जैसे—ग्रीक kapnós 'धुआँ'; लैटिन cupio 'मैं उत्कट इच्छा करता हूँ'; अंग्रेज़ी hope 'आशा करना, आशा'; जर्मन hoffe; चर्चस्लैविक kypěti 'उबलना'; लिथुआनियन kvapas 'साँस, गन्ध'। क्षितीशचन्द्र चटर्जी: वैदिक सेलेक्शंस, पृष्ठ १६२; सी० डी० बक: ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१६.४२), पृष्ठ ११३६.

रहा है, मूल अर्थ एकसा ही रहा है। 'प्रकोप' शब्द के अर्थ में आधिक्य के भाव की विद्यमानता के कारण किसी बीमारी आदि के ज़ोर को भी उसका 'प्रकोप' कह दिया जाता है।

क्षोभ

हिन्दी भाषा में 'क्षोभ' पुं० शब्द 'उत्तेजना', 'रोष' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'क्षोभ' शब्द का 'उत्तेजना' अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु 'रोष अथवा क्रोध' अर्थ का विकास हिन्दी में ही हुआ प्रतीत होता है। संस्कृत में 'क्षोभ' (क्षुभ्+घञ्) शब्द का मौलिक अर्थ 'हलचल अथवा कम्पन' था। √क्षुभ् धातु से ही बने 'क्षुभ्' स्त्री० शब्द का प्रयोग ऋग्वेद (५.४१.१३) में 'कम्पन' अर्थ में मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि 'क्षोभ' शब्द मूलतः भौतिक 'हलचल' (हिलना-जुलना) अथवा 'कम्पन' को लक्षित करता था, किन्तु बाद में इसका प्रयोग आलङ्कारिक रूप में 'मानसिक हलचल, उत्तेजना' के लिये भी किया जाने लगा। लौकिक संस्कृत साहित्य में 'क्षोभ' शब्द का प्रयोग 'हलचल' (हिलना-जुलना)[१] और 'उत्तेजना'[२] इन दोनों ही अर्थों में पाया जाता है। 'रोष अथवा क्रोध' में भी मानसिक उत्तेजना होती है, अतः 'उत्तेजना' का वाचक 'क्षोभ' शब्द 'रोष अथवा क्रोध' के लिये भी प्रयुक्त किया जाने लगा। 'क्षोभ' से विकसित हुआ तद्भव 'छोह' शब्द ग्रामीण खड़ी बोली में 'क्रोध' अर्थ में ही प्रचलित है।

ग्रन्थ

हिन्दी में 'ग्रन्थ' पुं० शब्द 'पुस्तक' अर्थ में प्रचलित है। 'ग्रन्थ' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[३] 'ग्रन्थ' शब्द √ग्रन्थ् धातु से बना है। संस्कृत में √ग्रन्थ् धातु का प्रयोग बाँधना, गूँथना[४], रचना करना (लिखना)[५], बनाना आदि अर्थों में पाया जाता है। अतः संस्कृत में 'ग्रन्थ' शब्द का मौलिक अर्थ[६]

१. मेघ० २८; ६७।
२. प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात्प्रतिपद्यते हि जनः (शाकु० ६.३१)।
३. ग्रन्थारम्भे समुचितेष्टदेवतां ग्रन्थकृत्परामृशति। काव्य० उल्लास १.
४. ग्रन्थित्वेव स्थितं रुचः। भट्टि० ७.१०५.
५. ग्रथ्नामि काव्यशशिनं विततार्थरश्मिम् (काव्य० उल्लास १०); कालिदासग्रथितवस्तुना नाटकेन (शाकु० अङ्क १)।
६. यमलोकमिवाग्रथ्नात्। भट्टि० १७.६९.

है 'बाँधना', अथवा 'गूँथना'। किसी 'साहित्यिक रचना' में भावों अथवा विचारों के क्रमपूर्वक गूँथे जाने के कारण ही उसको 'ग्रन्थ' कहा गया।

त्रास

हिन्दी में 'त्रास' पुं० शब्द 'डर' या 'घबराहट' अर्थ में प्रचलित है। "त्रास' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[1] किन्तु संस्कृत में 'त्रास' शब्द का मौलिक अर्थ है—'हिलना, काँपना'। इसी से 'डर या घबराहट' अर्थ विकसित हुआ है। डर अथवा घबराहट होने पर बहुधा मनुष्य काँपने लगता है। 'डर' के भाव का 'काँपने' या 'हिलने' की शारीरिक चेष्टा से सम्बन्ध होने के कारण ही 'डर' के भाव को 'काँपने' के वाचक 'त्रास' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। पहिले डर या घबराहट को 'त्रास' आलङ्कारिक रूप में कहा गया होगा, बाद में यह ही इसका सामान्य अर्थ बन गया। 'त्रास' शब्द √त्रस् 'काँपना' धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना माना जाता है। वैदिक भाषा में √त्रस् धातु का प्रयोग 'काँपना' अर्थ में उपलब्ध होता है। सूर्य की किरणों में घूमते हुये दिखाई पड़ने वाले धूल के कणों के लिये प्रयुक्त 'त्रसरेणु' शब्द में √त्रस् धातु 'हिलना' अर्थ में ही विद्यमान है। संस्कृत में 'जङ्गम' अर्थ में पाये जाने वाले 'त्रस' शब्द में भी यही धातु है। संस्कृत √त्रस् की सजातीय भारत-यूरोपीय *tres धातु मानी जाती है। ग्रीक भाषा में τρέω 'काँपना, भागना', लैटिन भाषा में terrēre 'भयभीत करना', terror 'भय', अवेस्तन भाषा में taršti 'भय', taršta 'भयभीत', आयरिश भाषा में tarrach 'भयभीत', लिथुआनियन भाषा में trišu 'काँपना' इसी से सम्बद्ध हैं।[2]

कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'काँपने' अथवा 'हिलने' के वाचक शब्दों के 'डर, घबराहट' आदि अर्थों के विकास के उदाहरण मिलते हैं। लैटिन भाषा के pavor शब्द का मूल अर्थ 'काँपना, हिलना' था, किन्तु बाद में उसका 'भय, डर' अर्थ भी विकसित हो गया। उससे विकसित प्राचीन फ़्रीज़ियन भाषा में paor, फ्रेंच भाषा में peur, प्रत्यय-भेद के साथ

---

१. रामायण ७.८७.१७; रघु० २.३८, ६.५८ आदि।

२. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१९.५३), पृष्ठ ११५३, ११५५.

इटैलियन भाषा में paura, [illegible]निश भाषा में pavura शब्द 'भय, डर' अर्थ में पाये जाते हैं।[1]

त्रुटि

हिन्दी में 'त्रुटि' स्त्री० शब्द 'भूल', 'कमी' अथवा 'दोष' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में 'त्रुटि' शब्द के ये अर्थ नहीं पाये जाते। संस्कृत में 'त्रुटि' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है 'टूट, टूटना'।

'त्रुटि' शब्द √त्रुट् 'टूटना' धातु से इन् प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में √त्रुट् धातु का प्रयोग 'टूटना' अर्थ में ही पाया जाता है, जैसे—त्रुटित इव मुक्तामणिसरः—'टूटी हुई मोतियों की माला की तरह' (उत्तर० १.२६)।

'त्रुटि' शब्द के 'टूट अथवा टूटना' अर्थ से ही 'भूल', 'कमी, दोष' आदि अर्थ विकसित हुये हैं। 'टूटना' (त्रुटि) एक भौतिक क्रिया है। लकड़ी, शीशा आदि भौतिक स्थूल पदार्थों में ही यह होती है। 'भूल', 'कमी, दोष' आदि भी किसी कार्य अथवा मानसिक भावों के क्रम की टूट होते हैं, अतः भाव-सादृश्य से इन्हें 'टूट' के वाचक 'त्रुटि' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। संस्कृत में 'त्रुटि' शब्द के 'छोटा भाग', 'संशय', 'छोटी इलायची', 'क्षण' आदि अर्थों का विकास भी पाया जाता है।

'त्रुटि' शब्द के 'भूल', 'कमी अथवा दोष' अर्थ बंगला भाषा में भी पाये जाते हैं। यह सम्भव है कि इन अर्थों में 'त्रुटि' शब्द हिन्दी में बंगला भाषा से आया हो।

नम्र

हिन्दी में 'नम्र' वि० शब्द 'विनीत' अर्थ में प्रचलित है। 'नम्र' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[2] किन्तु संस्कृत में 'नम्र' शब्द का मौलिक अर्थ है 'झुका हुआ' (नम्='झुकना'+र)। संस्कृत में 'झुका हुआ' अर्थ में 'नम्र' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे[3]—भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः—'फलों के आने से वृक्ष झुक जाते हैं' (शाकु० ५.१२)। विनीतता का झुके हुये होने के भाव के साथ कुछ सम्बन्ध भी होता है, क्योंकि आदर अथवा भक्ति के भाव से मनुष्य साधारणतया पूज्यों के आगे झुक जाता है।

---

१. ए डिक्शनरी आफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल्ज इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ ११५५.

२. भक्तिनम्रः। मेघ० ५७.

३. मेघ० ८४; पञ्च० १.१०६; रत्नावली १.१६ आदि।

इस भाव-सम्बन्ध के कारण 'विनीत' को 'नम्र' पहिले आलङ्कारिक रूप में कहा गया होगा। बाद में यह 'नम्र' शब्द का सामान्य अर्थ बन गया।

निबन्ध

हिन्दी में 'निबन्ध' पुं० शब्द का अर्थ है 'लेख, किसी विषय का वह सविस्तर विवेचन, जिसमें उससे सम्बन्ध रखने वाले अनेक मतों, विचारों, मन्तव्यों आदि का तुलनात्मक और पाण्डित्यपूर्ण विवेचन हो' (essay)। इस अर्थ में 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग संस्कृत में भी पाया जाता है।

'निबन्ध' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'बन्धन', 'बाँधने की क्रिया या भाव'। 'निबन्ध' शब्द के 'बन्धन' अर्थ से ही संस्कृत में 'साहित्यिक रचना' अर्थ का विकास हुआ। साहित्यिक रचना में 'भावों का क्रमपूर्वक बन्धन होता है, अतः उसको 'निबन्ध' कहा गया। संस्कृत में 'निबन्ध' शब्द का प्रयोग 'बन्धन', 'साहित्यिक रचना'[१] आदि के अतिरिक्त 'बेड़ी', 'आसक्ति' (बन्धन)[२], 'जीविकोपार्जन के लिये नियत पशु, धन आदि'[३] अर्थों में भी पाया जाता है।

'लेख' (essay) अर्थ में 'निबन्ध' शब्द पंजाबी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी पाया जाता है।[४]

'निबन्ध' शब्द के समान ही संस्कृत में 'निबन्धन' (जिसका मौलिक अर्थ 'बाँधने की क्रिया या भाव' है) शब्द के भी 'रचना'[५] अथवा 'साहित्यिक रचना' अर्थ का विकास पाया जाता है।

निष्ठा

हिन्दी में 'निष्ठा' स्त्री० शब्द 'दृढ़ विश्वास', 'धर्म, देवता, राज्य या बड़े आदि के प्रति पूज्य-बुद्धि और भक्ति का भाव' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'निष्ठा' शब्द के ये अर्थ पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'निष्ठा' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है 'स्थिति, ठहराव'। इसी अर्थ से 'दृढ़-विश्वास' आदि अर्थों का विकास हुआ है।

---

१. प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धं चक्रे। वासवदत्ता।

२. दैवीसम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। भग० १६.५.

३. भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा। याज्ञ० २.१२१.

४. व्यवहारकोश।

५. संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं वधूं सुखग्राह्यनिबन्धनेन। कुमार० ७.९०.

'निष्ठा' शब्द नि उपसर्गपूर्वक √स्था धातु से बना है। संस्कृत में नि-पूर्वक √स्था धातु का प्रयोग 'स्थित होना', 'आश्रित होना'[१] आदि अर्थों में पाया जाता है। किसी वस्तु का किसी अन्य वस्तु पर स्थित होना अथवा ठहरना एक भौतिक क्रिया है। भाव-सादृश्य से 'मन के ठहराव' अर्थात् किसी के प्रति 'दृढ़-विश्वास' को भी 'निष्ठा' कहा गया। संस्कृत में 'निष्ठा' शब्द का प्रयोग 'स्थिति[२], ठहराव, जमाव[३], दृढ़-विश्वास[४], श्रद्धा, भक्ति आदि अर्थों के अतिरिक्त विनाश[५] अर्थ में भी पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'निष्ठित' शब्द के 'स्थित'[६] अर्थ से 'सम्यक् ज्ञाता', 'पारङ्गत अथवा निष्णात'[७] अर्थ का विकास भी पाया जाता है।

प्रतिष्ठा

हिन्दी में 'प्रतिष्ठा' स्त्री० शब्द अधिकतर 'मान-मर्यादा' अथवा 'आदर' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'प्रतिष्ठा' शब्द का यह अर्थ पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'प्रतिष्ठा' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'स्थिति, ठहराव'। संस्कृत में 'प्रतिष्ठा' शब्द का इस अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठाम् (शाकु० ७.६)।

स्थिति अथवा ठहराव (प्रतिष्ठा) एक भौतिक क्रिया है, जो किसी वस्तु के किसी अन्य वस्तु पर रक्खे जाने से होती है, किन्तु भाव-सादृश्य से किसी कुल आदि की स्थिरता अथवा स्थायित्व को भी 'प्रतिष्ठा' कहा गया, जैसे[८]—अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः (उत्तर० ५.२५)।

किसी व्यक्ति अथवा कुल की सुदृढ़ स्थिति अथवा स्थायित्व (प्रतिष्ठा)

---

१. तन्निष्ठे फेने। आप्टे के कोश से उद्धृत।

२. जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान्। ऋग्वेद ३.३१.१०.

३. मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति। मालती० १.३१.

४. शास्त्रेषु निष्ठा—'शास्त्रों में दृढ़-विश्वास' (मालती० ३.११)।

५. इयं च निष्ठा नियता प्रजानाम्—'प्रजाओं का यह विनाश नियत है' (बुद्ध० ३.६१)।

६. देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानाम्। भागवत २.७.३६.

७. वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः। रामायण १.१.१४.

८. विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा। शिशु० २.३४.

से ही उस व्यक्ति अथवा कुल का आदर अथवा मान होता है, अतः इस भाव-सम्बन्ध के कारण संस्कृत में 'प्रतिष्ठा' शब्द के आदर, गौरव, ख्याति आदि अर्थों का भी विकास पाया जाता है।

संस्कृत में 'प्रतिष्ठा' शब्द के 'स्थिति' अथवा 'ठहराव' अर्थ से विकसित हुये आश्रय[1], वासस्थान[2], शरीर[3], गौरव के हेतु[4], अभिलषित वस्तु की प्राप्ति[5], किसी देवमूर्ति की स्थापना[6] आदि अर्थ भी पाये जाते हैं।

हिन्दी में 'प्रतिष्ठा' शब्द का प्रयोग अधिकतर आदर, मान, ख्याति आदि अर्थों में ही किया जाता है। 'प्रतिष्ठा' शब्द के आदर, मान, ख्याति आदि अर्थ मराठी, गुजराती, बंगला, नेपाली, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में भी पाये जाते हैं।

प्रथा

हिन्दी में 'प्रथा' स्त्री० शब्द 'बहुत दिनों से या बहुत से लोगों में प्रचलित रीति, परिपाटी' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'प्रथा' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'प्रथा' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'प्रसिद्धि, ख्याति' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—श्रियः पतिरिति प्रथामगाः—'श्रीपति की ख्याति को प्राप्त हो गये हो' (शिशु० १५.२७)।

'प्रथा' शब्द √प्रथ् 'फैलना' धातु से बना है। संस्कृत में √प्रथ् धातु का प्रयोग (धन आदि की) वृद्धि होना, (ख्याति, यश, अफ़वाह आदि का) फैलना[7],

---

१. स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह। मुण्डकोपनिषद् १.१.१.

२. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। रामायण १.२.५.

३. साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ। ऋग्वेद १०.७३.६.

४. परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य नः। शाकु० ३.२३.

५. औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा। शाकु० ५.६.

६. चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम्। भागवत २.२७.१३.

७. तथा यशोऽस्य प्रथते—'इस प्रकार उसका यश फैलता है' (मनु० ११.१५); प्रथितयशसां भासकविसौमिल्लकविमिश्रादीनाम् (मालविका० अङ्क १)।

प्रसिद्ध होना[1], विख्यात होना, प्रकट होना[2] आदि अर्थों में पाया जाता है।

संस्कृत में √ प्रथ् धातु का मौलिक अर्थ 'फैलना' होने के कारण ही 'प्रथा' शब्द का 'प्रसिद्धि, ख्याति' अर्थ विकसित हुआ । 'प्रसिद्धि, ख्याति' में फैलने का भाव मुख्य होता है। किसी व्यक्ति अथवा बात की 'प्रसिद्धि' उसके बारे में जानकारी फैलना ही होती है। हिन्दी में 'प्रथा' शब्द 'बहुत दिनों से या बहुत से लोगों में प्रचलित रीति, परिपाटी' अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। √ प्रथ् धातु का मौलिक भाव 'फैलना' होने के कारण ही 'बहुत दिनों से या बहुत से लोगों में फैली हुई रीति, परिपाटी' को 'प्रथा' कहा जाने लगा है।

प्रबन्ध

हिन्दी में 'प्रबन्ध' पुं० शब्द अधिकतर 'व्यवस्था, इन्तज़ाम' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'प्रबन्ध' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। 'प्रबन्ध' शब्द प्र उपसर्गपूर्वक √ बन्ध् 'बाँधना' धातु से बना है। अतः 'प्रबन्ध' शब्द का मौलिक अर्थ है—'बन्धन' अथवा 'प्रकृष्ट बन्धन'।[3]

'प्रबन्ध' शब्द के 'बन्धन' अर्थ से संस्कृत में 'अविच्छिन्नता,[4] अविच्छिन्न क्रम' अर्थ का विकास पाया जाता है। 'बन्धन' के साथ अविच्छिन्नता अथवा क्रम के भाव का भी सम्बन्ध रहता है, क्योंकि किन्हीं वस्तुओं के बँधे हुये होने पर उनमें क्रम रहता है और बन्धन टूट जाने पर क्रम नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के भाव-सम्बन्ध से ही 'प्रबन्ध' शब्द का 'अविच्छिन्नता' अर्थ विकसित हुआ होगा। इसके पश्चात् 'प्रबन्ध' शब्द के 'अविच्छिन्नता' अर्थ से 'ऐसा कथन जिसमें अविच्छिन्न-क्रम हो'[5], 'साहित्यिक रचना', 'रचना',

---

१. प्रजासु पश्चात् प्रथितं तदाख्यया। कुमार० ५.७.

२. श्रमो नु तासां मदनो नु पप्रथे। किरात० ८.५३.

३. सुश्रुतसंहिता में 'नाल' के लिये 'गर्भनाडी-प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। देखिये, मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

४. क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणाम्—'यज्ञों के अनुष्ठान की अविच्छिन्नता के कारण' (रघु० ६.२३)।

५. अनुज्झितार्थसम्बधः प्रबन्धो दुरुदाहरः—'मुख्य प्रयोजन से सम्बन्ध न छोड़ने वाला और अविच्छिन्न-क्रम वाला कथन कठिनता से ही उपस्थित किया जाता है' (शिशु० २.७३)।

'योजना' आदि अर्थों का विकास हुआ। 'साहित्यिक रचना' अर्थ में 'प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग संस्कृत में पद्यमयी रचना[1], कथा-ग्रन्थ[2], नाटक[3] आदि सभी प्रकार की साहित्यिक रचनाओं के लिये पाया जाता है। 'साहित्यिक रचना' के सादृश्य पर ही किसी भी रचना अथवा योजना[4] को 'प्रबन्ध' कहा गया। वस्तुतः किसी रचना अथवा योजना में बन्धन और अविच्छिन्नता अवश्य होते हैं। किसी वस्तु अथवा कार्य की रचना में उसको बनाने वाली बहुत सी वस्तुओं को क्रम में करके लगाना अथवा बाँध देना होता है। कोई साहित्यिक रचना क्रमपूर्वक संयुक्त भावों का बन्धन ही होती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'प्रबन्ध' शब्द का 'व्यवस्था, इन्तज़ाम' अर्थ इस शब्द के 'रचना' अथवा 'योजना' अर्थ से ही विकसित हुआ है। 'प्रबन्ध' शब्द का 'व्यवस्था' अथवा 'इन्तज़ाम' अर्थ गुजराती[5], बंगला[6] तथा नेपाली[7] भाषाओं में भी पाया जाता है। कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में यह अर्थ नहीं पाया जाता। कन्नड़[8] में 'प्रबन्ध' शब्द के अर्थ 'अविच्छिन्नता', 'साहित्यिक रचना' आदि हैं। मलयालम[9] भाषा में भी

---

१. जयदेव ने अपने 'गीतगोविन्द' को 'प्रबन्ध' कहा है (एतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम्)। गीत० श्लोक २।

२. बाणभट्ट के पुत्र ने कादम्बरी के लिये 'कथा-प्रबन्ध' शब्द का प्रयोग किया है—

विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः। कादम्बरी (उत्तरभाग, श्लोक ४)।

३. आर्य, दृश्यतां तावत्प्रबन्धार्थः—'आर्य देखिये, ये तो नाटक की घटनायें हैं' (उत्तर० अङ्क ७)।

४. फलिता तावदस्माकं कपटप्रबन्धेन मनोरथसिद्धिः। हितोपदेश (मित्र-लाभ)।

५. बी० एन० मेहता : मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

६. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

७. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।

८. एफ़० किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।

९. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

'प्रबन्धम्' का अर्थ 'साहित्यिक रचना, मुख्यकर पद्यमयी रचना' है। तेलुगु[१] भाषा में 'प्रबन्धमु' का अर्थ 'पुस्तक' है तथा तमिल[२] में 'पिरपंतम्' (प्रबंध) शब्द के अर्थ 'पद्यमयी अथवा सङ्गीतमयी रचना', 'क्रमयुक्त वार्तालाप', 'वर्णन' आदि हैं। बंगला, उड़िया और कन्नड़ भाषाओं में 'प्रबन्ध' शब्द और मलयालम में 'प्रबन्धम्' शब्द 'निबन्ध, लेख' (essay) अर्थ में भी मिलता है।[३]

यह उल्लेखनीय है कि एक अन्य उदाहरण भी ऐसा पाया जाता है, जहाँ कि 'प्रबन्ध' शब्द के समान ही 'बन्धन' अर्थ वाले शब्द से 'व्यवस्था' अथवा 'इन्तज़ाम' अर्थ का विकास हुआ है। फ़ारसी भाषा के 'बन्दोबस्त' (bandu-basta) शब्द का मौलिक अर्थ 'बाँधना' (tying and binding) है,[४] किन्तु बाद में इस शब्द के 'कर अथवा लगान की व्यवस्था', 'इन्तज़ाम', 'सैनिक अनुशासन' आदि अर्थ विकसित हो गये[५]। 'इन्तज़ाम' अर्थ में 'बन्दोबस्त' शब्द आजकल भी उर्दू भाषा में प्रचलित है।

म्लान

हिन्दी में 'म्लान' शब्द का प्रयोग 'मुरझाया हुआ' और 'उदास' अर्थों में होता है। 'म्लान शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'म्लान' शब्द का मूल अर्थ था 'मुरझाया हुआ' (म्लै अथवा म्ला = 'मुरझाना' + क्त)। मूलतः इसका प्रयोग मुरझाये हुये पुष्प, पौधे आदि के लिये होता था। किन्तु कालान्तर में भाव-सादृश्य से आलङ्कारिक रूप में उदास व्यक्ति के मुख अथवा चेहरे आदि को भी 'म्लान' कहा जाने लगा।

विकास

हिन्दी में 'विकास' पुं० शब्द 'वृद्धि' अथवा 'विस्तार' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—शरीर का विकास, मस्तिष्क का विकास आदि)। 'विकास' शब्द का यह अर्थ सस्कृत में भी पाया जाता है।[६] किन्तु संस्कृत में 'विकास' पुं० शब्द

---

१. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

२. तमिल लेक्सीकन।

३. व्यवहारकोश।

४. यूल एण्ड बर्नेल : होब्सन-जोब्सन (bundo bust)।

५. स्टीनगैस : पर्शियन-इंगलिश डिक्शनरी।

६. परां कोटिं स्नेहे परिचयविकासादधिगते—'परिचय बढ़ जाने के कारण प्रेम के अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त होने पर' (उत्तर० ६.२८)।

का मौलिक अर्थ है—फूलों आदि का 'खिलना'[1]। वि पूर्वक √कस् धातु (जिससे कि 'विकास' शब्द बना है) का प्रयोग संस्कृत में अधिकतर पुष्प आदि के खिलने के लिये पाया जाता है, जैसे[2]—विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम्—'सूर्य के उदित होने पर कमल खिलता है' (मालती० १.२८; उत्तर० ६.१२)।

'विकास' शब्द के 'खिलना' अर्थ से ही भाव-सादृश्य से 'वृद्धि' अथवा 'विस्तार' अर्थ विकसित हो गया है। 'विकास' शब्द पहिले 'पुष्पों के खिलने' को लक्षित करता था, किन्तु बाद में भाव-सादृश्य से आलङ्कारिक रूप में सभी प्रकार की 'वृद्धि' अथवा 'विस्तार' के लिये इसका प्रयोग किया जाने लगा।

व्यथा

हिन्दी में 'व्यथा' स्त्री० शब्द 'मानसिक पीड़ा, दुःख' अर्थ में प्रचलित है। 'व्यथा' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'व्यथा' शब्द का प्रारम्भिक अर्थ था 'कम्पन, उत्तेजना'। 'व्यथा' शब्द √व्यथ् धातु से बना है, जिसका मूल अर्थ है 'हिलना, काँपना'[3]। ऋग्वेद में √व्यथ् धातु का प्रयोग इसी अर्थ में पाया जाता है, जैसे[4]—यः पृथिवीं व्यथमाना-मदृंहत्—'जिसने हिलती हुई पृथ्वी को दृढ़ कर दिया' (२.१२.२)। √व्यथ् धातु का अर्थ 'हिलना,काँपना' होने के कारण भाव-सादृश्य से मानसिक क्षेत्र में आलङ्कारिक रूप में मन में उत्तेजित होने को √व्यथ् धातु द्वारा प्रकट किया गया, क्योंकि मानसिक पीड़ा होने पर भी मन में एक प्रकार का तीव्र कम्पन अथवा उत्तेजना होती है। इस प्रकार 'व्यथा' शब्द का 'मानसिक पीड़ा, दुःख' अर्थ विकसित हुआ।[5]

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

२. चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्—'चन्द्रमा श्वेत कमलों के समूह को खिलाता है' (नीति० ७३)।

३. √व्यथ् धातु से सम्बद्ध गोथिक विदोन् का भी अर्थ 'हिलना, काँपना' ही है। √व्यथ् धातु से निष्पन्न 'विथुर' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में 'हिलने वाला' अर्थ में पाया जाता है।

४. अन्य उदाहरण देखिये—ऋग्वेद ६.५४.३ आदि।

५. क्षितीशचन्द्र चटर्जी : वैदिक सेलेक्शंस, पृष्ठ १६१.

व्यस्त, लीन, तन्मय, आकुल, व्याकुल, व्यग्र

हिन्दी में 'व्यस्त' वि० शब्द 'काम में लगा हुआ, संलग्न' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'व्यस्त' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। 'व्यस्त' शब्द वि-पूर्वक √अस् धातु से क्त प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में 'व्यस्त' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'क्षत-विक्षत' अथवा 'अवयवहीन' (कटे हुये अवयवों वाला) अर्थ में पाया जाता है, जैसे—

वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः।

'जिस प्रकार वीर्यहीन (वध्रि) मनुष्य पौरुषशाली मनुष्य की समानता करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है, उसी प्रकार वृत्र ने भी वृथा यत्न किया। अनेक स्थानों में क्षत-विक्षत (छिन्नावयव) होकर वृत्र पृथिवी पर गिर पड़ा' (ऋग्वेद १.३२.७)।

इसके अतिरिक्त संस्कृत में 'व्यस्त' शब्द का प्रयोग क्षिप्त[१], बिखरा हुआ, तितर-बितर[२], विभक्त, पृथक् किया हुआ[३], एक-एक कर विचार किया हुआ, पृथक्-पृथक्, एक-एक[४], एक[५], विस्तृत[६], घबड़ाया हुआ, व्याकुल, व्याप्त, किसी वस्तु के सब अवयवों में व्याप्त[७] आदि अर्थों में पाया जाता है।

'व्यस्त' शब्द का 'काममें लगा हुआ, संलग्न' अर्थ इस शब्द के 'व्याप्त, किसी वस्तु के सब अवयवों में व्याप्त' अर्थ से विकसित हुआ प्रतीत होता है। जब कोई व्यक्ति किसी कार्य में संलग्न होता है, तो उसका मन उस कार्य में पूर्ण रूप से व्याप्त रहता है, उसे अन्य बाह्य बातों का ध्यान नहीं रहता। इस कारण 'कार्य में संलग्न' व्यक्ति को पहिले आलङ्कारिक रूप में 'व्यस्त' (कार्य में

१. व्यस्तविस्तारिदोःखण्डपर्यासितक्ष्माधरम्। मालती० ५.२३.
२. एभिः समस्तैरपि नालमस्य किं पुनर्व्यस्तैः। उत्तर० अङ्क ५.
३. स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिन्दिवस्य ते। कुमार० २.८.
४. तान्सर्वानभिसन्दध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः।
व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च॥ मनु० ७.१५६.
५. तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने। कुमार० ५.७२.
६. वक्रपक्षो व्यस्तपुच्छो भवति। आपस्तम्ब-शुल्बसूत्र १५.२.
७. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

व्यस्त, inherent in or pervading all the several parts of any thing (in phil. opp. to sam-asta), penetrated, pervaded.

व्याप्त) कहा गया होगा। बाद में धीरे-धीरे आलङ्कारिक भाव लुप्त हो जाने पर 'संलग्न' ही 'व्यस्त' शब्द का सामान्य अर्थ समझा जाने लगा।

हिन्दी में 'व्यस्त' शब्द का 'बिखरा हुआ, तितर-बितर' अर्थ यद्यपि प्रचलित नहीं है, तथापि 'अस्त-व्यस्त' के प्रयोग में यह अर्थ विद्यमान है।

'व्यस्त' शब्द 'व्यस्त' रूप में बंगला, असमिया और उड़िया भाषाओं में भी 'संलग्न' अर्थ में जाता है।[1] मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं में यह अर्थ नहीं पाया जाता।

हिन्दी में 'संलग्न' (काम में लगा हुआ) अर्थ में प्रयुक्त **लीन** और **तन्मय** शब्दों का भी अर्थ इन शब्दों के आलङ्कारिक रूप में प्रयुक्त किये जाने से विकसित हुआ है। 'लीन' शब्द का मौलिक अर्थ है—'चिपटा हुआ, सटा हुआ, मिला हुआ'। 'तन्मय' शब्द का मौलिक अर्थ है—'उसी से बना हुआ, उसी में मिला हुआ, एकीभूत'।

संस्कृत में 'व्याप्त' से मिलते-जुलते भाव वाले कई अन्य शब्दों के भी 'संलग्न' अर्थ का विकास पाया जाता है। संस्कृत में **आकुल** शब्द का मौलिक अर्थ है 'भरा हुआ, परिपूर्ण'[2]। 'आकुल' शब्द के इस अर्थ से व्याप्त, अभिभूत, आक्रान्त अर्थ का विकास हुआ[3] और फिर उसके आलङ्कारिक रूप में प्रयुक्त किये जाने से 'संलग्न' अर्थ का विकास हुआ। संस्कृत में 'आकुल' शब्द का 'संलग्न' अर्थ में प्रयोग पाया जाता है, जैसे—

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला। शाकु० ४.१८.

संस्कृत में 'आकुल' शब्द के उपर्युक्त अर्थों के अतिरिक्त उद्विग्न, क्षुब्ध, व्याकुल आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। हिन्दी में 'आकुल' शब्द के उद्विग्न, व्याकुल आदि अर्थ ही प्रचलित हैं, परिपूर्ण, व्याप्त, आक्रान्त, संलग्न आदि अर्थ प्रचलित नहीं हैं।

संस्कृत में **व्याकुल** शब्द का भी मौलिक अर्थ 'पूर्ण रूप से भरा हुआ,

---

१. व्यवहारकोश।

२. प्रचलदूर्मिमालाकुलं (समुद्रम्)। नीति० २.४.
आलापकूतूहलाकुलतरे श्रोत्रे। अमरु० ८१.

३. यथा—हर्षाकुल, शोकाकुल, विस्मयाकुल, स्नेहाकुल आदि शब्दों में।

परिपूर्ण' ही है।[1] 'व्याकुल' शब्द के इसी अर्थ से 'संलग्न' अर्थ का विकास हुआ है। संस्कृत में 'व्याकुल' शब्द का 'संलग्न' अर्थ में प्रयोग मिलता है, जैसे—आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा—'या वह तुम्हें पक्षियों आदि को बलि देने के कार्य में संलग्न दिखाई पड़ जायगी' (मेघ० २.२२)।

संस्कृत में 'व्याकुल' शब्द के 'व्यग्र', 'बेचैन', 'भयभीत' आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। हिन्दी में 'व्याकुल' शब्द व्यग्र, बेचैन आदि अर्थों में ही प्रचलित है।

'संलग्न' होने के भाव का बहुधा 'व्याकुल' होने के भाव के साथ सम्बन्ध होता है। जो व्यक्ति अत्यधिक 'संलग्न' रहता है, उसमें व्यग्रता अथवा व्याकुलता का भाव भी रहता है। यही कारण है कि 'व्याकुल' अर्थ वाले शब्दों का बहुधा 'संलग्न' अर्थ में प्रयोग होने लगता है। ऊपर उदाहृत 'आकुल' और 'व्याकुल' शब्दों के व्यग्र, बेचैन, क्षुब्ध आदि अर्थ भी पाये जाते हैं और 'संलग्न' अर्थ भी। संस्कृत में **व्यग्र** शब्द का प्रयोग यद्यपि अधिकतर व्याकुल, परेशान, भयभीत आदि अर्थों में पाया जाता है, किन्तु बहुधा 'किसी कार्य में लीन' अर्थ में प्रयोग भी मिलता है, जैसे—वैवाहिकैः कौतुकसंविधानैर्गृहे गृहे व्यग्रपुरन्ध्रिवर्गम्—'विवाहोत्सव के आयोजनों से घर-घर में संलग्न स्त्रीवर्ग' (कुमार० ७.२)।

शोषण

हिन्दी में 'शोषण' पुं० शब्द, 'दुर्बल या अधीनस्थ के परिश्रम, आय आदि से अनुचित लाभ उठाना' (exploitation) अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'शोषण' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'शोषण' (शुष्+णिच्+ल्युट्) नपुं० शब्द का अर्थ है—'सोखना, सुखाना, चूसना'।

'दुर्बल या अधीनस्थ के परिश्रम, आय आदि से अनुचित लाभ उठाने' को 'शोषण' भाव-सादृश्य के आधार पर कहा जाने लगा है, क्योंकि दुर्बल या अधीनस्थ के परिश्रम, आय आदि से लाभ उठाना एक प्रकार से उसको चूसना ही है।

स्थगित

हिन्दी में 'स्थगित' वि० शब्द का अर्थ है 'जो कुछ समय के लिये रोक

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।
व्याकुल, entirely filled with or full of.

दिया गया हो' (मुलतवी)। किसी सभा आदि के कार्य-क्रम को कुछ समय के लिये रोक देने को 'स्थगित करना' कहा जाता है। 'स्थगित' शब्द √स्थग् धातु से क्त प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में 'स्थगित' वि० शब्द का प्रयोग अधिकतर 'ढका हुआ, आवृत' अर्थ में पाया जाता है[1], जैसे—उदूढवक्षःस्थगितैकदिङ्मुखः (किरात० १४.३१)।

मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में 'स्थगित' शब्द का 'रोका हुआ' (stopped, interrupted) अर्थ भी दिया है और भागवत-पुराण का निर्देश दिया है। अतः सम्भवतः 'स्थगित' शब्द का 'रोका हुआ' अथवा 'कुछ समय के लिये रोका हुआ' अर्थ सस्कृत में ही विकसित हो गया था। इतना स्पष्ट है कि 'स्थगित' शब्द के 'ढका हुआ' अर्थ से ही 'कुछ समय के लिये रोका हुआ' अर्थ का विकास हुआ है। वस्तुतः 'कुछ समय के लिये रोका हुआ' को पहिले भाव-सादृश्य से आलङ्कारिक रूप में 'स्थगित' (आवृत) कहा गया होगा। बाद में आलङ्कारिक भाव लुप्त हो जाने पर 'रोका हुआ' अथवा 'कुछ समय के लिये रोका हुआ' ही 'स्थगित' शब्द का सामान्य अर्थ समझा जाने लगा। आजकल हिन्दी तथा बंगला आदि भाषाओं में अंग्रेजी के postponed, adjorned आदि शब्दों के पर्यायवाची शब्द के रूप में 'स्थगित' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि √स्थग् धातु भारत-यूरोपीय है। कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी इससे सम्बद्ध क्रियायें अधिकतर 'ढकना' अथवा 'आच्छादित करना' अर्थ में ही पाई जाती हैं। सी० डी० बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में √स्थग् धातु का मूल भारत-यूरोपीय रूप *(s)teg माना है।[2] अधिकतर भारत-यूरोपीय भाषाओं में 'छत' के लिये steg से विकसित हुये शब्द पाये जाते हैं।[3] √स्थग्

---

१. संस्कृत में √स्थग् धातु का प्रयोग भी अधिकतर 'ढकना' अथवा 'आवृत करना' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि (उत्तर० ३.३८)।

२. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१२.३६), पृष्ठ ८४९.

३. ग्रीक stegos, tegos; लैटिन tēctum (>इटैलियन tetto, फ्रेंच

से सम्बद्ध लैटिन tego, डैनिश daekke, डच dekken और जर्मन decken धातुओं का अर्थ 'ढकना' अथवा 'आच्छादित करना' ही है। लैटिन में togatus और togata शब्दों का अर्थ 'वेश्या' है, जो कि toga (cover, आवरण) से बने हैं; एक विशिष्ट प्रकार का आवरण (toga) पहिनने के कारण ही उनको togatus अथवा togata कहा गया है।[१] अंग्रेज़ी का thatch शब्द भी √स्थग् धातु से सम्बद्ध है। thatch (संज्ञा) शब्द का अर्थ है— 'घास-फूँस, पुआल आदि जो मकानों की छतों को ढकने के काम में आती है' और thatch (क्रिया) का अर्थ है—'घास-फूँस आदि से ढकना'। thatch शब्द का उपर्युक्त अर्थ इसके मौलिक अर्थ 'ढकना' से ही विकसित हुआ है। अंग्रेज़ी का deck शब्द भी √स्थग् से सम्बद्ध है। deck का अर्थ है—ढकना, अलङ्कृत करना, सजाना, जहाज़ का तख्ता आदि।

हिन्दी का 'ढकना' शब्द भी √स्थग् से ही विकसित हुआ तद्भव शब्द है। 'ठग' शब्द भी √स्थग् से बने हुये 'स्थग'[२] शब्द से विकसित हुआ है, जिसका अर्थ हिन्दी में 'जो छल और धूर्तता से दूसरों का माल लेता हो' है।

स्फूर्ति

हिन्दी में 'स्फूर्ति' स्त्री० शब्द का अर्थ है—'किसी काम के लिये मन में होने वाला उत्साह, प्रेरणा'। संस्कृत में 'स्फूर्ति' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'स्फूर्ति' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'फड़कन, धड़कन'। इससे खिलना, प्राकट्य, स्मरण आदि अर्थों का विकास भी पाया जाता है। 'स्फूर्ति' शब्द √स्फुर् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में √स्फुर् धातु का प्रयोग फड़कना[३], स्पन्दन होना, हिलना[४], उत्तेजित होना[५], आगे बढ़ना,

---

डैनिश tag; स्वीडिश tak; आधुनिक अंग्रेज़ी thatch; डच dak; प्राचीन हाई जर्मन dah, मध्यकालीन हाई जर्मन, आधुनिक हाई जर्मन dach (> पोलिश dach); लिथुआनियन stogas; प्राचीन प्रशियन stogis. वही, पृष्ठ ४७३.

१. कैसेल्स लैटिन डिक्शनरी।

२. पट्टः पाटविको धूर्तः स्थगः। त्रिकाण्डशेष ३.१४.

३. शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।

शाकु० १.१६.

४. स्फुरदधरनासापुटतया। उत्तर० १.२९.

५. हतं पृथिव्यां करुणं स्फुरन्तम्। रामायण।

उछलना[१], उदित होना, निकलना[२], दिखाई पड़ना, प्रकट होना[३], चमकना[४], स्मरण होना आदि अर्थों में पाया जाता है।

'स्फूर्ति' शब्द का 'किसी कार्य के लिये मन में होने वाला उत्साह' अथवा 'प्रेरणा' अर्थ इस शब्द के 'फड़कन' अथवा 'स्पन्दन' अर्थ से ही विकसित हुआ है। 'फड़कन' अथवा 'स्पन्दन' एक भौतिक क्रिया है, जोकि भौतिक पदार्थों में ही होती है, जैसे भुजा आदि का फड़कना। पहिले किसी काम के लिये मन में होने वाले उत्साह अथवा प्रेरणा को 'स्फूर्ति' भाव-सादृश्य के आधार पर कहा गया होगा, क्योंकि किसी कार्य के लिये मन में 'उत्साह' अथवा 'प्रेरणा' होने पर मन में एक प्रकार का स्पन्दन सा होता है। आजकल हिन्दी भाषा में 'स्फूर्ति' शब्द इसी अर्थ में प्रचलित है; फड़कन, धड़कन, प्राकट्य, स्मरण आदि अर्थ सर्वथा लुप्त हो गये हैं। 'स्फूर्ति' शब्द का 'किसी काम के लिये मन में होने वाला उत्साह' अथवा 'प्रेरणा' अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है।[५] तमिल में 'स्पूर्त्ति' (स्फूर्ति) शब्द का 'स्मृति' अर्थ पाया जाता है।[६]

यह उल्लेखनीय है कि 'स्फूर्ति' शब्द में पाई जाने वाली √स्फुर् धातु भारत-यूरोपीय है। √स्फुर् से सम्बद्ध शब्द कतिपय भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी पाये जाते हैं, जैसे—ग्रीक spairo, लैटिन sperno (पृथक् करना, हटाना, अस्वीकार करना, घृणा करना, घृणापूर्वक अस्वीकार करना आदि), लैटिन spero (किसी अभिलषित वस्तु की आशा करना, आशा करना)[७]; जर्मन sporo, spor, sporn (sporn = एड़, उकसाव, प्रेरणा आदि); अंग्रेज़ी spur संज्ञा (आर जो घुड़सवार की एड़ में होती है, उकसाव, प्रेरणा आदि), spur (आर लगाना, ठोकर लगाना, प्रेरित करना, शीघ्रता करना आदि), spurn (ठोकर मारना, तिरस्कार करना, घृणा करना) spurious (कृत्रिम, कल्पित, दोगला, मिथ्या आदि), ऐंग्लो सैक्शन spura, spora; आइसलैंडिक spori; डैनिश spore आदि।

---

१. पुस्फुरुर्वृषभाः परं। भट्टि० १४.६.

२. धर्मतः स्फुरति निर्मलं यशः। कुमार० ३.६८.

३. मुखात्स्फुरन्तीं को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्। मुद्रा० १.८.

४. स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे। रघु० ३.६०.

५. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

६. तमिल लेक्सीकन।

७. कैसेल्स लैटिन डिक्शनरी।

यहाँ पर यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि जर्मन भाषा के sporn और अंग्रेज़ी के spur शब्द के 'उकसाव' और 'प्रेरणा' आदि अर्थ भी संस्कृत के 'स्फूर्ति' शब्द के 'किसी काम के लिये मन में होने वाला उत्साह' अथवा 'प्रेरणा' अर्थ के समान ही विकसित हुये हैं।

अध्याय ७

विविध आलङ्कारिक प्रयोग

भावाभिव्यक्ति में आलङ्कारिक प्रयोगों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वक्ता या लेखक अपने भावों को अधिक से अधिक स्पष्ट, सुन्दर एवं प्रभावशाली रूप में व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। इसके लिये वह बहुधा आलङ्कारिक प्रयोगों का सहारा लेता है। प्रारम्भ में जब कोई वक्ता या लेखक किसी शब्द का प्रयोग उसके शाब्दिक अर्थ से भिन्न अर्थ में आलङ्कारिक रूप में करता है तो उसके आलङ्कारिक रूप का ध्यान रहता है, किन्तु कालान्तर में निरन्तर प्रयोग से आलङ्कारिक भाव लुप्त हो जाता है और वह भिन्न अर्थ ही उस शब्द का सामान्य अर्थ बन जाता है। आलङ्कारिक प्रयोगों की बहुत सी श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं। आलङ्कारिक प्रयोग अधिकतर भाव-सादृश्य पर आधारित होते हैं। काव्यशास्त्र में वर्णित अलङ्कार भी इनके अन्तर्गत आ जाते हैं। आलङ्कारिक प्रयोगों से शब्दों में अर्थ-परिवर्तन बहुत शीघ्र होता है। ब्रेआल ने metaphor के विषय में कहा है—"Metaphor changes the meaning of words and creates new expressions on the spur of the moment."[१] अन्य अलङ्कार भी शब्दों के अर्थों में शीघ्र परिवर्तन उपस्थित करते हैं। प्रो० सईस ने भाषा के व्यवहार में उपमाओं के प्रयोगातिशय का उल्लेख करते हुये कहा है—"Language is the storehouse of worn-out similes, a living testimony to the instinct of man to find likeness in all he sees."[२] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भाषा के व्यवहार में आलङ्कारिक प्रयोगों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है और उनसे भाषा की शब्दावली के भाव-पक्ष की बहुत अधिक वृद्धि होती है।

संस्कृत भाषा की शब्दावली में असंख्य शब्द ऐसे हैं, जिनके अर्थों का विकास आलङ्कारिक प्रयोग के कारण हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पहिले अध्यायों

१. Essay on Semantics, p. 122.

२. इण्ट्रोडक्शन टु दि साइंस ऑफ़ लैंग्वेज, वोल्यूम १, पृष्ठ ३४०.

में भी जो अर्थ-परिवर्तन दिखाये गये हैं, उनमें अनेक अर्थ-परिवर्तन आलङ्कारिक प्रयोग के कारण हुये हैं। यहाँ कुछ ऐसे शब्दों के अर्थ-विकास का विवेचन किया जा रहा है, जिनमें कुछ विशिष्ट आलङ्कारिक प्रयोग दिखाई पड़ते हैं।

इतिश्री

हिन्दी में 'इतिश्री'[1] स्त्री० शब्द 'समाप्ति, अन्त' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—अमुक कार्य की इतिश्री हो गयी है)। संस्कृत में 'इतिश्री' का एक शब्द के रूप में प्रयोग नहीं पाया जाता, इसमें आये दोनों शब्दों का पृथक्-पृथक् प्रयोग पाया जाता है। संस्कृत में 'इति' शब्द के अर्थ हैं—इस प्रकार, इसलिये, समाप्ति आदि और 'श्री' शब्द के अर्थ हैं—धन, आभा, लक्ष्मी, आदरसूचक शब्द आदि।

'इतिश्री' शब्द का 'समाप्ति' अर्थ लगभग उसी प्रक्रिया से विकसित हुआ है, जिससे कि 'श्रीगणेश' शब्द का 'प्रारम्भ' अर्थ विकसित हुआ है। संस्कृत के प्राचीन लेखकों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे अपना ग्रन्थ समाप्त हो जाने पर अन्त में 'इति' से युक्त एक समाप्ति-सूचक वाक्य लिखते थे, जैसे—'इतिश्रीविश्वनाथपञ्चाननकृता कारिकावली समाप्ता' (श्री विश्वनाथपञ्चानन द्वारा रचित कारिकावली समाप्त हुई), 'इतिश्रीकेशव-मिश्रविरचिता तर्कभाषा समाप्ता' (श्रीकेशवमिश्र द्वारा रचित तर्कभाषा समाप्त हुई)। ग्रन्थ की समाप्ति पर इस प्रकार लिखे जाने वाले वाक्य में 'इति' शब्द 'इस प्रकार' अर्थ में होता है और 'श्री' एक आदर-सूचक शब्द है, जो ग्रन्थकर्त्ता के अथवा पुस्तक के नाम के पहले लगा होता है। ग्रन्थ की समाप्ति पर 'इतिश्री.........' आदि वाक्य लिखा जाने के कारण उसके साथ समाप्ति का भाव भी जुड़ गया और कालान्तर में 'समाप्ति' को आलङ्कारिक रूप में समाप्ति-सूचक वाक्य के संक्षिप्त रूप 'इतिश्री' द्वारा ही लक्षित किया जाने लगा। यह स्पष्ट है कि पहिले केवल ग्रन्थों की 'समाप्ति' के लिये ही 'इतिश्री' शब्द का प्रयोग किया जाता होगा (जैसे अमुक ग्रन्थ की इतिश्री हो गयी है)। किन्तु बाद में इसके अर्थ में विस्तार हो गया और सभी प्रकार के कार्यों की 'समाप्ति' के लिये 'इतिश्री' शब्द का प्रयोग

---

१. हिन्दी के हिन्दी शब्द सागर, भाषा शब्द कोश और प्रामाणिक हिन्दी कोश आदि कोशों में 'इतिश्री' शब्द नहीं दिया हुआ है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'समाप्ति' अर्थ में 'इतिश्री' शब्द आधुनिक काल में ही प्रचलित हुआ है।

सामान्य रूप में किया जाने लगा ।

यह उल्लेखनीय है कि बहुधा **इति** शब्द का प्रयोग भी 'समाप्ति' अर्थ में किया जाता है । 'इति' शब्द का 'समाप्ति' अर्थ संस्कृत में ही विकसित पाया जाता है । संस्कृत के कतिपय प्राचीन कोशों में 'इति' शब्द के इस अर्थ के उल्लेख मिलते हैं, जैसे 'इति हेतु-प्रकरण-प्रकर्षऽऽदि-समाप्तिषु' (अमर कोश ३.२४५); 'इतिशब्दः स्मृतो हेतौ प्रकारादिसमाप्तिषु' (हलायुधकोश ८८७) । यह स्पष्ट है कि 'इति' शब्द का भी 'समाप्ति' अर्थ 'इतिश्री' के समान ही इसके आलङ्कारिक रूप में प्रयोग के कारण विकसित हुआ है ।

उत्तीर्ण, पारङ्गत आदि

हिन्दी में 'उत्तीर्ण' वि० शब्द का अर्थ है 'परीक्षा में सफल' (पास) । संस्कृत में 'उत्तीर्ण' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता । संस्कृत में 'उत्तीर्ण' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'पार गया हुआ'[१], 'निकला हुआ'[२] आदि अर्थों में पाया जाता है । यद्यपि मोनियर विलियम्स और आप्टे आदि ने अपने कोशों में 'उत्तीर्ण' शब्द के 'जिसने अपनी शिक्षा समाप्त कर ली हो', 'अनुभवी', 'चतुर' आदि अर्थ भी दिये हैं, तथापि इन अर्थों से 'उत्तीर्ण' शब्द का वर्तमान भाव 'परीक्षा में पास' प्रकट नहीं होता । यह अर्थ आधुनिक काल में विकसित हुआ है । मोनियर विलियम्स और आप्टे ने 'उत्तीर्ण' शब्द के उपर्युक्त अर्थ देते हुये इन अर्थों में 'उत्तीर्ण' शब्द के प्रयोग के विषय में किसी ग्रन्थ का निर्देश नहीं दिया । अतः 'उत्तीर्ण' शब्द के ये अर्थ भी अधिक प्राचीन नहीं प्रतीत होते । ऐसा प्रतीत होता है कि 'उत्तीर्ण' शब्द का मौलिक अर्थ 'पार गया हुआ' होने के कारण 'जिसने शिक्षा समाप्त कर ली हो' उसे आलङ्कारिक रूप में 'उत्तीर्ण' कहा जाने लगा और बाद में आलङ्कारिक भाव से ही 'परीक्षा में पास' को भी 'उत्तीर्ण' कहा गया । 'परीक्षा में पास' के लिये 'उत्तीर्ण' शब्द का प्रयोग करने में परीक्षा रूपी सागर से पार होने का भाव रहा होगा ।

'उत्तीर्ण' शब्द का 'परीक्षा में पास' अर्थ गुजराती तथा बंगला भाषा में भी पाया जाता है ।

---

१. दिष्ट्या भो व्यसनमहार्णवादपारादुत्तीर्णं गुणधृतया सुशीलवत्या । मृच्छ० १०. ४९.

२. स पल्लोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि । रघु० २.१७.

यह उल्लेखनीय है कि 'उत्तीर्ण' शब्द के मोनियर विलियम्स तथा आप्टे द्वारा दिये हुये **'अनुभवी'** और 'चतुर' अर्थ भी इस शब्द के 'पार गया हुआ' अर्थ से ही आलङ्कारिक प्रयोग के कारण विकसित हुये हैं। संस्कृत में **'पारङ्गत'** शब्द के भी 'चतुर'[१] (किसी विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने वाला), 'प्रकाण्ड विद्वान्' आदि अर्थ इस शब्द के 'पार गया हुआ' अर्थ से आलङ्कारिक प्रयोग के कारण ही विकसित हुये हैं। संस्कृत में **पारग**[२] (जिसका मौलिक अर्थ है 'पार गया हुआ') तथा **पारदृश्वन्**[३] (जिसका मौलिक अर्थ है 'पार तक देखने वाला') शब्दों के भी 'पूर्ण ज्ञाता', 'विद्वान्' आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। इसी प्रकार संस्कृत में मूलतः 'पार जाना' अर्थ वाले **'पारायण'** तथा 'पार ले जाना' अर्थ वाले **'पारण'** शब्दों के 'पढ़ना', 'भली-भाँति अध्ययन करना' आदि अर्थों का विकास हुआ है।

कटिबद्ध

हिन्दी में 'कटिबद्ध' वि० शब्द 'तैयार' अर्थ में प्रचलित है। 'कटिबद्ध' शब्द का प्रयोग संस्कृत में नहीं पाया जाता। मोनियर विलियम्स तथा आप्टे आदि के कोशों में भी यह शब्द नहीं दिया हुआ है। अतः यह स्पष्ट है कि यह शब्द आधुनिक काल में ही बनाया गया है।

'कटिबद्ध' शब्द का मौलिक अर्थ है—'कटि है बँधी हुई जिसकी'। प्राचीन काल में युद्ध में जाने के लिये तैयार होने में कटि-भाग को बाँधना आवश्यक होता था। अतः किसी कार्य के लिये 'तैयार' को पहिले आलङ्कारिक रूप में 'कटिबद्ध' कहा गया होगा। संस्कृत में **बद्धपरिकर** वि० शब्द का प्रयोग 'तैयार' अर्थ में और 'परिकरं बन्ध्[४] अथवा कृ' का प्रयोग 'तैयार होना' अर्थ में पाया जाता है। 'बद्धपरिकर' शब्द का मौलिक अर्थ है—'फेंट है बँधा हुआ जिसका'। इसी प्रकार 'परिकरं बन्ध्' का मूल अर्थ है 'फेंट बाँधना' और 'परिकरं कृ' का भी अर्थ 'फेंट करना अर्थात् बाँधना' ही है। लड़ने के लिये तैयार होने में कटि-भाग को बाँधे जाने के कारण ही 'कटिबद्ध' शब्द के समान ही आलङ्कारिक रूप में 'तैयार' के लिये 'बद्धपरिकर' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ होगा।

---

१. सकलशास्त्रपारङ्गतः। पञ्च० १.

२. अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः। याज्ञ० १.१११.

३. गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम्। रघु० ५.२४.

४. योऽयं बद्धो युधि परिकरस्तेन धिग्वो धिगस्मान्। उत्तर० ५.१२.

इसी प्रकार हिन्दी में 'तैयार होना' के लिये आलङ्कारिक रूप में 'कमर कसना' मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। फ़ारसी भाषा में 'कमर' शब्द के 'किसी वस्तु का मध्य-भाग', 'शरीर का मध्य-भाग', 'कटि', 'पर्वत का मध्य-भाग' आदि अर्थ हैं।[१] 'कमर कसना' मुहावरा फ़ारसी के 'कमर कशीदन' से विकसित हुआ प्रतीत होता है, जिसका मौलिक अर्थ है—'किसी अभिलषित वस्तु अथवा इससे भी अधिक किसी बहुमूल्य पदार्थ की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने के लिये शरीर के मध्य-भाग (कटि) को कसना'[२]। इसी प्रकार फ़ारसी में 'कमर बस्तन' (जिसका मौलिक अर्थ है—'कटिभाग को कसना') का अर्थ आलङ्कारिक रूप में प्रयोग के कारण 'किसी कार्य को करने के लिये तैयार होना' विकसित हो गया है।[३]

कर्णधार

हिन्दी में 'कर्णधार' पुं० शब्द का अर्थ है—'वह जो कोई काम चलाता हो, नेता' (जैसे—जवाहरलाल नेहरू हमारे देश के कुशल कर्णधार थे)। संस्कृत में 'कर्णधार' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'कर्णधार' शब्द का मौलिक अर्थ है—'नाविक, मल्लाह' (कर्ण='जहाज़ या नाव की पतवार'; धार='धारण करने वाला')।

संस्कृत में 'नाविक' अर्थ में 'कर्णधार' शब्द का प्रयोग मिलता है, जैसे—

यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ्नेता ततः प्रजा।
अकर्णधारा जलधौ विप्लवेतेह नौरिव॥ हितोपदेश ३.२.

हिन्दी में 'कर्णधार' शब्द का 'वह जो काम चलाता हो' अथवा 'नेता' अर्थ इस शब्द के 'नाविक' अर्थ से विकसित हुआ है। पहिले किसी ऐसे व्यक्ति को, जो किसी संस्था, समाज अथवा देश का प्रमुख कार्यवाहक हो, आलङ्कारिक

---

१. Kamar (Zend. kamara), the middle of any thing, the waist; loins; a girdle, zone, belt; the middle of mountain etc. Steingass, F.: Persian-English Dictionary.

२. Kamar kashidan, to draw the belt tight in order to strive for the attainment of a desired object or of something still more valuable. Ibid.

३. Kamar bastan, to put round the waist; to fasten the belt, tie the girdle; (met.) to prepare for action, to engage heart and soul in business, etc. Ibid.

रूप में 'कर्णधार' कहा गया होगा। 'अमुक व्यक्ति हमारे राष्ट्र के कर्णधार हैं' इसका भाव यह है कि जिस प्रकार नाविक किसी नाव को खेने वाला होता है, उसी प्रकार वह व्यक्ति हमारे राष्ट्र का सञ्चालन अथवा नेतृत्व करने वाले हैं। 'नाविक' के सादृश्य से 'किसी संस्था, समाज अथवा देश का काम चलाने वाले व्यक्ति' को 'कर्णधार' कहा गया। संस्कृत में यद्यपि 'कर्णधार' शब्द का 'काम चलाने वाला अथवा नेता' अर्थ नहीं पाया जाता, तथापि 'नाविक' अर्थ में ही 'कर्णधार' शब्द का आलङ्कारिक रूप में प्रयोग पाया जाता है, जैसे—अविनयनौकर्णधारकर्ण—'अविनय-रूपी नौका का नाविक कर्ण' (वेणी० अङ्क ४)।

कूपमण्डूक

हिन्दी में 'कूपमण्डूक' पुं० शब्द उस व्यक्ति के लिये व्यवहृत होता है, जिसके ज्ञान की सीमा बहुत सङ्कुचित हो, जो केवल अपने आस-पास की बातों की ही जानकारी रखता हो, जिसे संसार का अनुभव न हो। संस्कृत में भी 'कूपमण्डूक' पुं० शब्द का प्रयोग इस अर्थ में पाया जाता है। 'कूपमण्डूक' का वास्तविक अर्थ है—'कुएँ का मेंढक'। कुएँ का मेंढक कुएँ को ही सारा संसार समझता है, बाहर के संसार की उसे कोई जानकारी नहीं होती। अतः पहिले ऐसे व्यक्ति को जिसके ज्ञान की सीमा बहुत सङ्कुचित हो, आलङ्कारिक रूप में 'कूपमण्डूक' कहा गया होगा। बाद में यह ही उसका सामान्य अर्थ बन गया। 'कूपमण्डूक' शब्द में आलङ्कारिक प्रयोग का भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। संस्कृत में 'कूपकच्छप' पुं० (जिसका मूल अर्थ है—'कुएँ का कछुवा') शब्द भी इसी अर्थ में पाया जाता है।

जटिल

हिन्दी में 'जटिल' वि० शब्द 'दुरूह' अथवा 'दुर्बोध' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—यह बड़ा जटिल प्रश्न है)। संस्कृत में 'जटिल' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'जटिल' वि० शब्द का मौलिक अर्थ है 'जटा वाला' (जटा अस्त्यर्थे इलच्)। प्राचीन काल में ब्रह्मचारी अथवा सन्यासी लोग जटा रक्खा करते थे, अतः जटा वाला होने के कारण उनको 'जटिल' कह दिया जाता था। संस्कृत में 'ब्रह्मचारी' के लिये 'जटिल' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है,

जैसे[१]—विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनम्—'कोई जटाधारी ब्रह्मचारी तपोवन में प्रविष्ट हुआ' (कुमार० ५.३०)।

संस्कृत में 'जटिल' शब्द के 'जटायुक्त' अर्थ से 'उलझा हुआ', 'सघन' आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। जटायें प्रायः उलझी हुई और सघन होती हैं, अतः उनके सादृश्य से किन्हीं भी उलझी हुई और सघन वस्तुओं के लिये विशेषण के रूप में 'जटिल' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। संस्कृत में 'जटिल' शब्द का प्रयोग बहुधा बालों के वाचक शब्दों के विशेषण के रूप में पाया जाता है।[२]

भाव-सादृश्य से ही किसी दुरूह अर्थात् ऐसी उलझन वाली पेचीदा बात को, जिसका करना अथवा समझना कठिन हो, आलङ्कारिक रूप में 'जटिल' कहा जाने लगा। आजकल हिन्दी में 'जटिल' शब्द 'दुरूह' अथवा 'दुर्बोध' अर्थ में ही प्रचलित है, 'जटायुक्त', 'ब्रह्मचारी', 'सघन' आदि अर्थ नहीं पाये जाते।

'जटिल' शब्द का 'दुरूह' अथवा 'दुर्बोध' अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है। 'जटिल' शब्द के मोल्सवर्थ के अनुसार मराठी भाषा में 'जटायुक्त' (शिव आदि के लिये प्रयुक्त), मेहता के अनुसार गुजराती भाषा में 'सन्यासी', 'ब्रह्मचारी', टर्नर के अनुसार नेपाली भाषा में 'लम्बे और उलझे बालों वाला' (सन्यासी के लिये प्रयुक्त), किटेल के अनुसार कन्नड़ भाषा में 'जटायुक्त' तथा तमिल लेक्सीकन के अनुसार तमिल भाषा में 'चटिलम्' शब्द के 'सघनता' और 'घोड़ा' (गर्दन पर अयाल होने के कारण) आदि अर्थ मिलते हैं।

तिलाञ्जलि

हिन्दी में 'तिलाञ्जलि' स्त्री० शब्द 'सदा के लिये परित्याग करने का संकल्प करना अथवा परित्याग करना' अर्थ में प्रचलित है। 'तिलाञ्जलि देना'

---

१. जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा।
याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत्॥ मनु० ३.१५१.
'वेदाध्ययन-रहित ब्रह्मचारी, दुर्बल, जुआरी और जो समूह के लिये यज्ञ करते हैं, उनको श्राद्ध में भोजन नहीं कराना चाहिये'।

२. अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान्कुटिलालकान् (भागवत ३.३३.१४); इसी प्रकार 'जाल' के सम्बन्ध में 'जटिल' शब्द का प्रयोग देखिये—विजानन्तोऽप्येतान् वयमिह विपज्जालजटिलान् न मुञ्चामः (शान्ति० १.८)।

एक मुहावरा बन गया है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु अथवा कार्य को बिल्कुल छोड़ देता है, तो वह कहता है कि मैंने अमुक वस्तु अथवा कार्य को 'तिलाञ्जलि' दे दी है। 'तिलाञ्जलि' शब्द का प्रयोग संस्कृत में नहीं पाया जाता।

'तिलाञ्जलि' शब्द का मौलिक अर्थ है 'किसी के मरने पर अञ्जलि में जल और तिल लेकर उसके नाम से छोड़ना'। यह क्रिया मृतक-संस्कार का एक अङ्ग है और हिन्दुओं में माता, पिता आदि के मरने पर की जाती है।[१] किसी के मरने पर जीवित सम्बन्धियों का मृतक से साथ छूट जाता है, जिसका उन्हें अत्यन्त दुःख होता है। अतः ऐसी अवस्था में जब किसी को दुःख के साथ किसी को छोड़ना पड़े, पहिले आलङ्कारिक रूप में कहा गया होगा कि 'मैंने उसे तिलाञ्जलि दे दी है'। यह भावाभिव्यक्ति उसी प्रकार की है, जैसे कि कोई माता अथवा पिता अपने पुत्र से असन्तुष्ट होने के कारण सम्बन्ध विच्छिन्न होने पर बहुधा दुःखपूर्वक कह देता है कि 'हमारी तरफ से तो वह मर गया', 'हमने तो उस पर आखत डाल दिये।'

यह स्पष्ट है कि पहिले 'तिलाञ्जलि देना' मुहावरे का प्रयोग 'छोड़ देना' अर्थ में किसी प्रिय-जन का साथ छोड़ने के लिये ही किया जाता होगा, बाद में किसी भी कार्य, वस्तु, विचार आदि को छोड़ने के लिये भी 'तिलाञ्जलि देना' मुहावरे का प्रयोग होने लगा।

मृतक को तिल-मिश्रित जल अर्पित करने की क्रिया के लिये संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में 'तिलाञ्जलि' शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता, इस अवसर पर दिये जाने वाले तिल-मिश्रित जल के लिये 'तिलाप्'[२], 'तिलाम्बु'[३] और

---

१. हिन्दुओं में मृतक को 'तिलाञ्जलि' देने का कारण यह धारणा है कि मरने के दस दिन बाद तक प्रति-दिन तिलोदक (अर्थात् तिलाञ्जलि) और पिण्ड आदि देने से मृतक का भोगदेह बनता है, जिससे कि प्रेतावस्था से छुटकारा मिल जाता है। जिसके मरने पर तिलोदक और पिण्ड आदि नहीं दिये जाते; वह सदैव के लिये प्रेतावस्था में ही रह जाता है। काणे : हिस्ट्री ऑफ़ धर्म-शास्त्र, वोल्यूम ४, पृष्ठ २६२.

२. एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः। भागवत १०.१२.१५.

३. तीर्थसमवेऽप्यपिबत्तिलाम्बु। भागवत ७.८.४५.

'तिलोदक'[1] शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। तिल और जल को अञ्जलि में लेकर अर्पित किये जाने के कारण ही हिन्दी में इस क्रिया को 'तिलाञ्जलि' कहा जाने लगा है। मराठी[2] भाषा में 'तिलाञ्जलि' शब्द का 'छोड़ देना' अर्थ पाया जाता है। बंगला भाषा में 'तिलाञ्जलि' शब्द का अर्थ 'विदाई' (farewell) है[3]।

पिण्ड

हिन्दी में 'पिण्ड' पुं० शब्द के 'ठोस गोल पदार्थ', 'श्राद्ध में पितरों को दिया जाने वाला चावल, आटे आदि का गोल लौंदा' आदि अर्थ तो पाये ही जाते हैं, इनके अतिरिक्त एक अन्य विशिष्ट अर्थ में भी 'पिण्ड' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'साथ रहकर या पीछे लगकर तंग करने से विरत होने' को 'पिण्ड छोड़ना' और 'साथ रहकर या पीछे लगकर तंग किये जाने से छूटने' को 'पिण्ड छूटना' कहा जाता है। इन दोनों मुहावरों में उपलब्ध 'पिण्ड' शब्द का अर्थ 'पितरों को दिया जाने वाला चावल, आटे आदि का गोला' अर्थ से विकसित हुआ है। किसी व्यवित के मरने पर धर्मशास्त्र के विधान के अनुसार उसके पुत्र आदि द्वारा तिलोदक और पिण्ड आदि अर्पित किये जाते हैं। यह माना जाता है कि दस दिन तक तिलोदक और पिण्ड आदि अर्पित करने से मृत व्यक्ति का भोगदेह बनता है और प्रेतावस्था से छुटकारा मिलता है। जिसके मरने पर पिण्ड आदि अर्पित नहीं किये जाते और सोलह श्राद्ध नहीं किये जाते, वह सदैव प्रेतावस्था में ही रह जाता है।[4] मृत व्यक्ति को श्राद्ध, पिण्ड आदि देने से, देने वाले का उसके साथ 'पिण्ड-सम्बन्ध' माना जाता है। मोनियर विलियम्स और आप्टे के कोशों में पिण्ड-सम्बन्ध शब्द इसी अर्थ में मिलता है। मोनियर विलियम्स ने इसके प्रयोग के विषय में गौतमधर्मसूत्र का निर्देश दिया है। मोनियर विलियम्स ने श्राद्ध, पिण्ड आदि ग्रहण करने के अधिकारी के लिये 'पिण्ड-सम्बन्धिन्' शब्द भी दिया है और इसके लिये मार्कण्डेय-पुराण का निर्देश दिया है। धर्मशास्त्र में इस बात का विधान मिलता है कि केवल तीन पूर्वज (पिता, पितामह और प्रपितामह)

१. तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम् (मनु० ३.२२३); शाकु० अङ्क ३.

२. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

३. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

४. पी० वी० काणे : हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र, वोल्यूम ४, पृष्ठ २६२-६६; राजबलि पाण्डे : हिन्दु संस्कार, पृष्ठ ४६४-६८.

ही पिण्ड ग्रहण करने के अधिकारी होते हैं और उनके आगे के पूर्वज (पिता के प्रपितामह, पितामह के प्रपितामह और प्रपितामह के प्रपितामह) लेपभागी (अर्थात् पिण्ड देने के बाद हाथ में लगे हुये अंशों के अधिकारी) होते हैं।[1] इस प्रकार तीन पूर्वजों को ही पिण्ड दिये जाते हैं और शेष के साथ पिण्ड-सम्बन्ध नहीं रहता। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि श्राद्ध, पिण्ड आदि देने के सम्बन्ध से छूटने को ही पहिले 'पिण्ड छूटना' कहा गया होगा। यह सम्बन्ध ऐसा है कि छुड़ाये से नहीं छूटता। धर्मशास्त्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का यह आवश्यक कर्तव्य होता है कि वह अपने पूर्वजों को श्राद्ध और पिण्ड आदि अर्पित करे। मोनियर विलियम्स और आप्टे के कोशों में एक 'पिण्ड-निवृत्ति' शब्द भी मिलता है, जिसका अर्थ है—'श्राद्ध देने के सम्बन्ध की समाप्ति' (cessation of relationship by the śrāddha oblations)। मोनियर विलियम्स ने इस शब्द के लिये भी गौतमधर्मसूत्र का निर्देश दिया है। संस्कृत में 'पिण्ड-निवृत्ति' शब्द के पाये जाने से इस बात की पुष्टि होती है कि श्राद्ध, पिण्ड आदि देने के सम्बन्ध से छूटने के सादृश्य से किसी के द्वारा साथ रहकर या पीछे लगकर तंग किये जाने से छूटने के लिये 'पिण्ड छूटना' मुहावरे का प्रयोग आलङ्कारिक रूप में प्रचलित हुआ। 'पिण्ड' शब्द के वर्तमान अर्थ के विकास से पिण्ड आदि देने के धार्मिक विधान से लोगों के तंग आने की भावना अथवा उसके प्रति अनास्था भी प्रकट होती है।

बलिदान

हिन्दी में **'बलिदान' पुं०** शब्द अधिकतर 'न्यौछावर' अथवा 'उत्सर्ग' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में सैंकड़ों देश-भक्तों ने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया)। 'बलिदान' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'बलिदान' नपुं० शब्द का अर्थ है—'किसी देवता को भेंट चढ़ाना' (विष्णु को चावल, दूध और फलों आदि की भेंट तथा शिव और दुर्गा को जीवित प्राणियों की भेंट), 'सभी जीवों को अन्न की भेंट'[2]। हिन्दी में भी 'बलिदान' शब्द का 'किसी देवता को भेंट चढ़ाना, विशेषकर बकरे आदि काटकर चढ़ाना' अर्थ पाया जाता है। किसी देवता को भेंट उसके प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के लिये चढ़ाई जाती है। इसी भाव-सादृश्य से किसी शुभ कार्य के लिये भक्तिपूर्वक अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को आलङ्कारिक रूप में

---

१. लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः। मत्स्य० १८.१९.

२. **मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।**

'बलिदान' कहा गया। त्याग के भाव की उत्कटता को प्रकट करने के लिये ही 'बलिदान' शब्द का इस प्रकार आलङ्कारिक रूप में प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

हिन्दी में 'न्यौछावर होना' अर्थ में 'बलि जाना', 'बलिहारी जाना', 'बलि-बलि जाना' आदि मुहावरों का प्रयोग भी पाया जाता है। किसी बच्चे के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हुये इस प्रकार के मुहावरों का प्रयोग प्रायः स्त्रियाँ किया करती हैं।

'बलिदान' शब्द का 'न्यौछावर' अर्थ आधुनिक काल में ही विकसित हुआ है। हिन्दी शब्द सागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश और नालन्दा विशाल शब्द सागर आदि हिन्दी के कोशों में यह अर्थ नहीं दिया हुआ है। मेहता के गुजराती-इंगलिश कोश, आशुतोष देव के बंगला-इंगलिश कोश, मोल्सवर्थ के मराठी-इंगलिश कोश, गण्डर्ट के मलयालम-इंगलिश कोश, किटेल के कन्नड़-इंगलिश कोश, टर्नर के नेपाली-इंगलिश कोश तथा तमिल लेक्सीकन में भी 'बलिदान' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता, 'देवता को भेंट चढ़ाना', 'पशु मार कर चढ़ाना' आदि अर्थ ही पाये जाते हैं। हो सकता है आधुनिक काल में 'बलिदान' शब्द का हिन्दी में प्रचलित अर्थ कुछ अन्य भाषाओं में भी फैल गया हो।

श्रीगणेश

हिन्दी में 'श्रीगणेश'[1] पुं० शब्द 'प्रारम्भ' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—अमुक कार्य का श्रीगणेश हो गया है)। संस्कृत में 'श्रीगणेश' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। इसका विकास हिन्दी में ही हुआ है। 'श्रीगणेश' शब्द का 'प्रारम्भ' अर्थ इस शब्द के 'श्रीगणेशाय नमः' के संक्षेप के रूप में प्रयुक्त किया जाने के कारण विकसित हुआ है।

संस्कृत के प्राचीन लेखकों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे अपना ग्रन्थ प्रारम्भ करने से पूर्व ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये अपने इष्टदेवता का स्मरण करते थे।[2] इसी उद्देश्य से वे ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ पर सर्वप्रथम

---

१. हिन्दी के हिन्दी शब्द सागर, भाषा शब्द-कोश और प्रामाणिक हिन्दी कोश आदि कोशों में 'श्रीगणेश' शब्द ही नहीं दिया हुआ है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी में 'प्रारम्भ' अर्थ में 'श्रीगणेश' शब्द आधुनिक काल में ही प्रचलित हुआ है।

२. जैसे—ग्रन्थारम्भे विघ्नविघाताय समुचितेष्टदेवतां ग्रन्थकृत्परामृशति। काव्य० उल्लास १.

अपने इष्टदेवता की वन्दना का सूचक वाक्य लिखते थे। जो जिसको अपना इष्टदेवता मानता था, उसी की वन्दना करता था। गणेश के भक्त ग्रन्थ के प्रारम्भ में 'श्रीगणेशाय नमः' लिखते थे और श्रीकृष्ण के भक्त 'भगवते वासुदेवाय नमः' लिखते थे। विभिन्न देवताओं के लिये विभिन्न प्रकार से लिखा जाता था। आजकल भी प्राचीन परम्परा के अनुयायियों में, विशेषकर धार्मिक लोगों में, इस प्रकार लिखने की परिपाटी पाई जाती है।

गणेश के भक्तों द्वारा ग्रन्थ के प्रारम्भ में 'श्रीगणेशाय नमः' का प्रयोग किया जाने के कारण 'श्रीगणेशाय नमः' प्रारम्भ का सूचक हो गया। किसी ग्रन्थ आदि के प्रारम्भ को आलङ्कारिक रूप में उसका 'श्रीगणेशाय नमः' कहा जाने लगा (जैसे—अमुक ग्रन्थ का 'श्रीगणेशाय नमः' हो गया है)। बाद में 'प्रारम्भ' के लिये पूरा वाक्य 'श्रीगणेशाय नमः' न कहकर इसका संक्षिप्त रूप 'श्रीगणेश' ही कहा जाने लगा। यह स्पष्ट है कि पहिले केवल ग्रन्थों के 'प्रारम्भ' के लिये ही 'श्रीगणेश' शब्द का प्रयोग किया जाता होगा। बाद में अर्थ में विस्तार हो गया और सभी प्रकार के कार्यों के 'प्रारम्भ' के लिये 'श्रीगणेश' शब्द सामान्य रूप में प्रचलित हो गया।

सन्नद्ध

हिन्दी में 'सन्नद्ध' वि० शब्द 'तैयार' अर्थ में प्रचलित है। 'सन्नद्ध' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'सन्नद्ध' वि० शब्द का मौलिक अर्थ है 'बँधा हुआ'। इसके 'बँधा हुआ' अर्थ से ही 'कटिबद्ध' शब्द के समान 'तैयार' अर्थ का विकास हुआ है।

ऋग्वेद में 'सन्नद्ध' शब्द का प्रयोग 'बँधा हुआ' अर्थ में ही पाया जाता है, जैसे—गोभिः सन्नद्धो असि—'गोचर्मों से बँधे हुये हो' (६.४७.२६)। इसी प्रकार ऋग्वेद ६.७५.११. में 'सन्नद्ध' शब्द का 'बँधा हुआ' अर्थ में प्रयोग मिलता है।

किसी वस्तु अथवा आवश्यक सामग्री का 'बँधा हुआ होना' तैयारी का सूचक माना जाता है, जैसे जब कोई व्यक्ति कहीं जाने को तैयार होता है, तो वह अपना सामान बाँध लेता है। प्राचीन काल में युद्ध में रथ आदि को ले जाने के लिये पहिले उसको अच्छी तरह बाँध लिया जाता था। योद्धा भी कवच आदि को बाँध लेता था। बाणों को भी अच्छी तरह बाँध लिया जाता

था । अतः प्रायः बाँध लिया जाने पर तैयार होने के कारण बाद में किसी भी प्रकार से 'तैयार' को आलङ्कारिक रूप में 'सन्नद्ध' कहा जाने लगा । कालिदास ने कई स्थलों पर बरसने के लिये तैयार बादल[1] के लिये और विकसित होने के लिये तैयार पल्लव[2] के लिये 'सन्नद्ध' शब्द का प्रयोग किया है । संस्कृत में 'सन्नद्ध' शब्द का प्रयोग 'व्याप्त' अर्थ में भी पाया जाता है ।[3] हिन्दी में 'सन्नद्ध' शब्द केवल 'तैयार अथवा उद्यत' अर्थ में ही प्रचलित है ।

हिन्दी में 'चौकस' शब्द के 'सावधान' अर्थ का विकास भी 'सन्नद्ध' शब्द के 'बँधा हुआ' अर्थ से 'तैयार' अर्थ के विकास के समान ही हुआ है । 'चौकस' शब्द का मौलिक अर्थ है—'चारों ओर से कसा हुआ' (चौ='चारों ओर से'; कस='कसा हुआ') ।

समस्या

हिन्दी में 'समस्या' स्त्री० शब्द का अर्थ है—'वह उलझन वाली विचारणीय बात जिसका निराकरण सहज में न हो सके, कठिन विषय या प्रसङ्ग' (जैसे—खाद्यसमस्या) । संस्कृत में 'समस्या' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता । इसका विकास आधुनिक काल में ही हुआ है ।

संस्कृत में 'समस्या' स्त्री० शब्द का प्रयोग अधिकतर किसी श्लोक या छन्द आदि के उस अन्तिम पद या चरण के लिये पाया जाता है, जो पूरा श्लोक या छन्द बनाने के लिये तैयार करके दूसरों को दिया जाये और जिसके आधार पर पूरा श्लोक या छन्द तैयार किया जाये । 'समस्या' शब्द का मौलिक अर्थ है—'मिलाने की क्रिया' । किसी श्लोक या छन्द के एक पद या चरण के आधार पर सम्पूर्ण को मिलाये अर्थात् पूरा किये जाने के कारण उस पद या चरण को भी 'समस्या' कहा गया (समस्यते संक्षिप्यतेऽनया) । किसी श्लोक या छन्द के एक पद या चरण के आधार पर सम्पूर्ण श्लोक या छन्द को पूरा किये जाने को 'समस्या-पूर्ति' कहा जाता है । 'समस्या-पूर्ति' के सादृश्य से संस्कृत में 'समस्या' शब्द के 'अपूर्ण की पूर्ति' अर्थ का भी विकास पाया जाता है । संस्कृत साहित्य में इस अर्थ में 'समस्या' शब्द का प्रयोग

---

१. नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः (विक्रम० ४.१);
 कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायाम् (मेघ० ८) ।

२. पुराणपत्रापगमादनन्तरं लतेव सन्नद्धमनोज्ञपल्लवा । रघु० ३.७.

३. कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् । शाकु० १.२१.

मिलता है, जैसे—गौरीव पत्या सुभगा कदाचित् कर्त्रीयमप्यर्धतनूसमस्याम्—'सौभाग्यवती यह दमयन्ती कभी गौरी के समान पति के आधे अङ्ग की पूर्ति करेगी' (नैषध० ७.८३)।

'समस्या' शब्द का 'कठिन विषय या प्रसङ्ग' अर्थ इस शब्द के 'किसी श्लोक या छन्द का वह अन्तिम पद या चरण जो पूरा श्लोक या छन्द बनाने के लिये दूसरों को दिया जाये' अर्थ से विकसित हुआ है। किसी श्लोक या छन्द का उसके एक पद या चरण या चरणांश के आधार पर पूरा करना कठिन कार्य होता है। उसके लिये बहुत सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता होती है। 'समस्या-पूर्ति' के कठिन होने के सादृश्य से किसी भी 'कठिन विषय या प्रसङ्ग' को पहिले आलङ्कारिक रूप में 'समस्या' कहा गया होगा। बाद में आलङ्कारिक भाव लुप्त हो जाने पर 'कठिन विषय या प्रसङ्ग' (अर्थात् वह उलझन वाली विचारणीय बात जिसका निराकरण सहज में न हो सके) ही 'समस्या' शब्द का सामान्य अर्थ समझा जाने लगा।

'समस्या' शब्द का 'कठिन विषय या प्रसङ्ग' (problem) अर्थ बंगला, गुजराती, मराठी, नेपाली भाषाओं में भी पाया जाता है। तेलुगु में 'समस्यमु' शब्द का भी यह अर्थ मिलता है। किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश तथा तमिल लैक्सीकन में 'समस्या' शब्द का 'किसी श्लोक या छन्द आदि का वह पद या चरण जो पूरा श्लोक या छन्द बनाने के लिये दूसरों को दिया जाये' अर्थ ही दिया हुआ है।

सूत्रपात

हिन्दी में 'सूत्रपात' पुं० शब्द 'प्रारम्भ' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—अमुक कार्य का सूत्रपात हो गया है)। 'सूत्रपात' शब्द का 'आरम्भ' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। इस अर्थ का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

संस्कृत में 'सूत्रपात' पुं० शब्द का अर्थ है 'नापने की डोरी डालना'[१]। प्राचीन काल में भवन-निर्माण के कार्य में नापने आदि के लिये एक डोरी (सूत्र) का प्रयोग किया जाता था। उस 'डोरी के प्रयोग' को ही 'सूत्रपात' कहा जाता था। किसी भवन को बनाने में सर्वप्रथम उसकी नींव डाली

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

Sūtrapāta, m. applying the measuring line (सूत्रपातं कृ or चर्, 'to measure, compare one thing with another'), Kathās.

जाती है। नींव डालने में 'नापने की डोरी' का प्रयोग (सूत्रपात) किया जाता है। भवन-निर्माण के प्रारम्भ में नापने की डोरी का प्रयोग होने के कारण 'नापने की डोरी डालना' के वाचक 'सूत्रपात' शब्द के साथ 'आरम्भ' का भाव जुड़ गया और किसी कार्य के आरम्भ को आलङ्कारिक रूप में 'सूत्रपात' कहा जाने लगा। यह स्पष्ट है कि पहिले किसी भवन आदि के 'प्रारम्भ' के लिये ही 'सूत्रपात' शब्द का प्रयोग प्रचलित हुआ होगा। बाद में अर्थ में विस्तार हो गया और किसी भी कार्य, योजना आदि के 'प्रारम्भ' के लिये 'सूत्रपात' शब्द प्रचलित हो गया। आजकल 'सूत्रपात' शब्द के प्रयोग में आलङ्कारिक भाव लुप्त हो गया है और 'आरम्भ' ही 'सूत्रपात' शब्द का सामान्य अर्थ समझा जाने लगा है। हिन्दी में इसी प्रकार किसी कार्य का 'प्रारम्भ करने' को उसकी 'नींव डालना' कहा जाता है।

'सूत्रपात' शब्द का 'आरम्भ' अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है। मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश तथा मेहता के गुजराती भाषा के कोश में 'सूत्रपात' शब्द ही नहीं दिया हुआ है।

संस्कृत में 'सूत्रपात' शब्द का प्रयोग यद्यपि 'प्रारम्भ' अर्थ में नहीं पाया जाता, तथापि ऐसा प्रयोग अवश्य पाया जाता है, जहाँ कि किसी वस्तु के आरम्भ की 'सूत्रपात' के रूप में कल्पना की गई है, जैसे—

देवि, पश्यैषा त्वमपि वधूमुखावलोकनसुखस्य कृते न ताम्यसीत्युपालभमानेव देवीं, वत्सस्य यौवनारम्भसूत्रपातरेखा आवयोस्तारुण्यदुर्विलसितनिवर्तनाज्ञा, विजृम्भमाणा श्मश्रुराजिशोभा विवाहमङ्गलसम्पादनायादिशति (निर्णयसागर प्रेस द्वारा प्रकाशित कादम्बरी, पृष्ठ ५४१)।

"देवी, देखो, तुम भी वधू का मुख देखने के सुख के लिये उत्सुक नहीं होती यों मानो ताना देती हुई, यह पुत्र की बढ़ती हुई मूछों की पंक्ति की शोभा जो मानो यौवनारम्भ की सूत्रपात (नापने की डोरी की) रेखा है, मानो तारुण्य के दुर्विलासों से दूर रहने की हमारी आज्ञा है, हमें विवाह-मङ्गल की तैयारी करने की सूचना देती है।"

यहाँ मूछों की पंक्ति की शोभा को यौवनारम्भ की 'सूत्रपातरेखा' कहा गया है। भाव यह है कि जिस प्रकार नापने की डोरी डालकर की गई रेखा भवन-निर्माण के प्रारम्भ की सूचक होती है, इसी प्रकार मूछों की पंक्ति की शोभा मानो यौवनारम्भ की सूचक है।

संस्कृत में 'सूत्रपातं कृ अथवा चर्' का प्रयोग 'एक वस्तु की दूसरी से तुलना करना' अर्थ में भी पाया जाता है।[1]

सोम

हिन्दी भाषा में 'सोम' पुं० शब्द सोमलता, सोमरस, चन्द्रमा आदि अर्थों में पाया जाता है। 'सोम' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि 'सोम' शब्द मूलतः एक विशेष लता अथवा पौधे को लक्षित करता था। वैदिक काल में आर्य लोग इसके अंशुओं को पत्थरों पर पीसकर, रस को छनने में छानकर बड़े चाव के साथ पिया करते थे। इस रस को भी 'सोम' शब्द द्वारा ही अभिहित किया जाता था। 'सोम' शब्द की व्युत्पत्ति पेषणार्थक √ सु धातु से मानी जाती है। ऋग्वेद में सोम (पौधे तथा रस) का वर्णन बड़े विस्तार के साथ मिलता है। सोमरस को मनुष्यों का ही नहीं, देवताओं का भी प्रिय पेय बताया गया है। आलङ्कारिक रूप में इसे अमृत, मधु, दुग्ध, पीयूष आदि कहा गया है। सोमपान के प्रेमी ऋग्वेद-कालीन आर्यों ने इसकी कल्पना पौधे अथवा रस से ऊँचा उठाकर देवता के रूप में कर ली थी। ऋग्वेद में नवम मण्डल के ११४ सूक्तों में तथा अन्य मण्डलों के भी बहुत से मन्त्रों में सोम की स्तुति की गई है।

यह एक रोचक तथ्य है कि एक विशेष पौधे अथवा रस के वाचक 'सोम' शब्द का कालान्तर में 'चन्द्रमा' अर्थ विकसित हो गया। इस अर्थ-विकास का कारण 'चन्द्रमा' की 'सोम' से तुलना है। वैदिक काल में चन्द्रमा के विषय में यह कल्पना प्रचलित थी कि देवता लोग क्रमशः अमृतरूप चन्द्ररस का पान करते हैं, इसी कारण वह क्षीण होता है। सूर्य द्वारा आपूरित होने पर वह बढ़ता है। 'सोम' (रस) मनुष्यों का प्रिय पेय था, अतः पेय अथवा भोज्य होने के सादृश्य के आधार पर 'चन्द्रमा' को आलङ्कारिक रूप में देवताओं का 'सोम' कहा गया। वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर चन्द्रमा को देवताओं का भोजन कहा गया है। ऐतरेय-ब्राह्मण (७.११) में कहा गया है —एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः। इसी प्रकार शतपथब्राह्मण (१.६.४.५) में कहा गया है—एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'चन्द्रमा' को पहिले आलङ्कारिक रूप में 'सोम' कहा

---

१. स च प्रभातकालेषु घनयाङ्गं मृदालिपत्।
अवीचिकर्दमालेपसूत्रपातमिवाचरन्॥ कथा० २४.९३.

गया था। कालान्तर में वह ही 'सोम' शब्द का सामान्य अर्थ समझा जाने लगा। वेदोत्तरकालीन साहित्य में तथा उसके बाद के साहित्य में 'सोम' शब्द 'चन्द्रमा' के नाम के रूप में पर्याप्त प्रचलित रहा है। आजकल भी 'सोमवार' शब्द में 'सोम' शब्द 'चन्द्रमा' अर्थ में विद्यमान है।

स्वाहा

'स्वाहा' अव्यय शब्द का प्रयोग यज्ञ (हवन) में देवता के उद्देश्य से हवि छोड़ते समय किया जाता है (जैसे—'इन्द्राय स्वाहा', 'अग्नये स्वाहा' आदि)। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग इस प्रकार पाया जाता है और आजकल भी हवन आदि के अवसर पर इस शब्द का प्रयोग इसी प्रकार किया जाता है। किन्तु हिन्दी में भाव-सादृश्य के आधार पर इसका एक अर्थ और विकसित हो गया है। हवन में जो हवि अग्नि के लिये छोड़ी जाती है, वह सब भस्म हो जाती है। इसके भाव-सादृश्य से किसी वस्तु के नष्ट होने को आलङ्कारिक रूप में 'स्वाहा होना' कहा जाने लगा है (जैसे—अग्निकाण्ड में अमुक व्यक्ति की सारी सम्पत्ति 'स्वाहा' हो गयी। प्रारम्भ में 'पूरी तरह से नष्ट होने' के लिये 'स्वाहा होना' मुहावरे का प्रयोग कथन को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिये किया गया होगा। हिन्दी में 'स्वाहा करना' मुहावरे का प्रयोग भी 'फूँक डालना', 'नष्ट कर देना' अर्थ में किया जाता है।

अध्याय ८

नवीन भावों के लिये गृहीत शब्द

प्रत्येक भाषा के विकास में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि जब सामाजिक आवश्यकताओं के कारण अथवा किसी अन्य भाषा के प्रभाव से नवीन भाव आते हैं, तो उनको व्यक्त करने के लिये या तो उनसे मिलते-जुलते भाव वाले पहिले से प्रचलित शब्द अपना लिये जाते हैं या नये शब्दों का निर्माण कर लिया जाता है। जब नये भाव पहिले से अन्य अर्थों में प्रचलित शब्दों पर आरोपित कर दिये जाते हैं, तो उन शब्दों के अर्थों में स्वतः भेद हो जाता है। पिछली कई शताब्दियों में, जबकि देश पर विदेशियों का शासन रहा, देश में अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के सम्पर्क में आने पर अनेक नवीन भाव आये, जिनको व्यक्त करने के लिये हमारी (हिन्दी, बंगला आदि) भाषाओं में शब्द नहीं थे। अतः स्वाभाविक रूप में उन भावों के लिये भारतीय भाषाओं में संस्कृत शब्दों को ग्रहण किया गया। इस प्रकार अनेक संस्कृत शब्दों के नवीन भावों के लिये अपनाये जाने से उनके अर्थों में संस्कृत में पाये जाने वाले अर्थों से (अथवा उन शब्दों के मौलिक अर्थों से) भेद आ गया। इस प्रकार के संस्कृत शब्द प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। उन सबका विवेचन करना बड़ा विशाल कार्य है। यह एक पृथक् शोध-प्रबन्ध का विषय हो सकता है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल थोड़े से ऐसे शब्दों का विवेचन किया गया है, जो बहुत प्रचलित हैं। ग्रन्थ के अन्य अध्यायों में भी ऐसे संस्कृत शब्द आ गये हैं, जो आधुनिक नवीन भावों को प्रकट करने लगे हैं। उनको अर्थ-विकास की किसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत अन्य अध्यायों में रख दिया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में नवीन भावों को व्यक्त करने वाले थोड़े से संस्कृत शब्दों का ही विवेचन किया गया है।

अनुवाद

हिन्दी भाषा में 'अनुवाद' पुं० शब्द 'भाषान्तर' (एक भाषा में लिखी हुई अथवा कही हुई बात का दूसरी भाषा में लिखना अथवा कहना) अर्थ

में प्रचलित है। प्राचीन संस्कृत में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं पाया जाता।

'अनुवाद' (अनु+वद्+घञ्) पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'पुनः कथन'। संस्कृत में 'अनुवाद' पुं० शब्द का प्रयोग 'पुनःकथन', 'व्याख्या-रूप में पुनः कथन', 'पहिले कही हुई किसी बात की व्याख्या करने के लिये या उदाहरण देने के लिये अथवा पुष्ट करने के लिये किसी अंश का बार-बार पढ़ना', 'किसी ऐसे विषय का, जिसका निरूपण हो चुका हो, व्याख्या-रूप में या प्रमाणरूप में पुनःकथन' आदि अर्थों में पाया जाता है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा भारतीय दर्शन में 'अनुवाद' एक पारिभाषिक शब्द है। ब्राह्मण वाक्यों के तीन प्रकार के भेद किये गये हैं—विधि, अर्थवाद और अनुवाद[1]। विधि और विहित का पुनःकथन 'अनुवाद' होता है[2]।

वात्स्यायन-भाष्य में पुनरुक्ति से 'अनुवाद' का भेद प्रदर्शित करते हुये कहा गया है—

"पुनरुक्ति और अनुवाद एक नहीं हैं, क्योंकि जब पुनरुक्ति प्रयोजनवती (अर्थवती) होती है, तब 'अनुवाद' होता है। पुनरुक्ति में यद्यपि शब्दों का पुनःकथन होता है, किन्तु वह निरर्थक होता है। प्रयोजनवान् पुनःकथन अनुवाद होता है, जैसे शीघ्रतर गमन का उपदेश। जब किसी को कहा जाता है कि 'शीघ्र-शीघ्र जाओ', तो इसका अर्थ होता है—'शीघ्रतर जाओ'। शीघ्र शब्द को जाने की क्रिया में विशेषता (अतिशय) लाने के लिये ही पुनः कहा जाता है।"[3]

मीमांसा-दर्शन में वाक्य के विधिप्राप्त आशय का दूसरे शब्दों में समर्थन करने के लिये कथन को 'अनुवाद' कहा गया है। यह तीन प्रकार का है—भूतार्थानुवाद, स्तुत्यर्थानुवाद, गुणानुवाद।

जैमिनीयन्यायमाला (१.४.६) में माधवाचार्य ने 'अनुवाद' शब्द की परिभाषा इस प्रकार की है—ज्ञातस्य कथनमनुवादः। काशिका में कहा गया है—प्रमाणान्तरावगतस्यार्थस्य शब्देन सङ्कीर्तनमात्रमनुवादः—'अन्य प्रमाण से भली-भाँति जानी हुई बात का शब्द द्वारा कथनमात्र अनुवाद है।'

---

१. विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात्। न्यायसूत्र ४.२.६३.

२. विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः। न्यायसूत्र ४.२.६६.

३. वात्स्यायनभाष्य २.१.६८.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृत में 'अनुवाद' शब्द का प्रयोग 'पुनःकथन', 'व्याख्या के रूप में पुनःकथन' आदि अर्थों में ही पाया जाता है। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में यद्यपि इसका 'भाषान्तर' (translation) अर्थ भी दिया है, किन्तु यह आधुनिक प्रतीत होता है। संस्कृत साहित्य में इस अर्थ में 'अनुवाद' शब्द के प्रयोग के उदाहरण नहीं पाये जाते। भाषान्तर में भी पहले कही हुई अथवा लिखी हुई किसी बात को दूसरी भाषा में कहा या लिखा जाता है, अतः भाव-सादृश्य से 'भाषान्तर' के लिये मूलतः 'पुनःकथन' के वाचक शब्द को अपना लिया गया है।

पञ्जाबी, गुजराती और कन्नड़ भाषाओं में 'अनुवाद' शब्द का, तेलुगु भाषा में 'अनुवादमु' शब्द का तथा बंगला, असमिया और उड़िया भाषाओं में 'अनुवाद' (अनुवाद) शब्द का 'भाषान्तर' (ट्रांसलेशन) अर्थ ही है[१]। ऐसा प्रतीत होता है कि 'भाषान्तर' अर्थ में 'अनुवाद' शब्द सर्वप्रथम बंगला भाषा में प्रचलित हुआ और बंगला से इस अर्थ में हिन्दी में आया। मेहता ने अपने गुजराती-इंगलिश कोश में अनुवाद' शब्द के 'रिपोर्ट' और 'बहुभाषिता' (talkativeness) अर्थ भी दिये हैं। मोल्सवर्थ ने मराठी में 'अनुवाद' शब्द का एक अर्थ 'सभा में अभियुक्त के अपराध का कथन तथा दण्ड की घोषणा' भी दिया है। गण्डर्ट के अनुसार मलयालम भाषा में 'अनुवाद' शब्द के अर्थ 'स्वीकृति', 'अनुमति' हैं। तमिल लेक्सीकन के अनुसार तमिल भाषा में 'अनुवातम्' शब्द का अर्थ 'व्याख्या-रूप में पुनःकथन' है।

अनुशासन

हिन्दी में 'अनुशासन' पुं० शब्द का अर्थ है—'वह विधान अथवा व्यवस्था जो किसी संस्था या वर्ग के सब सदस्यों को ठीक तरह के कार्य या आचरण करने के लिये बाध्य करे' (discipline)। 'अनुशासन' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता।

'अनुशासन' शब्द अनु उपसर्गपूर्वक √ शास् धातु से ल्युट् प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में 'अनुशासन' नपुं० शब्द का प्रयोग निर्देश[२],

---

१. व्यवहारकोश।

२. एतद्वै भद्रमनुशासनस्योतम्। ऋग्वेद १०.३२.७.

आदेश[1], किसी विषय का निरूपण[2], शिक्षा[3], उपदेश, आज्ञा[4], सञ्चालन[5], शासन[6] आदि अर्थों में पाया जाता है।

सूर, तुलसी, केशव आदि के ग्रन्थों में उपलब्ध प्राचीन हिन्दी में भी 'अनुशासन' शब्द का प्रयोग 'आज्ञा' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—

जो हौं अब अनुशासन पावौं (गीतावली, लङ्काकाण्ड ८)।

'अनुशासन' शब्द का वर्तमान अर्थ अंग्रेज़ी भाषा के सम्पर्क में आने पर विकसित हुआ है। अंग्रेज़ी के discipline शब्द का भाव हिन्दी अथवा बंगला के लिये सर्वथा नवीन था। उसको व्यक्त करने के लिये जब शब्द बनाने की आवश्यकता हुई, तो discipline शब्द के भाव से मिलते-जुलते भाव वाले 'अनुशासन' (=आज्ञा) शब्द को इस नवीन भाव के लिये अपना लिया गया।

यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी के discipline शब्द का भी मौलिक अर्थ 'शिक्षा' अथवा 'आज्ञा' था। Discipline शब्द लैटिन भाषा के discipulus शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है—'शिष्य, शिक्षा प्राप्त करने वाला' (disciple)। Discipulus (=disciple) शब्द भी disco से निकला है, जिसका अर्थ है 'शिक्षा लेना, सीखना'। इस प्रकार discipline (लैटिन disciplina) शब्द

---

१. येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः।
   छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥ मनु० ८.२७९.

२. यथा—शब्दानुशासन, योगानुशासन, नामलिङ्गानुशासन आदि में।

३. एतदनुशासनम्। तैत्तिरीयोपनिषद् १.११.६.

४. अप्रियोऽपि हि पथ्यः स्यादितिवृद्धानुशासनम्।
   वृद्धानुशासने तिष्ठन् प्रियतामधिगच्छति ॥ कामन्द० ५.५८.

५. भिनत्ति शिरसा शैलमहिं भोजयते च यः।
   धीरेव कुरुते तस्य कार्याणामनुशासनम् ॥ महा० सभापर्व ६४.९.

६. रक्षाधिकरणं युद्धं तथा धर्मानुशासनम्।
   मन्त्रचिन्तासुखं काले पञ्चभिर्वर्धते मही ॥ महा० शान्तिपर्व ९३.२४.

'शासन करना' अथवा 'राज्य करना' अर्थ में अनु-पूर्वक √ शास् धातु का प्रयोग भी पाया जाता है, जैसे—

अजातशत्रो भद्रं ते अरिष्टं स्वस्ति गच्छत।
अनुज्ञाताः सहधनाः स्वराज्यमनुशासत ॥ महा० सभापर्व ७३.२.

का अर्थ हुआ 'शिष्यों को दी जाने वाली शिक्षा'[१] [discipline शब्द का यह अर्थ तैत्तिरीयोपनिषद् के शिक्षाध्याय में दिये हुये 'आचार्यानुशासन' (आचार्य का उपदेश अथवा शिक्षा) में उपलब्ध 'अनुशासन' शब्द के अर्थ से मिलता है]। इसके पश्चात् discipline शब्द का अर्थ हुआ 'विद्यार्थियों तथा अधीनस्थों का शिक्षा तथा अभ्यास द्वारा समुचित आचरण एवं व्यवहार का प्रशिक्षण'[२]। 'आचरण का प्रशिक्षण' अर्थ से इस शब्द का अर्थ 'प्रशिक्षण' भी हो गया और इसके पश्चात् 'आज्ञा अथवा नियन्त्रण में रहने वाले व्यक्तियों द्वारा मानी जाने वाली व्यवस्था' (order) अर्थ हो गया[३]। संस्कृत में discipline अर्थ में 'विनय' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। 'विनय' शब्द के discipline अर्थ का विकास भी discipline शब्द के अर्थ के विकास के समान ही हुआ है। 'विनय' शब्द का प्रयोग भी पहिले 'आचार की शिक्षा' अर्थ में होता था। किन्तु बाद में विकसित होते-होते इस शब्द के प्रशिक्षण, आत्मसंयम, नियन्त्रण आदि अर्थ भी हो गये।[४]

आविष्कार

हिन्दी में 'आविष्कार' पुं० शब्द 'ईजाद' (कोई ऐसी वस्तु तैयार करना, जिसके बनाने की युक्ति पहिले किसी को नहीं मालूम रही हो) अर्थ में प्रचलित है। 'आविष्कार' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'आविष्कार' (आविस्+कृ+घञ्) पुं० शब्द का अर्थ है 'प्रकटीकरण, प्राकट्य', जैसे—आविष्कारातिशयश्चाभिधेयवत् स्फुटं प्रतीयते। साहित्य० २. ६६.

संस्कृत में 'आविष्कार' शब्द का 'प्रकटीकरण' अर्थ होने के कारण अभिमान, क्रोध आदि प्रकट करने वाले (अभिमानी) के लिये 'साविष्कार'

---

१. Shorter Oxford English Dictionary, page 519, col. 3—Instructions imparted to disciples or scholars; teaching; learning; education: 1615 A. D.

२. The training of scholars and subordinates to proper conduct and action by instructing and exercising them in the same; mental and moral training.

३. Order maintained and observed among persons under control or command : 1667.

४. देखिये, 'विनय'।

शब्द का प्रयोग पाया जाता है, जैसे—

परस्त्रीवाहिणं प्रापुः साविष्कारं सुरापिणः । भट्टि० ९.९६.

संस्कृत में आविस्-पूर्वक √कृ धातु का प्रयोग भी 'प्रकट करना'[1], 'प्रदर्शित करना'[2] आदि अर्थों में पाया जाता है। 'आविष्कार' शब्द का प्रयोग किसी भी वस्तु, भाव, गुण आदि के 'प्रकटीकरण' के लिये सामान्य रूप में पाया जाता है।

'आविष्कार' शब्द का अर्थ 'प्रकटीकरण' होने के कारण ही भाव-सादृश्य से 'ईजाद' के भाव को 'आविष्कार' शब्द पर आरोपित कर दिया गया है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु की ईजाद करता है, तो उस समय वह एक प्रकार से उस वस्तु का प्रकटीकरण ही करता है, क्योंकि इससे पूर्व वह वस्तु किसी को ज्ञात नहीं होती।

'आविष्कार' शब्द का 'ईजाद' अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि मेहता के गुजराती भाषा के कोश तथा मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश में 'आविष्कार' शब्द ही नहीं मिलता, 'आविष्करण' शब्द 'प्रकटीकरण' अर्थ में दिया हुआ है।

उपन्यास

हिन्दी में 'उपन्यास' पुं० शब्द का अर्थ है—'वह कल्पित और बड़ी आख्यायिका, जिसमें बहुत से पात्र और विस्तृत घटनायें हों' (novel)। संस्कृत में 'उपन्यास' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

'उपन्यास' पुं० शब्द उप और नि उपसर्गपूर्वक √अस् धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग पास लाना, धरोहर, कथन[3], वागारम्भ[4] (कथन का प्रारम्भ), भूमिका, उपस्थापन[5], सङ्केत, विचार[6],

---

१. आविष्कृतफेनसन्तति। किरात० ४.५.

२. आविष्कृतं प्रेम परं गुणेषु (किरात० ३.१५); आविष्कृतं कथा-प्रावीण्यं वत्सेन (उत्तर० अङ्क ४)।

३. पावकः खलु एष वचनोपन्यासः। शाकु० अङ्क ५.

४. उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्। अमरकोश।

५. अवसरे खलु रागोपकारयोर्गरीयसोरुपन्यासः। मालती० अङ्क ६.

६. विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत। मनु० ९.३१.

किसी विचार को उपस्थित करना, एक प्रकार की सन्धि[1], प्रतिमुख सन्धि का एक अङ्ग[2], प्रसादन[3] आदि अर्थों में पाया जाता है।

'नॉवेल' (कल्पित और बड़ी आख्यायिका) अर्थ में 'उपन्यास' शब्द हिन्दी में बंगला से आया है। अंग्रेज़ी के नॉवेलों के अनुकरण पर वैसी ही कथा अथवा आख्यायिकायें सर्वप्रथम बंगला में लिखी जानी आरम्भ हुई और उनके लिये 'उपन्यास' शब्द प्रचलित हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि बंगला में 'कथा अथवा आख्यायिका' अर्थ में 'उपन्यास' शब्द पहिले से प्रचलित था [आशुतोष-देव के बंगला-अंग्रेज़ी कोश में 'उपन्यास' शब्द के कथा, आख्यायिका (tale, story, fiction) आदि अर्थ भी दिये हैं]। यह भी सम्भव है कि संस्कृत में 'उपन्यास' शब्द के 'उपक्रम', 'भूमिका बाँधना', 'विचार उपस्थित करना' आदि अर्थ होने के कारण बंगला में कथा अथवा आख्यायिका को 'उपन्यास' कहा जाने लगा हो, क्योंकि कथा अथवा आख्यायिका में भी विचारों को उपस्थित किया जाता है। अंग्रेज़ी भाषा के नॉवेलों द्वारा जब एक नवीन प्रकार का कथा-साहित्य प्रस्तुत किया गया, तो उनको भी भाव-सादृश्य से 'उपन्यास' नाम ही दे दिया गया। अंग्रेज़ी नॉवेलों के अनुकरण पर जब हिन्दी में नॉवेल लिखे जाने आरम्भ हुये अथवा उनका अनुवाद किया जाने लगा तो हिन्दी में भी नॉवेल के लिये बंगला में पहिले से प्रचलित 'उपन्यास' शब्द को ही अपना लिया गया। हिन्दी 'उपन्यास' के प्रारम्भ के विषय में श्री कृष्णलाल ने लिखा है—"हिन्दी में 'उपन्यास' का उदय १८७३ के पश्चात् हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८७३ में हरिश्चन्द्र मैगज़ीन का प्रकाशन प्रारम्भ किया; उसमें लेखों की परिगणित सूची में नॉवेल का भी स्थान है और वही नॉवेल हिन्दी में रूपान्तरित होकर 'उपन्यास' बन गया।"[4]

---

१. कामन्दकीयनीतिसार (९.६) में 'उपन्यास' सोलह प्रकार की सन्धियों में से एक प्रकार की सन्धि बतायी गयी है—

भव्यामेकार्थसंसिद्धिं समुद्दिश्य क्रियेत यः।
स उपन्यासकुशलैरुपन्यास उदाहृतः॥

२. उपन्यासस्तु सोपायम्। दशरूपक १.३५.
उपपत्तिकृतो ह्यर्थ उपन्यासः स कीर्तितः। भरत।

३. उपन्यासः प्रसादनम्। साहित्य० ६.९३.

४. 'हिन्दी उपन्यास का विकास, मूल स्रोत और प्रारम्भ' विषय पर आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र से प्रसारित तथा अक्तूबर-दिसम्बर १९५४ की 'प्रसारिका' में प्रकाशित श्री कृष्णलाल का भाषण (पृष्ठ ७४)।

यह स्पष्ट है कि हिन्दी में 'उपन्यास' पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा पाकर लिखे जाने प्रारम्भ हुये। नॉवेल के लिये 'उपन्यास' शब्द कब और कैसे प्रचलित हुआ, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। १८९७ में (जब तक कि अनेक 'उपन्यास' लिखे जा चुके थे) श्री अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी गद्य-काव्य-मीमांसा पुस्तक में 'उपन्यास' के नामकरण के विषय में लिखा था—

"इन दिनों समस्त बंगाल तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश (आज के उत्तर प्रदेश) में और किंचित् पंजाब, राजपूताना, सिन्ध, मालवा, मध्यप्रदेश, उत्कल देश तथा गुजरात में प्राय: नॉवेल को उपन्यास कहते हैं, परन्तु यदि पहिले कहीं ढूंढें कि यह उपन्यास संज्ञा प्राचीन ग्रन्थ में कहीं है कि नहीं तो बड़ा बखेड़ा निकल पड़ता है। जिस अर्थ में आजकल यह शब्द बोला जाता है, उस अर्थ में इसका प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। परन्तु इन दिनों लाखों पुरुषों के आगे किसी कारण से 'उपन्यास' शब्द नॉवेल के अर्थ में रूढ़ हो गया है, इसलिये उनके सतत अभ्यस्त उपन्यास प्रयोग को हटा कोई दूसरा शब्द लाना व्यर्थ का टंटा विदित हो जाता है।"[१]

असमिया और उड़िया भाषाओं में भी 'उपन्यास' शब्द 'नॉवेल' अर्थ में पाया जाता है।[२] मेहता ने अपने गुजराती भाषा के कोश में 'उपन्यास' शब्द के 'किसी विचार को उपस्थित करना', 'भूमिका बाँधना' आदि अर्थ दिये हैं, 'नॉवेल' अर्थ नहीं दिया है। मराठी में भी 'उपन्यास' शब्द 'नॉवेल' अर्थ में प्रचलित नहीं है। नॉवेल को मराठी में 'कादम्बरी' और कन्नड़ में 'कादम्बरि' कहा जाता है। कन्नड़[३] भाषा में 'उपन्यास', तमिल[४] में 'उपनियाचम्' और तेलुगु[५] में 'उपन्यासमु' शब्द का अर्थ 'भाषण, व्याख्यान' है। इन भाषाओं में 'उपन्यास' शब्द का 'भाषण' अर्थ इसके मौलिक अर्थ 'विचार उपस्थित करना' से विकसित हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि भाषण अथवा व्याख्यान में विचार ही उपस्थित किये जाते हैं।

---

१. प्रसारिका, अक्तूबर-दिसम्बर १९५४, पृष्ठ ७४.
२. व्यवहारकोश।
३. किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।
४. तमिल लेक्सीकन (उपनियाचम्=address, speech, lecture)।
५. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी (उपन्यासमु=lecture)।

कुलपति

आजकल हिन्दी में 'कुलपति' पुं० शब्द अधिकतर 'किसी विश्वविद्यालय के सर्वोच्च अधिकारी' (Chancellor) के लिये प्रयुक्त होता है। यह एक नवीन भाव है। संस्कृत में 'कुलपति' पुं० शब्द के 'कुल का स्वामी', 'किसी आश्रम आदि का सञ्चालक ऋषि', 'दस हज़ार ब्रह्मचारियों को उनके भोजन आदि की व्यवस्था करके शिक्षा देने वाला ऋषि' आदि अर्थ पाये जाते हैं।

प्राचीन काल में ऋषियों के आश्रम ही, जिन्हें गुरुकुल भी कहा जाता था, शिक्षा के केन्द्र होते थे। उनके सञ्चालक ऋषि-मुनि 'कुलपति' कहलाते थे। कुछ आश्रम अथवा गुरुकुल छोटे होते थे, जिनमें विद्यार्थी कम संख्या में रहते थे और कुछ बड़े होते थे, जिनमें विद्यार्थी काफ़ी बड़ी संख्या में होते थे। इन दोनों ही प्रकार के आश्रमों अथवा गुरुकुलों के सञ्चालक ऋषियों को 'कुलपति' कहा जाता था। संस्कृत में प्रचलित निम्न श्लोक में 'कुलपति' उस ऋषि को कहा गया है, जो दस हज़ार ब्रह्मचारियों को उनके भोजन तथा पालन-पोषण आदि की व्यवस्था करते हुये शिक्षा देता है—

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः॥

संस्कृत साहित्य में पाये जाने वाले 'कुलपति' शब्द के प्रयोगों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि केवल दस हज़ार ब्रह्मचारियों की शिक्षा, भोजन आदि की व्यवस्था करने वाले ऋषि-मुनियों को ही 'कुलपति' नहीं कहा जाता था, अपितु छोटे आश्रमों अथवा गुरुकुलों का सञ्चालन करने वाले ऋषियों को भी 'कुलपति' कहा जाता था। कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' (अङ्क १) में महर्षि कण्व को 'कुलपति' कहा गया है।[1] सम्भवतः उनके यहाँ ब्रह्मचारी बहुत अधिक संख्या में नहीं थे।

किसी आश्रम अथवा गुरुकुल के सञ्चालक ऋषि के लिये 'कुलपति' शब्द का प्रयोग पाया जाने के कारण ही आधुनिक काल में अंग्रेजी भाषा के 'चांसलर' (Chancellor) शब्द द्वारा प्रस्तुत नवीन भाव अर्थात् 'किसी विश्वविद्यालय के सर्वोच्च अधिकारी' के लिये भाव-सादृश्य से मिलते-जुलते अर्थ वाले 'कुलपति' शब्द को अपना लिया गया है। 'चांसलर' के लिये 'कुलपति' शब्द ग्रहण कर लेने पर 'वाइस-चांसलर' (जो चांसलर के पश्चात् विश्वविद्यालय का सर्वोच्च अधिकारी होता है) के लिये 'उपकुलपति' शब्द गढ़ लिया गया है।

क्रान्ति

हिन्दी में 'क्रान्ति' स्त्री० शब्द 'परिस्थितियों का अथवा किसी व्यवस्था का पूर्ण परिवर्तन' (revolution) अर्थ में प्रचलित है। प्रायः किसी राज्य-व्यवस्था में पूर्ण परिवर्तन होने अथवा उसके लिये किये जाने वाले विप्लव को 'क्रान्ति' कहा जाता है (जैसे 'राज्यक्रान्ति')। संस्कृत में 'क्रान्ति' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'क्रान्ति' (क्रम्+क्तिन्) स्त्री० शब्द के अर्थ हैं—गति, अग्रगति, पग रखने की क्रिया, एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, खगोल में वह कल्पित वृत्त जिस पर सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता हुआ जान पड़ता है आदि। सूर्य-सिद्धान्त (गोलाध्याय) में 'क्रान्ति' की परिभाषा इस प्रकार की गई है—

अयनादयनं यावत् कक्षा तिर्यक् तथापरा।
क्रान्तिसंज्ञा तथा सूर्यः सदा पर्येति भासयन्॥

हिन्दी में 'क्रान्ति' शब्द का 'परिस्थितियों का अथवा किसी व्यवस्था का पूर्ण परिवर्तन' अथ अंग्रेज़ी के revolution शब्द का भाव है। 'क्रान्ति' और 'रिवोल्यूशन' शब्दों के मूल भावों में कुछ सादृश्य होने के कारण ही 'रिवोल्यूशन' शब्द का भाव (परिस्थितियों का अथवा किसी व्यवस्था का पूर्ण परिवर्तन) 'क्रान्ति' शब्द पर आरोपित कर दिया गया है। 'रिवोल्यूशन' शब्द का मौलिक अर्थ है—'घूमने की क्रिया' (the act of revolving or rotating); उससे ही 'परिस्थितियों का अथवा किसी व्यवस्था का पूर्ण परिवर्तन' अर्थ विकसित हुआ है। संस्कृत में भी 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग सूर्य के पृथ्वी के चारों ओर घूमने (अयन) के लिये पाया जाता है। अतः मौलिक अर्थों में समानता होने के कारण ही यह भावारोपण किया गया।

मेहता के गुजराती भाषा के कोश में भी 'क्रान्ति' शब्द का 'रिवोल्यूशन' अर्थ दिया हुआ है। गणेश वैशम्पायन के 'मराठी से हिन्दी शब्द संग्रह' में 'क्रान्ति' शब्द का 'विप्लव' अर्थ दिया हुआ है। आशुतोष देव के बंगला-इंगलिश कोश में, किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश में तथा तमिल लेक्सीकन में 'क्रान्ति' शब्द का 'रिवोल्यूशन' अर्थ नहीं पाया जाता।

जयन्ती

हिन्दी में 'जयन्ती' स्त्री० शब्द का अर्थ है—'किसी महापुरुष या संस्था

की जन्मतिथि, किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के आरम्भ होने की वार्षिक तिथि पर होने वाला उत्सव' (jubilee)। संस्कृत में 'जयन्ती' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'जयन्ती' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'पताका'। मेदिनी-कोश में लिखा है—जयन्ती वृक्षभिद्गौर्य्योरिन्द्रपुत्रीपताकयोः।

ज्योतिष के एक योग के लिये भी 'जयन्ती' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। यह योग श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात में रोहिणी नक्षत्र के पड़ने पर (अर्थात् श्रीकृष्ण के जन्म के समय)[1] माना जाता है। स्कन्दपुराण के तिथ्यादितत्त्व में कहा गया है—

> जयं पुण्यं च कुरुते जयन्तीमिति तां विदुः।
> रोहिणीसहिता कृष्णा मासे च श्रावणेऽष्टमी॥
> अर्द्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलयापि यदा भवेत्।
> जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी॥

श्रीकृष्ण के जन्म की अष्टमी को 'जयन्ती' कहा जाने के कारण श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर प्रतिवर्ष होने वाले उत्सव को भी 'जयन्ती' कहा जाने लगा। बाद में किसी भी अवतार अथवा महान् व्यक्ति के जन्म दिवस पर होने वाले उत्सव के लिये 'जयन्ती' शब्द प्रचलित हो गया। मराठी, गुजराती, बंगला, कन्नड़, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में 'जयन्ती' शब्द 'किसी अवतार अथवा महापुरुष का जन्मोत्सव' अर्थ में प्रचलित है। आजकल किसी संस्था अथवा महत्त्वपूर्ण कार्य के आरम्भ होने की वार्षिक तिथि पर जो समारोह किया जाता है, उसको भी 'जयन्ती' कहा जाता है। यह भाव अंग्रेज़ी के jubilee शब्द से आया है। jubilee शब्द हिब्रू भाषा के yobel शब्द से बना है, जिसके अर्थ हैं—मींढा, मींढे का सींग, सींगे की ध्वनि। इससे 'जुबिली' शब्द का अर्थ विकसित हुआ—'वह मुक्ति का वर्ष, जिसकी घोषणा सींगा

---

१. यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण के जन्म के विषय में धर्मग्रन्थों में मतभेद है। विष्णुपुराण तथा पद्मपुराण में श्रीकृष्ण के जन्म की तिथि श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी बतलाई गई है। आप्टे तथा मोनियर विलियम्स ने भी अपने कोशों में कृष्णजन्माष्टमी का समय श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी लिखा है। किन्तु आजकल श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है।

बजाकर की जाये'। यहूदियों में प्रत्येक पचासवाँ वर्ष दासों की मुक्ति, ऋणों की समाप्ति तथा पहिले स्वामियों को उनकी सम्पत्ति लौटाने का वर्ष होता था, जिसकी घोषणा सींगा बजाकर की जाती थी।[१] इससे 'जुबिली' शब्द का अर्थ 'पचासवें वर्ष का उत्सव' हो गया। बाद में किसी कार्य के प्रारम्भ के पच्चीसवें तथा साठवें वर्ष पर भी समारोह किये जाने लगे, जिनको क्रमशः silver jubilee, diamond jubilee कहा जाता है। पचासवें वर्ष के समारोह को golden jubilee कहा जाता है।

किसी अवतार अथवा महापुरुष के जन्म-दिवस पर होने वाले उत्सव अथवा समारोह के लिये 'जयन्ती' शब्द के पहिले से प्रचलित होने के कारण भाव-सादृश्य से jubilee शब्द के नवीन भाव को भी 'जयन्ती' शब्द पर आरोपित कर दिया गया है। आजकल अंग्रेज़ी के उपर्युक्त शब्दों के अनुकरण पर ही किसी कार्य के प्रारम्भ के पच्चीसवें, पचासवें तथा साठवें वर्ष पर होने वाले उत्सव अथवा समारोह को क्रमशः 'रजत-जयन्ती', 'स्वर्ण-जयन्ती' और 'हीरक-जयन्ती' कहा जाता है।

जलवायु

हिन्दी में 'जलवायु' स्त्री० शब्द 'आबहवा' अर्थात् 'सरदी, गर्मी, स्वास्थ्य आदि के विचार से किसी देश या स्थान की प्राकृतिक स्थिति' (climate) अर्थ में प्रचलित है।[२] संस्कृत में 'जलवायु' शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता। इसका प्रयोग आधुनिक काल में ही हिन्दी तथा बंगला आदि भाषाओं में किया जाने लगा है।

'जलवायु' शब्द का मौलिक अर्थ है—'जल और वायु'। यह अर्थ 'जलवायु' शब्द के आधुनिक काल में प्रचलित अर्थ अर्थात् 'सरदी, गर्मी, स्वास्थ्य आदि के विचार से किसी देश या स्थान की प्राकृतिक स्थिति' (climate) से मेल नहीं खाता। वस्तुतः 'जलवायु' शब्द आधुनिक काल में

---

१. चैम्बर्स ट्वेंटीथ सेञ्चुरी डिक्शनरी।

२. यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि 'जलवायु' शब्द 'आबहवा' अर्थ में हिन्दी में काफ़ी प्रचलित है, तथापि हिन्दी शब्द सागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश, भाषा शब्द कोश आदि हिन्दी के कोशों में यह शब्द नहीं दिया हुआ है। यह तथ्य इस शब्द के हिन्दी में आधुनिक काल में ग्रहण किये जाने को सूचित करता है। यह शब्द बहुधा पुं० में भी प्रयुक्त किया जाता है।

अंग्रेज़ी के climate शब्द द्वारा प्रस्तुत नवीन भाव (गरमी, सरदी, स्वास्थ्य आदि के विचार से किसी देश या स्थान की प्राकृतिक स्थिति) के लिये उर्दू भाषा में प्रचलित फ़ारसी के 'आबहवा' शब्द के अनुकरण पर बनाया गया है। 'आबहवा' शब्द आब+हवा से मिलकर बना है। 'आब' का अर्थ है 'जल' (पानी) और 'हवा' का अर्थ है 'वायु'। इस प्रकार 'आबहवा' के लिये 'जलवायु' शब्द बना लिया गया।

'आबहवा' अर्थ में 'जलवायु' शब्द बंगला भाषा में भी पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'आबहवा' के लिये 'जलवायु' शब्द सर्वप्रथम बंगला भाषा में प्रचलित हुआ, बाद में बंगला के अनुकरण पर हिन्दी में ग्रहण कर लिया गया।

धन्यवाद

हिन्दी में 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग उपकार, अनुग्रह आदि के बदले में कृतज्ञता प्रकट करने के लिये किया जाता है। संस्कृत में 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता। यह शब्द आधुनिक काल में ही प्रचलित हुआ है। यद्यपि मोनियर विलियम्स और आप्टे दोनों ने अपने कोशों में 'धन्यवाद' शब्द दिया है, तथापि यह निश्चित है कि इन कोशों में यह शब्द आधुनिक काल में प्रचलित होने के कारण दे दिया गया है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में 'धन्यवाद' शब्द के thanksgiving, praise, applause आदि अर्थ देते हुये उनके आगे MW (मोनियर विलियम्स) लिखा है, जिसका स्पष्टीकरण करते हुये उसने अपने कोश की भूमिका (पृष्ठ १८) में लिखा है—"जिन शब्दों और अर्थों को मैंने अपने प्रामाण्य पर और MW चिह्नित करके लिखा है, उनमें से बहुत से टीकाओं से या उन टिप्पणियों से लिये गये हैं, जो मैंने भारतवर्ष में संस्कृत पण्डितों के साथ किये गये वार्तालापों से तैयार की थीं। मैं समझता हूँ कि संस्कृत कोशों में ऐसे मुख्य-मुख्य आधुनिक शब्द और अर्थ भी दिये जाने चाहियें, जोकि भारतवर्ष में आधुनिक संस्कृत विद्वानों द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं।" अतः यह स्पष्ट है कि 'धन्यवाद' शब्द आधुनिक ही है।

'धन्यवाद' शब्द धन्य+वाद से मिलकर बना है। संस्कृत में 'धन्य' शब्द का अर्थ है—धनवान्, भाग्यवान्, सर्वोत्तम, पुण्यात्मा आदि और 'वाद' का अर्थ है—कथन, वर्णन आदि। इस प्रकार 'धन्यवाद' शब्द का अर्थ हो सकता

है—'धनवान् कहना', 'भाग्यवान् कहना', 'सर्वोत्तम कहना' आदि। वस्तुतः किसी के उपकार, अनुग्रह आदि के बदले में कृतज्ञता प्रकट करने के लिये 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के thanks शब्द द्वारा प्रस्तुत नवीन भाव को व्यक्त करने के लिये किया जाने लगा है। किसी की प्रशंसा करने अथवा शाबाशी देने के लिये संस्कृत में 'साधुवाद'[1] शब्द का प्रयोग पाया जाता है। इसी के अनुकरण पर उपकार, अनुग्रह आदि के बदले में कृतज्ञता प्रकट करने के लिये 'धन्यवाद' शब्द बनाया गया है। 'धन्यवाद' शब्द का यह अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि इस अर्थ में 'धन्यवाद' शब्द सर्वप्रथम बंगला भाषा में प्रचलित हुआ और फिर उसके अनुकरण पर हिन्दी में प्रयुक्त किया जाने लगा।

नागरिक

'नागरिक' पुं० शब्द आजकल हिन्दी में अंग्रेज़ी के citizen शब्द के पर्यायवाची के रूप में प्रचलित है, अर्थात् 'नागरिक' राज्य के ऐसे निवासी को कहा जाता है, जो राज्य के प्रति निष्ठा और भक्ति रखता हो और उसके बदले में राज्य के संरक्षण में सब प्रकार के असैनिक और राजनैतिक अधिकारों का उपभोग करता हो। 'नागरिक' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'नागरिक' शब्द का मूल अर्थ है—'नगर में उत्पन्न हुआ, नगरनिवासी' (नगरे भवः; नगर+वुञ्)। नगर में रहने वाले व्यक्ति अधिकतर शिष्ट अथवा सभ्य होते हैं, इस कारण संस्कृत में 'नगरनिवासी' के वाचक 'नागरिक' शब्द का 'शिष्ट अथवा सभ्य' अर्थ भी विकसित पाया जाता है, जैसे—नागरिकवृत्त्या संज्ञापयैनाम् (शाकु० अङ्क ५); साधु आर्य, नागरिकोऽसि (विक्रम० अङ्क २)। इसके अतिरिक्त नगर से सम्बद्ध कई अन्य प्रकार के व्यक्तियों के लिये भी 'नागरिक' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, जैसे संस्कृत नाटकों[3] में 'नगर की पुलिस के प्रमुख' अर्थात् 'मुख्य रक्षाधिकारी' के लिये 'नागरिक' शब्द का प्रयोग हुआ है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में 'नगर के अध्यक्ष' को 'नागरिक' कहा गया है।

आधुनिक काल में जब अंग्रेज़ी के citizen शब्द के भाव को हिन्दी भाषा

---

१. सिद्धा माल्यैः साधुवादैर्द्वयेऽपि (आकिरन्ति)। शिशु० १८.५५.

२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

३. विक्रम० अङ्क ५; शाकु० अङ्क ६ आदि।

में व्यक्त करने की आवश्यकता हुई, तो उसके लिये उसके मूल भाव को प्रकट करने वाले संस्कृत के 'नागरिक' शब्द को अपना लिया गया। citizen शब्द लैटिन भाषा के civis शब्द से बना है, जिसका मूल अर्थ 'नगरनिवासी' ही था। प्राचीन यूनान और रोम में छोटे आत्मनिर्भर 'नगर-राज्य' हुआ करते थे। उन नगर-राज्यों में रहने वाले लोग civis कहलाते थे। बाद में चलकर जब नगर-राज्य लुप्त हो गये और उनका स्थान बड़े राज्यों ने ले लिया, तो उन राज्यों के भी निष्ठावान् सदस्यों को civis अथवा उससे विकसित अन्य शब्दों द्वारा सम्बोधित किया गया। आजकल citizen शब्द का एक विशिष्ट राजनैतिक भाव है (जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है)। 'नागरिक' शब्द उसी का बोधक है। नागरिकों के जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन प्रस्तुत करने वाले 'नागरिक-शास्त्र' (civics) नाम के नवीन विषय का जन्म भी आधुनिक काल की ही देन है।

यह उल्लेखनीय है कि अधिकतर भारत-यूरोपीय भाषाओं में 'नागरिक' (citizen) के वाचक ऐसे ही शब्द मिलते हैं, जिनका मौलिक अर्थ 'नगर-निवासी' था।[1] 'नागरिक' के वाचक ग्रीक एवं लैटिन आदि भाषाओं के मूलतः 'नगर-निवासी' अर्थ वाले शब्दों ने ऐसे शब्दों की रचना एवं प्रचलन को निस्सन्देह काफ़ी हद तक प्रभावित किया है।

प्रकाशन

हिन्दी में 'प्रकाशन' पुं० शब्द का मुख्य अर्थ है—'प्रकाशित करने का काम', 'प्रकाशित पुस्तक, पत्र आदि' (publication)। 'प्रकाशन' शब्द का यह अर्थ प्राचीन संस्कृत में नहीं पाया जाता। वस्तुतः प्राचीन काल में इस प्रकार का कार्य ही नहीं था।

संस्कृत में 'प्रकाशन' नपुं० शब्द के अर्थ हैं—'उजाला'[2], 'प्रकटीकरण'[3] आदि। इसी प्रकार संस्कृत में प्र उपसर्गपूर्वक णिजन्त √काश् धातु में क्त प्रत्यय लगकर बने 'प्रकाशित' शब्द का 'प्रकट, प्रकट किया हुआ', 'चमका हुआ' आदि अर्थों

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१९.३७; citizen), पृष्ठ १३२७.

२. रवेरविषये किं न प्रदीपस्य प्रकाशनम्। सुहृद्भेद, श्लोक ७९.

३. स्वव्यापारप्रकाशनार्थं मातुः सम्मुखे गतः। पञ्च० ५, कथा १.

में और 'प्रकाशक' शब्द का 'प्रकाश करने वाला', 'प्रकट करने वाला'[1] आदि अर्थों में प्रयोग पाया जाता है।

पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं आदि का छपना प्रारम्भ होने पर जब अंग्रेज़ी के publication और publish शब्दों के भावों को हिन्दी, बंगला आदि भाषाओं में व्यक्त करने की आवश्यकता हुई तो इनके लिये मिलते-जुलते भाव वाले 'प्रकाशन', 'प्रकाशित करना' शब्दों को अपना लिया गया। अंग्रेज़ी के publication शब्द का भी मौलिक अर्थ 'सार्वजनिक रूप में प्रकट करना' है। किसी पुस्तक अथवा पत्र-पत्रिका आदि को प्रकाशित करके सार्वजनिक रूप में प्रकट ही किया जाता है। इसी भाव-सादृश्य से publication और publish के लिये क्रमशः 'प्रकटीकरण' और 'प्रकट करना' के वाचक 'प्रकाशन' और 'प्रकाशित करना' को अपनाया गया।

यह उल्लेखनीय है कि ग्रन्थ के प्रकट करने को संस्कृत में भी एक स्थान पर 'प्रकाशित' करना कहा गया है। उत्तररामचरित (अङ्क ४) में जब जनक लव से यह पूछते हैं कि बतलाओ, दशरथ के उन पुत्रों के कितने और किस-किस नाम वाले पुत्र, किन-किन पत्नियों से उत्पन्न हुये हैं, तो वह कहता है कि कथा का यह भाग हमने या और किसी ने भी नहीं सुना है। जनक के फिर यह पूछने पर कि क्या कवि ने इस कथा-भाग को नहीं बनाया, तो लव उत्तर देता है—बनाया तो है, परन्तु प्रकट (प्रकाशित) नहीं किया है (प्रणीतः न तु प्रकाशितः)।

आजकल हिन्दी में 'प्रकाशित' शब्द का अर्थ है—'जो छपकर लोगों के सामने आया हो' और 'प्रकाशक' उसे कहा जाता है 'जो पुस्तकें या पत्र-पत्रिकायें आदि छपवाकर बेचता या बाँटता हो'। प्रकाशन, प्रकाशित, प्रकाशक आदि शब्दों के उपर्युक्त आधुनिक अर्थ बंगला, गुजराती, मराठी, नेपाली तथा तमिल आदि भाषाओं भी पाये जाते हैं।

प्रचार

आजकल हिन्दी में 'प्रचार' पुं० शब्द का मुख्य अर्थ है—'किसी विषय, मत या बात का बहुत से लोगों में रखना' (propaganda)। संस्कृत में 'प्रचार' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं पाया जाता।

'प्रचार' शब्द प्र उपसर्गपूर्वक √चर् धातु से बना है। संस्कृत में 'प्रचार'

---

१. परमार्थप्रकाशकः। शुक्र० २.१६८.

पुं० शब्द का प्रयोग प्रचरण[1] (चलना-फिरना), चराना[2], चरागाह[3], मार्ग[4], आचरण[5], व्यवहार[6], विधि (ढंग), अवस्था[7], गति[8], कर्त्तव्य[9] (नित्यक्रम), वार्तालाप[10], अभिव्यक्ति (स्वरूप)[11], प्रकाश[12], प्रजा[13], प्रचलन[14], प्रयोग आदि अर्थों में पाया जाता है।

'प्रचार' शब्द का 'किसी विषय, मत या बात का बहुत से लोगों के सामने रखना' अर्थ अंग्रेजी के propaganda शब्द का भाव है। इस भाव को 'प्रचार' शब्द पर इसलिये आरोपित कर दिया गया है, क्योंकि 'प्रचार' शब्द का प्रयोग संस्कृत में भी इस से मिलते-जुलते 'प्रचलन' अर्थ में पाया जाता है।

योजना

हिन्दी में 'योजना' स्त्री० शब्द का अर्थ है—'कोई कार्य या उद्देश्य सिद्ध

---

१. नृपतिपुरुषशङ्कितप्रचारम् (मृच्छ० ३.१०); शान्तमृगप्रचारं काननम् (कुमार० ३.४२)।

२. पशुप्रचारार्थं विवीतमालवनेनोपजीवेयुः। अर्थ० ३.१०.३१.

३. गवां प्रचारेष्वासीनम्। महा० १.४०.१७.

४. योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते। मनु० ९.२१९.

५. अन्तःपुरप्रचारम्। मनु० ७.१५३.

६. यो न प्रचारं भजते विविक्तम्। सौन्दर० १४.४७.

७. प्रचारः स तु विज्ञेयः। गौडपादीयकारिका ३.३४.

८. दृष्ट्वा विचित्रं जगतः प्रचारम्। बुद्ध० ९.३४.

९. संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डसञ्जातमेतत्करणीयम् (अर्थ० २.९.१४)। कौटिलीय अर्थशास्त्र में द्वितीय आधिकरणिक का नाम 'अध्यक्षप्रचार' है, जिसमें विभिन्न विभागों के अध्यक्षों के कार्यों अथवा कर्तव्यों (duties) का वर्णन किया गया है।

१०. रहःप्रचारकुशला (शुक्र० १.१११); कामन्द० १.५१.

११. अदृष्टतत्त्वेन परीक्षकेण स्थितेन चित्रे विषयप्रचारे।
सौन्दर० १४.४८.

१२. तुहिनकिरणबिम्बे खञ्जरीटप्रचारः। शङ्कराचार्य (शब्दकल्पद्रुम से उद्धृत)।

१३. प्रचारसमृद्धिः। अर्थ० २.८३.

१४. विलोक्य तैरप्यधुना प्रचारम्। त्रिकाण्डशेष।

करने के उपाय, साधन, व्यवस्था आदि की निश्चित की हुई रूपरेखा' (project, plan)। संस्कृत में 'योजना' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'योजना' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'जोड़ना, मिलाना, संयोग'। इसी से विकसित हुये प्रयोग[1], व्यवहार, व्यवस्था[2], रचना आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। 'संयोग' अर्थ में 'योजना' शब्द का प्रयोग वैवाहिक संयोग[3] के लिये भी पाया जाता है।

व्यवस्था, रचना आदि अर्थों में 'योजना' शब्द का प्रयोग पाये जाने के कारण ही भाव-सादृश्य से इस पर अंग्रेज़ी के project, plan शब्दों का भाव आरोपित कर दिया गया है। वस्तुत: कोई कार्य या उद्देश्य सिद्ध करने के लिये उपाय, साधन, व्यवस्था आदि की निश्चित की हुई रूप-रेखा में उस कार्य की रचना अथवा व्यवस्था का ही निरूपण होता है।

तमिल में 'योचनै' (योजना) शब्द के विचार, मत, सलाह, विवेक, बुद्धिमत्ता आदि अर्थ हैं।[4]

विज्ञान

आजकल हिन्दी भाषा में 'विज्ञान' पुं० शब्द का अर्थ है—'किसी विषय की जानी हुई बातों और तथ्यों का वह विवेचन जो एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में हो' (science), जैसे भौतिक-विज्ञान, जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान आदि।

'विज्ञान' शब्द वि उपसर्गपूर्वक √ ज्ञा 'जानना' धातु से भावे ल्युट् प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में 'विज्ञान' नपुं० शब्द का मुख्य अर्थ 'ज्ञान' है। उससे ही बुद्धि[5], विवेक[6], दक्षता, कौशल[7], लौकिक

---

१. अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्। ऋग्वेद १.३५.८.

२. देशकालवयोमानपाकवीर्यरसादिषु।
परापरत्वे युक्तिस्तु योजना या च युज्यते। चरक० सूत्रस्थान २६.४९.

३. एतत्सप्तपदप्रमाणमिह भोः सम्पाद्यते योजना। अविमारक ३.२०.

४. तमिल लेक्सीकन।

५. विज्ञानशौर्यविभवार्यगुणैः समेतम्। पञ्च० १.२४.

६. व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्। सांख्यकारिका २.

७. आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्। शाकु० १.२.

ज्ञान[1], पहिचान[2] आदि अर्थ विकसित हो गये हैं।

भारतीय-दर्शन में 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से पाया जाता है। वेदान्त में आत्मा के पाँच कोशों में 'विज्ञान' (बुद्धि) का प्रथम कोश माना गया है और उसे 'विज्ञानमयः कोशः' कहा गया है। बौद्ध-मतानुसार व्यक्ति रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, और विज्ञान इन पाँच स्कन्धों का समुच्चय-मात्र है। विज्ञान-स्कन्ध से आभ्यन्तर ज्ञान और इन्द्रियों से जन्य रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का ज्ञान होता है। वैभाषिक मत में ६ विज्ञानधातु (चक्षुविज्ञानधातु, श्रोत्रविज्ञानधातु, घ्राणविज्ञानधातु, जिह्वाविज्ञानधातु, कायविज्ञानधातु और मनोविज्ञानधातु) मानी गयी हैं। बौद्धमत में 'प्रतीत्यसमुत्पाद' नामक कारणवाद के सिद्धान्त के अनुसार भवचक्र के १२ अङ्गों अथवा निदानों में से एक विज्ञान-निदान है। विज्ञान-निदान इस जीवन की उस दशा को कहा गया है, जबकि प्राणी माता के गर्भ में प्रवेश करता है और चैतन्य प्राप्त करता है। बौद्ध-दर्शन में 'विज्ञान-वाद' नाम का एक सिद्धान्त है (जो पाश्चात्य दर्शन के Idealism से मिलता-जुलता है), जिसके अनुसार यह माना जाता है कि ज्ञान ही परमार्थ-सत् है, जो वस्तुयें हम बाह्य जगत् में देखते हैं, वे हमारे ज्ञान का ही आकार हैं, उनका कोई बाह्य अस्तित्व नहीं है।

संस्कृत भाषा के कोशों में 'विज्ञान' शब्द के 'सङ्गीत', 'चौदह विद्याओं का ज्ञान' आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। आप्टे ने ये अर्थ दिये हैं। मोनियर विलियम्स ने भी 'विज्ञान' शब्द के science, doctrine आदि अर्थ दिये हैं और सुश्रुतसंहिता का निर्देश दिया है, किन्तु सुश्रुतसंहिता में 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'ज्ञान', 'पहिचान', 'किसी विषय का ज्ञान' आदि अर्थों में ही पाया जाता है। सुश्रुतसंहिता में कुछ अध्यायों के नाम उनके विषय के नाम पर रक्खे गये हैं और उनको उन विषयों का 'विज्ञानीय' कहा गया है, जैसे—स्थावरविषविज्ञानीयमध्यायम्, जङ्गमविषविज्ञानीयमध्यायम्, दृष्टिगतरोग-

---

१. ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेहभूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ भग० ७.२.

२. पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी (मुद्रा० २.७);
अथ वक्ष्यामि विज्ञानमोषधीनां पृथक्-पृथक् (सुश्रुतसंहिता, चिकित्सा-स्थान ३०.९)।

विज्ञानीयमध्यायम्, कर्णगतरोगविज्ञानीयमध्यायम्, नासागतरोगविज्ञानीय-मध्यायम् आदि। इन प्रयोगों में 'विज्ञान' शब्द 'किसी विषय का ज्ञान' अर्थ में है, क्योंकि 'दृष्टिगतरोगविज्ञानीयमध्यायम्' का अर्थ है—'दृष्टिगतरोगों के ज्ञान से सम्बन्धित अध्याय', 'कर्णगतरोगविज्ञानीयमध्यायम्' का अर्थ है—'कर्णगत-रोगों के ज्ञान से सम्बन्धित अध्याय'। इन अध्यायों में रोगों की पहिचान, भेद और लक्षण आदि दिये हुये हैं, उनकी चिकित्सा-सम्बन्धी ओषधियों का विवरण पृथक् अध्यायों में दिया गया है। अतः 'विज्ञान' शब्द यहाँ पर सामान्यरूप में 'किसी विषय का ज्ञान' अर्थ में है।

आजकल 'विज्ञान' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है, वह वस्तुतः अंग्रेज़ी के science शब्द का भाव है। 'विज्ञान' शब्द के भाव (किसी विषय का ज्ञान) के कुछ सदृश होने के कारण ही अंग्रेज़ी के science शब्द का भाव 'विज्ञान' शब्द पर आरोपित कर दिया गया है। आजकल हिन्दी में 'विज्ञान' शब्द 'साइंस' अर्थ में ही प्रचलित है, ज्ञान, बुद्धि, पहिचान आदि सब अर्थ लुप्त हो गये हैं। मराठी, गुजराती, बंगला, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं में भी 'विज्ञान' शब्द 'साइंस' अर्थ में प्रचलित है।

विज्ञापन

हिन्दी में 'विज्ञापन' पुं० शब्द का अर्थ है—'बिक्री आदि के माल अथवा किसी बात की वह सूचना जो सब लोगों को विशेषतः सामयिक पत्रों के द्वारा दी जाती है' (advertisement)। 'विज्ञापन' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। यह अंग्रेज़ी के advertisement शब्द का आरोपित किया हुआ भाव है।

संस्कृत में 'विज्ञापन' (वि०+ज्ञा+णिच्+ल्युट्) नपुं० शब्द का मुख्य अर्थ है—'आदरपूर्वक कथन, सूचना', जैसे—तया विज्ञापनायाहं प्रेषितः (कथा० ३१.५८)।

संस्कृत में 'विज्ञापन' शब्द का 'प्रार्थना' अर्थ भी पाया जाता है। संस्कृत में 'विज्ञापन' के समान ही 'विज्ञापना' शब्द का भी 'आदरपूर्वक कथन', 'सूचना'[1], 'प्रार्थना'[2] आदि अर्थों में प्रयोग पाया जाता है।

---

१. युयोज पाकाभिमुखैर्भृत्यान्विज्ञापनाफलैः। रघु० १७. ४०.

२. कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति। कुमार० ७.९३.

संस्कृत में 'विज्ञापन' शब्द का 'सूचना' अर्थ पाये जाने के कारण ही भाव-सादृश्य से 'बिक्री आदि के माल अथवा किसी बात की सूचना' के लिये, जो सब लोगों को विशेषतः सामयिक पत्रों के द्वारा दी जाती है (और जोकि अंग्रेज़ी के advertisement शब्द द्वारा प्रस्तुत नवीन भाव है) 'विज्ञापन' शब्द अपना लिया गया है। अंग्रेज़ी के advertisement शब्द का भी मौलिक अर्थ 'सूचना, घोषणा' ही है।

बंगला भाषा में भी 'विज्ञापन' शब्द का यह अर्थ पाया जाता है। मेहता के गुजराती-इंगलिश कोश में यह अर्थ नहीं दिया हुआ है। टर्नर ने अपने नेपाली भाषा के कोश में सूचना, घोषणा, आदरपूर्वक कथन आदि अर्थ दिये हैं, किन्तु advertisement अर्थ नहीं दिया है। किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश में 'आदरपूर्वक कथन' तथा 'सूचना' अर्थ ही दिये हुये हैं। मलयालम[1] में 'विज्ञापनम्', तमिल[2] में 'विञ्ञापनम्' और तेलुगु[3] में 'विज्ञापनमु' शब्दों के 'प्रार्थना', 'प्रार्थना-पत्र' आदि अर्थ हैं।

संसद्

हिन्दी में 'संसद्' स्त्री० शब्द किसी देश की जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियों की उस सर्वोच्च (केन्द्रीय) विधानसभा को कहते हैं, जो शासन-सम्बन्धी कार्यों में सहायता देने, आयव्ययक स्वीकार करने, विधान बनाने, उसमें संशोधन करने आदि का काम करती है। 'संसद्' शब्द का यह अर्थ आधुनिक है। संस्कृत में 'संसद्' (सम् + सद् + क्विप्; संसीदन्त्यस्यामिति) स्त्री० शब्द का प्रयोग अधिकतर सामान्य रूप में 'सभा' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—'ब्रह्मसंसदि'—'ब्राह्मणों की सभा में' (कठो० १.३.१७); 'छात्र-संसदि' (पञ्च० १); 'जनसंसदि' (भग० १३.१०) आदि। मनुस्मृति (८.५२) में 'न्यायसभा' के लिये 'संसद्' शब्द का प्रयोग हुआ है। रघु० (१६.२४) में 'राजसभा' को 'संसद्' कहा गया है। 'संसद्' शब्द का वर्तमान अर्थ अंग्रेज़ी के parliament शब्द द्वारा प्रस्तुत नवीन भाव है। सम्भवतः संस्कृत साहित्य में 'राजसभा' के लिये 'संसद्' शब्द का प्रयोग पाये जाने के

---

१. गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

२. तमिल़ लेक्सीकन।

३. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी (विज्ञापनमु=petition; अधिक प्रचलित रूप 'विन्नपमु')।

कारण भाव-सादृश्य से 'पार्लियामेण्ट' के लिये हिन्दी में इसे ग्रहण कर लिया गया है।

संस्करण

हिन्दी में 'संस्करण' पुं० शब्द 'पुस्तकादि की एक बार की छपाई, आवृत्ति' (edition) अर्थ में प्रचलित है (जैसे प्रथम संस्करण, द्वितीय संस्करण, संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण आदि)। 'संस्करण' शब्द का यह अर्थ एक नवीन भाव है, जोकि अंग्रेज़ी के edition शब्द से आया है। आधुनिक युग में पुस्तकों आदि की छपाई प्रारम्भ होने पर जब 'पुस्तकों की एक बार की छपाई' (edition) के लिये नया शब्द बनाने की आवश्यकता हुई, तो मिलते-जुलते भाव वाले 'संस्करण' शब्द को इस (edition) भाव को व्यक्त करने के लिये अपना लिया गया। संस्कृत में 'संस्करण' नपुं० शब्द का अर्थ है—एक साथ रखने की क्रिया, तैयार करना[1] आदि। सम्भवतः 'संस्करण' शब्द का 'एक साथ रखने की क्रिया', 'तैयार करना' अर्थ होने के कारण ही 'पुस्तकादि की एक बार की छपाई' के लिये 'संस्करण' शब्द अपना लिया गया है। किसी पुस्तक की आवृत्तियों में उसको फिर से तैयार भी करना पड़ता है और बाद की आवृत्तियों में प्रायः पुस्तक की सामग्री में भी परिष्कार कर दिया जाता है।

संस्कृति

हिन्दी में 'संस्कृति' स्त्री० शब्द का अर्थ है 'किसी व्यक्ति, जाति, राष्ट्र आदि की वे सब बातें जो उसके मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती हैं' (culture)। संस्कृत में 'संस्कृति' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। यह आधुनिक भाव है और अंग्रेज़ी के culture शब्द से गृहीत है।

शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य और आप्टे के कोश में 'संस्कृति' शब्द ही नहीं मिलता, केवल मोनियर विलियम्स के कोश में दिया हुआ है। मोनियर

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

यह उल्लेखनीय है कि 'संस्करण' शब्द केवल मोनियर विलियम्स और आप्टे के कोशों में मिलता है। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य आदि कोशों में यह शब्द नहीं मिलता। मोनियर विलियम्स ने 'संस्करण' शब्द के उपर्युक्त अर्थ में प्रयोग के विषय में गोभिल के श्राद्धकल्प का निर्देश दिया है।

विलियम्स ने इसका अर्थ दिया है—तैयारी करना, तैयारी, पूर्णता (वाजसनेयि-संहिता); रचना, बनावट (ऐतरेयब्राह्मण) आदि। संस्कृत में सम् उपसर्ग-पूर्वक √कृ धातु (जिससे कि 'संस्कृति' शब्द बना है) का प्रयोग भी शुद्ध करना, सुधारना, पवित्र करना आदि अर्थों में पाया जाता है (जैसे—संस्कार, संस्करण आदि शब्दों में)।

अंग्रेज़ी भाषा के culture शब्द द्वारा प्रस्तुत नवीन भाव के लिये हिन्दी में 'संस्कृति' शब्द दोनों (कल्चर और संस्कृति) शब्दों के मौलिक भावों में कुछ सादृश्य होने के कारण अपना लिया गया है। अंग्रेज़ी का culture शब्द लैटिन भाषा के cultura शब्द से निकला है, जिसका मौलिक अर्थ है—जोतना[1], पौधा लगाना या पशुओं का पालन करना। बाद में इसका अर्थ विकसित हुआ—'अभ्यास करना', 'मस्तिष्क तथा उसकी शक्तियों को विकसित करना', 'शिक्षा तथा प्रशिक्षण द्वारा मानसिक वृत्तियों को सुधारना'। इसी से आगे 'कल्चर' शब्द का अर्थ—'मस्तिष्क, रुचि और आचार का शिक्षण तथा संस्कार', 'इस प्रकार शिक्षित एवं संस्कृत किये जाने की अवस्था', 'सभ्यता का बौद्धिक पक्ष' विकसित हुआ। 'संस्कृति' शब्द का भी मौलिक अर्थ है—'तैयार करना, सुधारना' (मन को, हृदय को तथा उनकी वृत्तियों को संस्कार के द्वारा सुधारना)। संस्कृत में सुधार अथवा मनोवृत्ति या स्वभाव के शोधन के लिये सम् उपसर्गपूर्वक √कृ धातु से बने हुये 'संस्कार' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। हिन्दुओं के धार्मिक विधान में जो १६ संस्कार विहित हैं, उनका उद्देश्य भी जीवन को सुधारना अथवा मनोवृत्ति या स्वभाव आदि को सुधारना होता है। सम्भवतः 'मनोवृत्ति आदि को सुधारना' अर्थ में 'संस्कार' शब्द का प्रयोग होने के कारण और 'संस्कृति' शब्द का भी 'सुधार' अर्थ होने के कारण अंग्रेज़ी के 'कल्चर' शब्द द्वारा प्रस्तुत मिलते-जुलते भाव के लिये 'संस्कृति' शब्द अपना लिया गया है।

मनुष्य अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिये बौद्धिक चिन्तन द्वारा जिन उच्च आदर्शों, कलाओं, प्रथाओं और संस्थाओं आदि की स्थापना करता है, उन सबको सामूहिक रूप में 'संस्कृति' कहा जाता है।

---

१. अंग्रेज़ी का agriculture (खेती) शब्द लैटिन के agricultura शब्द से बना है (ager=खेत; cultura=जोतना)।

सचिव

हिन्दी में 'सचिव' पुं० शब्द अंग्रेज़ी के secretary का वाचक है। 'सेक्रेटरी' शब्द कई भावों को व्यक्त करता है; एक तो किसी संस्था या संगठन के मन्त्री अथवा कार्य-सञ्चालन के लिये उत्तरदायी व्यक्ति को सेक्रेटरी कहा जाता है, जैसे समाजवादी दल का सेक्रेटरी; दूसरे किसी के निजी कार्य, पत्र-व्यवहार या व्यवस्था आदि में सहायता करने वाले को सेक्रेटरी कहा जाता है; तीसरे शासन-व्यवस्था के किसी विभाग के उच्च अधिकारी को भी सेक्रेटरी कहा जाता है। इन सभी अर्थों में 'सेक्रेटरी' के स्थान पर 'सचिव' शब्द का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत में 'सचिव' शब्द के ये अर्थ नहीं पाये जाते। संस्कृत में 'सचिव' शब्द का मालिक अर्थ है—'साथी, सखा'। इसकी व्युत्पत्ति √सच् 'साथ देना, अनुसरण करना' धातु से मानी जाती है। ऋग्वेद में साथ देना[1], अनुसरण करना[2] अर्थ में √सच् धातु का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। 'साथी, सहचर' अर्थ में 'सचिव' शब्द का प्रयोग ऐतरेय ब्राह्मण (३.२०.१) में राजा के सहचर या मन्त्री के लिये पाया जाता है और बाद के संस्कृत साहित्य में विशेषतया इसी अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है।[3] आधुनिक शासन-व्यवस्था में किसी विभाग का सर्वोच्च राजकीय अधिकारी, जो उस विभाग के कार्य का वास्तविक सञ्चालन करता है, सेक्रेटरी ही होता है, मन्त्री लोग तो केवल नीति निर्धारित करते हैं। प्राचीन काल में जो कार्य राजा के मन्त्री (सचिव) करते थे, उसी से मिलता-जुलता कार्य आजकल विभागीय सेक्रेटरी करते हैं, अतः भाव-सादृश्य से हिन्दी में 'सेक्रेटरी' के लिये 'सचिव' शब्द अपना लिया गया है। 'सचिव' और 'सेक्रेटरी' शब्दों के भावों में एक और समानता है। Secretary शब्द के लैटिन भाषा के secretum (= Eng. secret) से व्युत्पन्न होने के कारण इसका मूल अर्थ है—'विश्वसनीय व्यक्ति, जो भेदों को

१. सचस्वा नः स्वस्तये—'हमारे कल्याण के लिये हमारा साथ दो' (ऋग्वेद १.१.९)।

२. द्रुहः सचन्ते अनृता जनानाम्—'वैरी, लोगों की मिथ्या बातों का अनुसरण करते हैं' (ऋग्वेद ७.६१.५)।

३. सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् (मनु० ७.५४); रघु० १.३४; ४.८७; ८.६७ आदि।

४. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ ६६९.

गुप्त रख सके' (a confidant, one entrusted with secrets)। प्राचीन काल में राजाओं के सखा या मन्त्री (सचिव) भी अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्ति होते थे। जिन अर्थों में भी 'सेक्रेटरी' शब्द का प्रयोग होता है, आजकल लगभग उन सभी भावों के लिये हिन्दी में 'सचिव' शब्द प्रचलित हो गया है।

सभ्यता

हिन्दी में 'सभ्यता' स्त्री० शब्द 'शिष्टता' (सभ्य होने का भाव) और 'किसी जाति या राष्ट्र की वे सब बातें जो उसके सौजन्य तथा शिक्षित और उन्नत होने की सूचक हों' (civilization) आदि अर्थों में प्रचलित है। 'सभ्यता' शब्द का 'शिष्टता' अर्थ संस्कृत में भी हो सकता है, क्योंकि 'सभ्य' शब्द का प्रयोग संस्कृत में 'शिष्ट' अर्थ में पाया जाता है।[1] मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में 'सभ्यता' शब्द के कुलीनता, शिष्टता आदि अर्थ दिये हैं, किन्तु इन अर्थों के विषय में उसने विल्सन के कोश का निर्देश दिया है, किसी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ का निर्देश नहीं दिया है। अतः यह शङ्का की जा सकती है कि शायद ये अर्थ आधुनिक हों। किन्तु संस्कृत में 'सभ्य' शब्द का प्रयोग 'शिष्ट' अर्थ में पाये जाने के कारण 'सभ्यता' शब्द के भी 'शिष्टता' अर्थ के पाये जाने की सम्भावना हो सकती है, यद्यपि कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं है।

'सभ्यता' शब्द का 'किसी जाति या राष्ट्र की वे सब बातें जो उसके सौजन्य तथा शिक्षित और उन्नत होने की सूचक हों' अर्थ अंग्रेज़ी के 'सिविलाइज़ेशन' शब्द द्वारा प्रस्तुत नवीन भाव है। 'सिविलाइज़ेशन' शब्द के इस नवीन भाव को भाव-सादृश्य के कारण 'सभ्यता' शब्द पर आरोपित कर दिया गया है, क्योंकि 'सिविलाइज़ेशन' शब्द का भी मौलिक अर्थ 'सभ्य होने का भाव अथवा अवस्था' (the state of being civilized) है। इस प्रकार 'सभ्यता' शब्द का 'किसी जाति या राष्ट्र की वे सब बातें जो उसके सौजन्य तथा शिक्षित और उन्नत होने की सूचक हों' अर्थ प्रचलित हो गया। 'सभ्यता' शब्द का यह अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है।[2]

सम्पादन

हिन्दी में 'सम्पादन' पुं० शब्द का अर्थ है—'किसी कार्य को पूरा करना',

---

१. तस्मैः सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः। रघु० १.५५.

२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

'पुस्तक या सामयिक पत्र आदि को क्रम, पाठ आदि ठीक करके प्रकाशन के योग्य बनाना' (editing)। 'पूरा करना' अर्थ में 'सम्पादन' शब्द का प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

संस्कृत में 'सम्पादन' नपुं० शब्द का प्रयोग अधिकतर 'करना', 'पूरा करना', 'प्राप्त करना'[1] आदि अर्थों में पाया जाता है। मनुस्मृति में 'सम्पादन' शब्द का प्रयोग 'सफ़ाई' (सम्मार्जन) अर्थ में भी पाया जाता है।[2]

'पुस्तक या सामयिक पत्र आदि को ठीक करके प्रकाशन के योग्य बनाना' (editing) एक नवीन भाव है। आधुनिक युग में पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं आदि की छपाई प्रारम्भ होने पर उनको ठीक करके प्रकाशन के योग्य बनाने के कार्य के लिये जब नवीन शब्द बनाने की आवश्यकता हुई, तो इसके लिये 'पूर्ण करना, तैयार करना' के वाचक 'सम्पादन' शब्द को अपना लिया गया। अब 'सम्पादन' शब्द इसी (editing) अर्थ में रूढ़ हो गया है। जो व्यक्ति किसी पुस्तक अथवा पत्र-पत्रिका आदि के क्रम, पाठ आदि को ठीक करके प्रकाशन के योग्य बनाता है अथवा इस कार्य का सञ्चालन करता है, उसे 'सम्पादक' (editor) कहा जाता है। संस्कृत में 'सम्पादक' शब्द का मौलिक अर्थ है 'पूर्ण करने वाला'। संस्कृत साहित्य में इस अर्थ में 'सम्पादक' शब्द का प्रयोग मिलता है।[3] आजकल बंगला आदि कतिपय आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी 'सम्पादन' शब्द 'पुस्तक या पत्र-पत्रिका आदि को ठीक करके प्रकाशन के योग्य बनाना' (editing) अर्थ में प्रचलित है। तेलुगु भाषा में 'सम्पादनमु' शब्द का अर्थ है 'प्राप्ति, कमाई'[4]।

सूची

हिन्दी में 'सूची' स्त्री० शब्द अधिकतर 'तालिका' (list) अर्थ में प्रचलित है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'सूची' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'सूचि' अथवा 'सूची' स्त्री० शब्द[5] का मूल अर्थ है 'सुई'। ऋग्वेद[6]

---

१. सम्पादनाय सुतरां जगृहुः प्रयत्नम्। कथा० १५.१४९.

२. अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसम्पादनं तिलाः। मनु० ३.२५५.

३. रराज सम्पादकमिष्टसिद्धेः। शिशु० ३.२२.

४. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

५. संस्कृत साहित्य में 'सूचि' एवं 'सूची' दोनों शब्द प्रचलित रहे हैं। किन्तु हिन्दी में केवल 'सूची' शब्द ही प्रचलित है।

६. २.३२.४.

तथा बाद के वैदिक साहित्य[१] के अन्य ग्रन्थों में 'सूची' शब्द 'सुई' अर्थ में ही मिलता है ।

आप्टे ने अपने कोश में 'सूची' शब्द √सूच् 'छेद करना, बींधना' धातु से ङीप् प्रत्यय लगकर निष्पन्न माना है। किन्तु यह व्युत्पत्ति सर्वथा अविश्वसनीय है, क्योंकि √सूच् धातु तो बहुत बाद में विकसित हुई है। √सूच् धातु का विकास सम्भवत: 'सूच' (सङ्केत) और 'सूची' शब्दों के नामधातु[२] के रूप में प्रयोग से हुआ है। मोनियर विलियम्स के विचार में 'सूची' शब्द सम्भवत: √सीव् 'सीना' धातु से निष्पन्न (तथा 'सूत्र', 'स्यूत' शब्दों से सम्बद्ध) है। यास्क ने भी (निरुक्त ११.३१ में) इसकी व्युत्पत्ति √सिव् 'सीना' धातु से मानी है। क्रेत्श्मेर का विचार है कि भारत-यूरोपीय भाषा में एक मूल धातु siəu 'सीना' थी[३], जोकि स्वरों से पूर्व 'सीव्' हो गई (जैसे 'सीव्यति' में), और व्यञ्जनों से पूर्व 'स्यू' हो गई (जैसे 'स्यूत' में)। अथवा सम्भवतः जैसा कि वाल्डे, पोकोर्नी आदि ने माना है, भारत-यूरोपीय भाषा में 'सीना' की वाचक *syu, *sīw और *sū धातुएं थीं।[४] इनमें से *sū धातु से 'सूची' शब्द की उत्पत्ति हो सकती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'सूची' शब्द √सीव् धातु अथवा इससे सम्बद्ध उपर्युक्त किसी अन्य धातु से बना है। अवेस्तन भाषा में 'सूची' से सम्बद्ध sūkā शब्द 'सुई' अर्थ में मिलता है।[५]

'सूची' शब्द का 'सुई' अर्थ में प्रयोग लौकिक संस्कृत साहित्य में भी पाया जाता है।[६] 'सुई' अर्थ से भाव-सादृश्य के आधार पर 'सूची' शब्द का 'किसी वस्तु की पैनी नोक'[७] अर्थ विकसित हुआ। भाव-सादृश्य से ही 'एक विशेष

---

१. अथर्व० ११.१०.३; वाजसनेयिसंहिता २३.३३; तैत्तिरीयब्राह्मण ३.९.६.४; ऐतरेयब्राह्मण ३.१८.६ आदि।

२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

३. सिद्धेश्वर वर्मा : एटिमोलोजीज़ ऑफ़ यास्क, पृष्ठ १२.

४. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ ४१२.

५. वही, पृष्ठ ४१३.

६. यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष। महा० ५.५८.१८.

७. अभिनवकुशसूच्या परिक्षतं मे चरणम्। शाकु० अङ्क १.

प्रकार के सैन्य-व्यूह'[1] के लिये 'सूची' शब्द प्रचलित हुआ। 'सूची-व्यूह' को सुई की आकृति का कहा गया है। इसमें सैनिक एक लम्बी पंक्ति में रहते हैं। सबसे तेज़ और दक्ष सैनिकों को आगे रक्खा जाता है। किसी वस्तु की नोक से ही किसी की ओर सङ्केत किया जाता है, अतः 'नोक' के वाचक 'सूची' शब्द के साथ सङ्केत के भाव का भी साहचर्य हुआ और कालान्तर में संस्कृत में इसका 'सङ्केत' अर्थ भी विकसित हुआ। 'सूच' (सङ्केत) और 'सूची' शब्दों के नामधातु के रूप में प्रयोग से √सूच् धातु सङ्केत करना, सूचित करना[2], प्रदर्शित करना आदि अर्थों में प्रचलित हुई।

'सूची' शब्द का 'तालिका' अर्थ संस्कृत में तथा हिन्दी में आधुनिक काल में ही विकसित हुआ है। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में 'सूची' शब्द के 'अनुक्रमणिका', 'ग्रन्थ के विषयों की तालिका' (an index, a table of contents) अर्थ देते हुये लिखा है कि इन अर्थों में 'सूची' शब्द का प्रयोग भारत में छपी पुस्तकों में होता है। √सूच् धातु के 'सूचित करना' अर्थ में प्रचलित होने के कारण और 'सूची' शब्द में √सूच् धातु की कल्पना कर ली जाने के कारण 'विषयों की तालिका' को 'सूची' (अथवा 'विषय-सूची') सम्भवतः इसलिये कहा गया, क्योंकि यह पुस्तक के विषयों को सूचित करने वाली होती है। बाद में इसके अर्थ में और विस्तार हो गया और किसी भी प्रकार की 'अनुक्रमणिका' या 'तालिका' को 'सूची' कहा जाने लगा। आजकल 'सूची' शब्द 'तालिका' अर्थ में ही प्रचलित है।[3] किसी ऐसी पुस्तक या पुस्तिका को, जिसमें बहुत सी वस्तुओं की नामावली, विवरण, मूल्य आदि दिये हों, 'सूची-पत्र' कहा जाता है।

---

१. दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुड़ेन वा॥ मनु० ७.१८७.

२. सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्। मेघ० २१.

३. हिन्दी में 'सूची' शब्द तो मूल (सुई) अर्थ में प्रचलित नहीं है, किन्तु उससे विकसित हुआ तद्भव 'सुई' शब्द अपने मूल अर्थ में ही प्रचलित है।

तृतीय भाग

भाव-साहचर्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

तृतीय भाग

भाव-साहचर्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

मनुष्य के मस्तिष्क में शब्दों के भाव स्वतन्त्र रूप में विद्यमान नहीं रहते, वे अन्य विभिन्न भावों से भी सम्बद्ध रहते हैं। बहुधा एक शब्द के द्वारा व्यक्त भाव के अन्तर्गत कई भाव मिले रहते हैं और अवसर पाकर इन में से कोई एक मुख्य अर्थ बन जाता है। प्रो० सईस का कथन है—"यह ध्यान रखना चाहिये कि अधिकतर शब्दों के द्वारा लक्षित भाव, जैसा कि लॉक ने कहा है, मिश्रित भाव होते हैं। जस्ट (just) अथवा ब्यूटी (beauty) के समान कोई शब्द केवल सङ्केतलिपि का चिह्नमात्र होता है, जोकि एक दूसरे से न्यूनाधिक सहचरित कई भावों को लक्षित करता है। परन्तु एक मनुष्य के मस्तिष्क में इसके साथ सहचरित भाव सर्वथा वे ही नहीं हो सकते जोकि इसके साथ दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में सहचरित हैं। एक मनुष्य को यह शब्द जो लक्षित करता है, वह दूसरे को नहीं"।[१] इस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क में एक भाव के साथ अन्य भावों के भी सहचरित रहने के कारण किसी शब्द के मुख्य अर्थ के साथ-साथ अन्य गौण अर्थ भी विकसित हो जाते हैं और ये गौण अर्थ समय पाकर मुख्यार्थ बन जाते हैं। विण्ड्रीज़ का कथन है—"यह मुख्यार्थ स्थिर रहेगा, यह नहीं कहा सकता। यह गौण अर्थों से घिरा रहता है, जो सदैव आगे आने के लिये और इसका स्थान लेने के लिये उद्यत रहते हैं। एक शाखा की भाँति, जोकि रस को

---

१. "It must be remembered that the ideas suggested by most words are what Locke calls 'mixed modes'. A word like 'just' or 'beauty' is but a shorthand note suggesting a number of ideas more or less associated with one another. But the ideas associated with it in one mind can not be exactly those associated with it in another; to one man it suggests what it does not to another." Sayce : Introduction to the Science of Language, vol. I, p. 337.

खींच कर मुख्य तने का शोषण करती है, नवीन अर्थ धीरे-धीरे और निश्चित रूप में विकसित होता रहता है और अन्त में पुराने अर्थ का स्थान ले लेता है। इस प्रकार एक शब्द का भिन्न अर्थ हो जाता है"।[१]

किसी वस्तु, क्रिया, भाव आदि को लक्षित करने वाले किसी शब्द के साथ अन्य भाव का साहचर्य विभिन्न प्रकार से हो सकता है। अतः भाव-साहचर्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तनों को विभिन्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तनों को निम्न अध्यायों में रक्खा गया है :—

(अ) अङ्गवाची से सम्पूर्णवाची,

(आ) सम्पूर्णवाची से अङ्गवाची,

(इ) साधनवाची से साध्यवाची,

(ई) विविध भाव-साहचर्यों पर आधारित अर्थ-परिवर्तन।

---

१. "But this outstanding significance can never be warranted to last. It is surrounded by secondary meanings, always ready to come to the front and take its place. Like a branch which attracts the sap and exhausts the main trunk, the new meaning grows slowly and surely and is finally substituted for the old. The word has acquired a different meaning." Vendreys, J. : Language, p. 199.

अध्याय ९

अङ्गवाची से सम्पूर्णवाची

किसी वस्तु के एक भाग अथवा किसी वर्ग के एक अङ्ग अथवा किसी भाव के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न भावों में से एक भाव का वाचक शब्द बहुधा भाव-साहचर्य से उस सम्पूर्ण वस्तु अथवा वर्ग अथवा भाव को लक्षित करने लगता है।

धूम

हिन्दी में 'धूम' शब्द धुआँ, हलचल, आन्दोलन, कोलाहल, ठाठबाट, समारोह, प्रसिद्धि आदि अर्थों में प्रचलित है। 'धूम' शब्द का 'धुआँ' अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है,[1] किन्तु अन्य अर्थ संस्कृत में नहीं पाये जाते। यह बड़ी रोचक बात है कि हिन्दी में 'धूम' शब्द के हलचल, आन्दोलन, कोलाहल, ठाठबाट, समारोह, ख्याति आदि अर्थ इस शब्द के 'धुआँ' अर्थ से ही विकसित हुये हैं।

साधारणतया यह देखा जाता है कि ठाठबाट-पूर्वक किये गये किसी उत्सव अथवा समारोह में लोगों के आने-जाने से अथवा उत्सव या समारोह की गतिविधि से कुछ धूल सी अथवा धुआँ भी उठ जाता है (जैसे कि विवाह आदि के अवसर पर भोजन आदि बनाये जाने के कारण अथवा हवन आदि किये जाने के कारण धुआँ हो जाता है। किसी विशाल यज्ञ आदि का अनुष्ठान किये जाने पर भी धुआँ होता है। जब किसी राजा-महाराजा की सवारी निकलती है अथवा कोई विशाल जलूस निकलता है, तो लोगों के आने-जाने से तथा घोड़ों, रथों, गाड़ियों आदि के चलने से कुछ धूल उठ जाती है)। अतः ठाठबाट-पूर्वक किये गये किसी उत्सव अथवा समारोह में 'धूम' (धुएँ अथवा धूल) के भी होने के कारण, धुएँ अथवा धल के वाचक 'धूम' शब्द के साथ हलचल, कोलाहल, ठाठबाट, समारोह आदि के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में यह (धूम) शब्द हलचल, कोलाहल, ठाठबाट, समारोह आदि के भावों को भी लक्षित करने लगा।

---

१. धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः। मेघ० ५.

हिन्दी में 'हलचल, कोलाहल' अर्थ में 'धूम' शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है, जैसे—'मेले-तमाशे की धूम', 'उत्सव की धूम'। 'ठाठबाट, समारोह' अर्थ में 'धूम' शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है, जैसे—'बारात बड़ी धूम से निकली।'

हिन्दी में 'धूम' शब्द के कोलाहल, हलचल आदि अर्थों से चर्चा, प्रसिद्धि, ख्याति आदि अर्थ भी विकसित हो गये हैं (जैसे—नगर में इस बात की बड़ी धूम है)। किसी बात की हलचल होने से उसके विषय में चारों ओर चर्चा भी फैल जाती है। इस कारण हिन्दी में 'हलचल' अर्थ में प्रयुक्त किये जाने वाले 'धूम' शब्द के साथ 'प्रसिद्धि, ख्याति' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में यह शब्द 'प्रसिद्धि, ख्याति' के भाव को भी लक्षित करने लगा।

यह उल्लेखनीय है कि 'धूम' शब्द भारत-यूरोपीय है। कुछ अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी इससे सम्बद्ध शब्द 'धुआँ' अर्थ में पाये जाते हैं।[1] बक ने इसका भारत-यूरोपीय रूप *dhūmo माना है (जोकि संस्कृत √धू= "हिलाना, उत्तेजित करना" से सम्बद्ध किसी धातु से निष्पन्न माना जाता है)। इससे विकसित हुये अधिकतर शब्दों के अर्थ 'भाप' अथवा 'धुआँ' ही पाये जाते हैं।

परिजन

हिन्दी में 'परिजन' पुं० शब्द 'कुटुम्बी' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'परिजन' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।[2] संस्कृत में 'परिजन' पुं०

१. लैटिन fūmus, इटैलियन fumo, प्राचीन फ्रीज़ियन fum (>मध्यकालीन एवं आधुनिक अंग्रेज़ी fume), फ्रेंच fumée, स्पैनिश humo, रूमानियन fum; लिथुआनियन dūmai (बहु०) चर्चस्लैविक dymŭ, लेटिश dūmi (बहु०), सर्बोक्रोशियन dim, बोहेमियन dým, पोलिश dym, रशन dym; आधुनिक फ़ारसी dūd आदि का अर्थ 'धुआँ' ही है। सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१.८३; smoke), पृष्ठ ७३.

२. यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि मोनियर विलियम्स, आप्टे आदि के कोशों में तथा रौथ और बौथलिक के 'संस्कृत वोर्टरबुक' में 'परिजन' शब्द का 'कुटुम्ब' अर्थ नहीं दिया है, तथापि संस्कृत में एक दो स्थानों पर 'परिजन'

शब्द का अर्थ है—'अनुचरवर्ग, परिचारकवर्ग', जैसे—परिजनो राजानमभितः स्थितः (मालविका० अङ्क १)।

संस्कृत में 'परिजन' शब्द का प्रयोग 'परिचारिकाओं के समूह, दासी-वर्ग' के लिये भी पाया जाता है, जैसे[1]—देव्याः परिजनमध्यगतामासन्न-दारिकां दृष्ट्वा देवी पृष्टा–'महारानी की दासियों के बीच में खड़ी हुई कन्या को देखकर (राजा ने) महारानी से पूछा' (मालविका० अङ्क १)।

हिन्दी में 'परिजन' शब्द का 'कुटुम्बी' अर्थ इसके 'परिचारकवर्ग' अथवा 'अनुचरवर्ग' अर्थ से विकसित हुआ है। 'परिचारकवर्ग' कुटुम्ब का एक भाग होता है तथा समाज की पितृसत्ताक व्यवस्था में स्त्री तथा बच्चे आदि भी परिचारकवर्ग अथवा अनुचरवर्ग के समान गृहस्वामी पर ही आश्रित रहते हैं। अतः 'परिचारकवर्ग' को लक्षित करने वाले 'परिजन' शब्द के साथ कुटुम्ब के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में यह शब्द सामान्य रूप में 'कुटुम्ब' अथवा 'कुटुम्ब के सदस्यों' को लक्षित करने लगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'परिजन' शब्द 'परिवारजन' शब्द का संक्षिप्त रूप है। 'परिवार' शब्द का प्रयोग संस्कृत में 'परिचारकवर्ग' अर्थ में पाया जाता है। अतः 'परिचारकवर्ग' के लोगों को 'परिवारजन' कहा जा सकता है। संस्कृत में 'परिचारकवर्ग' अर्थ में 'परिवारजन' शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है, जैसे—पितृवसतिमहं व्रजामि तां सह परिवारजनेन यत्र मे (काव्य० ७.१७७)।

शब्द का 'कुटुम्ब' अर्थ में प्रयोग मिलता है। 'काव्यदीपिका' में श्लेष अलङ्कार के उदाहरण में दिये हुये निम्न श्लोक में 'परिजन' शब्द का 'कुटुम्ब' अर्थ भी है :—

पृथुकार्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव।
विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम्॥

इस श्लोक के विषय में यह कुछ पता नहीं चलता कि यह किस काल के किस कवि का बनाया हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह आधुनिक काल के ही किसी कवि द्वारा बनाया हुआ है, क्योंकि यदि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में 'परिजन' शब्द का 'कुटुम्ब' अर्थ में प्रयोग होता तो संस्कृत के किसी न किसी प्रामाणिक कोश में यह अर्थ दिया हुआ होता।

१. अन्वभूतपरिजनाङ्गनारतम्। रघु० १९.२३.

यह सम्भव है कि 'परिवारजन' के लिये प्रयत्न-लाघव की दृष्टि से 'परिजन' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा हो।

तेलुगु भाषा में 'परिजनमु' शब्द का अर्थ 'अनुचरवर्ग' अथवा 'अनुयायि-वर्ग' ही है।[1]

परिवार

हिन्दी में 'परिवार' पुं० शब्द 'कुटुम्ब' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'परिवार' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। 'परिवार' शब्द परि उपसर्ग-पूर्वक √ वृ 'घेरना' धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना है। अतः संस्कृत में 'परिवार' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'घेरने वाला' (परिव्रियतेऽनेन)।[2]

'परिवार' शब्द के 'घेरने वाला' अर्थ से संस्कृत में परिचारकवर्ग, अनुचरवर्ग, अनुयायिवर्ग, समूह, म्यान आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। साधारणतया यह देखा जाता है कि बड़े लोगों, राजा-महाराजाओं आदि के यहाँ परिचारक अथवा अनुचर पर्याप्त संख्या में होते हैं। आजकल भी सम्पन्न लोगों के यहाँ ऐसी स्थिति पायी जाती है। प्राचीन काल में तो देश का शासन राजा-महाराजाओं द्वारा किया जाता था, अतः उन दिनों राजा-महाराजाओं तथा उनके अधीनस्थ अन्य उच्चाधिकारियों के यहाँ परिचारक, अनुचर आदि प्रचुर संख्या में होते थे। वे सदैव परिचारकवर्ग अथवा अनुचरवर्ग से घिरे रहते थे। परिचारकवर्ग अथवा अनुचरवर्ग के 'घेरने वाला' होने के कारण ही उनको 'परिवार' कहा गया।

संस्कृत में 'परिवार' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'परिचारकवर्ग' अथवा 'अनुचरवर्ग' अर्थ में ही पाया जाता है[3], जैसे—

मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि। रघु० ६.१०.

---

१. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी (परिजनमु—suite, train of followers)।

२. संस्कृत में परि-पूर्वक √ वृ धातु का 'घेरना' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

३. 'परिवार' शब्द के 'परिचारकवर्ग' अथवा 'अनुचरवर्ग' अर्थ में प्रचलित होने के कारण संस्कृत में 'परिवारता' शब्द का प्रयोग 'दासता, अधीनता' अर्थ में भी पाया जाता है, जैसे—

अनल्पत्वात्प्रधानत्वाद्वंशस्येवेतरे स्वराः।
विजिगीषोर्नृपतयः प्रयान्ति परिवारताम्॥ शिशु० २.६०.

प्राचीन काल में शासन-सूत्र के सञ्चालन में राजा की सहायता करने वाले अधिकारी भी राजा का 'परिवार' कहलाते थे, क्योंकि राजा सदैव उनसे घिरा रहता था। इसके अन्तर्गत अमात्यगण, सेनापति आदि राज्य के उच्चाधिकारी भी आ जाते थे। कामन्दकीयनीतिसार में 'परिवार' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में पाया जाता है, जैसे—

प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसङ्ग्राहिणं शुचिम् ।
कुर्वीतात्महिताकाङ्क्षी परिवारं महीपतिः ।। कामन्द० ४.१०.

पञ्चतन्त्र में 'परिवार' शब्द का प्रयोग 'अनुयायिवर्ग' अर्थ में पाया जाता है। मित्रप्राप्ति नामक तन्त्र में हज़ार कपोतों के अनुयायिवर्ग वाले (कपोतसहस्रपरिवारः) चित्रग्रीव नामक कपोतराज का उल्लेख आता है। सन्धिविग्रह नामक तन्त्र में भी हज़ारों कौओं के अनुयायिवर्ग वाले (काकसहस्रपरिवारः) वायसराज और हज़ार उलूकों के अनुयायिवर्ग वाले (उलूकसहस्रपरिवारः) उलूकराज का उल्लेख मिलता है।

परिचारकवर्ग अथवा अनुचरवर्ग के समूह के सादृश्य पर 'परिवार' शब्द का प्रयोग संस्कृत में 'समूह' अर्थ में भी पाया जाता है। गीतगोविन्द (८.४) में 'परिवार' शब्द का प्रयोग 'समूह, पल्लवसमूह' अर्थ में मिलता है, जैसे—दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् । महाभारत में शाखा तथा पल्लवों से युक्त एक वृक्ष को 'परिवारवान्' कहा गया है—

हिमवत्पृष्ठजः कश्चिच्छाल्मलिः परिवारवान् । शान्तिपर्व १५६.२.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'परिवार' शब्द के 'घेरने वाला' अर्थ से ही अनुचरवर्ग, परिचारकवर्ग, अनुयायिवर्ग आदि अर्थों का विकास हुआ है। संस्कृत में 'परिवार' शब्द के समान ही 'परिवेष्टृ' शब्द के 'परोसनेवाला, परिचारक' अर्थ का विकास हुआ है। 'परिवेष्टृ' शब्द का भी मौलिक अर्थ 'घेरने वाला' ही है।

हिन्दी में 'परिवार' शब्द का 'कुटुम्ब' अर्थ इसके 'परिचारकवर्ग' अथवा 'अनुचरवर्ग' अर्थ से ही विकसित हुआ है। अनुचरवर्ग अथवा परिचारकवर्ग कुटुम्ब का एक अङ्ग होता है। प्रायः प्रत्येक सम्पन्न कुटुम्ब में कुछ 'परिचारक' अवश्य पाये जाते हैं। प्राचीन काल में सम्पन्न कुटुम्बों में अथवा राजा-महाराजाओं के यहाँ इनकी संख्या आजकल की अपेक्षा अधिक होती थी। परिचारकों के कुटुम्ब का एक मुख्य अङ्ग होने के कारण तथा समाज की

पितृसत्ताक व्यवस्था में स्त्री तथा बच्चों आदि के भी, परिचारकों के समान ही, गृहस्वामी के ऊपर आश्रित रहने के कारण, 'परिचारकवर्ग' को लक्षित करने वाले 'परिवार' शब्द के साथ कुटुम्ब के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में परिचारकवर्ग अथवा अनुचरवर्ग का वाचक 'परिवार' शब्द ही समस्त 'कुटुम्ब' को लक्षित करने लगा। आजकल 'परिवार' शब्द से केवल घर के सदस्यों का बोध होता है, परिचारकों के होने का भाव सर्वथा लुप्त हो गया है।

यह एक अद्‌भुत समानता की बात है कि अंग्रेज़ी के family शब्द का 'कुटुम्ब' अर्थ भी 'परिवार' शब्द के समान विकसित हुआ है। Family शब्द लैटिन् भाषा के famulus 'दास, नौकर' से विकसित हुये familia शब्द से निकला है, जिसका मौलिक अर्थ है 'दासों अथवा नौकरों का समूह'[1]। पहिले लैटिन भाषा में familia शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता था, किन्तु बाद में रोमन लोग इस (familia) शब्द का प्रयोग स्त्री, बच्चों तथा दासों के संयुक्त समूह के लिये करने लगे। फ्रेड्रिक एंजिल्स ने लिखा है कि रोमन लोगों ने इस शब्द को एक ऐसे नवीन सामाजिक ढाँचे को लक्षित करने के लिये अपनाया, जिसका स्वामी स्त्री, बच्चों तथा कतिपय दासों के ऊपर आधिपत्य रखता था और रोमन पैतृक-शक्ति के अन्तर्गत उसको इनके जीवन और मरण का अधिकार प्राप्त था।[2] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रोमन लोगों की पितृ-सत्ताक व्यवस्था के अन्तर्गत कुटुम्ब के स्वामी द्वारा स्त्री तथा बच्चों के साथ भी दासों जैसा व्यवहार किये जाने के कारण ही फ़ेमिली (familia=दासों का समूह) शब्द का 'कुटुम्ब' अर्थ विकसित हुआ।

प्राचीन काल में राजाओं के बहुत से कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियों के राज्य के पदों पर नियुक्त रहने के कारण वे राजा के कुटुम्बी भी होते थे और उसके परिचारकवर्ग (परिवार) के अन्तर्गत भी आते थे। इस कारण कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ कि कुटुम्ब और परिचारकवर्ग को लक्षित करने वाले एक ही शब्द पाये जाते हैं। अर्थ-विकास का एक ऐसा उदाहरण मिलता है जहाँ कि कुटुम्ब अथवा वंश को लक्षित करने वाले शब्द से 'भृत्य-

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड् सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (२.८२; family), पृष्ठ १३३.

२. फ्रेड्रिक एंजिल्स : दि ओरिजिन ऑफ़ दि फ़ेमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एण्ड दि स्टेट, पृष्ठ ५७.

वर्ग, परिचारकवर्ग' अर्थ का विकास हो गया है। जावानीज़ भाषा में 'सन्तान' (वंश, कुटुम्ब) शब्द का अर्थ 'परिचारकवर्ग' भी हो गया है। डा० गोंडा ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत इन इण्डोनेशिया' में लिखा है—"हम जानते हैं कि प्राचीन जावानीज़ भाषा में सन्तान (सन्तति, वंश) शब्द 'औलाद' को ही लक्षित नहीं करता, अपितु "परिचारकवर्ग' (retinue) को भी लक्षित करता है और आजकल इस शब्द के कई विशिष्ट अर्थ हो गये हैं। आधुनिक जावानीज़ में 'किसी राजकुमार अथवा कुलीन व्यक्ति के निम्न स्थिति के सम्बन्धी', 'ग्राम के मुखिया के सम्बन्धी' और 'परिचारक-वर्ग' अर्थ भी हैं।"[१]

जावा के कुछ भागों में संस्कृत के 'परिवार' (अनुचरवर्ग, परिचारक-वर्ग) शब्द से विकसित हुआ 'पलिवर' शब्द 'पुलिसमैन' अथवा 'संदेशवाहक' अर्थ में प्रचलित है।[२]

बौद्ध-साहित्य में 'परिवार' शब्द 'परिशिष्ट' (appendix, addendum) अर्थ में भी पाया जाता है। विनयपिटक में 'परिवार' उसके अन्तिम भाग का नाम है, जिसमें विनय-विषयक प्रश्न हैं।

'परिवार' शब्द का 'कुटुम्ब' अर्थ मराठी, गुजराती, बंगला, उड़िया और नेपाली आदि भाषाओं में भी पाया जाता है। पञ्जाबी में 'परवार' और असमिया में 'परियाल' शब्दों का भी 'कुटुम्ब' अर्थ है। नेपाली में 'परिवार' (प्रचलित 'परियार') शब्द के 'विवाहित पुत्री के सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धी' तथा (सामान्य रूप में) 'सम्बन्धी' अर्थ भी पाये जाते हैं।[३]

---

१. "We know that in O. Jav. the Skt. saṃtāna-सन्तान, 'continuity, lineage, family, progeny' is not only denotative of 'child, offspring etc.' but also of 'retinue', and that the word now-a-days has various specialised meanings; Mod. Jav. 'relatives of lower rank of a prince or nobleman' (regional), 'attendents and also relatives of a village-head". Gonda, J. : Sanskrit in Indonesia, p. 381.

२. "In parts of Java, a paliwara is a 'policeman' or 'messenger': it originates in Sanskrit parivāra 'followers, train, dependents'." Gonda, J. : Sanskrit in Indonesia, p. 343.

३. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।

तेलुगु[1] में 'परिवारमु' और मलयालम[2] में 'परिवारम्' शब्द का अर्थ अनुचरवर्ग अथवा अनुयायिवर्ग ही है। किटेल ने अपने कन्नड़ भाषा के कोश में 'परिवार' शब्द का अर्थ 'अनुचरवर्ग' अथवा 'परिचारकवर्ग' के अतिरिक्त 'सेना' भी दिया है। तमिल लेक्सीकन में 'परिवारम्' शब्द के अनुचरवर्ग, परिचारकवर्ग, सेना, सेना का एक दल, नौकर, मर्वार और अकम्पटियर जातियों का उपविभाग, कोयम्बटूर, त्रिचनापली, मदुरा और तिन्नेवेली जलों के तोट्टिय ज़मींदार आदि अर्थ दिये हैं। तमिल में 'चंकोच परिवारम्', 'अभ्यागतों का सत्कार करने के लिये राजा द्वारा नियुक्त कुछ व्यक्तियों की समिति' को कहा जाता है और 'परिवारालयम्' का अर्थ है—'गौण देवताओं के मन्दिर' (temples of the subordinate deities)।

पोत

आजकल हिन्दी में 'पोत' पुं० शब्द 'समुद्री जहाज़' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'पोत' शब्द का प्रयोग 'समुद्री जहाज़' अथवा 'नौका' अर्थ में पाया जाता है, जैसे[3]—पोतो दुस्तरवारिराशितरणे (हितोपदेश २.१२४)।

संस्कृत में 'पोत' शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से पशु, पक्षी आदि के 'छोटे बच्चे' के लिये पाया जाता है, जैसे—मृगपोत, करिपोत, शार्दूलपोत (मुद्रा० २.८), वीरपोत (उत्तर० ५.३) आदि।

मोनियर विलियम्स तथा आप्टे आदि के कोशों में 'पोत' शब्द का एक अर्थ 'वस्त्र' भी दिया हुआ है। हिन्दी के 'पोतड़ा' (छोटे बच्चे के नीचे बिछाने का कपड़े का टुकड़ा) शब्द में 'पोत' शब्द का यह अर्थ आजकल भी विद्यमान दिखाई पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत में 'पोत' शब्द का 'समुद्री जहाज़' अथवा 'नौका' अर्थ इसके 'वस्त्र' अर्थ से ही विकसित हुआ है। प्राचीन काल में जहाज़ अथवा नौकायें एक विशेष विधि द्वारा चलाये जाते थे। नौकाओं अथवा जहाज़ों के मस्तूल में एक बहुत बड़ा कपड़ा (पाल) बाँध दिया जाता था, जिस पर पड़ने वाले हवा के दबाव से वे चलते थे। यह सम्भव है कि 'पोत' शब्द का प्रयोग 'वस्त्र' अर्थ में होने के कारण नौका अथवा जहाज़ के उस बड़े कपड़े (पाल) को 'पोत' कहा जाता हो और बाद में पाल

१. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी (परिवारमु—suite, retinue)।

२. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी (परिवारम्—what surrounds, retinue, suite)।

३. अदुर्गोऽनाश्रयो राजा पोतच्युतमनुष्यवत्। हितोपदेश ३.५१।

के जहाज़ या नौका का एक मुख्य अङ्ग होने के कारण भाव-साहचर्य से 'जहाज़ या 'नौका' को 'पाल' के वाचक 'पोत' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा हो।

यह उल्लेखनीय है कि बहुधा अंग्रेज़ी भाषा में 'पाल' के वाचक sail शब्द का भी 'जहाज़' अर्थ में प्रयोग किया जाता है, जैसे—'a fleet of twenty sails'. Sail (पाल) के जहाज़ का एक मुख्य अङ्ग होने के कारण भाव-साहचर्य से 'जहाज़' को sail (पाल) शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा है। इससे प्रतीत होता है कि 'पोत' शब्द का इसके समान ही 'जहाज़' या 'नौका' अर्थ विकसित हो सकता है।

प्रान्त

हिन्दी में 'प्रान्त' पुं० शब्द 'सूबा, किसी देश का कोई प्रशासनिक विभाग' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'प्रान्त' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'प्रान्त' शब्द का प्रयोग किनारा[1], कोना[2], सीमा (अन्तिम सीमा), अन्त[3] आदि अर्थों में पाया जाता है। 'प्रान्त' शब्द का देश का विभाग अथवा प्रदेश अर्थ इस शब्द के 'कोना' अथवा 'किनारा' अर्थ से ही विकसित हुआ है। 'कोना' अथवा 'किनारा' किसी स्थान में ही होता है, जैसे यदि किसी मकान अथवा पुस्तक का कोना कहा जाये, तो उससे उस मकान अथवा पुस्तक से घिरे हुये स्थान के कोने का ही तात्पर्य होता है। कोना अथवा किनारा उस स्थान का ही एक भाग अथवा अङ्ग होता है। कोने अथवा किनारे (प्रान्त) के किसी स्थान का एक भाग होने के कारण तथा प्रदेश अथवा भूप्रदेश के वाचक अन्य शब्दों के साथ अथवा भूप्रदेश के प्रसङ्ग में (जैसे—'सुदूरप्रान्ते') 'कोने' के वाचक 'प्रान्त' शब्द का प्रयोग किये जाने के कारण 'प्रान्त' शब्द के साथ स्थान अथवा प्रदेश (भूप्रदेश) के भाव का भी

---

१. प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः (शाकु० ४.७) ; प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखम् (कुमार० ३.४३)।

२. ईषत्तिर्यग्वलनविषमं कूणितप्रान्तमेतत्। मालती० ४.२.

संस्कृत में 'कोना' अर्थ में 'प्रान्त' शब्द का नयन, ओष्ठ आदि शब्दों के साथ भी प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

३. किमहमनया यौवनप्रान्ते वर्तमानया करिष्यामि। पञ्च० ४ (कथा ८)।

साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'प्रान्त' शब्द ही सम्पूर्ण स्थान अथवा प्रदेश को लक्षित करने लगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'प्रान्त' शब्द का 'प्रदेश' अथवा 'देश का विभाग' अर्थ सर्वप्रथम मराठी भाषा में विकसित हुआ, क्योंकि मोल्सवर्थ के लगभग एक शताब्दी प्राचीन मराठी कोश में भी यह अर्थ दिया हुआ है। किटेल ने अपने कन्नड़ भाषा के कोश में 'प्रान्त' शब्द का देश, प्रदेश अथवा स्थान अर्थ देते हुये इसके प्रयोग के विषय में कोष्ठक में महाराष्ट्र, बम्बई और मैसूर का निर्देश दिया है। गुजराती भाषा में भी यह अर्थ पाया जाता है। बंगला भाषा में 'प्रान्त' शब्द का 'प्रदेश' अथवा 'देश का विभाग' अर्थ नहीं पाया जाता। बंगला में 'प्रान्त' शब्द का प्रयोग सीमा, किनारा, कोना आदि अर्थों में पाया जाता है (जैसे—एक प्रान्ते='एक कोने में, एक ओर'; प्रान्तभाग='अन्तिम सीमा'; प्रान्तवर्ती='सीमावर्ती')।[१] यह उल्लेखनीय है कि तमिल[२] भाषा में भी 'पिरान्तम्' (प्रान्त) शब्द का 'प्रदेश' अर्थ पाया जाता है। तेलुगु[३] भाषा में 'प्रान्तमुलु' शब्द का अर्थ 'प्रदेश' के अतिरिक्त 'पड़ोस' भी है। मलयालम भाषा में 'प्रान्तम्' शब्द का अर्थ 'किनारा, अन्तिम सीमा' ही है। कन्नड़, तेलुगु और तमिल आदि दक्षिणी भाषाओं में 'प्रान्त' शब्द का 'प्रदेश' अथवा 'देश का विभाग' अर्थ पाये जाने से और बगला में न पाये जाने से इस अनुमान की पुष्टि होती है कि सम्भवतः 'प्रान्त' शब्द का 'प्रदेश' अथवा 'देश का विभाग' अर्थ मराटी भाषा से ही फैला है।

वनस्पति

हिन्दी में 'वनस्पति' स्त्री० शब्द 'पेड़-पौधों, लताओं' आदि के लिये सामान्य रूप में प्रचलित है। उस विज्ञान को, जिसमें पेड़-पौधों की जातियों, अङ्गों आदि का विवेचन होता है, 'वनस्पतिशास्त्र' कहा जाता है। किन्तु संस्कृत में 'वनस्पति' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'वन का स्वामी, बड़ा वृक्ष'। वैदिक साहित्य में 'वनस्पति' शब्द का प्रयोग अधिकतर बड़े वृक्ष के लिये ही पाया जाता है।[४] बाद में किसी भी वृक्ष को वनस्पति कहा जाने लगा, विशेषकर

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

२. तमिल लेक्सीकन।

३. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

४. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी;
मैकडॉनेल और कीथ : वैदिक इण्डैक्स (वनस्पति)।

ऐसे वृक्ष को ही वनस्पति कहा गया है, जिसमें पुष्प लगे बिना ही फल लगे हों। मनुस्मृति (१.४७) में 'वनस्पति' की परिभाषा इस प्रकार की गई है—

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।

बाद के संस्कृत साहित्य में 'वनस्पति' शब्द 'वृक्ष' अर्थ में सामान्य रूप में प्रचलित हो गया।[१] पुष्प वाले वृक्षों को भी 'वनस्पति' कहा जाने लगा। संस्कृत में पेड़-पौधों के सम्पूर्ण जगत् को 'वनस्पति' नहीं कहा गया है। किन्तु हिन्दी में 'वनस्पति' शब्द पेड़-पौधों, लताओं आदि को सामूहिक रूप में लक्षित करने लगा है। 'वनस्पति' शब्द के अर्थ-विकास की प्रक्रिया स्पष्ट है। पेड़-पौधों के समूह के एक भाग (वृक्ष) को लक्षित करने वाला 'वनस्पति' शब्द भाव-साहचर्य से सम्पूर्ण समुदाय अर्थात् पेड़-पौधों के जगत् को लक्षित करने लगा है।

समाज

हिन्दी में 'समाज' पुं० शब्द का अर्थ है—'एक जगह रहने वाले अथवा एक प्रकार के लोगों का समूह' (जैसे—भारतीय-समाज, हिन्दु-समाज, मानव-समाज आदि में)। संस्कृत में 'समाज' शब्द का प्रयोग इतने विस्तृत अर्थ में नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'समाज' पुं० शब्द का प्रयोग अधिकतर 'सभा' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—विशेषतः सर्वविदां समाजे, विभूषणं मौनमपण्डितानाम् (नीति० ७)।

'समाज' शब्द का अर्थ 'सभा' होने के कारण ही संस्कृत में किसी सभा के सदस्य (सभासद) के लिये 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, जैसे—सामाजिकानुपास्महे (मालती० अङ्क १)।

संस्कृत में 'गोष्ठी'[२], 'बाहुल्य, समृद्धि'[३], 'मिलन'[४] आदि अर्थों में भी

---

१. तमाशु विघ्नं तपसस्तपस्वी वनस्पतिं वज्र इवावभज्य (कुमार० ३.७४); शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरत (शाकु० अङ्क ४)।

२. नवसमाजनियमं निर्णयं जातिदूषणम्। शुक्र० १.३०४.

३. विहितपद्मावतीसुखसमाजे, कुरु मुरारे मङ्गलशतानि। गीत० ११.२२.८.

४. तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः। भागवत १०.६०.३८.

'समाज' शब्द का प्रयोग पाया जाता है।

'समाज' शब्द का 'एक जगह रहने वाले अथवा एक प्रकार के लोगों का समूह' अर्थ इस शब्द के 'सभा' अर्थ से ही विकसित हुआ है। कुछ लोगों से मिलकर बनी हुई एक सभा सम्पूर्ण समाज का अङ्ग होती है, अतः कुछ लोगों के समूह अथवा सभा को लक्षित करने वाले 'समाज' शब्द के साथ मानव-समूह के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'समाज' शब्द सम्पूर्ण समाज को लक्षित करने लगा। आजकल 'भारतीय-समाज' से सब भारतीयों के समूह, 'हिन्दु-समाज' से सब हिन्दुओं के समूह और 'मानव-समाज' से सब मानवों के समूह का बोध होता है। पञ्जाबी, सिन्धी, मराठी, गुजराती, बंगला, असमिया, उड़िया और कन्नड़ भाषाओं में 'समाज' शब्द का और तेलुगु में 'समाजमु' शब्द का यही (society) अर्थ पाया जाता है।[1]

साहित्य

हिन्दी में 'साहित्य' पुं० शब्द का अर्थ है—'उन सभी गद्यात्मक और पद्यात्मक ग्रन्थों, लेखों आदि का समूह या सम्मिलित राशि, जिनमें स्थायी, उच्च और गूढ़ विषयों का सुन्दर रूप से विवेचन हुआ हो' (वाङ्मय)। 'साहित्य' शब्द की इस परिभाषा के अन्तर्गत सभी प्रकार के ग्रन्थ अथवा लेख आ जाते हैं। ग्रन्थों अथवा लेखों के समूह की विभिन्न श्रेणियों के अनुसार, बिभिन्न प्रकार के साहित्य को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जा सकता है, जैसे किसी देश का साहित्य (भारतीय साहित्य, फ्रेंच साहित्य आदि), किसी भाषा का साहित्य (संस्कृत साहित्य, पाली साहित्य, हिन्दी साहित्य आदि), किसी विषय, विज्ञान, कला आदि का साहित्य (वैज्ञानिक साहित्य, राजनैतिक साहित्य आदि), किसी संस्था का साहित्य (काँग्रेस का साहित्य, साम्यवादी साहित्य आदि)। संस्कृत में 'साहित्य' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'साहित्य' (सहित + ष्यञ्) नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'सहित होने का भाव' (सहितस्य भावः साहित्यम्)। इस शब्द के 'सहित होने का भाव, साथ-साथ रहना'[2] अर्थ से ही संस्कृत में एकक्रियान्वयित्व[3], मेल,

१. व्यवहारकोश।

२. नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः (सांख्यप्रवचनसूत्र ५.२६); कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात् (सांख्यप्रवचनसूत्र १.१३५)।

३. साहित्यं एकक्रियान्वयित्वम्। तद्यथा धवखदिरपलाशांश्छिन्धि इत्यत्र

सम्पर्क[1], काव्य[2], काव्य-शास्त्र (poetics) आदि अर्थ विकसित हुये हैं।

'साहित्य' शब्द का 'काव्य' अर्थ में प्रयोग यद्यपि सर्वप्रथम भर्तृहरि के नीतिशतक में पाया जाता है, किन्तु उसके समकालीन अन्य किसी भी ग्रन्थ में 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'काव्य' अर्थ में नहीं पाया जाता, अतः हो सकता है कि यह प्रक्षेप हो। डा० राघवन[3] का मत है कि राजशेखर (दसवीं शताब्दी) का काव्यमीमांसा सर्वप्रथम ग्रन्थ है, जिसमें 'साहित्य' शब्द का प्रयोग 'काव्य' या 'काव्यशास्त्र' अर्थ में किया गया है, और रुय्यक अथवा मंखुक द्वारा लिखित 'साहित्यमीमांसा' काव्यशास्त्र का सर्वप्रथम ग्रन्थ है, जिसमें इस विषय का 'साहित्य' नाम रक्खा गया है। इसके पश्चात् 'साहित्य' शब्द प्रचलित हो गया और 'साहित्य' नाम से युक्त साहित्यदर्पण, साहित्यदीपिका, साहित्यमुक्तामणि आदि अनेक ग्रन्थ लिखे गये।

राजशेखर ने 'साहित्यविद्या' को आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति इन चारों विद्याओं के अतिरिक्त पाँचवीं विद्या कहा है और इसको पूर्वोक्त चारों विद्याओं का सार बतलाया है।[4] उसने 'साहित्यविद्या' की परिभाषा इस प्रकार की है—

शब्दार्थयोर्यथावत् सहभावेन विद्या साहित्यविद्या।

'साहित्यविद्या वह विद्या है, जिसमें शब्द और अर्थ का यथार्थ रूप से सहभाव अर्थात् एकत्रस्थिति हो'।

धवखदिरपलाशप्रतियोगिकं यत् साहित्यं तन्निरूपितं यदवयवविभागरूपफलं तज्जनिका या छिदिक्रिया तदनुकूलकृतिमांस्त्वम् (सारमञ्जरी); परस्परसापेक्षाणां तुल्यरूपाणां युगपदेकक्रियान्वयित्वं साहित्यम् (श्राद्धविवेक, शब्दकल्पद्रुम से उद्धृत)।

१. एकार्थचर्यां साहित्यं संसर्गञ्च विवर्जयेत्। कामन्द० ५.३२.

२. साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः। नीति०१२.

३. वी० राघवन : Bhoja's Śṛṅgāraprakāśa, वोल्यूम १, भाग १, पृष्ठ ८७. डा० राघवन ने अपनी इस पुस्तक (पृष्ठ ८७-११०) में काव्यशास्त्र के 'साहित्य' सिद्धान्त का तथा 'साहित्य' शब्द के 'काव्य' तथा 'काव्यशास्त्र' अर्थ के विकास का विशद विवेचन किया है।

४. पञ्चमी साहित्यविद्या। सा हि चतसृणामपि विद्यानां निष्यन्दः। काव्यमीमांसा पृष्ठ ४.

यह उल्लेखनीय है कि 'साहित्य' शब्द के 'काव्य' अथवा 'काव्यशास्त्र' अर्थ की उत्पत्ति भामह द्वारा दी गई काव्य की परिभाषा (शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्—'शब्द और अर्थ मिलकर काव्य होते हैं,' काव्यालङ्कार १.१६) से अनुप्राणित मानी जाती है। भामह के बाद के वामन, रुद्रट, वाग्भट, मम्मट, हेमचन्द्र, विद्यानाथ आदि लेखकों ने भी 'काव्य' को शब्द और अर्थ का सम्मिलित रूप माना है। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि काव्य की परिभाषा में शब्द और अर्थ के सहित-भाव से भामह का क्या अभिप्राय था, तथापि शब्द और अर्थ के वाच्य-वाचक रूप से व्याकरणिक-सम्बन्ध की कल्पना की जाती है, अर्थात् काव्य में शब्द व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हों और अच्छे भाव हों। यह माना जाता है कि पहिले शब्द और अर्थ के सम्बन्ध के व्याकरणिक-पक्ष के ऊपर ही विशेष बल दिया जाता था। किन्तु बाद में जब यह देखा गया कि व्याकरणिक-सम्बन्धों के अतिरिक्त काव्य में सौन्दय को प्रकट करने वाले अलङ्कार, गुण आदि के रूप में अन्य भी सम्बन्ध हैं, तो उनको भी महत्त्व दिया जाने लगा।

भामह की काव्य की परिभाषा में शब्द और अर्थ के सहित होने का उल्लेख होने के कारण यह कल्पना की जाती है कि पहिले शब्द और अर्थ के सम्बन्ध (व्याकरणिक-सम्बन्ध) को 'साहित्य' कहा गया होगा, क्योंकि 'साहित्य' शब्द 'सहित' से बना है (सहितयोर्भावः साहित्यम्), जोकि भामह की परिभाषा में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ है।

भोज ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को ही 'साहित्य' कहा है और उसको बारह प्रकार का माना है।[1] उसके अनुसार प्रथम आठ सम्बन्ध व्याकरणिक-सम्बन्ध हैं और अन्तिम चार काव्यगत। कुन्तक ने 'साहित्य' की परिभाषा इस प्रकार की है—

साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः॥ वक्रोक्तिजीवित १.१७.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जो 'साहित्य' पहिले किसी भी प्रकार की भाषागत अभिव्यक्ति में शब्द और अर्थ का व्याकरणिक अथवा तर्कसङ्गत

१. किं साहित्यम्? यः शब्दार्थयोः सम्बन्धः। स च द्वादशधा, अभिधा, विवक्षा, तात्पर्यम्, प्रविभागः, व्यपेक्षा, सामर्थ्यम्, अन्वयः, एकार्थीभावः, दोषहानम्, गुणोपादानम्, अलङ्कारयोगः, रसावियोगश्चेति।

सम्बन्ध माना जाता था, बाद में काव्य के वैशिष्ट्य अथवा मुख्य विशेषताओं को लक्षित करने लगा और धीरे-धीरे भाव-साहचर्य से 'काव्य' के लिये भी प्रयुक्त किया जाने लगा।

'साहित्य' शब्द का आधुनिक विस्तृत 'वाङ्मय' अर्थ (जिसके अन्तर्गत काव्य, नाटक, इतिहास, दर्शन, विज्ञान आदि सभी विषयों के ग्रन्थों का समूह आ जाता है) इस शब्द के 'काव्य' अर्थ से ही विकसित हुआ है। काव्य, सम्पूर्ण वाङ्मय का एक भाग होता है। अतः 'काव्य' का वाचक 'साहित्य' शब्द भाव-साहचर्य से सम्पूर्ण 'वाङ्मय' को लक्षित करने लगा है। यह अर्थ संस्कृत साहित्य में नहीं पाया जाता।

'साहित्य' शब्द का 'वाङ्मय' अर्थ गुजराती और बंगला भाषाओं में भी पाया जाता है। गुजराती में 'साहित्य' शब्द का अर्थ 'सामग्री, साधन, उपकरणों का संग्रह' भी है। मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश में 'साहित्य' शब्द का 'वाङ्मय' अर्थ नहीं दिया है, 'किसी वस्तु अथवा क्रिया के बनाने अथवा करने के आवश्यक साधन (सामग्री औज़ार आदि)', 'संसर्ग', 'मेल' आदि अर्थ दिये हैं। किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश में 'साहित्य' शब्द का इन अर्थों के अतिरिक्त 'साहित्यिक रचना', 'कविता' अर्थ भी दिया है। मलयालम भाषा में 'साहित्य' शब्द के अर्थ 'सभा' और 'शब्दों की छन्द और लय में योजना' हैं।[1] तमिल में 'चाकित्तिय' (साहित्य) शब्द के अर्थ 'साहित्यिक रचना', 'कविता' और 'गायी जाने वाली रचना' हैं।[2] तेलुगु में 'साहित्यमु' शब्द का अर्थ है—'विद्वत्ता, पाण्डित्य'।[3]

---

१. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी (साहित्यम्—1. Society, 2. Joining words in rhythm and metre)।

२. तमिल लेक्सीकन (चाकित्तिय—1. Literary composition, poetry, 2. Musical compositton)।

३. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी (साहित्यमु—scholarship, erudition)।

अध्याय १०

सम्पूर्णवाची से अङ्गवाची

किसी वस्तु, वर्ग अथवा भाव को लक्षित करने वाला शब्द भाव-साहचर्य से उस वस्तु के एक भाग अथवा उस वर्ग के एक अङ्ग अथवा उस भाव के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न भावों में से एक भाव को भी लक्षित करने लगता है।

धूप

हिन्दी में 'धूप' स्त्री० शब्द अधिकतर 'सूर्य का प्रकाश और ताप' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—आज बड़ी तेज़ धूप निकल रही है)। 'सुगन्धित धुआँ', 'एक गन्ध-द्रव्य' (जिसे जलाने से सुगन्धित धुआँ निकलता है) अर्थों में 'धूप' शब्द का प्रयोग केवल देवी, देवताओं आदि की पूजा के प्रसङ्ग में किया जाता है (जैसे—'धूप देना', 'धूपबत्ती' आदि में)। संस्कृत में 'धूप' पुं० शब्द के 'सुगन्धित धुआँ' और 'गन्धद्रव्य' अर्थ तो पाये जाते हैं, किन्तु 'सूर्य का प्रकाश और ताप' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। इस अर्थ का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

'धूप' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में मतभेद है। आप्टे ने 'धूप' शब्द की व्युत्पत्ति √ धूप + अच् से मानी है और मोनियर विलियम्स ने √ धू धातु से मानी है (जैसे √ पुष् से पुष्प, √ स्तू से स्तूप आदि)। 'धूप'[1]

---

१. 'धूप' शब्द से सम्बद्ध शब्द अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी पाये जाते हैं; मिलाइये—आधुनिक हाई जर्मन duftend (< डैनिश duftende, स्वीडिश doftande) 'सुगन्धित', जोकि duft 'सुगन्ध' से विकसित duften 'सुगन्ध छोड़ना' का past participle का रूप है; डैनिश duft, स्वीडिश doft 'सुगन्ध'; आधुनिक हाई जर्मन में duft का अर्थ 'हल्का कुहरा' (fine mist भी है, जोकि मध्यकालीन हाई जर्मन tuft, प्राचीन हाई जर्मन duft 'कुहरा, तुषार' से विकसित हुआ है; प्राचीन नोर्स dupt 'धूल, रज'; लैटिन fūmus 'धुआँ'; गोथिक dauns 'गन्ध' आदि। सी० डी० बक: ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ १०२६.

शब्द की व्युत्पत्ति कुछ भी हो, संस्कृत में इसका प्रयोग 'सुगन्धित धुआँ'[1], 'गन्ध द्रव्यों से निकलने वाला धुआँ', 'गन्ध-द्रव्य' (जिसके जलाने के सुगन्धित धुआँ निकलता है) आदि अर्थों में पाया जाता है।

'धूप' शब्द का 'सूर्य का प्रकाश और ताप' अर्थ इस शब्द के 'सुगन्धित धुआँ' अर्थ से विकसित हुआ है। देवपूजन में अथवा सुगन्ध के लिये (कपूर, गुग्गुल, अगर आदि) गन्ध-द्रव्यों को जलाकर जो धुआँ उठाया जाता है, उसमें उष्णता भी रहती है। सुगन्धित धुएँ में उष्णता के भी रहने के कारण सुगन्धित धुएँ को लक्षित करने वाले 'धूप' शब्द के साथ उष्णता के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'धूप' शब्द उष्णता (जोकि सुगन्धित धुएँ में विद्यमान रहती है) को भी लक्षित करने लगा। सम्भवतः पहिले 'धूप' शब्द का प्रयोग 'उष्णता' अर्थ में सामान्य रूप में किया जाता होगा। बाद में इसका 'सूर्य की उष्णता' के लिये प्रयोग किया जाने लगा होगा। सूर्य की उष्णता और प्रकाश के एक ही (संयुक्त) रूप में होने के कारण भाव-साहचर्य से 'धूप' शब्द के द्वारा 'सूर्य के ताप और प्रकाश' दोनों को लक्षित किया जाने लगा होगा।

'धूप' शब्द के 'सूर्य का प्रकाश और ताप' अर्थ का विकास इस शब्द के 'सुगन्धित धुआँ' अर्थ से हुआ है, इसकी पुष्टि संस्कृत ग्रन्थों में सुगन्धित धुएँ की उष्णता का उल्लेख पाये जाने से होती है। कुमारसम्भव (७.१४) में कहा गया है—धूपोष्मणा त्याजितार्द्रभावं केशान्तम्—'सुगन्धित धुएँ की गरमी से सुखाये हुये उसके बालों को'।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष में स्त्रियाँ अपने केशों को सुखाने और सुगन्धित करने के लिये 'सुगन्धित धुएँ' का प्रयोग करती थीं। केशसंस्कार के लिये सुगन्धित धुएँ का प्रयोग करने के संस्कृत साहित्य में अनेक उल्लेख मिलते हैं, जैसे मेघदूत (३४) में मेघ को 'केशसंस्कार में प्रयुक्त सुगन्धित धुओं से परिपुष्ट शरीर वाला' (उपचितवपुः केशसंस्कार-धूपैः) कहा गया है।

आप्टे ने √धूप् धातु का एक अर्थ 'गरम करना' अथवा 'गरम होना' भी दिया है। यह धातु 'धूप' शब्द से विकसित हुई प्रतीत होती है। 'धूप' अर्थात् सुगन्धित धुएँ का गरम करने या सुखाने के लिये प्रयोग प्रारम्भ हो जाने पर इसे 'गरम करना या गरम होना' अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा होगा।

---

१. कुमार० ७.१४; रघु० १६.५०; विक्रम० ३.२ आदि।

संस्कृत के 'धूपन' नपुं० (गन्ध-द्रव्य जलाकर सुगन्धित धुआँ उठाने का कार्य) से विकसित हुये हिन्दी के 'धूना' और 'धूनी' शब्द 'साधुओं द्वारा ठण्ड से बचने के लिये अथवा शरीर को तपाने या कष्ट पहुँचाने के लिये अपने सामने जलाई जाने वाली आग' अर्थ में प्रचलित हैं। इन सब तथ्यों से सुगन्धित धुएँ के साथ उष्णता के साहचर्य की पुष्टि होती है और 'धूप' शब्द के वर्तमान अर्थ (सूर्य का प्रकाश तथा ताप) के विकास की प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ता है।

'धूप' शब्द का 'सूर्य का प्रकाश तथा ताप' अर्थ मराठी[1], गुजराती[2] नेपाली[3] तथा बंगला[4] भाषा में भी पाया जाता है। मोल्सवर्थ ने अपने मराठी भाषा के कोश में 'धूप' शब्द का 'सूर्य का प्रकाश तथा ताप' अर्थ देते हुये 'धूप—हिन्दी' लिखा है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'धूप' शब्द का यह अर्थ सर्वप्रथम हिन्दी में ही विकसित हुआ, बाद में मराठी आदि भाषाओं में पहुँचा। कन्नड़[5] भाषा में 'धूप' तेलुगु[6] में 'धूपमु', मलयालम[7] में 'धूबम्' और तमिल[8] में 'तूपम्' शब्द का अर्थ 'सुगन्धित धुआँ' ही है, 'सूर्य का प्रकाश तथा ताप' अर्थ नहीं। तमिल लेक्सीकन में 'तूपम्' (धूप) शब्द का अर्थ 'सुगन्धित धुएँ' के अतिरिक्त 'अग्नि' भी दिया है। तमिल में 'तूपायितम्' (धूपायित) का अर्थ है 'अग्नि द्वारा मृत्यु'। बोलचाल की तमिल में 'तूपम् पोट्टु' 'चापलूसी करने' को कहा जाता है। 'धूप' शब्द का 'सुगन्धित धुआँ' अर्थ पंजाबी, मराठी, गुजराती, उड़िया आदि भाषाओं में भी मिलता है। कश्मीरी में 'डुपु'[8], सिन्धी में 'धूपु' शब्द भी 'सुगन्धित धुआँ' अर्थ में मिलते हैं[9]

पञ्च

हिन्दी में 'पञ्च' पुं० शब्द का अर्थ है—'पञ्चायत का सदस्य, झगड़ा

१. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।
२. वी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।
३. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज़।
४. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शरी।
५. किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।
६. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।
७. गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।
८. तमिल लेक्सीकन
९. व्यवहारकोश।

निबटाने के लिये नियत किये गये दल अथवा सभा का सदस्य'। संस्कृत में 'पञ्च' (पञ्चन्) शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'पञ्च' (पञ्चन्) शब्द का अर्थ है 'पाँच'। किसी विवाद या झगड़े को निबटाने के लिये नियत की गई सभा में पहिले पाँच सदस्य होते थे और उनके समूह को 'पंचायत' (सं० 'पञ्चायतन' नपुं०) कहा जाता था। किसी विवाद या झगड़े को निबटाने के लिये नियत किये गये दल अथवा सभा को आजकल भी 'पंचायत' कहा जाता है, किन्तु उसमें सदस्यों की संख्या पाँच ही नहीं होती, बहुधा इससे काफ़ी अधिक होती है। 'पंचायत' शब्द सस्कृत के 'पञ्चायतन' नपुं० शब्द से विकसित हुआ है, जिसका अर्थ है 'पाँच देवताओं (जैसे गणपति, विष्णु, शङ्कर, देवी और सूर्य) की मूर्तियों का समूह'। किसी विवाद या झगड़े को निबटाने के लिये नियत किये गये पाँच व्यक्तियों के समूह को 'पाँच देवताओं की मूर्तियों के समूह' के सादृश्य से और उन व्यक्तियों को देवताओं के समान ही न्यायवान् और निष्पक्ष माना जाने के कारण 'पंचायत' कहा गया होगा।

'पंचायत' में पाँच सदस्य होने के कारण सम्भवतः पहिले उनके समूह को ही संक्षिप्त रूप में 'पञ्च' कहा जाता था, जैसा कि हिन्दी के कोशों में दिये हुये 'पञ्च' शब्द के 'पाँच या अधिक मनुष्यों का समूह' अर्थ से प्रकट होता है। बाद में 'पञ्च' (पाँच सदस्यों का समूह) शब्द के साथ 'सदस्य' होने के भाव का भी साहचर्य होने कारण पंचायत के प्रत्येक 'सदस्य' को 'पञ्च' कहा जाने लगा।

मोह

हिन्दी भाषा में 'मोह' पुं० शब्द अधिकतर 'स्नेह, आसक्ति' अर्थ में प्रचलित है। 'मोह' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[1] किन्तु संस्कृत में 'मोह' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'मूर्छा', जैसे[2]—मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः—'होश उसको मूर्च्छा से अधिक कष्टकारक हुआ' (रघु० १४.५६)।

'मोह' शब्द के 'मूर्च्छा' अर्थ से ही संस्कृत में धोखा, भ्रम[3], अज्ञान[4],

---

१. स्वगृहोद्यानगतेऽपि हि स्निग्धैः पापं विशङ्क्यते मोहात्—'(मित्र, पुत्र आदि के) अपने घर के बगीचे में चले जाने पर भी, (यदि उनको विलम्ब हो जाये) स्नेही लोगों द्वारा स्नेह के कारण अनिष्ट की शङ्का की जाने लगती है' (पञ्च० २.१७६)।

२. मोहपरायणा—'मूर्च्छित पड़ी हुई' (कुमार० ४.१); कुमार० ३.७३.

३. यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव। भग० ४.३५.

४. तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्। रघु० १.२.

मूर्खता, मन का धोखा अथवा अज्ञान (जिसमें मनुष्य सत्, असत् का विवेक नहीं कर पाता और सांसारिक पदार्थों की सत्ता में विश्वास करता है तथा सांसारिक सुखों और विषय-वासनाओं की तृप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है) आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

'मोह' शब्द का 'स्नेह, आसक्ति' अर्थ इस शब्द के अज्ञान, धोखा आदि अर्थों से ही विकसित हुआ है। भारतीय दर्शन में 'मोह' अर्थात् 'अज्ञान' मन की उस अवस्था को कहा गया है, जिसमें मनुष्य सांसारिक पदार्थों की सत्ता में विश्वास करता है और सांसारिक सुखों तथा विषय-वासनाओं की तृप्ति के लिये प्रयत्नशील रहता है। इस प्रकार माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि स्नेही जनों के प्रति स्नेह अथवा आसक्ति को भी 'मोह' (अज्ञान) कहा गया है। पद्मपुराण (क्रियायोगसार, अध्याय १६) में 'मोह' का स्वरूप इस प्रकार का बतलाया गया है[१]—

मम माता मम पिता ममेयं गृहिणी गृहम्।
एतदन्यं ममत्वं यत् स मोह इति कीर्तितः॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन में मन की जिस अवस्था को 'मोह' (अज्ञान) कहा गया है, उसके अन्तर्गत ममता, स्नेह, आसक्ति आदि के भाव भी आ जाते हैं। 'मोह' के अन्तर्गत 'स्नेह, आसक्ति' के भाव के आने के कारण बाद में भाव-साहचर्य से केवल 'स्नेह, आसक्ति' के भाव को भी 'मोह' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। आजकल हिन्दी में 'मोह' शब्द अधिकतर 'स्नेह, आसक्ति' अर्थ में ही प्रचलित है।

'मोह' शब्द के समान ही **मोहित** (मुह् + णिच् + क्त) तथा **मुग्ध** (मुह् + क्त) शब्द भी हिन्दी में 'आसक्त', 'लुभाया हुआ' आदि अर्थों में प्रचलित हैं। संस्कृत में 'मोहित' शब्द के तो 'आसक्त', 'लुभाया हुआ' अर्थ पाये जाते हैं, किन्तु 'मुग्ध' शब्द का प्रयोग अधिकतर मूर्ख[२], सरल[३], सीधासादा, भोलेपन के कारण आकर्षक[४], सुन्दर[५] आदि अर्थों में पाया जाता है।

१. शब्दकल्पद्रुम, भाग ३, पृष्ठ ७८८ से उद्धृत।
२. अयि मुग्धे काऽन्या चिन्ता प्रियासमागमस्य। विक्रम० अङ्क १.
३. अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम्। उत्तर० १.४६.
४. (कः) अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु। शाकु० १.२४.
५. किसलयमिव मुग्धम्। उत्तर० ३.५.

√मुह् धातु से क्त प्रत्यय लगकर बना हुआ **मूढ़** शब्द हिन्दी में 'मूर्ख' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में भी 'मूढ़' शब्द का प्रयोग अधिकतर इसी अर्थ में पाया जाता है।

विनय

हिन्दी भाषा में 'विनय'[1] स्त्री० शब्द 'नम्रता' और 'प्रार्थना' अर्थों में प्रचलित है। 'विनय' शब्द का 'नम्रता' अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु 'प्रार्थना' अर्थ संकृत में नहीं पाया जाता। 'विनय' शब्द के 'प्रार्थना' अर्थ का विकास हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में ही हुआ है। संस्कृत में 'विनय' शब्द का 'नम्रता' अर्थ में प्रयोग बाद के साहित्य में हुआ है। प्राचीन संस्कृत साहित्य (अर्थात् रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रन्थों तथा प्राचीन काव्यग्रन्थों) में 'विनय' शब्द का प्रयोग मुख्यत: शिष्टाचार, सदाचार, आत्मसंयम आदि अर्थों में पाया जाता है (जैसा कि आगे बतलाया गया है)। 'विनय' शब्द का 'नम्रता' अर्थ हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, नेपाली, तमिल, तेलुगु आदि अधिकतर सभी भारतीय भाषाओं में पाया जाता है। इस कारण संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन करते हुये 'विनय' शब्द का अर्थ करने में इन भाषाओं के विद्वानों द्वारा तथा संस्कृत विद्वानों द्वारा भी (बिना सोचे-विचारे, इस भ्रान्ति से कि हमारी भाषा में 'विनय' शब्द का 'नम्रता' अर्थ है, तो संस्कृत में भी 'नम्रता' अर्थ ही होगा) बहुधा बड़ी भूल की जाती है, जैसे संस्कृत के प्रसिद्ध सुभाषित 'विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्' में 'विनय' शब्द का अर्थ बहुधा हिन्दी तथा संस्कृत के (और इसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं के भी) विद्वानों द्वारा 'नम्रता' किया जाता है। यहाँ पर 'विनय' शब्द का 'नम्रता' अर्थ सर्वथा असङ्गत और अनुपयुक्त है। 'विनय' शब्द का अर्थ 'नम्रता' कर देने से श्लोक के भाव का सारा महत्त्व जाता रहता है। वस्तुत: यहाँ पर 'विनय' शब्द का अर्थ है 'आत्मसंयम, सदाचार', जिसको

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ में 'विनय' शब्द का सबसे अधिक विस्तृत विवेचन किया गया है। इसका विशेष कारण है। मेरे निर्देशक गुरुवर डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री को (जिन्होंने मुझे अनुसन्धान के लिये प्रस्तुत विषय दिया था) 'विनय' आदि शब्दों के विभिन्न अर्थों के विकास को देखकर ही इस विषय पर अनुसन्धान-कार्य की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। प्रारम्भ में उन्होंने मुझे 'विनय' शब्द का विस्तृत अध्ययन करने का सुझाव दिया। परिणामस्वरूप इतना विस्तृत लेख तैयार हो गया।

प्राचीन काल में विद्या द्वारा प्रदत्त मानवीय चरित्र का सर्वोत्कृष्ट गुण माना जाता था।

'विनय' शब्द की व्युत्पत्ति

'विनय' शब्द वि उपसर्गपूर्वक √ नी धातु से 'अच्' प्रत्यय लगकर बना माना जाता है। वि का अर्थ है—विविध प्रकार से, विविध दिशाओं में, पृथक्-पृथक्, विशिष्टतापूर्वक आदि; और √ नी का अर्थ है—ले जाना। अतः व्युत्पत्ति के अनुसार 'विनय' शब्द का अर्थ हुआ 'पृथक्-पृथक् ले जाने वाला' अथवा 'विशिष्टतापूर्वक ले जाने वाला'। अच् प्रत्यय दो रूपों में लगता है, भावे अच् और कर्तरि अच्। भावे अच् प्रत्यय लगने पर भाववाचक पुं० शब्द बनता है और कर्तरि अच् प्रत्यय लगने पर कर्तृवाचक शब्द बनता है। संस्कृत में 'विनय' शब्द मुख्यतः भाववाचक पुं० शब्द के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

'विनय' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग

संस्कृत साहित्य में 'विनय' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद (२.२४.९) में पाया जाता है, जैसे—स संनय स विनयः—'वह ब्रह्मणस्पति (मित्रों को स्तुति में) समवेत करने वाला है और (शत्रुओं को युद्ध में) पृथक्-पृथक् करने वाला (विनय) है'।

यहाँ पर 'विनय' शब्द अपनी प्रारम्भिक अवस्था में प्रतीत होता है, क्योंकि यहाँ पर इसका अर्थ व्युत्पत्ति के अनुसार ही है। इस शब्द के अन्य विभिन्न अर्थ इसी अर्थ से विकसित हुये प्रतीत होते हैं। 'विनय' शब्द का 'पृथक् करना, हटाना' अर्थ में प्रयोग लौकिक संस्कृत में भी पाया जाता है।[1]

'शास्त्रविहित आचार' अर्थ का विकास

'विनय' शब्द के 'पृथक्कर्ता' अथवा 'पृथक्-पृथक् ले जाने वाला' अर्थ से 'शास्त्रविहित आचार' अर्थ का विकास हुआ प्रतीत होता है। यह विकास किस प्रकार हुआ, इस विषय में वैदिक साहित्य में कोई प्रमाण नहीं मिलता। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में ऋग्वेद के उपर्युक्त एक स्थान के अतिरिक्त और कहीं 'विनय' शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता[2]। ऋग्वेद में पाये जाने वाले 'विनय'

---

१. उत्तरीयविनयात् त्रपमाणा—'स्तनों के ढकने वाली चोली के हटा दिये जाने से लज्जित होती हुई' (शिशु० १०.४२)।

२. वि-पूर्वक √ नी धातु का प्रयोग तो 'ले जाना' अर्थ में ऋग्वेद आदि ग्रन्थों तथा शेष वैदिक साहित्य में पाया जाता है।

शब्द के इस उल्लेख के पश्चात् 'विनय' शब्द का प्रयोग रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में शास्त्रविहित आचार, शिष्टाचार, आत्मसंयम आदि अर्थों में पाया जाता है। श्रुति, स्मृति तथा धर्मशास्त्र द्वारा विहित आचार ही सबको पृथक्-पृथक् करने वाला अथवा पृथक्-पृथक् ले जाने वाला माना गया है। मनुस्मृति में कहा गया है—

"उस परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में उन सबके पृथक्-पृथक् नाम, कर्म और व्यवस्था (अर्थात् व्यवसायों आदि की व्यवस्था) की वेदशब्दों के अनुसार रचना की।"[1]

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि श्रुति, स्मृति तथा धर्मशास्त्र आदि द्वारा समाज के प्रत्येक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय और यहाँ तक कि विशिष्ट व्यक्तियों के लिये पृथक्-पृथक् कर्मों का विधान किये जाने के कारण 'पृथक्-पृथक् ले जाने वाले आचार' को 'विनय' कहा गया। यदि व्युत्पत्ति के अनुसार 'विनय' शब्द का अर्थ 'विशिष्टतापूर्वक ले जाने वाला' माना जाये, तो इसके अनुसार भी 'शास्त्रविहित आचार' को 'विनय' (विशिष्टतापूर्वक ले जाने वाला) कहा जा सकता है, क्योंकि धर्मशास्त्र द्वारा विहित आचार विशिष्टतापूर्वक ले जाने वाला भी होता है। उसका विधान मानवमात्र के कल्याण की दृष्टि से किया गया माना जाता है। 'विनय' शब्द के 'पृथक्-कर्ता' अथवा 'पृथक्-पृथक् ले जाने वाला' अर्थ से 'शास्त्रविहित आचार' अर्थ के विकास की अधिक सम्भावना प्रतीत होती है।

'विनय' शब्द का 'शास्त्रविहित आचार' अर्थ में प्रयोग रामायण, महाभारत, पुराण आदि धर्मग्रन्थों में मिलता है, किन्तु इसके अर्थ की स्पष्ट व्याख्या कहीं नहीं की गयी है।

मनुस्मृति के ७.४० से ७.४२ तक के श्लोकों में विनय' शब्द का प्रयोग किया गया है।।[2] मनुस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूकभट्ट ने इस स्थल

---

१. सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ मनु० १.२१.

२. बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः।
वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे॥ ७.४०.
वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च॥ ७.४१.
पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः॥ ७.४२

पर 'विनय' शब्द का अर्थ ही नहीं किया है। बुहलर ने मनुस्मृति के अपने अंग्रेज़ी अनुवाद में इस स्थल पर 'विनय' शब्द का अर्थ 'नम्रता' किया है, जो कि सर्वथा असङ्गत है। किन्तु बुहलर ने अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में स्पष्ट लिखा है कि मैंने मनुस्मृति का अनुवाद कुल्लूकभट्ट को आधार मानकर किया है। कुल्लूकभट्ट १५वीं शताब्दी में हुये थे, अतएव हो सकता है कि स्वयं उन्हें भी इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट न हो। मनुस्मृति के सबसे प्राचीन (नवीं शताब्दी के) टीकाकार मेधातिथि ने उपर्युक्त श्लोकों में प्रयुक्त 'विनय' शब्द का अर्थ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इन श्लोकों में कहा गया है कि विनयहीनता के कारण अमुक-अमुक राजा नष्ट हो गये और विनय के कारण अमुक-अमुक राजाओं ने राज्य प्राप्त कर लिये। ७.४२ श्लोक की दूसरी पंक्ति में कहा गया है कि विनय के कारण कुबेर ने धनैश्वर्य और विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया। 'ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः' की व्याख्या करते हुये मेधातिथि ने कहा है—

(शङ्का) "किन्तु ब्राह्मणत्व की प्राप्ति में विनय कैसे कारण हो सकता है? षाड्गुण्यप्रयोग, अप्रमाद, अतिव्ययवर्जन, अलोभ, व्यसनासेवन आदि गुणों का होना ही विनय है। इनमें से एक भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति का कारण नहीं हो सकता। वस्तुतः उसका कारण तप सुना जाता है, विश्वामित्र-ने तप किया, जिससे मैं अनृषि का पुत्र न रहूँ, इत्यादि"।

(उत्तर) "कहते हैं। अर्थशास्त्रोक्त नीति ही नय नहीं है। तो क्या है? शास्त्रीय विधि और लोकाचार। शास्त्र में यह विहित ही है कि तप के द्वारा जन्मान्तर में जात्युत्कर्ष प्राप्त हो जाता है। विश्वामित्र को तो क्षत्रिय होते हुये भी उसी जन्म में ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हो गयी, यह धर्मग्रन्थों में कहा ही गया है"।[1]

---

१. ननु च कथं तस्य विनयो हेतुः? षाड्गुण्यप्रयोगः अप्रमादः अतिव्ययवर्जनम् अलोभः व्यसनासेवनम् एवमादीनि 'विनयः'। तदेतद् ब्राह्मण्यस्यैकमपि न कारणम्। तपोहि तत्र कारणत्वेन श्रुतं विश्वामित्रस्तपस्तेपे नानृषेः पुत्रः स्यामित्येवमादि।

उच्यते नार्थशास्त्रोक्तैव नीतिर्नयः। किं तर्हि? शास्त्रीयो विधिर्लोकाचारश्च। शास्त्रे च तपसा जात्युत्कर्षो जन्मान्तरे प्राप्यते इति विहितमेव। विश्वामित्रस्य ब्राह्मण्यं तु तस्मिन्नेव जन्मनि क्षत्रियस्य सत इत्याख्यातमेव।

रॉयल एशियाटिक सोसायटी द्वारा बिबलिओथिका इण्डिका वर्क नं० २५६ में प्रकाशित मनुभाष्य वोल्यूम २ में उपर्युक्त स्थल पर 'नार्थशास्त्रोक्तैव नीतिर्नयः' छपा हुआ है। किन्तु यहाँ पर होना चाहिये 'नार्थशास्त्रोक्तैव नीतिर्विनयः', क्योंकि यहाँ पर मेधातिथि 'विनय' का ही निरूपण कर रहा है। गंगानाथ झा ने अनुवाद करते हुये नय के विषय में लिखा है—"The 'Naya', 'conduct' here spoken of (as 'Vinaya', 'discipline')।"[1] अतः यह स्पष्ट है कि 'शास्त्रविहित आचार और लोकाचार' ही 'विनय' है। जो जो आचार शास्त्र द्वारा विहित हैं, वे सब 'विनय' कहलाते हैं। शास्त्र द्वारा विहित आचार समाज के प्रत्येक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय आदि के लिये पृथक्-पृथक् हैं। ऊपर मेधातिथि ने शङ्का उठाते हुये 'विनय' अथवा 'नय' की जो परिभाषा की है, वह राजाओं के प्रसङ्ग में सङ्गत है, क्योंकि धर्मशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र के ग्रन्थों में उनके मुख्य कर्तव्य ये ही दिये हैं। राजाओं के लिये उनका पालन ही 'विनय' कह दिया जाता है, किन्तु वस्तुतः प्रत्येक कर्म जो भी उनके लिये विहित है 'विनय' है।

मनुस्मृति के उपर्युक्त (७.४०–४२) श्लोकों में 'विनय' के अभाव में कतिपय राजाओं के नष्ट होने का और 'विनय' के कारण राज्यप्राप्ति का वर्णन किया गया है। राजाओं के नष्ट होने के इस प्रकार के वर्णन अन्य ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। शुक्रनीति में अधर्म को राजाओं के नष्ट होने का और धर्म-प्रतिपालन को उनके उत्कर्ष का कारण कहा गया है।[2] कौटिलीय अर्थशास्त्र[3] एवं कामन्दकीयनीतिसार[4] में काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष आदि शत्रु-षड्वर्ग की अधीनता को राजाओं के नाश का एवं जितेन्द्रियता को उनके उत्कर्ष का कारण बताया गया है। इन सब तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि धर्मशास्त्र द्वारा निषिद्ध आचार को करने से अनेक राजाओं का नाश हुआ और धर्मशास्त्र द्वारा विहित आचार को करने से उनका उत्कर्ष हुआ। अतएव धर्मशास्त्र द्वारा विहित आचार अथवा लोकाचार ही 'विनय' है, जैसा कि मनुस्मृति ७.४२ की व्याख्या में मेधातिथि द्वारा किये गये 'विनय' के विवेचन से प्रकट होता है।

---

१. गंगानाथ झा : मनुभाष्य का अंग्रेज़ी अनुवाद, वोल्यूम ३, पार्ट २.

२. शुक्र० १.६८–६९.

३. अर्थ० १.६.६–१५.

४. कामन्द० १.५६–५८.

अन्य अर्थों के विकास की धारायें

'विनय' शब्द के अन्य विभिन्न अर्थों का विकास इस शब्द के 'शास्त्र-विहित आचार' अर्थ से ही हुआ प्रतीत होता है। अर्थों का विकास तीन धाराओं में दिखाई पड़ता है—

(अ) 'शास्त्रविहित आचार अथवा लोकाचार' अर्थ से 'शिष्टाचार', 'आदर', 'नम्रता', 'लज्जा', 'प्रार्थना' आदि अर्थों का विकास।

(आ) 'शास्त्रविहित आचार' अर्थ से 'आत्यसंयम', 'शिक्षा', 'प्रशिक्षण' (training), 'सम्पादन' आदि अर्थों का विकास।

(इ) 'आत्मसंयम' अर्थ से 'नियन्त्रण', 'अनुशासन', 'दण्ड' आदि अर्थों का विकास।

(अ) 'शास्त्रविहित आचार अथवा लोकाचार' अर्थ से 'शिष्टाचार', 'आदर', 'नम्रता', 'लज्जा', 'प्रणति', 'प्रार्थना' आदि अर्थों का विकास

'विनय' शब्द के 'शास्त्रविहित आचार अथवा लोकाचार' अर्थ से शिष्टाचार, आदर, नम्रता, लज्जा, प्रणति, प्रार्थना आदि अर्थों का विकास एक विशिष्ट वातावरण में हुआ है। धर्मशास्त्र द्वारा गुरुजनों के प्रति आचरण करने की जिस परिपाटी का विधान किया गया है, उसमें शिष्टाचार, आदर, नम्रता, सङ्कोच आदि के भावों का समावेश रहता है। गुरुजनों से व्यवहार करते हुये हमारे हृदय में उनके प्रति आदर एवं भक्ति का भाव रहता है, नम्रता का भाव रहता है और नम्रता में सङ्कोच का भाव भी रहता है। उनके सम्मुख हम औद्धत्य का व्यवहार नहीं कर सकते। इन सब बातों को हम अपने दैनिक व्यवहार में देखते हैं। गुरुजनों के प्रति किये जाने वाले व्यवहार के प्रसङ्ग में 'विनय' (अर्थात् शास्त्रविहित आचार अथवा लोकाचार) के अन्तर्गत शिष्टाचार, आदर, नम्रता, प्रणति, लज्जा आदि के भावों के आ जाने के कारण 'विनय' शब्द के साथ शिष्टाचार, आदर, नम्रता, प्रणति, लज्जा आदि के भावों का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'विनय' शब्द शिष्टाचार, आदर, नम्रता, प्रणति, लज्जा आदि के भावों को भी लक्षित करने लगा। इस प्रकार संस्कृत में 'विनय' शब्द के शिष्टाचार[1],

---

१. तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा।
ववन्दे वरदं बन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ॥ रामायण २.१६.११.

"सूर्य के समान तेजस्वी, वर देने वाले राम को शिष्टाचारयुक्त बन्दी सुमन्त्र ने शिष्टतापूर्वक प्रणाम किया।"

आदर[1], नम्रता[2], लज्जा[3], प्रणति आदि अर्थों का विकास हो गया।

"प्रार्थना' अर्थ का विकास

हिन्दी में 'विनय' शब्द के 'प्रार्थना' अर्थ का विकास इस शब्द के 'नम्रता' अर्थ से हुआ है। किसी से कुछ देने या करने के लिये नम्रतापूर्वक कहने को 'प्रार्थना' कहा जाता है। किसी से 'प्रार्थना' नम्रतापूर्वक की जाती है, अतः 'प्रार्थना' के नम्रतापूर्वक किये जाने के कारण 'नम्रता' के वाचक 'विनय' शब्द के साथ 'किसी से कुछ देने या करने के लिये कहने' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'विनय' शब्द 'किसी से कुछ देने या करने के लिये नम्रतापूर्वक कहने' (अर्थात् प्रार्थना) को लक्षित करने लगा। यह भी सम्भव है कि 'विनय' शब्द के 'नम्रता' अर्थ में 'कहने' के वाचक शब्द के साथ प्रार्थना के प्रसङ्ग में अथवा प्रार्थना के वाचक शब्द के साथ निरन्तर प्रयुक्त होते रहने से 'कहने' का भाव अथवा 'प्रार्थना' का भाव 'विनय' शब्द में संक्रान्त हो गया हो (जैसे—'विनयपूर्वक निवेदन है' में 'निवेदन' शब्द के साथ 'विनय' शब्द का 'नम्रता' अर्थ में प्रयोग किया जाता है। हो सकता है कि इसी प्रकार से प्रयुक्त होते रहने से 'कथन' अथवा 'निवेदन' का भाव भी 'विनय' शब्द में संक्रान्त हो गया हो और 'विनयपूर्वक निवेदन' को ही 'विनय' कहा जाने लगा हो)।

(आ) 'शास्त्रविहित आचार' अथवा 'लोकाचार' अर्थ से 'आत्मसंयम', 'शिक्षा', 'प्रशिक्षण', 'सम्पादन' आदि अर्थों का विकास

'आत्मसंयम' अर्थ का विकास

शास्त्रविहित आचार अथवा लोकाचार के जीवन में चरितार्थ हो जाने

---

१. अध्यापयन्तं विनयात् प्रणेमुः पद्गा भरद्वाजमुनिं सशिष्यम्।
"पैदल जाने वाले उन्होंने शिष्यों को पढ़ाते हुये भरद्वाज मुनि को शिष्यों सहित आदरपूर्वक प्रणाम किया" (भट्टि० ३.४१)।

२. विनयादिव यापयन्ति। किरात० २.४५.

३. मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत-इंगलिश शब्दकोश में 'विनय' शब्द के अर्थ देते हुये लिखा है कि पुराणों में कहीं-कहीं 'विनय' को क्रिया और लज्जा का पुत्र भी कहा गया है। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया है 'विनय' के अन्तर्गत 'लज्जा' का भी समावेश रहता है।

पर एक दिव्यगुण की उत्पत्ति होती है। उस गुण का नाम है 'आत्मसंयम'। 'शास्त्रविहित आचार' का पालन करने से प्राप्त होने वाले इस गुण को भी भाव-साहचर्य से 'विनय' ही कहा गया। सारे संस्कृत साहित्य में 'विनय' शब्द का मुख्यार्थ 'आत्मसंयम' ही है।

श्रुति, स्मृति तथा धर्मशास्त्र चारित्रिक उज्ज्वलता को बहुत महत्त्व देते हैं। सभी धर्मग्रन्थों में काम, क्रोध, मान, लोभ, मद, हर्ष आदि से उत्पन्न अवगुणों तथा अन्य दुर्व्यसनों के त्याग पर विशेष बल दिया गया है। इन सब अवगुणों के त्याग देने से जितेन्द्रियता की प्राप्ति होती है। यह जितेन्द्रियता ही 'विनय' का कारण है, जैसा कि उद्भट ने कहा है—'जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणम्' (काव्य० ७.३१६)। शास्त्रों में मन, वाणी तथा कर्म तीनों के ऊपर संयम रखने का उपदेश दिया गया है तथा अन्य अनेक प्रकार के ऐसे आचारों का विधान किया गया है, जिनसे चारित्रिक उत्कर्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शास्त्रविहित आचार अथवा लोकाचार का पालन करने से जितेन्द्रियता की प्राप्ति के द्वारा मन, वाणी और कर्म तीनों संयत होते हैं और अनेक दैवी गुणों का प्रादुर्भाव होता है। तदनन्तर 'विनय' (आत्मसंयम) की प्राप्ति होती है।

मानवीय-चरित्र का सर्वोत्कृष्ट गुण एवं विद्या का उच्चतम उद्देश्य 'विनय'

शास्त्रानुष्ठान अथवा विद्याभ्यास द्वारा 'विनय' की प्राप्ति का उल्लेख अनेक धर्मग्रन्थों में मिलता है। विद्या द्वारा 'विनय' की प्राप्ति जितेन्द्रियता की सुदृढ़ नींव पर होती है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में कहा गया है—'विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः' (१.६.१)। जितेन्द्रियता विद्याभ्यास के लिये अनुकूल क्षेत्र प्रस्तुत करती है। विद्याभ्यास से दो वस्तुओं की प्राप्ति होती है, एक तो ज्ञान की और दूसरी विनय की। संस्कृत के प्रसिद्ध सुभाषित 'विद्या ददाति विनयम्' में भी कहा गया है कि विद्या से विनय (आत्मसंयम) की प्राप्ति होती है।[1] शुक्रनीति (३.९०) में कहा गया है—'विद्यायाश्च फलं ज्ञानं विनयश्च'। ज्ञान और विनय दो भिन्न वस्तुयें हैं। ज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और विनय का सम्बन्ध चरित्र से है। विद्याभ्यास से एक ओर

---

१. विद्या के द्वारा विनय की प्राप्ति होने के कारण ही संस्कृत साहित्य में अनेक स्थलों पर 'विनय' शब्द का प्रयोग 'विद्या' शब्द के साथ-साथ पाया जाता है, जैसे—'विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे' (भग० ५.१८)।

बौद्धिक विकास होता है, दूसरी ओर चारित्रिक उत्कर्ष की प्राप्ति होती है। यह हो सकता है कि किसी व्यक्ति में ज्ञान हो और 'विनय' न हो। किन्तु यदि किसी व्यक्ति में ज्ञान और विनय दोनों का समावेश है तो उसे व्यक्तित्व के विकास की चरमसीमा समझनी चाहिये। 'विनय' विकसित जीवन-पुष्प का सौरभ है, व्यक्तित्व का प्रकाशमान सौन्दर्य है, चारित्रिक विकास का परमोत्कर्ष है। इसको मानवीय चरित्र का सर्वोत्कृष्ट गुण कहा जा सकता है। भर्तृहरि ने 'विनय' (आत्मसंयम) को श्रुतिज्ञान का विभूषण कहा है।[1] शुक्रनीति (१.१४७) एवं कामन्दकीयनीतिसार (१.२३) में विनय की प्राप्ति को शास्त्रानुष्ठान का उद्देश्य कहा गया है—

शास्त्राय गुरुसंयोगः शास्त्रं विनयवृद्धये।

"शास्त्र की प्राप्ति के लिये गुरु का संसर्ग किया जाता है और विनय की वृद्धि के लिये शास्त्रानुष्ठान किया जाता है।"

'विनय' की प्राप्ति से गुणों का प्रकर्ष

'विनय' (आत्मसंयम) की प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य में अनेक गुण स्वयमेव प्रस्फुटित होने लगते हैं। उद्भट ने कहा है—'गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते (काव्य ७.३१६)। संस्कृत के प्रसिद्ध सुभाषित 'विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्' में भी कहा गया है कि विनय से योग्यता की प्राप्ति होती है। किरातार्जुनीय (१३.४४) में कहा गया है—

तिष्ठतां तपसि पुण्यमासजन् सम्पदोऽनुगुणयन् सुखैषिणाम्।
योगिनां परिणमन् विमुक्तये केन नास्तु विनयः सतां प्रियः॥

"विनय (आत्मसंयम) तपस्वियों को पुण्य प्रदान करता है, सुखेच्छियों को सम्पत्ति प्रदान करता है और योगियों को मुक्ति प्रदान करता है। अतः कौन ऐसा कारण हो सकता है, जिससे वह (विनय) सज्जनों का प्रिय नहीं हो सकता।"

मृच्छकटिक (४.३२) में शूद्रक ने मैत्रेय के चरित्र की कितनी सुन्दर कल्पना की है। वसन्तसेना कहती है—

गुणप्रवालं विनयप्रशाखं विश्रम्भमूलं महनीयपुष्पम्।
तं साधुवृक्षं स्वगुणैः फलाढ्यं सुहृद्विहंगाः सुखमाश्रयन्ति॥

---

१. ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो।
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः॥ नीति० ८२.

"जिसमें गुण-रूपी पल्लव हैं, विनय-रूपी महान् शाखायें हैं, विश्वास-रूपी जड़ें हैं, कीर्ति-रूपी पुष्प हैं और जो अपने गुण-रूपी फलों से समृद्ध है, ऐसे आर्य मैत्रेय-रूपी वृक्ष का, मित्र-रूपी पक्षी सुखपूर्वक आश्रय लेते हैं"।

यहाँ पर 'विनय' को व्यक्तित्व-रूपी वृक्ष की महान् शाखा कहा गया है। कितनी सुन्दर कल्पना है यह। वृक्ष का सम्पूर्ण भार तनों पर आश्रित रहता है, उन्हीं की शोभा एवं समृद्धि पर वृक्ष की शोभा एवं समृद्धि निर्भर रहती है। यही स्थिति जीवन में विनय (आत्मसंयम) की होती है। इसी पर जीवन का सम्यक् सञ्चालन एवं विकास निर्भर रहता है। यहाँ पर अधिकतर टीकाकारों ने 'विनय' शब्द का अर्थ 'नम्रता' किया है, जिससे श्लोक का सारा भाव-सौन्दर्य जाता रहता है।

'शिक्षा', 'प्रशिक्षण' आदि अर्थों का विकास

'विनय' की प्राप्ति दो उपायों से होती है—१. शास्त्रानुष्ठान द्वारा, तथा २. प्रशिक्षण (अभ्यास=training) द्वारा। शास्त्र का नित्यप्रति अनुशीलन करने से अथवा गुरु के उपदेश से विनय की शिक्षा मिलती है और जिन शास्त्रविहित आचारों की शिक्षा मिलती है, उनका व्यवहार में अभ्यास करने से 'विनय' (आत्मसंयम) की प्राप्ति होती है। इस कारण संस्कृत में भाव-साहचर्य से 'विनय' शब्द के 'शिक्षा'[1], 'प्रशिक्षण, अभ्यास' आदि अर्थ भी विकसित हो गये हैं। घोड़े, हाथी, बैल, ऊँट आदि पशुओं तथा पक्षियों और सेना आदि के 'शिक्षण अथवा प्रशिक्षण' के लिये भी 'विनय' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, यथा—

> वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित्।
> आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम्॥ रामायण २.१.२८

"वह (श्रीरामचन्द्र जी) विहार कराने वाले के शिल्पों तथा धन के व्यय के विभिन्न विभागों को जानते थे और हाथी, घोड़े आदि की सवारी एवं प्रशिक्षण में कुशल थे"।

---

१. प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥ रघु० १.२४.

"प्रजाओं को शिक्षा देने, रक्षा करने और भरण-पोषण करने के कारण वह उनका पिता है, उनके पिता तो केवल जन्म के कारण हैं।"

'सम्पादन' (प्राप्ति) तथा 'सम्पादनीय कार्य' आदि अर्थों का विकास

प्राचीन काल में विनय की प्राप्ति अथवा सम्पादन को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था। विनय का सम्पादन करने के लिये सतत साधना करनी पड़ती थी। विद्या तथा अभ्यास द्वारा विनय की प्राप्ति पर समस्त धर्मग्रन्थों में विशेष बल दिया गया है। इसी कारण भाव-साहचर्य से संस्कृत में 'विनय' शब्द के 'प्राप्ति अथवा सम्पादन' अर्थ का भी विकास पाया जाता है, यथा—

अशक्तिः शक्तिरित्येवं मानस्तम्भौ व्ययाव्ययौ ।
विनयश्च विसर्गश्च कालाकालौ च भारत ।। शान्तिपर्व १२१.२९.

'विनय' शब्द के 'प्राप्ति अथवा सम्पादन' अर्थ से 'सम्पादनीय कार्य' अर्थ का भी विकास पाया जाता है।[1]

(इ) 'विनय' शब्द के 'आत्मसंयम' अर्थ से 'नियन्त्रण', 'अनुशासन', 'दण्ड' आदि अर्थों का विकास

शास्त्रविहित आचार अथवा लोकाचार का पालन करने से 'विनय' (आत्मसंयम) की प्राप्ति होती है। किन्तु जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, समाज के प्रत्येक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय आदि के लिये इसका मुख्य स्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है। राजा के लिये षाड्गुण्यप्रयोग, अप्रमाद, अतिव्यय-वर्जन, अलोभ, व्यसनासेवन आदि कर्तव्य मुख्य समझे जाते हैं। इस कारण राजा के प्रसङ्ग में इनका होना ही 'विनय' कह दिया जाता है। वस्तुतः ये विनय के अङ्ग हैं। शास्त्र द्वारा विहित प्रत्येक आचार का होना विनय है।

धर्मग्रन्थों में राजा के लिये विनय की प्राप्ति पर बहुत बल दिया गया है। शुक्रनीति में कहा गया है—

आत्मानं प्रथमं राजा विनयेनोपपादयेत् ।
ततः पुत्रांस्ततोऽमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः प्रजाम् ।। १.९२.

"राजा पहिले अपने आपको, फिर अपने पुत्रों को, फिर अमात्यों को, फिर नौकरों को और इसके पश्चात् प्रजा को विनययुक्त करे।"

शासन-व्यवस्था करते हुये राजा की नीति का मूल ही विनय कहा गया

---

१. विदधति न गृहेषूत्फुल्लपुष्पोपहारम् ।
विफलविनययत्नाः कामिनीनां वयस्याः ।। शिशु० ११.३६.

"घरों में सखियाँ अपने सम्पादनीय कार्य के यत्नों में विफल होकर उनकी पुष्पों से पूजा नहीं कर रही हैं।"

है। शुक्रनीति में कहा गया है—

नयस्य विनयो मूलं विनयो शास्त्रनिश्चयात्। १.९१.

"नीति का मूल विनय है और विनय शास्त्र के निश्चय से आता है।"

सुव्यवस्थित शासनतन्त्र का मूल 'विनय' (discipline)

'विनय' शब्द के 'आत्मसंयम' अर्थ से 'नियन्त्रण' और 'अनुशासन' (discipline) आदि अर्थों का विकास हुआ है। आत्मसंयम की प्राप्ति के लिये शरीर, मन और वाणी तीनों को नियन्त्रित करना पड़ता है। अतएव भाव-सादृश्य से किसी भी प्रकार के नियन्त्रण के लिये 'विनय' शब्द का प्रयोग होने लगा। इसी भाव-सादृश्य से राज्य के 'नियन्त्रण' अथवा 'अनुशासन' को भी 'विनय' कहा गया। प्राचीन काल में राज्य में अनुशासन स्थापित करने के लिये राजा के लिये निर्दिष्ट कर्तव्यों को 'वैनयिक' कहा जाता था। महाभारत के शान्तिपर्व (६८. १–६१) में जनपद राज्य के वैनयिक कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्रथम आधिकारिक में राजा के लिये राज्य में अनुशासन बनाये रखने के लिये बहुत से कर्तव्यों का निर्देश किया गया है, इस कारण इस आधिकारिक का नाम भी 'विनयाधिकारिक' रक्खा गया है। मनुस्मृति (७.६५) में दण्ड का आश्रय लेकर राज्य में अनु-शासन स्थापित करने को 'वैनयिकी क्रिया' कहा गया है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक India as known to pāṇini में अष्टाध्यायी के एक सूत्र[1] से यह सिद्ध किया है कि पाणिनि के समय में (अर्थात् पाँचवीं शताब्दी ईसवीपूर्व के मध्य में) भी सुव्यवस्थित शासनतन्त्र का मूल 'विनय' (discipline) ही माना जाता था। उन्होंने 'विनयादिगण' में विभिन्न राजकीय कर्तव्यों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों का सन्निवेश माना है, जिनमें से १. सामयिक, २. सामयाचारिक, ३. औपयिक, ४. आत्ययिक, ५. सामुत्कर्षिक, ६. साम्प्रदानिक, ७. औपचारिक, ८. सामाचारिक आदि का उल्लेख भी किया है।[2] 'वैनयिक' की परिभाषा करते हुये डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने कहा है—"नागरिकों के जीवन को तथा जनपद राज्य-व्यवस्था को नियन्त्रित करने वाले समस्त गुणों के तथा विधि-सम्बन्धी,

---

१. विनयादिभ्यष्ठक्। यथा विनय एव वैनयिकः, सामयिकः।

अष्टाध्यायी ५.४ ३४.

२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : इण्डिया ऐज़ नौन टु पाणिनि, पृष्ठ ४१२.

सामाजिक एवं नैतिक नियमों के समूह को 'वैनयिक' कहा जाता था, जिसका उल्लेख पाणिनि (५.४.३४) और शान्तिपर्व (६८.४) दोनों करते हैं।"[१]

'दण्ड' अर्थ का विकास

राज्य में 'विनय' (अनुशासन) की स्थापना करने के लिये दण्डनीति का प्रयोग आवश्यक होता है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में कहा गया है—विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः—'विनय (अनुशासन) है मूल में जिसके, ऐसा दण्ड प्राणियों के कल्याण के लिये होता है' (१.५.२)। 'विनय' (अनुशासन अथवा नियन्त्रण) के लिये दण्ड की इतनी आवश्यकता होने के कारण ही 'अनुशासन' अथवा 'नियन्त्रण' को लक्षित करने वाले 'विनय' शब्द के साथ 'दण्ड' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'विनय' शब्द 'दण्ड' को भी लक्षित करने लगा। इस प्रकार संस्कृत में 'विनय' शब्द का 'दण्ड'[२] अर्थ भी विकसित हो गया।

बौद्ध साहित्य में 'विनय'

बौद्ध साहित्य में भी 'विनय' शब्द का प्रयोग 'आत्मसंयम' (discipline) अथवा 'आत्मसंयम की प्राप्ति के नियम' (rules of discipline) अर्थ में पाया जाता है। बौद्धसंघ द्वारा प्रतिपादित नियमसमूह का पालन 'विनय' कहलाता था। बौद्धसंघ द्वारा भिक्षु, भिक्षुणियों एवं सर्वसाधारण के जीवन

---

१. "The sum total of all virtues and of the legal, social and moral ordinances which governed the life of the citizens and the Janapada polity was called Vainayika, to which both Pāṇini (5.4.34) and Śāntiparva (68.4) refer. The Vainayika functions of the Janapada state are described at length in the Mahābhārata in a chapter with the epic strain 'yadi rājā na pālayet' (Śānti. 68.1-61). Agarwal, V. S. : India as known to Pāṇini, p. 486.

२. पूर्वमाक्षारयेद् यस्तु नियतं स्यात् स दोषभाक्।
पश्चाद् यः सोऽप्यसत्कारी पूर्वे तु विनयो गुरुः ।। नारदीय० १५.१०.
पारुष्ये साहसे चैव युगपत्संवर्तयोः।
विशेषश्चेन्न लभ्येत विनयः स्यात् समस्तयोः ।। व्यवहारतत्त्व (शब्दकल्पद्रुम से उद्धृत)।

को संयत करने के लिये अनेक नियमों का विधान किया गया था, जिन्हें 'विनय' कहा जाता था। अतएव बौद्ध-साहित्य में ऐसे नियमों के संविधान का नाम भी 'विनयपिटक' (आत्मसंयम के नियमों की पिटारी) रक्खा गया। यह बौद्ध-धर्म का बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को 'विनयपिटक' क्यों कहा गया, इसके विषय में अभिधम्मपिटक की प्रथम पुस्तक धम्मसंगणि में लिखा है—

(विविध-विसेस) नयत्ता विनयनतो चैव कायवाचानं विनय्य अत्थ विदूहि अयं विनयो विनयो ति अक्खातो।

"क्योंकि यह आचार तथा नियमों को प्रदर्शित करता है, शरीर और वाणी को नियन्त्रित करता है, इस कारण मनुष्य इसको 'विनय' कहते हैं"।[१]

यह उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार हमारे धर्मग्रन्थों में शास्त्रविहित आचार अथवा लोकाचार को 'विनय' कहा गया है, उसी प्रकार बौद्ध साहित्य में बौद्धसंघ द्वारा प्रतिपादित नियमों को 'विनय' कहा गया है। जिस प्रकार शास्त्रविहित आचार का पालन करने से 'विनय' (आत्मसंयम) की प्राप्ति मानी गयी है, उसी प्रकार बौद्धसंघ द्वारा प्रतिपादित नियमों का विधान भी जीवन को संयत करने के लिये किया गया था।

'विनय' शब्द के अर्थ में अपकर्ष

'विनय' शब्द के विभिन्न अर्थों के विकास के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'विनय' शब्द के अर्थ में बड़ा अपकर्ष हो गया है। पहिले यह शब्द अधिकतर सदाचार, शिष्टाचार, आत्मसंयम आदि के उदात्त भावों को लक्षित करता था। बाद में पहिले तो संस्कृत में ही उसके 'नम्रता' अर्थ का विकास होने से अर्थ में अपकर्ष हुआ, फिर हिन्दी आदि भाषाओं में उसके 'नम्रता' अर्थ से 'प्रार्थना' अर्थ का विकास हो जाने पर और भी अपकर्ष हो गया। इस प्रकार 'विनय' शब्द के अर्थ-विकास में अर्थापकर्ष की प्रवृत्ति पायी जाती है।

---

१. "Because it shows precepts and principles,
And governs both the body and the tongue,
Therefore men call this Scripture Vinaya,
For so is Vinaya interpreted".
Maung Tin : The Expositor, vol. 1, p. 23.

साहस

हिन्दी में 'साहस' पुं० शब्द 'हिम्मत, किसी असाधारण कार्य में दृढ़तापूर्वक प्रवृत्त होने की वृत्ति' अर्थ में प्रचलित है। 'साहस' शब्द का यह अर्थ यद्यपि संस्कृत में भी पाया जाता है,[1] तथापि संस्कृत में 'साहस' नपुं० शब्द का प्रयोग अधिकतर बुरे अर्थ में—लूट, डाका, हत्या, परदारगमन आदि के लिये पाया जाता है।

'साहस' शब्द का मौलिक अर्थ है—'बल (सहस्) से किया हुआ कार्य' (सहसा बलेन निर्वृत्तम् इति अण्)। नारदीयस्मृति में 'साहस' की परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

सहसा क्रियते कर्म यत्किञ्चिद्बलदर्पितैः।
तत्साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते॥

प्राचीन भारतीय विधि में 'साहस' एक विवादपद (विवाद का विषय) माना गया है। मनुस्मृति तथा नारदीय-स्मृति में 'साहस' १८ विवादपदों में से चौदहवाँ विवादपद है। समस्त धर्मग्रन्थों में 'साहस' दण्ड-विधि (criminal law) का एक महान् अपराध माना गया है। यद्यपि अधिकतर धर्मग्रन्थों में बलपूर्वक किये गये कर्म को 'साहस' कहा गया है[2], तथापि उसके अन्तर्गत आने वाले अपराधों के विषय में मत-भेद है। नारदीय-स्मृति में 'साहस' को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है—प्रथम, मध्यम और उत्तम (सबसे बड़ा)। उसके अनुसार फल, मूल, जल आदि का तथा खेत के सामान का तोड़ने, खींचने आदि के द्वारा अपहरण 'प्रथम साहस' है। वस्त्र, पशु, अन्न, पेय वस्तु और गृह की सामग्री का अपहरण 'मध्यम साहस' है। विष, शस्त्र आदि से मारना, दूसरे की स्त्री के साथ सम्भोग और जो भी कर्म प्राणों को रोकने वाला हो, वह 'उत्तम (सबसे बड़ा) साहस' है।[3]

---

१. साहसे श्रीः प्रतिवसति। मृच्छ० अङ्क ४.

२. स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् (मनु० ८.३३२);
साहसमन्वयवत्प्रसभकर्म (अर्थ०)।

३. तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं प्रथमं मध्यमं तथा।
उत्तमं चेति शास्त्रेषु तस्योक्तं लक्षणं पृथक्॥
फलमूलोदकादीनां क्षेत्रोपकरणस्य च।
वासः पश्वन्नपानानां गृहोपकरणस्य च॥
व्यापादो विषशस्त्राद्यैः परदाराभिमर्शनम्।
प्राणोपरोधि यच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम्॥

याज्ञवल्क्य-स्मृति (२.३०) में किसी की वस्तु को बलपूर्वक हर लेने को 'साहस' कहा गया है।[१] इस प्रकार इसके अनुसार 'लूट' ही 'साहस' है। 'साहस' शब्द की इसी प्रकार की परिभाषाओं से भ्रान्त होकर कुछ आधुनिक विद्वानों ने 'साहस' का अर्थ 'लूट' किया है। 'साहस' शब्द का 'लूट' अर्थ करना ठीक नहीं है। जायसवाल[२] ने सुझाव दिया है कि 'साहस' शब्द का उपयुक्त अनुवाद 'शरीर तथा सम्पत्ति के प्रति बलपूर्वक किये गये अपराध' (offences of force to person and property) है।

बृहस्पति-स्मृति में 'साहस' चार प्रकार का बतलाया गया है—

मनुष्यमारणं चौर्यं परदाराभिमर्शनम्।
पारुष्यमुभयं चेति साहसं स्याच्चतुर्विधम्॥

मनुस्मृति में 'स्त्रीसंग्रहण' को 'साहस' के अन्तर्गत नहीं रक्खा गया है, उसे पृथक् (१५ वाँ) विवादपद माना गया है, किन्तु बृहस्पति-स्मृति और नारदीय-स्मृति में 'स्त्रीसंग्रहण' को भी 'साहस' के अन्तर्गत रक्खा गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धर्म-ग्रन्थों में चोरी, डाका, लूट, परदारगमन, वध आदि अपराधों को 'साहस' माना गया है।

संस्कृत में 'साहस' शब्द का प्रयोग 'दण्ड' अर्थ में भी पाया जाता है। प्रथम, मध्यम और उत्तम तीन प्रकार के साहसों के लिये निर्धारित दण्ड को भी तीन प्रकार का 'साहस' कहा गया है, जैसे—

पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः॥ मनु० ८.१३८.

"२५० पणों का प्रथम साहस कहा गया है, पाँच सौ पणों का मध्यम और एक सहस्र पणों का उत्तम जानना चाहिये।"

उपर्युक्त अर्थों के अतिरिक्त संस्कृत में 'साहस' शब्द का प्रयोग 'जल्दबाज़ी'[३]

---

१. सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसं स्मृतम्।

२. मनु एण्ड याज्ञवल्क्य, पृष्ठ १६३.

३. शुक्रनीति में 'परिणाम का विचार किये विना कार्य करने वाले' को 'साहसी' कहा गया है—

क्रियाफलमविज्ञाय यतते साहसी च सः।
दुःखभागी भवत्येव क्रियायां तत्फलेन वा॥ शुक्र० ३.७१.

में किया हुआ कार्य', 'बल से अधिक किया गया कार्य'[1], 'निर्दयता'[2] आदि अर्थों में भी पाया जाता है।

'साहस' शब्द का 'हिम्मत' अर्थ इस शब्द के 'बलपूर्वक किया गया कार्य' (लूट, डाका, हत्या आदि) अर्थ से ही विकसित हुआ है। लूट, डाका, हत्या आदि करने के लिये हृदय की दृढ़ता अथवा हिम्मत की आवश्यकता होती है। डरपोक व्यक्ति ऐसे कार्यों को नहीं कर सकता। अतः लूट, डाका, हत्या आदि के कार्यों में 'हिम्मत' के भाव का भी समावेश होने के कारण लूट, डाका, हत्या आदि के वाचक 'साहस' शब्द के साथ 'हिम्मत' अथवा 'हृदय की दृढ़ता' के भाव का भी साहचर्य रहने से कालान्तर में यह (साहस) शब्द केवल 'हृदय की दृढ़ता' अथवा 'हिम्मत' को ही लक्षित करने लगा। आजकल हिन्दी में 'साहस' शब्द 'हृदय की दृढ़ता' अथवा 'हिम्मत' के लिये अच्छे अर्थ में प्रचलित है, लूट, डाका, हत्या आदि अर्थ लुप्त हो गये हैं। इस प्रकार 'साहस' शब्द के अर्थ में उत्कर्ष हुआ है।

---

१. साहसं वर्जयेत्कर्म रक्षञ्जीवितमात्मनः।
जीवन् हि पुरुषस्त्विष्टं कर्मणः फलमश्नुते। चरक० निदान० ६.७.

चरक ने 'साहस' (बल से अधिक किये जाने वाले कार्य) को क्षय रोग का एक कारण बतलाया है—इह खलु चत्वारि शोषस्यायतनानि। तद्यथा साहसं सन्धारणं क्षयो विषमाशनमिति।

चरकसंहिता में 'साहस' की व्याख्या करते हुये कहा गया है—

तत्र यदुक्तं साहसं शोषस्यायतनमिति तदनुव्याख्यास्यामः—यदा पुरुषो दुर्बलो हि सन् बलवता सह विगृह्णाति, अतिमहता वा धनुषा व्यायच्छति, जल्पति वाऽप्यतिमात्रम्, अतिमात्रं वा भारं उद्वहति, अप्सु वा प्लवते चातिदूरम्, उत्सादनपदाघातने वाऽतिप्रगाढमासेवते, अतिप्रकृष्टं वाऽध्वानं द्रुतमभिपतति, अभिहन्यते वाऽन्यद्वा किञ्चिदेवंविधं विषममतिमात्रं वा व्यायामजातमारभते तस्यातिमात्रेण कर्मणा उरः क्षण्यते। निदानस्थान ६.२.३.

२. न सहास्मि साहसमसाहसिकी। शिशु० ६.५६.

अध्याय ११

साधनवाची से साध्यवाची

किसी पदार्थ से बनी हुई वस्तु अथवा किसी वस्तु के द्वारा किये जाने वाले कार्य अथवा किसी विशिष्ट क्रिया या भाव से किये गये कार्य को भी बहुधा भाव-साहचर्य से उस पदार्थ, वस्तु, क्रिया या भाव के वाचक शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगता है। इस प्रकार साधन के वाचक शब्द साध्य के वाचक बन जाते हैं। इस श्रेणी को निम्न विभागों में विभाजित किया गया है:—

(अ) पदार्थवाची से निर्मितवस्तु-वाची।
(आ) वस्तुवाची से कार्य या भाव-वाची।
(इ) क्रिया या भाव-वाची से कार्य या विचार-वाची।

(अ) पदार्थ-वाची से निर्मितवस्तु-वाची

बहुधा यह देखा जाता है कि किसी पदार्थ अथवा वस्तु के वाचक शब्द द्वारा भाव-साहचर्य से उससे निर्मित वस्तु को भी लक्षित किया जाने लगता है। इस प्रकार उस शब्द के अर्थ में उसके मौलिक अर्थ से भेद हो जाता है। 'बाँसुरी' पहिले 'बाँस' (संस्कृत 'वंश') की बनाई जाती थी, इस कारण संस्कृत में 'बाँस' के वाचक 'वंश' शब्द का प्रयोग 'बाँसुरी' के लिये भी पाया जाता है, जैसे—कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् (रघु० २.१२)। संस्कृत में 'वेणु' शब्द का भी मौलिक अर्थ 'बाँस' ही है। ऋग्वेद में 'वेणु' शब्द का प्रयोग अधिकतर इसी अर्थ में पाया जाता है। संस्कृत में 'वेणु' शब्द के भी 'बाँसुरी' अर्थ का विकास पाया जाता है, जैसे—नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम् (गीत० ५)।

ओषधि

हिन्दी में 'ओषधि' स्त्री० शब्द 'दवाई, रोग को दूर करने के लिये प्रयुक्त किया जाने वाला द्रव्य अथवा पदार्थ-विशेष 'अर्थ में प्रचलित है। 'दवाई' अर्थ में 'ओषधि' शब्द का प्रयोग संस्कृत में भी पाया जाता है।[1] किन्तु संस्कृत में

---

१. सुश्रुत० १.४.१५ आदि।

'ओषधि' शब्द का मौलिक अर्थ है 'पौधा, जड़ी-बूटी'। ऋग्वेद में 'ओषधि' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में पाया जाता है।[1]

वैदिक साहित्य में वनस्पति-जगत् साधारणतया दो भागों में विभक्त पाया जाता है, वन अथवा वृक्ष और वीरुध् (पौधे) अथवा ओषधि।[2] 'ओषधि' शब्द का प्रयोग अधिकतर ऐसे पौधों के लिये पाया जाता हैं, जिनमें रोगों को दूर करने की शक्ति अथवा मनुष्य के लिये लाभप्रद अन्य गुण हों। वीरुध् शब्द का प्रयोग पौधों के लिये साधारण रूप में पाया जाता है। किन्तु कभी-कभी जहाँ वीरुध् शब्द का प्रयोग ओषधि के साथ-साथ किया गया है, वीरुध् उन पौधों को लक्षित करता है, जिनमें रोगों को दूर करने के गुण न हों।[3] शतपथ-ब्राह्मण (६.१.१.१२) में और इससे आगे 'ओषधि-वनस्पति' (पौधे और वृक्ष) संयुक्त शब्द भी प्रायः पाया जाता है। लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'ओषधि' शब्द का प्रयोग अधिकतर उन्हीं पौधों के लिये पाया जाता है, जिनमें रोगों को दूर करने को शक्ति हो।[4] ऋग्वेद १०.९७ में अथर्वा ऋषि के पुत्र भिषक् ने 'ओषधि' (जड़ी-बूटी) को देवता मानकर उसकी स्तुति की है। ओषधियों (पौधों अथवा जड़ी-बूटियों) में रोगों को दूर करने के गुण होने के कारण ही अथर्ववेद[5] में उनको 'नानावीर्या' (विभिन्न शक्तियों से युक्त) कहा गया है।

संस्कृत में 'ओषधि' अथवा 'ओषधी' ऐसे पौधों को भी कहा गया है, जो पकने के बाद सूख जाते हैं, जैसे—ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्प-फलोपगाः (मनु० १.४६)।

चन्द्रमा को 'ओषधियों' (जड़ी-बूटियों) में रस का सञ्चार करने वाला माना जाता है। भगवद्गीता (१५.१३) में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कहा गया

---

१. विश्वो वो अजमन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः। ऋग्वेद १.१६६.५.

२. मैकडॉनेल तथा कीथ : वैदिक इण्डैक्स, वोल्यूम १ (ओषधि)।

३. तैत्तिरीयसंहिता २.५.३.२.

४. सञ्जीवनौषधिरसो हृदि नु प्रसक्तः—'यह सञ्जीवनी बूटी का रस हृदय पर सींचा गया है' (उत्तर० ३.११)।

५. नानावीर्या ओषधिर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः। अथर्व० १२.१.२.

है—पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः— मैं रसात्मक चन्द्रमा होकर सब जड़ी-बूटियों का पोषण करता हूँ'। चन्द्रमा को जड़ी-बूटियों में रस का सञ्चार करने वाला माना जाने के कारण ही उसके लिये संस्कृत में ओषधिपति[1], ओषधीश, ओषधिनाथ[2], ओषधिप[3] आदि शब्दों का प्रयोग पाया जाता है।

'ओषधि' शब्द के 'पौधा, जड़ी-बूटी' अर्थ से ही इस शब्द के वर्तमान 'दवाई' अर्थ का विकास हुआ है। प्राचीनकाल में भारतवर्ष में दवाइयाँ अधिकतर जड़ी-बूटियों से ही बनाई जाती थीं। आजकल भी अधिकतर आयुर्वेदिक और यूनानी ओषधियाँ जड़ी-बूटियों से ही बनी हुई होती हैं। दवाइयों के जड़ी-बूटियों से बनाये जाने के कारण अथवा जड़ी-बूटियों का 'दवाई' के रूप में प्रयोग किये जाने के कारण जड़ी-बूटी के वाचक 'ओषधि' शब्द के साथ 'दवाई' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'दवाई' को 'जड़ी-बूटी, पौधा' के वाचक 'ओषधि' शब्द द्वारा ही लक्षित किया जाने लगा। बाद में किसी भी प्रकार की दवाई के लिये 'ओषधि' शब्द प्रचलित हो गया। आजकल हिन्दी में 'ओषधि' शब्द का प्रयोग यूनानी, अंग्रेज़ी आदि सभी प्रकार की दवाइयों के लिये किया जाता है, चाहे वे किसी भी प्रकार के पदार्थों से निर्मित हों। 'ओषधि' शब्द के आधुनिक अर्थ में 'जड़ी-बूटी' का भाव सर्वथा लुप्त हो गया है।

'ओषधि' के समान ही **औषध** शब्द का भी संस्कृत में मौलिक अर्थ 'जड़ी-बूटियों से युक्त' अथवा 'जड़ी-बूटियाँ' हैं। इस शब्द का भी 'दवाई' अर्थ उपर्युक्त कारण से ही विकसित हुआ है। हिन्दी में 'दवाई' अर्थ में 'औषध' शब्द यद्यपि अधिक प्रचलित नहीं है, तथापि 'औषधालय' आदि शब्दों में 'औषध' शब्द इसी अर्थ में विद्यमान है। मराठी, असमिया, उड़िया भाषाओं में 'औषध' शब्द, बंगला में 'ओषुध', कश्मीरी में 'अशुद्' और तेलुगु भाषा में 'औषधमु' शब्द 'दवाई' अर्थ में पाये जाते हैं।[4]

बक ने कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'जड़ी-बूटी अथवा

---

१. यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्। शाकु० ४.२.

२. रघु० २.७३.

३. कुमार० ७.१.

४. व्यवहारकोश।

'पौधा' के वाचक शब्दों के 'दवाई' अर्थ के विकास का उल्लेख किया है। 'दवाई' (medicine, drug) के लिये प्रचलित ब्रेटन भाषा के louzou शब्द का मूल अर्थ 'पौधे, जड़ी-बूटियाँ' था; लेटिश भाषा के zāles शब्द का मूल अर्थ 'आरोग्यप्रद जड़ी-बूटियाँ' था (zāle='जड़ी-बूटी, घास')।[1] 'जड़ी-बूटी' के वाचक ये शब्द 'आरोग्यकर जड़ी-बूटी' के माध्यम से 'दवाई' के लिये प्रचलित हो गये हैं।

पत्र

हिन्दी में 'पत्र' पुं० शब्द 'चिट्ठी', 'लिखा हुआ कागज़', 'समाचार-पत्र' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'पत्र' शब्द का 'चिट्ठी' अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु 'लिखा हुआ कागज़', 'समाचार-पत्र' आदि अर्थ आधुनिक काल में ही विकसित हुये हैं। वस्तुतः संस्कृत में 'पत्र' शब्द का मौलिक अर्थ 'पर, पंख' है।[2] वाजसनेयिसंहिता और शतपथब्राह्मण आदि ग्रन्थों में 'पत्र' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में पाया जाता है। पक्षी के 'पर, पंख' के सादृश्य पर संस्कृत में 'पत्र' शब्द के (वृक्ष आदि का) 'पत्ता'[3], (पुष्प आदि की) 'पंखुड़ी'[4] आदि अर्थों का भी विकास पाया जाता है। प्राचीन भारत में लिखने का कार्य अधिकतर (भूर्ज आदि) वृक्षों के पत्तों पर किया जाता था (यद्यपि बाद में सुवर्ण अथवा तांबे आदि अन्य धातुओं के पत्तरों पर भी

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (४.८८; medicine, drug), पृष्ठ ३१०.

२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

'पत्र' शब्द का 'पर, पंख' अर्थ में प्रयोग वैदिक साहित्य में तो पाया ही जाता है, बहुधा लौकिक संस्कृत साहित्य में भी इस अर्थ में प्रयोग पाया जाता है, जैसे—'प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे' (रघु० २.३१)। यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत के 'पत्र' शब्द के कुछ सजातीय शब्द अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'पर' अर्थ में ही पाये जाते हैं, जैसे—ग्रीक pterov; लैटिन penna (> इटैलियन penna, रूमानियन pană); प्राचीन हाई जर्मन federa आदि।

३. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। भग० ९.२६.

४. नीलोत्पलपत्रधारया। शाकु० १.१८.

महत्त्वपूर्ण बातें लिखी जाने लगी थीं)। किसी मित्र आदि को चिट्ठी भी 'पत्तों' पर ही लिखी जाती थी। इस कारण 'पत्ते' के वाचक 'पत्र' शब्द के साथ 'चिट्ठी' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'पत्र' शब्द 'चिट्ठी' को भी लक्षित करने लगा। इस प्रकार संस्कृत में 'पत्र' शब्द के 'चिट्ठी'[1], 'कोई लिखा हुआ पत्ता', 'दस्तावेज़'[2] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। कागज़ का आविष्कार होने पर जब लिखने का कार्य कागज़ पर किया जाने लगा तो पत्तों के सादृश्य से कागज़ के पन्नों को भी 'पत्र' कहा जाने लगा। आजकल कागज़ के पन्नों पर छपे हुये 'अखबारों' आदि को भी 'पत्र' कहा जाता है।

'चिट्ठी' अर्थ में 'पत्र' शब्द मराठी और कन्नड़ भाषाओं में भी पाया जाता है।[3]

यह उल्लेखनीय है कि 'पत्र' शब्द के समान ही 'पत्ते' के वाचक शब्दों से 'चिठ्ठी' अर्थ का विकास कुछ अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है कि 'चिट्ठी' (letter) के लिये 'पत्ती' के वाचक शब्द भी पाये जाते हैं।[4] लिथुआनियन भाषा में 'चिट्ठी' (letter) के लिये आजकल laiškas शब्द प्रचलित है, जिसका मौलिक अर्थ (किसी पौधे की) 'पत्ती अथवा पत्ता' (leaf) है। सर्बोक्रोशियन, बोहेमियन और पोलिश भाषाओं में 'चिट्ठी' (letter) के लिये list शब्द प्रचलित है, जिसका मौलिक अर्थ है 'पत्ती अथवा पत्ता' (leaf), जबकि चर्चस्लैविक भाषा में listŭ और रशन भाषा में list शब्द 'पत्ती अथवा पत्ता' (leaf) अर्थ में ही प्रचलित हैं।[5]

(आ) वस्तुवाची से कार्य या भाव-वाची

किसी वस्तु का वाचक शब्द बहुधा भाव-साहचर्य से उस वस्तु द्वारा किये जाने वाले कार्य अथवा उससे प्राप्त किसी ज्ञान को लक्षित करने लगता है।

---

१. ललितार्थबन्धं पत्रे निवेशितुम्। विक्रम० २.१३.

२. विवादेऽन्विष्यते पत्रं तदभावेऽपि साक्षिणः। पञ्च० १.४०३.

३. व्यवहारकोश।

४. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१८५४), पृष्ठ १२८६.

५. वही, पृष्ठ १२८७.

दण्ड

हिन्दी में 'दण्ड' पुं० शब्द 'डण्डा', 'सज़ा' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'दण्ड' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि 'दण्ड' शब्द का 'सज़ा' अर्थ इसके 'डण्डा' अर्थ से ही विकसित हुआ है। प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में 'दण्ड' शब्द 'डण्डा' अर्थ में मिलता है। मूलतः यह शब्द लकड़ी के डण्डे का वाचक था और इसका प्रयोग प्रायः पशुओं[1] को हाँकने के लिये अथवा शस्त्र[2] के रूप में होता था। भाव-सादृश्य से चमचे आदि किसी वस्तु की मूठ[3] के लिये भी 'दण्ड' शब्द का प्रयोग मिलता है।

प्राचीन काल में 'डण्डा' शारीरिक सज़ा देने का एक प्रमुख साधन था। प्राचीन भारतीय राजाओं द्वारा लौकिक शक्ति के प्रतीक के रूप में भी 'दण्ड' धारण किया जाता था। सज़ा देने की सर्वोच्च सत्ता राजाओं के हाथ में ही केन्द्रित रहती थी। अतः 'डण्डे' के 'सज़ा' के प्रतीक के रूप में होने के कारण 'सज़ा' के लिये 'डण्डे' का वाचक 'दण्ड' शब्द व्यवहृत होने लगा और 'दण्ड देने' के लिये √ दण्ड् धातु का प्रचलन आरम्भ हुआ। अधिकतर संस्कृत वैयाकरणों द्वारा 'दण्ड' शब्द की व्युत्पत्ति √दण्ड् 'सज़ा देना' धातु से अच् (अथवा घञ्) प्रत्यय लगकर मानी गई है (दण्डयति अनेनेति), किन्तु यह व्युत्पत्ति सर्वथा काल्पनिक है, क्योंकि इसका आधार √दण्ड् 'सज़ा देना' धातु है, जोकि 'दण्ड' शब्द की अपेक्षा बहुत बाद में विकसित हुई है। इसके अतिरिक्त 'दण्ड' शब्द का 'सज़ा' अर्थ भी बाद में विकसित हुआ है। यास्क ने 'दण्ड' शब्द की व्युत्पत्ति √दद् अथवा √दम् धातु से मानी है। मोनियर विलियम्स ने इसको दारु शब्द और √दॄ धातु से सम्बद्ध माना है। सिद्धेश्वर वर्मा[4] ने इसके समानान्तर भारत-यूरोपीय del+ndo 'पृथक् करना', लैटिन dolo 'मैं काटता हूँ' का उल्लेख किया है। इस स्रोत से 'दण्ड' शब्द की उत्पत्ति मानने पर इसमें लकड़ी को काटकर डण्डा बनाने के भाव का सङ्केत माना जाता है।

---

१. ऋग्वेद ७. ३३. ६.

२. अथर्ववेद ५. ५. ४; इसी प्रकार—घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम्—'बिच्छू को घन से मार दूंगा और साँप आये तो डण्डे से मार दूँगा' (अथर्व० १०. ४. ९२); ऐतरेयब्राह्मण २. ३५ आदि।

३. ऐतरेयब्राह्मण ७. ५; शतपथब्राह्मण ७. ४. १. ३६ आदि।

४. एटिमोलोजीज़ ऑफ़ यास्क, पृष्ठ २०.

'डण्डे' के वाचक शब्द से 'सज़ा' अर्थ का विकास बोहेमियन भाषा में भी पाया जाता है। बोहेमियन में trest शब्द का 'सज़ा' (punishment) अर्थ इसके 'डण्डा' अर्थ से ही विकसित हुआ है। सी० डी० बक[1] ने उल्लेख किया है कि 'डण्डे' का वाचक शब्द प्रतीक के रूप में 'सज़ा' के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है, माता-पिता द्वारा दी जाने वाली सज़ा के लिये ही नहीं, अपितु सब प्रकार की कानूनी सज़ा के लिये भी।

शकुन

हिन्दी में 'शकुन' पुं० शब्द का अर्थ है—'विशिष्ट पशु, पक्षी, व्यक्ति, वस्तु, व्यापार के देखने, सुनने, होने आदि से मिलने वाली शुभ, अशुभ की पूर्व-सूचना, सगुन'। 'शकुन' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे —

अपयाति सरोषया निरस्ते कृतकं कामिनि चुक्षुवे मृगाक्ष्या।
कलयन्नपि सव्यथोऽवतस्थेऽशकुनेन स्खलितः किलेतरोऽपि॥

"क्रुद्धा मृगनयनी के द्वारा तिरस्कृत कामी (पति) के वापिस लौटते हुये होने पर (मृगनयनी ने) बनावटी छींक दिया और इसे जानता हुआ भी वह 'अशकुन से मैं रोका गया' यह प्रकट करता हुआ सा मानो दुःखित होकर रुक गया" (शिशु० ९.८३)।

संस्कृत में इस अर्थ में 'शकुन' शब्द का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में पाया जाता है। मूलतः यह पुंल्लिङ्ग शब्द था और इसका अर्थ था 'पक्षी'। वैदिक साहित्य में 'शकुन' पुं० शब्द का प्रयोग केवल 'पक्षी' अर्थ में ही पाया जाता है, जैसे—

सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता।

"जिस प्रकार 'पक्षी' उड़कर वृक्षों पर बैठ जाता है, उसी प्रकार शोधित सोम कलशों में बैठते हैं" (ऋग्वेद ९. ९६. २३)।

'शकुन' शब्द का 'सगुन' अर्थ वैदिक साहित्य में नहीं पाया जाता। इसका विकास बहुत बाद में लौकिक संस्कृत साहित्य में हुआ और इस अर्थ में 'शकुन' शब्द का नपुंसकलिङ्ग में प्रयोग प्रारम्भ हुआ। यद्यपि वैदिक साहित्य में 'शकुन' पुं० शब्द का प्रयोग अधिकतर कबूतर, उल्लू, चातक आदि उन्हीं पक्षियों के

---

१. ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (२१.३७; penulty, punishment), पृष्ठ १४४७-४९.

लिये पाया जाता है, जिनको शुभाशुभ का सूचक माना जाता था, तथापि 'सगुन' अर्थ में 'शकुन' शब्द का प्रयोग सारे वैदिक साहित्य में कहीं नहीं पाया जाता।

'शकुन' शब्द के 'पक्षी' अर्थ से 'सगुन' अर्थ के विकास का कारण है प्राचीन काल में कुछ विशिष्ट पक्षियों के उड़ने अथवा बोलने को शुभ अथवा अशुभ का सूचक माना जाना। पक्षियों को शुभ अथवा अशुभ का सूचक (अतएव शुभ अथवा अशुभ) माना जाने के कारण 'पक्षी' के वाचक 'शकुन' पुं० शब्द के साथ शुभ अथवा अशुभ की पूर्वसूचना के भाव का साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'शुभाशुभ की पूर्वसूचना, सगुन' के लिये 'शकुन' नपुं० शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। यह स्पष्ट है कि पहिले 'शकुन' नपुं० शब्द का प्रयोग केवल कुछ विशिष्ट पक्षियों द्वारा सूचित सगुनों के लिये ही किया गया होगा। बाद में इसके अर्थ में विस्तार हो गया और इसका प्रयोग सभी प्रकार की, विशिष्ट पशु, पक्षी, व्यक्ति, वस्तु, व्यापार के देखने, सुनने, होने आदि से मिलने वाली शुभ अथवा अशुभ की पूर्वसूचनाओं के लिये किया जाने लगा, जैसे—आँख, भुजा आदि के फड़कने, छींकने, बिल्ली, गीदड़ आदि के द्वारा रास्ता काटे जाने से सूचित सगुनों को भी 'शकुन' कहा जाने लगा।

हिन्दी में 'शकुन' शब्द को 'सगुन' अर्थ में ही ग्रहण किया गया, इसका 'पक्षी' अर्थ सर्वथा लुप्त हो गया है। हिन्दी में प्रचलित 'सगुन' और 'सोण' शब्द 'शकुन' से ही विकसित हुये तद्भव शब्द हैं।[1] संस्कृत साहित्य में निष्पत्ति की दृष्टि से 'शकुन' शब्द से सम्बद्ध शकुनि, शकुन्त, शकुन्ति, शकुन्तक, शकुन्तिका आदि शब्द भी 'पक्षी' अर्थ में पाये जाते हैं। इनमें से 'शकुनि' और 'शकुन्ति' शब्दों का भी शुभाशुभ के सूचक पक्षियों के लिये प्रयोग पाया जाता है। इन शब्दों के सगुन-सूचक पक्षियों के लिये प्रयुक्त होने पर भी इनका 'सगुन' अर्थ विकसित नहीं हुआ। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि सगुन-सूचक पक्षियों के लिये सबसे अधिक 'शकुन' शब्द का ही प्रयोग होता रहा और उसी का 'सगुन' अर्थ पहिले विकसित हो जाने से वह ही 'सगुन' अर्थ में प्रयुक्त किया जाता रहा।

---

१. 'सगुन' अर्थ में 'शकुन' शब्द तत्सम एवं तद्भव रूपों में कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में भी पाया जाता है, जैसे—मराठी, गुजराती, कन्नड़—'शकुन'; पंजाबी—'शगन'; उर्दू—'शगून'; कश्मीरी—'शगून्'; सिन्धी—'सुगुणु'; तेलुगु—'शकुनमु'; मलयालम—'शकुनम्'। व्यवहारकोश।

कुछ विशिष्ट पक्षियों की उड़ान अथवा बोली के आधार पर शुभाशुभ की जानकारी प्राप्त करने की प्रवृत्ति संसार के बहुत से प्राचीन समाजों में पाई जाती है। इनमें से कुछ समाजों की भाषाओं के शब्दों में इस बात के अनेक प्रमाण अब भी विद्यमान हैं। त्सिमर ने अपने ग्रन्थ 'ऑल्टिडिशे लीबेन' (पृष्ठ ४३०) में संस्कृत के 'शकुन' शब्द की ग्रीक भाषा के kuknos शब्द से तुलना की है (kuknos भी एक शकुनसूचक पक्षी होता है)।

जिस प्रकार संस्कृत में 'पक्षी' के वाचक 'शकुन' शब्द से 'सगुन' अर्थ का विकास हुआ है, इसी प्रकार संसार की कुछ अन्य भाषाओं में भी 'पक्षी' के वाचक शब्दों से 'सगुन' अर्थ का विकास पाया जाता है। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुए पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है—"सगुन-वाचक कुछ शब्द पक्षी के वाचक शब्दों पर आधारित हैं, अतः पहिले उनका प्रयोग केवल पक्षियों के उड़ने से ज्ञात सगुनों के लिये किया गया होगा।"[1]

ग्रीक भाषा में οιωνόσ शब्द का अर्थ पहिले 'शिकारी पक्षी, सगुन-सूचक पक्षी' था, किन्तु बाद में इसका 'सगुन' अर्थ भी विकसित हो गया। इसी प्रकार ग्रीक भाषा में ορνισ शब्द का अर्थ 'पक्षी' भी है और 'सगुन' भी है।[2]

लैटिन भाषा के auspicium (जिससे कि इटैलियन और स्पैनिश auspicio और फ्रेंच auspice शब्द निकले हैं) का अर्थ है 'पक्षियों द्वारा शुभाशुभ की सूचना' (divination from birds)। इसका प्रयोग बहुधा 'सगुन' अर्थ में भी पाया जाता है। Auspicium शब्द avis 'पक्षी' और specere 'देखना' से बना है।[3]

---

१. ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (२२.४७; omen), पृष्ठ १५०३—

"A few of the words for omen are based upon words for 'bird', and so must have first applied specifically to omens taken from the flight of birds."

२. वही, पृष्ठ १५०३.

३. वही, पृष्ठ १५०४. यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत और अवेस्तन भाषाओं में लैटिन के avis शब्द का सजातीय 'वि' शब्द 'पक्षी' अर्थ में मिलता है, जैसे—संस्कृत 'विव':='पक्षी से जाने वाला, गरुड़ारूढ़' (शिशु० १९.८६)।

अंग्रेज़ी भाषा के auspice और auspicious आदि शब्द लैटिन भाषा के auspicium शब्द से ही निकले हैं। Auspice शब्द का मौलिक अर्थ है 'पक्षियों को देखने से ज्ञात शकुन' और auspex शब्द का अर्थ है 'पक्षियों का पर्यवेक्षण करने वाला'। अंग्रेज़ी के under the auspices of (के तत्त्वावधान में) मुहावरे में auspice शब्द ही बहुवचन में है। इसी प्रकार auspicious शब्द जोकि आजकल 'शुभ' अर्थ में प्रचलित है, auspice से ही बना विशेषण शब्द है। Auspicious शब्द का मौलिक अर्थ है 'सफलता के अच्छे शकुनों अथवा लक्षणों वाला' (having good auspices or omens of success)।

अंग्रेज़ी के augur (क्रिया—'शकुन विचारना'; संज्ञा—'शकुन बतलाने वाला') शब्द में भी सम्भवतः पक्षी का वाचक शब्द विद्यमान है। कुछ विद्वान् इसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के avi (पक्षी)+gur (garrire=पक्षियों का चहकना) से मानते हैं। अंग्रेज़ी के augury शब्द का मूल अर्थ 'पक्षियों से प्राप्त शकुनज्ञान' है।

यहूदियों की भाषा में पशु-पक्षियों को देखकर शकुन बतलाने की विद्या के लिये ṭayyar शब्द पाया जाता है, जोकि अरबी भाषा के ṭair 'पक्षी' शब्द से बना है। पशु-पक्षियों को देखकर शकुन बतलाने की विद्या यहूदियों ने अरबों से ग्रहण की थी। इसी कारण उनकी भाषा में इसके लिये अरबी के ṭair से बना शब्द मिलता है।

कुछ विशिष्ट पक्षियों को शुभ अथवा अशुभ मानने की प्रवृत्ति भारतीय साहित्य में प्रारम्भ से ही पाई जाती है। सर्वप्रथम हमें इस प्रवृत्ति के दर्शन ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १६५ वें सूक्त में घर पर कबूतर (कपोत) के बैठ जाने से सूचित अमङ्गल की निवृत्ति के लिये अग्नि की स्तुति की गई है। इस सूक्त में कबूतर[१] (कपोत) को मृत्युदेवता निर्ऋति का दूत और पक्षयुक्त शस्त्र (पक्षिणी हेतिः) कहा गया है। इसी प्रकार अथर्ववेद के छठे काण्ड के २७वें, २८वें, और २९वें सूक्त में कपोत-प्रवेशजनित दोष की शान्ति के लिये अग्नि की स्तुति की गई है। ऋग्वेद

१. यह उल्लेखनीय है कि जबकि प्राचीन भारतीय साहित्य में कबूतर को अत्यधिक अशुभ माना गया है, ईसाइयों में इसे शान्ति और प्रेम का दूत माना जाता है। बहुत से उत्सवों के अवसर पर ईसाइयों द्वारा कबूतर उड़ाये जाते हैं।

१०.१६५.४ तथा अथर्ववेद ६.२९. १-२ में उल्लू को भी निर्ऋति का दूत कहा गया है। इसी प्रकार ऐतरेयब्राह्मण २.१५ में कौओं और शकुनों को मृत्युदेवता निर्ऋति का मुख कहा गया है। ऋग्वेद में चातक पक्षी को शुभ माना गया है। ऋग्वेद २.४२ और २.४३ में चातक (कपिञ्जल) के रूप में इन्द्र की स्तुति की गई है। इन दोनों सूक्तों में चातक को 'शकुन' और 'शकुन्त' कहा गया है और उसके लिये 'भ्रदवादा' (कल्याणकारी वचन बोलने वाला) और 'सुमङ्गल' आदि विरुदों का प्रयोग किया गया है।

वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा अन्य काव्य-ग्रन्थों में भी पक्षियों को देखकर शुभाशुभ की जानकारी प्राप्त करने के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। वाल्मीकीय रामायण में यह उल्लेख आया है कि जब सीता का अपहरण करके ले जाते हुये रावण ने सीता को छुड़ाने की इच्छा से युद्ध करने वाले जटायु के पंख, पैर आदि काट दिये तो आहत जटायु को देखकर विलाप करती हुई सीता जी कहती हैं—"लक्षण, स्वप्न और पक्षियों की बोली तथा उनका दिखाई देना ये मनुष्य के सुख, दुःख में अवश्य ही निमित्त दिखाई पड़ते हैं। हे राम, क्या निश्चय ही आप अपने ऊपर आये हुये महान् सङ्कट को नहीं जानते हैं। निश्चय ही ये पशु-पक्षी मेरे लिये राम के पास दौड़ रहे हैं"।[1] इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण में एक स्थल पर कहा गया है—"काल से प्रेरित ये पीले और लाल पैरों वाले पक्षी तथा कबूतर राक्षसों के विनाश के लिये विचरण कर रहे हैं।"[2]

संस्कृत साहित्य में शुभाशुभ की जानकारी प्राप्त करने के यद्यपि कुछ अन्य साधन भी पाये जाते हैं, जैसे—पशुओं की गतिविधियाँ, प्रकृति में होने वाली कुछ अद्भुत घटनायें, शारीरिक लक्षण तथा स्वप्न आदि, तथापि पक्षियों की गतिविधियों से शकुन प्राप्त करने की प्रवृत्ति अन्य साधनों की अपेक्षा प्राचीन दिखाई पड़ती है।

---

१. निमित्तं लक्षणं स्वप्नं शकुनिस्वरदर्शनम् ।
अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां प्रतिदृश्यते ।। ३.५२.२.
न नूनं राम जानासि महद्व्यसनमात्मनः ।
धावन्ति नूनं काकुत्स्थ मदर्थं मृगपक्षिणः ।। ३.५२.३.

२. पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहङ्गाः कालचोदिताः ।
राक्षसानां विनाशाय कपोता विचरन्ति च ।। ६.५५.३२.

षड्यन्त्र

हिन्दी में 'षड्यन्त्र' पुं० शब्द 'किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से की जाने वाली कार्रवाई, साजिश' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'षड्यन्त्र' शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता। यह शब्द संस्कृत के 'षट्' और 'यन्त्र' शब्दों से मिलकर बना है। संस्कृत में 'षट्' का अर्थ है 'छ:' और 'यन्त्र' तान्त्रिकों के अनुसार कुछ विशिष्ट प्रकार के बने हुये आकार या कोष्ठक आदि होते हैं, जिनमें कुछ अङ्क या अक्षर लिखे रहते हैं और जिनके अनेक प्रकार के फल माने जाते हैं। तान्त्रिक लोग इनमें देवताओं का अधिष्ठान मानते हैं। इस प्रकार 'षड्यन्त्र' शब्द का अर्थ हो सकता है 'छ: यन्त्र'। 'किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से की जाने वाली कार्रवाई, साजिश' अर्थ में 'षड्यन्त्र' शब्द किस प्रकार प्रचलित हुआ, इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु संस्कृत के 'षट्कर्म' शब्द पर विचार करने से 'षड्यन्त्र' शब्द की रचना पर कुछ प्रकाश पड़ता है। तान्त्रिकों के षट्कर्म (छ: कर्म) शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन और मारण होते हैं।[1] इन कर्मों को करने की विधियों का तान्त्रिक ग्रन्थों में विस्तृत वर्णन पाया जाता है। शत्रुओं को नाना प्रकार की हानियाँ अथवा आघात पहुँचाने के लिये अथवा शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन और मारण आदि छ: कर्म करने के लिये तान्त्रिकों द्वारा यन्त्रों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता था। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि शत्रुओं को

---

१. शारदा-तन्त्र में तान्त्रिकों के ६ प्रकार के कर्मों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

> अथाभिधास्ये तन्त्रेऽस्मिन् सम्यक् षट्कर्मलक्षणम्।
> सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगः फलसिद्धिदः॥
> शान्तिवश्यस्तम्भानि विद्वेषोच्चाटने ततः।
> मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः॥
> रोगकृत्या ग्रहादीनां निराशः शान्तिरीरिता।
> वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्वमुदीरितम्॥
> प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं तदुदाहृतम्।
> स्निग्धानां क्लेशजननं मिथोविद्वेषणं मतम्॥
> उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परिकीर्तितम्।
> प्राणिनां प्राणहरणं मारणं तदुदाहृतम्॥
>
> शब्दकल्पद्रुम से उद्धृत।

हानि पहुँचाने के कर्मों (अर्थात् षट्कर्म) के यन्त्रों के प्रयोग द्वारा सिद्ध किये जाने के कारण भाव-साहचर्य से ऐसे कर्मों को 'षड्यन्त्र' कहा जाने लगा होगा। पहिले शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन, मारण आदि कर्मों के करने के आयोजन को ही 'षड्यन्त्र' कहा गया होगा, बाद में इसके अर्थ में विस्तार हो गया और किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से की जाने वाली किसी भी प्रकार की कार्रवाई अथवा साजिश को 'षड्यन्त्र' कहा जाने लगा होगा।

यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी शब्द सागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश आदि हिन्दी के कोशों में 'षट्चक्र' शब्द भी 'किसी के विरुद्ध आयोजन, षड्यन्त्र' अर्थ में पाया जाता है। इसका मौलिक अर्थ है 'हठयोग में माने हुये कुण्डलिनी के ऊपर पड़ने वाले छः चक्र' (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाख्य)। तमिल लेक्सीकन में 'षट्चक्रम्' (षट्चक्र) का अर्थ दिया है—'एक दूसरे के ऊपर उलटे हुये दो समभुज त्रिभुजों से बनी हुई एक रहस्यपूर्ण छः कोनों वाली आकृति' (a mystical six-cornered diagram formed by two equilateral triangles, on being inverted over the other)। ऐसा प्रतीत होता है कि छः कोनों वाली आकृति (षट्चक्र) का प्रयोग यन्त्र के रूप में किसी को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता होगा। बाद में उससे भाव-साहचर्य से 'किसी के विरुद्ध आयोजन, षड्यन्त्र' अर्थ विकसित हो गया।

बंगला भाषा में भी 'षड्यन्त्र' शब्द का प्रयोग 'किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से की जाने वाली कार्रवाई, साजिश, कपटपूर्ण आयोजन' अर्थ में पाया जाता है।[१] कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में इस शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता। मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश में भी यह शब्द नहीं दिया हुआ है। अतः यह सम्भव है कि 'षड्यन्त्र' शब्द का 'किसी के विरुद्ध गुप्त रूप से की जाने वाली कार्रवाई, साजिश' अर्थ सर्वप्रथम बंगला भाषा में ही विकसित हुआ हो और बाद में बंगला के अनुकरण से हिन्दी में प्रचलित हो गया हो।

सीर

हिन्दी में 'सीर' स्त्री० शब्द 'अपने हल, बैलों द्वारा स्वयं की जाने वाली खेती' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—'अमुक व्यक्ति के यहाँ चार हलों की सीर

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

होती है') । स्वयं जोती-बोयी जाने वाली ज़मीन को भी सीर की ज़मीन कहा जाता है (जैसे—'अमुक व्यक्ति के यहाँ सारी ज़मीन सीर की है') । 'सीर' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता ।

संस्कृत में 'सीर' पुं० शब्द का प्रयोग अधिकतर 'हल'[1] अर्थ में पाया जाता है, जैसे—सद्यःसीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालम्—'हाल ही में हल चलाने से सुगन्धित माल नामक पठार पर चढ़कर' (मेघ० १६) । बलराम का आयुध हल होने के कारण उसके लिये सीरायुध, सीरपाणि, सीरभृत् आदि शब्दों का प्रयोग पाया जाता है ।

'सीर' शब्द का हिन्दी में प्रचलित 'अपने हल, बैलों द्वारा स्वयं की जाने वाली खेती' अर्थ सम्भवतः इस शब्द के 'हल' अर्थ से ही विकसित हुआ है । खेती के 'हल' द्वारा किये जाने के कारण ही 'हल' के वाचक 'सीर' शब्द के साथ खेती के स्वयं किये जाने के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'सीर' शब्द 'अपने हल, बैलों द्वारा स्वयं की जाने वाली खेती' को लक्षित करने लगा ।

नेपाली तथा कुरुख भाषा में भी 'सिर्' (सीर) शब्द का अर्थ 'स्वामी द्वारा स्वयं जोती-बोयी जाने वाली ज़मीन' है । नेपाली में 'सिर्' शब्द का 'किसी ज़मींदार को लगान इकट्ठा करने के बदले में उपहार के रूप में राज्य द्वारा दी गयी भूमि' अर्थ भी है[2] । बंगला[3] भाषा में 'सीर' शब्द का अर्थ 'हल' ही है । तेलुगु भाषा में 'सेरि' (सीर) शब्द का अर्थ है 'घर की काश्त' । गैलेट्टी ने अपने तेलुगु भाषा के कोश में लिखा है कि पहिले इस शब्द का अर्थ 'करमुक्त भूमि' (rent-free land) था, किन्तु आजकल यह शब्द 'ज़मींदार द्वारा अपने लिये सुरक्षित भूमि' के लिये प्रयुक्त किया जाता है ।

(इ) क्रिया या भाव-वाची से कार्य या विचार-वाची

किसी क्रिया या भाव को लक्षित करने वाला शब्द बहुधा भाव-साहचर्य

---

१. ऋग्वेद में भी 'सीर' शब्द का प्रयोग 'हल' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् (१०. १०१.३) ।

२. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज ।

३. आशुतोष देव : बंगला-इङ्गलिश डिक्शनरी ।

से उस क्रिया या भाव-पूर्वक किये गये किसी कार्य या विचार को अथवा उस भाव-पूर्वक दी गई वस्तु को लक्षित करने लगता है।

आलोचना

हिन्दी में 'आलोचना' स्त्री० शब्द अधिकतर 'टीका-टिप्पणी' अर्थ में प्रचलित है। किसी पुस्तक, लेख आदि साहित्यिक रचना के गुण-दोषों के विवेचन को भी 'आलोचना' या 'समालोचना' कहा जाता है।

संस्कृत में 'आलोचना' शब्द के 'टीका-टिप्पणी' और 'किसी साहित्यिक रचना के गुण-दोषों का विवेचन' अर्थ नहीं पाये जाते। इन अर्थों का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है

संस्कृत में 'आलोचन' नपुं० और 'आलोचना' स्त्री० शब्दों का अर्थ है—देखना, सोचना, विचार करना आदि[1]। √आलोच् का प्रयोग भी 'सोचना अथवा विचार करना' अर्थ में पाया जाता है।[2]

'आलोचना' शब्द के 'सोचना, विचार करना' अर्थ से ही 'समालोचना' (किसी साहित्यिक रचना के गुण-दोषों का विवेचन) अर्थ का विकास हुआ है। किसी पुस्तक अथवा लेख आदि की समालोचना में उसके गुण-दोषों पर विचार किया जाता है। अतः 'विचार' के भाव का प्राधान्य होने के कारण 'समालोचना' को 'विचार' के वाचक 'आलोचना' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। यह भी सम्भव है कि पहिले 'आलोचना' शब्द 'विचार' अर्थ में 'गुण-दोषों' अथवा इनके वाचक किसी अन्य शब्द के साथ प्रयुक्त किया जाता हो, किन्तु बाद में गुण-दोषों का भाव भी 'विचार' के वाचक 'आलोचना' शब्द में संक्रान्त हो गया हो और इस प्रकार 'आलोचना' शब्द का 'गुण-दोषों का विचार अथवा विवेचन' अर्थ समझा जाने लगा हो। यह स्पष्ट है कि पहिले किसी साहित्यिक रचना के ही गुण-दोषों के विचार अथवा विवेचन को 'आलोचना' कहा गया होगा, किन्तु बाद में 'साहित्यिक रचना के गुण-दोषों के विवेचन' के भाव-सादृश्य से किसी भी बात अथवा व्यक्ति के गुण- दोषों के कथन (विशेषकर दोष निकालने) को 'आलोचना' कहा जाने लगा (जैसे—किसी व्यक्ति के वक्तव्य की 'आलोचना' अथवा किसी व्यक्ति की 'आलोचना' आदि)।

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

२. आलोचयन्तो विस्तारमम्भसां दक्षिणोदधेः। भट्टि० ७.४०.

यह उल्लेखनीय है कि तमिल भाषा में 'आलोचनै' (= आलोचन) शब्द के 'विचार करना' अर्थ से 'सलाह' अर्थ का विकास पाया जाता है। तमिल में 'आलोचनै' शब्द के इस अर्थ का विकास 'परामर्श' शब्द के 'सोचना, विचार करना' अर्थ से 'सलाह' अर्थ के विकास के समान ही हुआ है।[1]

परामर्श

हिन्दी में 'परामर्श' पुं० शब्द 'सलाह, मन्त्रणा' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'परामर्श' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। इस अर्थ का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

'परामर्श' शब्द परा-पूर्वक √मृश धातु से भावे 'घञ्' प्रत्यय लगकर बना है। 'परामर्श' शब्द का मौलिक अर्थ है—खींचना[2], स्पर्श, रगड़ आदि। 'परामर्श' शब्द के इन्हीं अर्थों से बाद में विचार, किसी विषय का विवेचन, निर्णय,[3] अनुमान, स्मरण, बाधा[4] आदि अर्थों का विकास हुआ। किसी भौतिक वस्तु को खींचने अथवा रगड़ने के भाव-सादृश्य से संस्कृत में 'परामर्श' शब्द के किसी विषय में मन में सोचना अथवा विचार करना (जिसमें कि बहुत से विचारों को स्मृति-पटल पर खींचा जाता है), निर्णय, अनुमान, स्मरण आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

संस्कृत में परा-पूर्वक √मृश् धातु का प्रयोग भी स्पर्श करना[5], हाथ लगाना[6], सोचना अथवा विचार करना[7], स्मरण करना[8] आदि अर्थों में पाया जाता है।

'परामर्श' शब्द का 'सलाह, मन्त्रणा' अर्थ इस शब्द के 'सोचना, विचार करना, मनन' अर्थ से विकसित हुआ है। किसी व्यक्ति से किसी विषय में

---

१. देखिये 'परामर्श'।

२. केशपरामर्शः। आप्टे के कोश से उद्धृत।

३. व्याप्तस्य पक्षधर्मत्वधीः परामर्श उच्यते। भाषापरिच्छेद ६६.

४. तपःपरामर्शविवृद्धमन्योः। कुमार० ३.७१.

५. परामृशन् हर्षजड़ेन पाणिना। रघु० ३.६८.

६. केशवृन्दे परामृष्टा चाणक्येन द्रौपदी। मृच्छ० १.३९.

७. किं भवितेति सशङ्कं पङ्कजनयना परामृशति। भामिनी० २.५३.

८. ग्रन्थारम्भे विघ्नविघाताय समुचितेष्टदेवतां ग्रन्थकृत्परामृशति। काव्य० उल्लास १.

सलाह लेने में उस व्यक्ति के साथ मिलकर सोचना अथवा विचार करना पड़ता है। अतः 'सोचना, विचार करना' के वाचक 'परामर्श' शब्द के साथ सलाह करने के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में यह शब्द 'सलाह अथवा मन्त्रणा' के भाव को ही लक्षित करने लगा। यह उल्लेखनीय है कि तमिल भाषा में 'आलोचनै' (=संस्कृत 'आलोचन') शब्द का 'सलाह' (counsel, advice)[१] अर्थ भी इस शब्द के 'सोचना, विचार करना' अर्थ से इसी प्रकार विकसित हुआ है। संस्कृत में 'आलोचन' शब्द का अर्थ 'सोचना अथवा विचार करना' ही है।

'परामर्श' शब्द का 'सलाह, मन्त्रणा' अर्थ नेपाली[२] तथा बंगला[३] भाषा में भी पाया जाता है। कन्नड़ भाषा में 'परामर्श' शब्द के 'कृपापूर्वक निर्धन, रोगी आदि की आवश्यकताओं के विषय में पूछताछ करना और उन्हें दूर करना', 'मित्रों के स्वास्थ्य तथा कुशलक्षेम के विषय में पूछताछ' अर्थ भी पाये जाते हैं।[४] तेलुगु भाषा में 'परामर्श' शब्द के अर्थ 'देखभाल' (care) और 'पूछताछ' (inquiry) हैं।[५] तमिल में 'परामरिचम्' (=परामर्श) शब्द के अर्थ 'विचारणा' (discrimination) और 'निर्णय' (judgment) हैं।[६]

पुरस्कार

हिन्दी में 'पुरस्कार' पुं० शब्द 'इनाम' (किसी अच्छे काम के लिये सम्मानपूर्वक दिया जाने वाला धन अथवा कोई अन्य वस्तु) अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'पुरस्कार' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'पुरस्कार' पुं० शब्द का प्रयोग अधिकतर 'अधिक मान', 'आदर' आदि अर्थों में पाया जाता है।

'पुरस्कार' (पुरस्+कृ+घञ्) पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'आगे

---

१. तमिल लेक्सीकन।

२. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।

३. आशुतोष देव : बंगला- इंगलिश डिक्शनरी।

४. किटेल : कन्नड़-इङ्गलिश डिक्शनरी।

५. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

६. तमिल लेक्सीकन।

करने या लाने की क्रिया'। 'आगे करने अथवा लाने की क्रिया' अर्थ से ही संस्कृत में 'पुरस्कार' शब्द का 'आदर' अर्थ विकसित हुआ है, क्योंकि अधिकतर आदर के भाव के कारण ही किसी को आगे किया जाता है। यह हम अपने दैनिक व्यवहार में देखते हैं कि किसी शुभ कार्य का प्रारम्भ करने के लिये किसी बड़े अथवा आदरणीय व्यक्ति को ही आगे किया जाता है (अथवा पहिले उसके द्वारा प्रारम्भ कराया जाता है)। आदर की भावना से आगे किये जाने के कारण 'आगे करना' के वाचक 'पुरस्कार' शब्द के साथ आदर के भाव का साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'पुरस्कार' शब्द 'आदर' को लक्षित करने लगा, जैसे—तस्य बहुमानपुरस्कारं कृत्वा पुत्रान्समर्पितवान् (हितोपदेश)।

'पुरस्कार' शब्द के 'आदर' अर्थ के 'आगे करना' अर्थ से विकसित होने के कारण संस्कृत में 'पुरस्कार' शब्द का 'अधिकमान' (preference) अर्थ में भी प्रयोग पाया जाता है, जैसे—ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वाद् गणदासः पुरस्कारमर्हति (मालविका० अङ्क २)।

संस्कृत में पुरस्+कृ का प्रयोग भी अधिकतर आगे करना[1], अधिकमान (preference) देना[2], आदर करना[3], ग्रहण करना[4] आदि अर्थों में पाया जाता है।

'पुरस्कार' शब्द का 'इनाम' अर्थ इस शब्द के 'आदर' अर्थ से ही विकसित हुआ है। 'इनाम' के भाव के साथ 'आदर' के भाव का साहचर्य पाया जाता है, क्योंकि किसी व्यक्ति को सम्मानित करने के उद्देश्य से ही इनाम दिया जाता है। इनाम में प्राप्त होने वाले धन अथवा किसी वस्तु का आर्थिक दृष्टि से महत्त्व नहीं होता, प्रत्युत जिस सम्मान को प्रदर्शित करने के लिये वह दिया जाता है उसका महत्त्व होता है। इस प्रकार सम्मानित करने के उद्देश्य से इनाम दिये जाने के कारण 'सम्मान, आदर' का वाचक 'पुरस्कार' शब्द 'आदर अथवा सम्मान-पूर्वक दिये जाने वाले धन अथवा किसी अन्य वस्तु' अर्थात् 'इनाम' को लक्षित करने लगा।

---

१. पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन। रघु० २.२०.

२. त्वया च मूलभृत्यानपास्यायमागन्तुकः पुरस्कृत एतच्चानुचितं कृतम्। हितोपदेश (सुहृद्भेद)।

३. दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि। शाकु० अङ्क १.

४. स पुरस्कृतमध्यमक्रमः। रघु० ८.९.

'पुरस्कार' शब्द का 'इनाम' अर्थ नेपाली, बंगला और उड़िया भाषाओं में भी पाया जाता है। मोल्सवर्थ ने अपने मराठी भाषा के कोश में यह अर्थ नहीं दिया है (आगे करना, प्रबन्ध करना, पूजा करना आदि अर्थ दिये हैं), मेहता के गुजराती भाषा के कोश में 'पुरस्कार' शब्द ही नहीं दिया हुआ है ('पुरस्कृत' शब्द पाया जाता है), कन्नड़ में 'पुरस्कार' और मलयालम[1] भाषा में 'पुरस्कारम्' शब्द का 'आदर' अर्थ ही पाया जाता है (भेंट, इनाम आदि अर्थ नहीं)। तमिल भाषा में 'पुरस्कारम्' शब्द का अर्थ 'पूजा' (adoration, worship) है।[2]

यह उल्लेखनीय है कि 'आदर' के वाचक कतिपय अन्य शब्दों के भी 'इनाम' तथा 'उपहार, भेंट' आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। तमिल में चम्मानम् (=सम्मान) और चन्मानम् (=सन्मान) शब्दों के भेंट, उपहार, पारितोषिक आदि अर्थ भी हैं।[3] 'पुरस्कार' के लिये मलयालम भाषा में 'सम्मानम्' तेलुगु में 'बहुमति' और कन्नड़ भाषा में 'बहुमान' शब्द भी पाये जाते हैं[4], जो 'आदर' के वाचक हैं। संस्कृत में 'सम्भावन' और 'सम्भावना' शब्दों का प्रयोग अधिकतर 'आदर, सम्मान' अर्थ में पाया जाता है, किन्तु कन्नड़ में 'सम्भावना' और तमिल में 'चम्पावनै' (=सम्भावना) शब्दों का 'भेंट' अर्थ भी पाया जाता है।[5] मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश में भी 'सम्भावना' शब्द का 'भेंट' (presents given) अर्थ दिया है। तेलुगु भाषा में 'सम्भावन' शब्द का अर्थ है—'ब्राह्मणों को दी जाने वाली भिक्षा' (alms to Brahmins)।[6] गुजराती[7] और कन्नड़[8] भाषाओं में 'बहुमान' (बहुत आदर)

---

१. गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी (पुरस्कारम्—reverence)।
२. तमिल लेक्सीकन।
३. वही (चम्मानम्—1. compliment, 2. gift, reward, present, 3. land exempt from tax. चन्मानम्—gifts)।
४. व्यवहारकोश।
५. तमिल लेक्सीकन (चम्पावनै—1. honour, 2. offering, gift)।
६. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।
७. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।
८. एफ़० किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।

शब्द के, मलयालम[1] में 'बहुमानम्' शब्द के और तेलुगु[2] में 'बहुमानमु' शब्द के भेंट, पुरस्कार, पारितोषिक आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। 'बहुमान' शब्द का 'बड़ों द्वारा छोटों को दी जाने वाली भेंट' अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।

प्रार्थना

हिन्दी में 'प्रार्थना' स्त्री० शब्द अधिकतर 'किसी बात के लिये किसी से विनयपूर्वक कहना, नम्र निवेदन' और 'किसी से कुछ माँगना' अर्थों में प्रचलित है। 'प्रार्थना' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं, किन्तु संस्कृत में 'प्रार्थना' शब्द का मौलिक अर्थ है 'इच्छा, अभिलाषा'।[3] इसी अर्थ से संस्कृत में 'प्रार्थना' शब्द के याचना[4], निवेदन, प्रेम की याचना[5], खोज[6] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में प्र-पूर्वक √अर्थ् धातु का मौलिक अर्थ 'इच्छा करना, अभिलाषा करना' ही है।[7] √प्रार्थ् के इसी मौलिक अर्थ से संस्कृत में माँगना, विनती करना[8], खोजना[9], पीछा करना, आक्रमण करना[10]

१. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

२. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी (बहुमानमु—present)।

३. उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना—'महापुरुषों की अभिलाषा ऊर्ध्व-गामिनी हुआ करती है' (शाकु० अङ्क ७); प्रार्थनासिद्धिशंसिनः—'अभिलाषा की पूर्ति को सूचित करने वाली' (रघु० १.४२)।

४. ये वर्द्धन्ते धनपतिपुरःप्रार्थनादुःखभाजः—'जो (दिन) धनाढ्य मनुष्यों के आगे याचना के दुःख के अनुभव से बड़े प्रतीत होते हैं' (वैराग्य-शतक ४३)।

५. कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। शाकु० अङ्क २.

६. कामानां प्रार्थना दुःखा प्राप्तौ तृप्तिर्न विद्यते। सौन्दर० ११.३८.

७. अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा, ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते। कठ० ४.२.

८. तेन भवन्तं प्रार्थयन्ते—'इसलिये आपसे विनती करते हैं' (शाकु० अङ्क २)।

९. प्रार्थयध्वं तथा सीताम्—'इस प्रकार सीता को खोजो' (भट्टि० ७.४८)।

१०. तत्प्रार्थितं जवनवाजिगतेन राज्ञा (रघु० ९.५६); दुर्जयो लवणः शूली विशूलः प्रार्थ्यतामिति (रघु० १५.५)।

आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

'प्रार्थना' शब्द के 'इच्छा, अभिलाषा' अर्थ से याचना (माँगना), निवेदन (किसी से कुछ देने या करने के लिये नम्रतापूर्वक कहना), ईश्वर के प्रति की जाने वाली स्तुति (विनती) आदि अर्थों के विकसित हो जाने का कारण इन भावों के साथ इच्छा अथवा अभिलाषा के भाव का साहचर्य है। 'याचना' में अभिलाषा का भाव मुख्य रहता है, क्योंकि अभिलषित वस्तु ही किसी से माँगी जाती है। 'किसी से कुछ देने या करने के लिये नम्रता-पूर्वक कहने' (निवेदन) में भी इच्छा अथवा अभिलाषा का भाव रहता है, क्योंकि किसी अभिलषित वस्तु अथवा बात के लिये ही किसी से 'निवेदन' किया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि इच्छा अथवा अभिलाषा के वाचक शब्दों से 'माँगना' और 'निवेदन' अर्थों का विकास अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है। बक[१] ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है—'माँगना, निवेदन करना' के लिये कुछ शब्द 'खोजना, अभिलाषा करना' आदि के वाचक शब्दों के सजातीय हैं। सूची में दिये शब्दों के अतिरिक्त 'इच्छा करना, दृढ़ अभिलाषा करना' के वाचक शब्द भी बहुधा कुछ नम्र अथवा यहाँ तक कि दृढ़ निवेदन के भाव से युक्त होकर प्रयुक्त किये जाते हैं। स्वीडिश भाषा में begära शब्द 'माँगना', 'निवेदन करना' अर्थों में प्रचलित है। इसका मौलिक अर्थ है 'अभिलाषा करना'। डच और आधुनिक हाई जर्मन में verlangen (> डैनिश में forlange) शब्द 'माँगना', 'निवेदन करना' अर्थों में प्रचलित है। इसका मौलिक अर्थ है 'अभिलाषा करना, इच्छा करना'। 'माँगना', 'निवेदन करना' अर्थों में प्रचलित बोहेमियन भाषा के žádati और पोलिश भाषा के żądać शब्दों का भी मौलिक अर्थ 'अभिलाषा करना' ही है[२]।

---

१. Others (the words for 'ask, request') are cognate with words for 'seek, desire', etc. Besides the words listed, those for 'wish, will' are often used with the implication of a mild, or even firm request. Buck, C. D.: A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages (18. 35; ask, request), p. 1270.

२. वही, पृष्ठ १२७१.

संस्कृत में 'प्रार्थना' शब्द के 'ईश्वर के प्रति की जाने वाली विनती अथवा स्तुति' अर्थ का भी विकास पाया जाता है। ईश्वर के प्रति की जाने वाली विनती (स्तुति) अधिकतर किसी अभिलाषा की पूर्ति के उद्देश्य से की जाती है। ईश्वर से कुछ माँगा जाता है, कुछ प्राप्त करने के लिये निवेदन किया जाता है। अतः बहुधा अभिलाषा, माँगना, निवेदन आदि के वाचक शब्दों द्वारा ही 'ईश्वर के प्रति की जाने वाली प्रार्थना' को भी लक्षित किया जाने लगता है। 'प्रार्थना' शब्द के 'ईश्वर के प्रति की जाने वाली स्तुति' अर्थ का विकास इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। यह प्रवृत्ति अन्य भाषाओं में भी पाई जाती है। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है—'ईश्वर से प्रार्थना करना' (pray) के लिये बहुत से शब्द या तो वे ही हैं, जोकि 'माँगना, निवेदन करना' के लिये पाये जाते हैं या उनके सजातीय हैं। कुछ शब्द 'खोजना' अथवा 'अभिलाषा करना' की वाचक क्रियाओं के सजातीय हैं।[१] 'ईश्वर से प्रार्थना करना' के लिये प्रयुक्त लैटिन precārī (अर्वाचीन precāre > इटैलियन pregare, प्राचीन फ्रेंच preier, फ्रेंच prier, प्राचीन स्पैनिश pregar) और संज्ञा prex, precis, अधिकतर बहुवचन precēs शब्द उसी धातु से निकले हैं, जिससे कि लैटिन poscere, चर्चस्लैविक prositi 'माँगना', गोथिक fraihnan, संस्कृत √प्रच्छ् 'पूछना' आदि। 'ईश्वर से प्रार्थना करना' के लिये प्रयुक्त गोथिक bidjan, प्राचीन नोर्स bidja, डैनिश bede, स्वीडिश bedja, प्राचीन इंगलिश biddan, मध्यकालीन इंगलिश bidde और डच bidden शब्द इन भाषाओं में 'माँगना, निवेदन' के भी वाचक हैं। 'ईश्वर से प्रार्थना करना' के लिये प्रचलित रूमानियन ruga, आयरिश guidim और वेल्श के gweddio शब्दों का मौलिक अर्थ 'माँगना' ही है। लिथुआनियन भाषा में 'ईश्वर से प्रार्थना करना' के लिये पाये जाने वाले melsti शब्द के 'माँगना', 'निवेदन करना' अर्थ भी हैं।[२] यह उल्लेखनीय है कि 'ईश्वर के प्रति की जाने वाली स्तुति' (विनती) अर्थ में 'प्रार्थना' शब्द पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगला, असमिया,

१. Many of the words for 'pray' are the same as, or cognate with, those for 'ask, request', discussed in 18.35. Some are cognate with verbs for 'seek' or 'long for'. Buck, C.D. : A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages (22. 16; pray), p. 1471.

२. वही, पृष्ठ १४७१.

उड़िया आदि भाषाओं में भी पाया जाता है। 'विनती' के लिये सिन्धी में 'पिरार्थना', तेलुगु में 'प्रार्थन', मलयालम में 'प्रार्थन', कन्नड़ में 'प्रार्थने' शब्द मिलते हैं, जोकि 'प्रार्थना' के ही विकसित रूप हैं।[१]

संस्कृत में 'प्रार्थना' शब्द के 'खोज' अर्थ के विकास में भी 'खोज' के भाव के साथ 'इच्छा, अभिलाषा' के भाव का साहचर्य होना ही कारण है। किसी अभिलषित वस्तु की ही खोज की जाती है। अतः इस प्रकार के भाव-साहचर्य के कारण ही 'अभिलाषा' के वाचक 'प्रार्थना' शब्द का 'खोज' अर्थ भी विकसित हो गया है। यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'अभिलाषा' के भाव वाले एक अन्य शब्द से भी 'खोज' अर्थ का विकास पाया जाता है। 'गवेषणा' शब्द का 'खोज' अर्थ इसके मौलिक अर्थ 'गो की अभिलाषा' से विकसित हुआ है। 'प्रार्थना' शब्द के समान ही अर्थ-विकास के ऐसे अन्य उदाहरण भी पाये जाते हैं, जहाँ 'खोजना' और 'माँगना, निवेदन करना' के वाचक समान शब्द है। सर्बोक्रोशियन iskati और tražiti शब्दों का अर्थ 'खोजना' भी है और 'माँगना, निवेदन करना' भी है।[२]

संस्कृत में √प्रार्थ् धातु (जिसका प्रयोग संस्कृत में अधिकतर इच्छा करना, माँगना, निवेदन करना आदि अर्थों में पाया जाता है) के 'आक्रमण करना' अर्थ का विकास भी पाया जाता है। वस्तुतः 'आक्रमण करना' के भाव के साथ इच्छा अथवा अभिलाषा के भाव का भी साहचर्य होता है, क्योंकि 'आक्रमण' किसी अभिलषित वस्तु की प्राप्ति अथवा किसी अभिलाषा की पूर्ति के लिये किया जाता है। इसी भाव-साहचर्य के कारण √प्रार्थ् धातु का 'आक्रमण करना' अर्थ विकसित हुआ प्रतीत होता है। अर्थ-विकास का एक ऐसा भी उदाहरण पाया जाता है जहाँ कि एक शब्द से, जिसका मौलिक अर्थ 'टूट पड़ना' अथवा 'आक्रमण करना' था, 'खोजना', 'माँगना, निवेदन करना' आदि अर्थ विकसित हो गये हैं। लैटिन petere (>स्पैनिश, पोर्चुगीज़ pedir) शब्द का मौलिक अर्थ 'टूट पड़ना' (fly at)[३] अथवा 'आक्रमण करना' था, किन्तु बाद में इस शब्द के 'खोजना' और 'माँगना, निवेदन करना'

---

१. व्यवहारकोश।

२. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ १२७१.

३. मिलाइये, संस्कृत √पत् = उड़ना, गिरना।

आदि अर्थों का भी विकास हो गया।[1]

बलात्कार

हिन्दी में 'बलात्कार' पुं० शब्द 'किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक सम्भोग' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'बलात्कार' पुं० शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'बलात्कार' (बलात्+कार:) पुं० शब्द का अर्थ है 'बलप्रयोग' जैसे[2]—प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति—'खेलने के लिये शेर के बच्चे को बलप्रयोगपूर्वक खींचता है' (शाकु० ७.१४)।

'बलात्कार' शब्द का 'किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक सम्भोग' अर्थ इस शब्द के 'बलप्रयोग' अर्थ से ही विकसित हुआ है। 'किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक सम्भोग' के बलप्रयोग द्वारा किये जाने के कारण 'बलप्रयोग' के वाचक 'बलात्कार' शब्द के साथ किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध सम्भोग का भाव भी सहचरित हो गया और कालान्तर में वह ही 'बलात्कार' शब्द का सामान्य अर्थ बन गया। बहुधा ऐसा होता है कि किसी क्रिया को लक्षित करने वाला शब्द भाव-साहचर्य से उसके द्वारा किये गये कार्य को भी लक्षित करने लगता है। आधुनिक हिन्दी में 'बलात्कार' शब्द का 'बलप्रयोग' अर्थ सर्वथा लुप्त हो गया है, केवल 'किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक सम्भोग' अर्थ ही प्रचलित है। बंगला भाषा में भी 'बलात्कार' शब्द का यह अर्थ पाया जाता है। मोल्सवर्थ के मराठी-इंगलिश कोश तथा मेहता के गुजराती-इंगलिश कोश में यह अर्थ नहीं दिया हुआ है। किटेल के कन्नड़-इंगलिश कोश, गण्डर्ट के मलयालम-इंगलिश कोश, गैलेट्टी के तेलुगु कोश, तथा तमिल लेक्सीकन में 'बलात्कार' शब्द के 'बलप्रयोग', 'ज़बरदस्ती' आदि अर्थ दिये हैं, 'किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक सम्भोग' अर्थ नहीं दिया है।

यह उल्लेखनीय है कि 'बल' अथवा 'बलप्रयोग' के वाचक शब्दों से 'किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक सम्भोग' अर्थ का विकास अन्य

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१८.३५; ask, request), पृष्ठ १२७१ और (११. ३१; seek), पृष्ठ ७६४.

२. चिरादपि बलात्कारो बलिनः सिद्धयेऽरिषु। शिशु २.१०५.

भाषाओं में भी पाया जाता है। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है कि 'बलात्कार' (rape) के लिये अधिकतर शब्द 'शक्ति, बल' अथवा 'दबाव' के वाचक ही पाये जाते हैं।[१] आयरिश भाषा में 'बलात्कार' (cohabitation by force) के लिये lānamnas ēcne शब्द पाया जाता है। आधुनिक आयरिश में केवल ēigean 'शक्ति' (force) शब्द भी इसी अर्थ में प्रचलित हो गया है। वेल्श भाषा में trais शब्द के 'शक्ति, बल' और 'बलात्कार' ('force, violence' and 'rape') अर्थ भी पाये जाते हैं। डैनिश भाषा में voldtœgt और स्वीडिश भाषा में våldtägt शब्द 'बलात्कार' (rape) के लिये पाये जाते हैं, जिनका मौलिक अर्थ है 'बलपूर्वक ले जाना' (taking by force)। ये दोनों शब्द डैनिश के vold और स्वीडिश के våld 'शक्ति, बल' (force, might) और tage, taga 'लेना' (take) से बने हैं। सर्बोक्रोशियन भाषा में silovanje और रशन भाषा में iznasilovanie शब्द 'बलात्कार' (rape) के लिये पाये जाते हैं, जोकि चर्चस्लैविक, सर्बोक्रोशियन और रशन sila 'शक्ति, बल' (force, strength) शब्द से बने हैं। पोलिश भाषा में 'बलात्कार' के लिये zgwalcenie शब्द पाया जाता है, जोकि आधुनिक हाई जर्मन gewalt 'बल, शक्ति' से विकसित gwalt से व्युत्पन्न है।[२]

शपथ

हिन्दी में 'शपथ' स्त्री० शब्द 'सौगन्ध, कसम' एवं 'प्रतिज्ञा' इन दो अर्थों में प्रचलित है। ये दोनों अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु संस्कृत में 'शपथ' पं० शब्द का मूल अर्थ है—'शाप' (√शप् = 'शाप देना'+ अथन्, उणादि ३.११२)। ऋग्वेद[३] तथा बाद के वैदिक साहित्य[४] में 'शपथ' शब्द का प्रयोग 'शाप' अर्थ में ही पाया जाता है।

---

१. "Most of the terms for 'rape' are words denoting 'force, violence' or 'compulsion' with the notion of sexual relations either expressed or, more commonly, left to be understood." Buck, C. D.: A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages (21. 44; rape), p. 1458.

२. वही, पृष्ठ १४५८,५९.

३. ऋग्वेद १०.८७.१५.

४. अथर्व० ३.९.५, ४.९.५, ४.१८.७ आदि।

'शपथ' शब्द के 'शाप' अर्थ से 'सौगन्ध या कसम' अर्थ के विकास का कारण प्राचीनकाल में प्रचलित कसम खाने का वह ढंग है, जिसमें कसम खाने वाला व्यक्ति 'यदि मैं ऐसा न कर सकूं या ऐसा न होऊं तो' ऐसा कह-कर अपने आप को शाप भी देता था। ऋग्वेद ७.१०४.१५ में सम्भवतः वसिष्ठ अपनी सत्यता के सम्बन्ध में अपने आपको शाप देता हुआ कहता है—

"यदि मैं जादूगर हूँ, यदि मैंने किसी पुरुष की आयु नष्ट की हो तो मैं आज ही मर जाऊँ, नहीं तो जिसने मुझे व्यर्थ ही जादूगर कहा, वह अपने दस वीर पुत्रों से वञ्चित हो।"[1]

इस प्रकार असत्य होने की स्थिति में अपने आपको शाप देकर कसम खाने की परिपाटी के कारण 'शाप' के वाचक 'शपथ' शब्द के साथ 'कसम' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में यह शब्द 'कसम' (सौगन्ध) को लक्षित करने लगा।

बहुत सी प्रतिज्ञायें भी कसम खाकर की जाती हैं। अतः 'कसम' के वाचक 'शपथ' शब्द के साथ प्रतिज्ञा के भाव का साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'शपथ' ही 'प्रतिज्ञा' के भाव को भी लक्षित करने लगा।

बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में कतिपय भाषाओं में 'कसम (सौगन्ध) खाना' के लिये 'शाप देना' के वाचक शब्दों के पाये जाने का उल्लेख किया है।[2] इस प्रकार का अर्थ-विकास कथन के असत्य सिद्ध होने पर अपने आपको शाप देने से ही हुआ है। इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति आधुनिक अंग्रेजी में भी पाई जाती है, जैसे—I'll be damned if it isn't so. कसम (सौगन्ध) खाने के लिये चर्चस्लैविक भाषा में kleti se, सर्बोक्रोशियन में zakleti se, पोलिश में klać sie, रशन में kljasť sja शब्द पाये जाते हैं, जोकि चर्चस्लैविक kleti

---

१. अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह॥
७.१०४.१५.

२. सी० डी० बकः ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (२१.२४; swear), पृष्ठ १४३७—
"Verbs for 'swear' include……'curse' (through 'curse oneself' if the statement be not true)"

आदि='शाप देना' से विकसित हुये हैं ।[1]

सौगन्ध

हिन्दी भाषा में 'सौगन्ध' (अथवा 'सौगन्द') स्त्री० शब्द 'कसम' अर्थ में प्रचलित है, जैसे—"मैं अपने पुत्र की सौगन्ध खाकर कहता हूँ" । 'सौगन्ध' शब्द संस्कृत से ग्रहण किया हुआ तत्सम शब्द है और 'सौगन्द' उससे विकसित हुआ तद्भव शब्द है ।

संस्कृत में 'सौगन्ध' शब्द का 'कसम' अर्थ नहीं पाया जाता । संस्कृत में 'सौगन्ध' वि० शब्द का अर्थ है 'सुगन्धियुक्त' और 'सौगन्ध' नपुं० शब्द का अर्थ है 'सुगन्धि' ।

'सुगन्धि' और 'कसम' के भावों में कोई सम्बन्ध नहीं है । अतः सामान्य रूप से विचार करने पर 'सौगन्ध' शब्द के 'कसम' अर्थ के विकास की प्रक्रिया समझ में नहीं आती । किन्तु जब हमें यह ध्यान आता है कि प्राचीन काल में हमारे समाज में शिष्टाचार की एक ऐसी परिपाटी प्रचलित थी, जिसके अनुसार स्नेह के कारण माता-पिता अपनी सन्तानों का और अन्य गुरुजन छोटों का सिर सूँघते थे, तो हमारी समझ में आ जाता है कि 'सौगन्ध' शब्द पहिले प्रेमवश सूँघी जाने वाली 'सुगन्धि' को ही लक्षित करता था और 'सौगन्ध' शब्द के 'कसम' अर्थ के विकास के मूल में वही 'सुगन्धि' है ।

गुरुजनों द्वारा छोटों का सिर सूँघने की परिपाटी प्राचीन भारतीय समाज में कब प्रचलित हुई, इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है, तथापि वाल्मीकीय रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में सिर सूँघने का उल्लेख मिलने के कारण यह निश्चित है कि ईसा से कई शताब्दी पूर्व यह परिपाटी भारतीय समाज में प्रचलित थी । संस्कृत के विभिन्न काव्य-ग्रन्थों में भी प्रेमपूर्वक सिर सूँघने का उल्लेख पाया जाता है । वाल्मीकीय रामायण में सिर सूँघने के अनेक उल्लेख मिलते हैं, जैसे दशरथ ने राम को विश्वामित्र के साथ भेजते समय उसका मस्तक सूँघा—

स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथः प्रियम् ।
ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना ।। १.२२.३.

"राजा दशरथ ने प्रिय पुत्र का सिर सूँघकर उसको बहुत प्रसन्न चित्त से विश्वामित्र को दे दिया ।"

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ १४३७.

जब भरत वन में श्री रामचन्द्र जी से मिलने गया तो राम ने उसका मस्तक सूँघा—

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवः ।
अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत् सादरम् ॥ २.१०१.३.

"राम ने भरत के सिर को सूँघकर छाती से लगाकर और गोद में बिठाकर आदरपूर्वक पूछा ।"

कौशल्या ने राम को वन जाने के लिये विदा देते हुये उसका मस्तक सूँघा—

आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी ।
अवदत्पुत्रमिष्टार्थो गच्छ राम यथासुखम् ॥ २.२५.४०.

"यशस्विनी कौशल्या झुककर राम का मस्तक सूँघकर और उसे छाती से लगाकर बोली, बेटा राम, जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ सुविधापूर्वक चला जा ।"

वाल्मीकीय रामायण ७.७१.१२ में महर्षि वाल्मीकि शत्रुघ्न से कहते हैं—

ममापि परमा प्रीतिर्हृदि शत्रुघ्न वर्तते ।
उपाघ्रास्यामि ते मूर्ध्नि स्नेहस्यैषा परा गतिः ॥

"हे शत्रुघ्न, तेरे प्रति मेरे भी हृदय में बहुत प्रेम है। मैं तेरा सिर सूँघूँगा, क्योंकि स्नेह की यही पराकाष्ठा होती है ।"

ऐसा कहकर वाल्मीकि ने शत्रुघ्न का सिर सूँघ लिया (इत्युक्त्वा मूर्ध्नि शत्रुघ्नमुपाघ्राय महामतिः । ७.७१.१३) ।

उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट पता चलता है कि प्राचीन काल में सिर सूँघने को स्नेह की पराकाष्ठा समझी जाने के कारण गुरुजनों द्वारा छोटों का सिर सूँघा जाता था । संस्कृत साहित्य के अन्य काव्य-ग्रन्थों में भी गुरुजनों द्वारा छोटों का सिर सूँघने के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं । भट्टि-काव्य (१४.१२) में उल्लेख मिलता है कि योद्धाओं ने युद्ध में प्रस्थान करने से पूर्व अपने बालकों का सिर सूँघा (आजघ्रुर्मूर्ध्नि बालान्) । यद्यपि कोई भी बड़ा व्यक्ति प्रेम के कारण अपने से छोटे का सिर सूँघ सकता था, तथापि अधिकतर माता-पिता द्वारा ही अपनी सन्तानों का और विशेषकर पुत्रों का सिर सूँघा जाता था । पुत्रों से विशेष स्नेह होने के कारण माता-पिता अपने

पुत्रों के कहीं जाने के अवसर पर अथवा आगमन के अवसर पर या स्वयं कहीं प्रस्थान करते समय अथवा कहीं से आने के अवसर पर उनका सिर सूँघते थे। साधारणतया यह देखा जाता है कि 'कसम' भी अपनी किसी अत्यन्त प्रिय वस्तु की ही खाई जाती है। माता-पिता के लिये अपने पुत्र से बढ़कर और क्या वस्तु प्रिय हो सकती है। इसलिये प्राचीन काल में अधिकतर अपने पुत्र की ही कसम खाई जाती थी (आजकल भी अधिकतर अपने पुत्र की ही कसम खाई जाती है)। वाल्मीकीय रामायण (२.११.६-८) में राजा दशरथ कैकेयी का वचन पूरा करने के लिये कहते समय अपने पुत्र राम की कसम खाते हैं और कैकेयी (२.१२.४९ में) अपने पुत्र भरत की कसम खाते हुये यह कहती है कि वह राम को वन में भेजे विना और किसी बात से सन्तुष्ट नहीं हो सकती। सिर सूँघने को प्रेम की पराकाष्ठा मानी जाने के कारण पहिले पुत्रादि की कसम खाते हुये पुत्रादि की सिर की सुगन्धि का ही उल्लेख किया जाता होगा अर्थात् जब कोई व्यक्ति यह कहता होगा कि मैं अपने पुत्र की 'सौगन्ध' खाकर अमुक बात कहता हूँ तो उसका यह अभिप्राय होता होगा कि मैं अपने पुत्र का सिर सूँघकर अमुक बात कहता हूँ। यह कथन ठीक उसी प्रकार है जैसे कि आजकल भी किसी ग्रामीण व्यक्ति द्वारा अपने पुत्र की कसम खाते हुये कह दिया जाता है कि मैं अपने बेटे के सिर पर हाथ रखकर अमुक बात कहता हूँ। अतः पुत्र की कसम खाते हुये पुत्र के सिर की 'सौगन्ध' (अर्थात् 'सुगन्धि') का उल्लेख होने के कारण 'सौगन्ध' शब्द के साथ 'कसम' के भाव का साहचर्य हो गया और कालान्तर में यह शब्द 'कसम' को ही लक्षित करने लगा। यह स्पष्ट है कि पहिले केवल माता-पिता आदि द्वारा ही अपनी सन्तान की कसम खाते हुये 'कसम' के लिये 'सौगन्ध' शब्द का प्रयोग किया जाता होगा। पिता, पति आदि की कसम खाते हुये 'सौगन्ध' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता होगा, क्योंकि 'सौगन्ध' खाने अर्थात सिर सूँघने के अधिकारी तो माता-पिता आदि बड़े लोग (गुरुजन) ही होते हैं। बाद में चलकर 'सौगन्ध' शब्द के अर्थ में विस्तार हो गया और यह शब्द सामान्य रूप में 'कसम' को लक्षित करने लगा। पिता, भाई, पति आदि सभी की 'कसम' के लिये 'सौगन्ध' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा।

'सौगन्ध' शब्द का 'कसम' अर्थ हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, बंगला, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि अन्य भाषाओं में नहीं पाया जाता। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'सौगन्ध' शब्द का 'कसम' अर्थ हिन्दी भाषा में

ही विकसित हुआ है। यह तो निश्चय-पूर्वक कहना कठिन है कि हिन्दी में 'कसम' अर्थ में 'सौगन्ध' अथवा 'सौगन्द' शब्द किस काल में प्रचलित हुआ, किन्तु यह निश्चित है कि हिन्दी साहित्य में यह शब्द सूर, तुलसी आदि के काल से बहुत पहिले (सम्भवतः आदिकाल में) प्रचलित हो गया था। सूर[1] तुलसी[2] आदि के ग्रन्थों में 'सौगन्ध' अथवा 'सौगन्द' से विकसित हुये 'सौंह' और 'सौं' शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। सूर, तुलसी आदि के बाद के बिहारी, केशव, पद्माकर आदि कवियों के ग्रन्थों में भी 'सौंह' और 'सौं' शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

आजकल साहित्यिक हिन्दी में तो 'कसम' के लिये 'सौगन्ध' अथवा 'सौगन्द' शब्द का प्रयोग किया जाता है, किन्तु ग्रामीण बोलियों में 'सौंह' और 'सौं' से विकसित हुआ 'सूं' शब्द 'कसम' के लिये प्रयुक्त होता है। ग्रामीण लोगों (मुख्यतः ग्रामीण स्त्रियों) को बहुधा 'भाई की सूं (या किसूं)', 'बैल की सूं', 'भैंस की सूं' आदि कहते हुये सुना जाता है। कसम खाने के इन प्रयोगों में 'कीसूं' या 'किसूं' के 'कसम' शब्द से ध्वनि और अर्थ में मिलता-जुलता होने के कारण भूल से इन्हें 'कसम' शब्द का ही विकृत रूप समझ लिया जाता है (जैसे 'भाई किसूं'='भाई कसम')।

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि आजकल हमारे समाज में गुरुजनों द्वारा छोटों का सिर सूँघने के आचार की परिपाटी प्रचलित नहीं है, तथापि इस परिपाटी का अवशेष अब भी हमारी ग्रामीण संस्कृति में विद्यमान है। आजकल भी गावों में (अधिकतर अशिक्षित एवं पिछड़े हुये लोगों में) गुरुजन प्रेम के कारण अथवा आशीर्वाद देते हुये छोटे बच्चों के सिर पर हाथ फेरकर पुचकारते हुये देखे जाते हैं। 'सिर पर हाथ रखकर पुचकारना' सिर सूँघने की परिपाटी का ही अवशेष प्रतीत होता है।

जिस प्रकार सिर सूँघने की परिपाटी का अवशेष 'सिर पर हाथ रखकर पुचकारना' है, सम्भवतः उसी प्रकार 'सौगन्ध' (अर्थात् सिर की सुगन्धि)

---

१. जो कहिये घर दूरि तुम्हारे बोलत सुनिये टेर।
तुमहिं सौंह वृषभानु बबा की प्रात सांझ एक फेर॥ सूर॥
सुन्दर स्याम हंसत सजनी सों नन्द बबा की सौं री॥ सूर॥

२. तुलसी न तुम्ह सों राम प्रीतम कहत हौं सौंहे किये।
परिनाम मंगल जान अपने आनिये धीरज हिये॥ तुलसी॥

खाकर कसम खाने की परिपाटी का अवशेष 'सिर पर हाथ रखकर कसम खाना' है। प्राय: ग्रामीण लोगों में यह देखा जाता है कि किसी विवादास्पद विषय में किसी व्यक्ति की प्रामाणिकता की परख के उद्देश्य से उसे पुत्र की कसम खिलाने के लिये कहा जाता है कि अच्छा, तुम अपने पुत्र के सिर पर हाथ रखकर अमुक बात कह दो। पुत्र के सिर पर हाथ रखकर कसम खाने की परिपाटी के मूल में वही भाव विद्यमान है, जो पुत्र की 'सौगन्ध' खाकर अर्थात् सिर सूँघकर कसम खाने की परिपाटी में था।

जिस प्रकार 'सौगन्ध' (अर्थात् सिर की सुगन्धि) खाकर 'कसम' खाने की प्रथा होने के कारण 'सौगन्ध' शब्द का 'कसम' अर्थ विकसित हुआ है, इसी प्रकार कुछ अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में इससे कुछ मिलते-जुलते भाव अर्थात् 'छूना' के वाचक शब्दों का 'कसम' अर्थ विकसित पाया जाता है। 'छूना' के वाचक शब्दों के भी 'कसम' अर्थ के विकास का कारण, जिसकी कसम खाई जाये उस वस्तु को छूकर कसम खाने की प्रथा ही है।[१] लिथुआनियन भाषा में 'कसम' के लिये prisiekti शब्द पाया जाता है, जिसमें siekti का मूल अर्थ है—'हाथ से छूना' (फिर इससे अर्थ विकसित हुआ 'कसम खाना')। सर्बोक्रोशियन भाषा में prisеći, बोहेमियन में přisahati, पोलिश में przysiegać, रशन में prisjagať शब्द 'कसम' के वाचक हैं—इन सब का मूल अर्थ 'छूना' था[२]।

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (२१.२४; swear), पृष्ठ १४३७—

"Verbs for 'swear' include.........'touch' (through practice of touching an object in taking the oath)".

२. वही।

अध्याय १२

विविध भाव-साहचर्यों पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

प्रस्तुत अध्याय में ऐसे विविध भाव-साहचर्यों पर आधारित अर्थ-परिवर्तनों को रक्खा गया है, जो पहिले तीन अध्यायों में आये हुये अर्थ-परिवर्तनों से भिन्न हैं। इस प्रकार इस अध्याय में निम्न श्रेणियाँ आई हैं :—

(अ) भाववाची से परिणामवाची,
(आ) गुणवाची से कारणवाची,
(इ) सूचकवाची से सूचितवाची,
(ई) सूचितवाची से सूचकवाची,
(उ) कालवाची से कार्यवाची,
(ऊ) ऋतुवाची से वर्षवाची,
(ए) छन्दोवाची से मन्त्रवाची।

(अ) भाववाची से परिणामवाची

किसी भाव को लक्षित करने वाले शब्द बहुधा उस भाव के परिणाम या प्रभाव को लक्षित करने लगते हैं।

छटा

हिन्दी में 'छटा' स्त्री० शब्द 'शोभा, छवि' अर्थ में प्रचलित है। 'छटा' शब्द का यह अर्थ यद्यपि संस्कृत में भी पाया जाता है, तथापि संस्कृत में 'छटा' शब्द का मौलिक अर्थ है 'समूह'। संस्कृत साहित्य में 'छटा' शब्द के 'समूह' अर्थ में प्रयोग के बहुत से उदाहरण मिलते हैं, जैसे[1]—सटाच्छटाभिन्नघनेन—'केसरसमूह के द्वारा मेघों को छिन्न करने वाले (आपके द्वारा)'। शिशु० १.४७.

संस्कृत में 'छटा' शब्द के 'समूह' अर्थ में किरण के वाचक शब्दों के साथ

---

१. किमयमसिपत्रचन्दनरसच्छटासारयुगपदवपातः। मालती० १०.१०.

प्रयुक्त होते रहने से[१] 'किरणों का समूह' अर्थ विकसित हुआ, जैसे —ज्वलदनलपिशङ्गनेत्रच्छटाभारभीम—'जलती हुई अग्नि से पीले नेत्र की किरणों के समूह के भार से भयङ्कर' (मालती० ५.२३)।

'छटा' शब्द का 'शोभा, छवि' अर्थ इसके 'किरणों का समूह' अर्थ से ही विकसित हुआ है। किसी वस्तु की शोभा अथवा छवि उसके वास्तविक बाह्य स्वरूप की अभिव्यक्ति में निहित होती है। यदि कोई तेजवान् या प्रकाशमान पदार्थ हो तो उसकी 'शोभा, छवि' उससे प्रकट होने वाली किरणों के समूह में निहित होती है। 'छटा' शब्द का 'किरणों का समूह' अर्थ होने के कारण ही उसके साथ 'शोभा, छवि' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में यह शब्द शोभा अथवा छवि को ही लक्षित करने लगा। इसके 'समूह', 'किरणों का समूह' अर्थ सर्वथा लुप्त हो गये।

'छटा' शब्द का 'शोभा अथवा छवि' अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है। मोल्सवर्थ ने अपने मराठी भाषा के कोश में 'छटा' शब्द के अर्थ आकृति, प्रकार, (बोलने, सोचने, निर्णय करने आदि का) विशिष्ट ढंग, स्वाद (जैसे—या औषधान्त तुपाची छटा सारती), वास्तविक प्रतिबिम्ब (जैसे-स्फटिकावर जाखनाची छटा सारती म्हणून तांबूस दिसतो) आदि दिये हैं। टर्नर ने अपने नेपाली भाषा के कोश में 'छटा' शब्द का अर्थ 'सूर्य अथवा चन्द्रमा की किरणें' दिया है, किन्तु उसके आगे 'प्रकृति को छटा' का अर्थ 'प्राकृतिक दृश्य' दिया है।

प्रभाव

हिन्दी में 'प्रभाव' पुं० शब्द 'असर' अर्थ में प्रचलित है। किसी वस्तु या बात पर किसी (वस्तु, क्रिया आदि) के होने वाले परिणाम (effect) को भी 'प्रभाव' कहा जाता है (जैसे औषध का प्रभाव), और किसी व्यक्ति की शक्ति, आतङ्क, सम्मान, अधिकार आदि के दूसरे व्यक्तियों, घटनाओं, कार्यों आदि पर होने वाले परिणाम (influence) को भी 'प्रभाव' कहा जाता है। संस्कृत में 'प्रभाव' शब्द का 'असर' अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'प्रभाव' पुं० शब्द का प्रयोग अधिकतर 'शक्ति' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—

---

१. तैरेव प्रतियुवतेरकारि दूरात्कालुष्यं शशधरदीधितिच्छटाच्छैः ॥
शिशु० ८.३८.

अतिशयसुरासुरप्रभावम्—'देवताओं और राक्षसों से भी बढ़कर शक्ति वाले' (उत्तर० ५.४)।

'प्रभाव' शब्द के 'शक्ति' अर्थ से ही इसके अन्य विभिन्न अर्थों का विकास हुआ है। प्रताप और तेज शक्ति के साथ सहचरित भाव हैं। शक्ति से ही इनकी उत्पत्ति होती है। अतः 'प्रभाव' शब्द के 'प्रताप' और 'तेज'[1] अर्थ भी विकसित हो गये हैं। भरत ने राजाओं के प्रसङ्ग में 'प्रभाव' का आशय स्पष्ट करते हुये लिखा है—

'कोषो धनं दण्डो दमः तद्धेतुत्वात् सैन्यमपि दण्डः ताभ्यां यत्तेजो जायते स प्रतापः प्रभावश्च कथ्यते।'

संस्कृत में 'प्रभाव' शब्द का 'तेज' अर्थ होने के कारण किसी व्यक्ति में उसकी शक्ति से उत्पन्न होने वाले तेज के सादृश्य पर भौतिक स्थूल पदार्थों की 'चमक' को भी 'प्रभाव' कहा गया। संस्कृत में 'प्रभाव' शब्द का 'चमक' अर्थ में प्रयोग मिलता है, जैसे[2]—

लोहानाञ्च मणीनाञ्च मलपङ्कोपदिग्धता।
प्रभावस्नेहगुरुता वर्णस्पर्शवधस्तथा॥ कामन्द० ७.२४.

"लोहे और मणि में विष का प्रयोग होने से उन पर मैला पङ्क हो जाता है तथा चमक, स्नेह (चिकनाई), गौरव, वर्ण और स्पर्श इन सबका नाश हो जाता है।"

संस्कृत में 'प्रभाव' शब्द का प्रयोग 'शक्ति' अर्थ से ही विकसित हुये दिव्यशक्ति[3], आश्चर्यजनक शक्ति[4], शान, महिमा[5] आदि अर्थों में भी पाया जाता है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में 'दिव्यशक्ति' अर्थ में 'प्रभाव' शब्द का प्रचुर प्रयोग किया है (जैसे—अभिज्ञानशाकुन्तल के चौथे अङ्क में)।

'प्रभाव' शब्द का 'असर' ('किसी वस्तु या बात पर किसी वस्तु, क्रिया

---

१. अद्य मेऽस्त्रप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति। रामायण २.२३.३८.

२. स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्चेति विषयुक्तलिङ्गानि।
अर्थ० १.२१.२२.

३. प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार।
रघु० २.४१.

४. अहो प्रभावः प्रियसङ्गमस्य। मृच्छ० १०.४३.

५. कन्यकाकौतुकक्रियां स्वप्रभावसदृशीं वितनेतुः। रघु० ११.५३.

आदि का होने वाला परिणाम' और 'किसी व्यक्ति की शक्ति, आतङ्क, सम्मान, अधिकार आदि का दूसरे व्यक्तियों, घटनाओं, कार्यों आदि पर होने वाला परिणाम') अर्थ इस शब्द के 'शक्ति' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि किसी वस्तु, बात अथवा व्यक्ति में निहित शक्ति का अन्य वस्तुओं, बातों अथवा व्यक्तियों पर होने वाला परिणाम ही 'असर' होता है; उदाहरणार्थ—किसी औषध का असर उसमें निहित शक्ति (विशिष्ट गुण अथवा विशेषता आदि) के द्वारा उत्पन्न होता है, किसी विद्वान् अथवा प्रतिभाशाली व्यक्ति का अन्य लोगों पर असर उसकी विद्वत्ता अथवा प्रतिभा की शक्ति के कारण होता है। 'असर' के निहित शक्ति से उत्पन्न होने के कारण ही उसे भाव-साहचर्य से 'शक्ति' के वाचक 'प्रभाव' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। आजकल हिन्दी में 'प्रभाव' शब्द 'असर' अर्थ में ही प्रचलित है, शक्ति, प्रताप, तेज आदि अर्थ लुप्त हो गये हैं। 'प्रभावशाली' शब्द में 'प्रभाव' शब्द का मौलिक अर्थ 'शक्ति' निहित है, यद्यपि हिन्दी में इसका प्रयोग 'असर रखने वाला' अर्थ में किया जाता है, (जैसे—प्रभावशाली व्यक्ति उस व्यक्ति को कहा जाता है, जिसका अन्य लोगों पर असर हो)। वस्तुतः 'प्रभावशाली' शब्द का मौलिक अर्थ 'शक्तिशाली' है, 'प्रभाव' शब्द का अर्थ भिन्न हो जाने पर 'प्रभावशाली' शब्द का अर्थ भी उसी के अनुरूप ही समझा जाने लगा है।

बंगला भाषा में भी 'प्रभाव' शब्द 'असर' अर्थ में प्रचलित है। आशुतोष देव ने अपने बंगला-इंगलिश कोश में 'प्रभाव' शब्द के शक्ति, प्रताप, शान आदि अर्थों के अतिरिक्त 'असर' अर्थ भी दिया है। मोल्सवर्थ के मराठी-इंगलिश कोश, मेहता के गुजराती-इंगलिश कोश, गैलेट्टी के तेलुगु कोश, किटेल के कन्नड़-इंगलिश कोश, गण्डर्ट के मलयालम-इंगलिश कोश और तमिल लेक्सीकन में 'प्रभाव' शब्द के अर्थ शक्ति, प्रताप, तेज, महिमा, शान आदि ही दिये हुये हैं, 'असर' अर्थ नहीं दिया हुआ है।

प्रारब्ध

हिन्दी में 'प्रारब्ध' पुं० शब्द 'भाग्य' (अर्थात् वह निश्चित और अटल दैवी विधान, जिसके अनुसार मनुष्य के सब कार्य पहिले से ही नियत किये हुये माने जाते हैं) अर्थ में प्रचलित है। मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत भाषा के कोश में 'प्रारब्ध' नपुं० शब्द का यह अर्थ नहीं दिया है, आप्टे ने अपने कोश में यह (fate, destiny) अर्थ दिया है। अतः यह सम्भव है कि

'प्रारब्ध' शब्द का 'भाग्य' अर्थ आधुनिक काल में विकसित हुआ हो और इसी कारण मोनियर विलियम्स अपने कोश में यह अर्थ न दे सका हो और आप्टे ने 'प्रारब्ध' शब्द के आधुनिक काल में प्रचलित अर्थ को ही दे दिया हो ।

संस्कृत में 'प्रारब्ध' शब्द मूलतः क्त-प्रत्ययान्त विशेषण शब्द था (प्र+आ+रभ्+क्त) । अतः इसका अर्थ था 'प्रारम्भ किया हुआ' । संस्कृत साहित्य में 'प्रारम्भ किया हुआ' या 'प्रारम्भ किया गया' अर्थ में 'प्रारब्ध' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—

दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य, प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् । कादम्बरी (उत्तरभाग, श्लोक ४) ।

संस्कृत में 'प्रारब्ध' शब्द का 'प्रारम्भ किया हुआ' अर्थ होने के कारण इसका नपुं० संज्ञा शब्द के रूप में 'प्रारम्भ किया हुआ कार्य' अर्थ में भी प्रयोग प्रचलित हुआ, जैसे—

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति । मुद्रा० २.१७.

संस्कृत में 'प्रारब्ध' शब्द का 'प्रारम्भ किया हुआ कार्य' अर्थ प्रचलित होने के कारण एक प्रकार के कर्मों को जिनका फलभोग प्रारम्भ हो गया हो 'प्रारब्ध' (अर्थात् प्रारब्धकर्म) कहा जाने लगा, जैसे—प्रारब्धकर्मवेगेन जीवन्मुक्तो यदा भवेत् (वाक्यवृत्ति श्लोक ४०) ।

यह माना जाता है कि किसी व्यक्ति का 'भाग्य' उसके कर्मों के अनुसार बनता है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कर्मों का परिणाम अथवा फल ही 'भाग्य' होता है । 'प्रारब्ध' शब्द का अर्थ 'वे कर्म जिनका फल-भोग प्रारम्भ हो चुका हो' होने के कारण भाव-साहचर्य से 'प्रारब्ध' शब्द उनके फल अथवा परिणाम (अर्थात् 'भाग्य') को भी लक्षित करने लगा है । यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी में इसी प्रकार के भाव-साहचर्य से **अदृष्ट** और **कर्म** शब्दों का भी 'भाग्य' अर्थ विकसित हुआ है । 'अदृष्ट' भी एक प्रकार के कर्म माने जाते हैं (जिनका फलभोग अभी प्रारम्भ नहीं हुआ है, भविष्य में होने वाला है) ।

बंगला, गुजराती तथा मराठी आदि भाषाओं में भी 'प्रारब्ध' शब्द का 'भाग्य' अर्थ प्रचलित है ।

बाधा

हिन्दी में 'बाधा' स्त्री० शब्द 'विघ्न, रुकावट, अड़चन' अर्थ में प्रचलित हैं। संस्कृत में 'बाधा' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'बाधा' शब्द का प्रयोग अधिकतर पीड़ा[1], कष्ट, चोट[2], हानि, विनाश[3] आदि अर्थों में पाया जाता है।

'बाधा' शब्द के 'विघ्न, रुकावट' अर्थ का विकास इस शब्द के पीड़ा, कष्ट आदि अर्थों से ही हुआ है। पीड़ा अथवा कष्ट के भाव के साथ विघ्न या रुकावट के भाव का भी साहचर्य होता है, क्योंकि जब किसी व्यक्ति को कोई पीड़ा अथवा कष्ट होता है, तो उसके कार्य में विघ्न भी होता ही है। इस प्रकार के भाव-साहचर्य से 'बाधा' शब्द 'विघ्न अथवा रुकावट' को भी लक्षित करने लगा होगा।

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि संस्कृत में 'बाधा' शब्द का 'विघ्न, रुकावट' अर्थ नहीं पाया जाता, तथापि √बाध् धातु का प्रयोग सताना[4], कष्ट देना, पीड़ित करना आदि अर्थों के साथ-साथ रोकना[5] अथवा विघ्न डालना अर्थ में भी पाया जाता है। संस्कृत में √ बाध् धातु से बने 'बाध' पुं० शब्द का प्रयोग 'रुकावट' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—मुख्यार्थबाधे- 'मुख्यार्थ के रुक जाने पर अर्थात् न बन पड़ने पर' (काव्य० २.६)।

यह भी सम्भव है कि संस्कृत में √ बाध् धातु का 'रोकना, रुकावट डालना' अर्थ में तथा 'बाध' पुं० शब्द का 'रुकावट' अर्थ में प्रयोग होने के कारण 'बाधा' स्त्री० शब्द का भी 'रुकावट' अर्थ में प्रयोग होने लगा हो।

---

१. दुर्वृत्ताः सन्ति शतशो दानवाः पापयोनयः।
तेभ्यो न स्यात् यथा बाधा मुनीनां त्वं तथा कुरु ॥
"सैकड़ों पापी दुष्ट राक्षस हैं। तू ऐसा कर, जिससे मुनियों को उनसे पीड़ा (कष्ट) न हो" (मार्कण्डेय० २२.३)।
वयस्य रजन्या सह विजृम्भते मदनबाधा। विक्रम० अङ्क ३.

२. चरणस्य न ते बाधा सम्प्रति वामोरु वामस्य। मालविका० ३.१८.

३. छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥ मनु० ४.५१.

४. ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे। रघु० २.१४.

५. वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते (उत्तर० ५.१६); न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम् (किरात० १.११)।

'बाधा' शब्द का 'विघ्न, रुकावट' अर्थ गुजराती, बंगला, नेपाली, कन्नड़ आदि भाषाओं में भी पाया जाता है। गुजराती भाषा में 'बाधा' शब्द का एक अर्थ 'प्रतिज्ञा' (विशेष रूप से किसी देव-प्रतिमा को कोई वस्तु भेंट करने के लिये अथवा किसी वस्तु के प्रयोग से अलग रहने के लिये, अथवा कोई कार्य सम्पन्न करने के लिये की गयी विधिपूर्वक प्रतिज्ञा)[1] भी है। तमिल भाषा में 'वातै' या 'पातै' (=बाधा) शब्द का अर्थ 'पीड़ा अथवा कष्ट' ही है। तमिल में 'कुत्तु-वातै' (=क्षुद्बाधा) का अर्थ है 'भूख की पीड़ा' और 'चल-पातै' का अर्थ है 'पेशाब करने अथवा शौच जाने की ज़ोर की हाजत के कारण कष्ट'।[2]

(आ) गुणवाची से कारणवाची

किसी गुण अथवा विशेपता का वाचक शब्द बहुधा उस गुण अथवा विशेषता के उत्पादक कारण को लक्षित करने लगता है।

वीर्य

हिन्दी में 'वीर्य' पुं० शब्द 'शुक्र' (शरीर की वह धातु जिससे उसमें बल, तेज और कान्ति आती है तथा सन्तान उत्पन्न होती है) अर्थ में प्रचलित है। 'वीर्य' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[3] किन्तु संस्कृत में 'वीर्य' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'वीरता, पराक्रम' (वीरस्य भावः; वीर+यत्)। 'वीर्य' शब्द के 'वीरता अथवा पराक्रम'[4] अर्थ से ही संस्कृत में पौरुष, शक्ति[5], सामर्थ्य, किसी ओषधि का लाभकारी गुण[6], शुक्र आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। वैदिक साहित्य में 'वीर्य' शब्द का प्रयोग वीरता, पराक्रम, वीरतापूर्ण कार्य, पौरुष, शक्ति आदि अर्थों में पाया जाता है, 'शुक्र' अर्थ

---

१. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

२. तमिल लेक्सीकन।

३. अमी हि वीर्यप्रभवं भवस्य। कुमार० ३.१५.

४. वीर्यविदानेषु कृतावमर्षः (किरात० ३.४३);
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा (रघु० ३.६२)।

५. जाने तपसो वीर्यम्। शाकु० ३.२.

६. अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः (किरात० २.४);
वीर्यवन्त्यौषधानीव विकारे सांनिपातिके (कुमार० २.४८)।

में नहीं पाया जाता। ऋग्वेद में इन अर्थों में 'वीर्य' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचम्—'अब मैं विष्णु के पराक्रमों की घोषणा करता हूँ' (१.१५४.१)। 'वीर्य' शब्द का 'शुक्र' अर्थ में प्रयोग लौकिक संस्कृत साहित्य में (अर्थात् महाभारत में तथा उसके पश्चात्) मिलता है।

'वीर्य' शब्द का 'शुक्र' अर्थ इस शब्द के 'शक्ति, सामर्थ्य' अर्थ से विकसित हुआ है। मनुष्य की शक्ति उसके शरीर में विद्यमान शुक्र में ही निहित रहती है। उसी के कारण मनुष्य के शरीर में बल, तेज और कान्ति आती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'शुक्र' के शक्ति अथवा सामर्थ्य का कारण होने के कारण ही उसे 'शक्ति, सामर्थ्य' के वाचक 'वीर्य' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा होगा।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'शक्ति' के वाचक कई अन्य शब्दों के भी 'शुक्र' अर्थ का विकास पाया जाता है। मोनियर विलियम्स और आप्टे के कोशों में **पौरुष** नपुं०, **बल** नपुं० और **तेजस्** नपुं० शब्दों का भी 'शुक्र, वीर्य' अर्थ दिया हुआ है। 'पौरुष' शब्द के इस अर्थ का विकास इसके 'पुरुषत्व, पुरुष की शक्ति' अर्थ से हुआ है। 'बल' और 'तेजस्' शब्दों का भी यह अर्थ इनके 'शक्ति' अर्थ से ही विकसित हुआ है।

हिन्दी में 'वीर्य' शब्द केवल 'शुक्र' अर्थ में प्रचलित है। इसके संस्कृत में पाये जाने वाले वीरता, पराक्रम, पौरुष, शक्ति, सामर्थ्य आदि अन्य अर्थ लुप्त हो गये हैं।

(इ) सूचकवाची से सूचितवाची

जिस वस्तु से किसी भाव को सूचित किया जाता है, उस वस्तु का वाचक शब्द बहुधा सूचित भाव को लक्षित करने लगता है।

कक्षा

हिन्दी में 'कक्षा' स्त्री० शब्द 'श्रेणी' (class) अर्थ में प्रचलित है (जैसे—सातवीं कक्षा, आठवीं कक्षा आदि)। संस्कृत में 'कक्षा' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'कक्षा' स्त्री० शब्द का प्रयोग हाथी के बाँधने की जंजीर, रस्सी, मध्यभाग[1] (कटि), चारदीवारी, दीवार, भीतरी

---

१. युधे परैः सह दृढबद्धकक्षया (शिशु० १७.२४);
एते हि विद्युद्गुणबद्धकक्षा (मृच्छ० ५.२१)।

कमरा[1], कमरा (सामान्य रूप में), अन्तःपुर आदि अर्थों में पाया जाता है।

हिन्दी में 'कक्षा' शब्द के 'श्रेणी' (class) अर्थ का विकास इस शब्द के 'कमरा' अर्थ से हुआ प्रतीत होता है। किसी विद्यालय में छात्रों को कमरों में पढ़ाया जाता है। साधारणतया प्रत्येक श्रेणी के लिये पृथक्-पृथक् कमरे नियत रहते हैं। हो सकता है कि पहिले छात्रों की श्रेणी को कमरों की संख्या द्वारा ही सूचित किया जाता हो (जैसे—'सातवीं कक्षा का छात्र' कहने का अभिप्राय पहिले रहा होगा 'सातवें कमरे में पढ़ने वाला छात्र')। इस प्रकार 'कमरे' के वाचक 'कक्षा' शब्द के साथ 'श्रेणी' (क्लास) के भाव का भी साहचर्य हो गया होगा और कालान्तर में यह (कक्षा) शब्द 'श्रेणी' (क्लास) को लक्षित करने लगा होगा। 'कक्षा' शब्द का यह अर्थ आधुनिक काल में ही विकसित हुआ प्रतीत होता है। व्यवहारकोश में 'श्रेणी' अर्थ में 'कक्षा' शब्द के प्रयोग का उल्लेख किसी अन्य भारतीय भाषा में नहीं किया गया है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'श्रेणी' अर्थ में 'कक्षा' शब्द किसी अन्य भारतीय भाषा में प्रचलित नहीं है।

घण्टा

हिन्दी में 'घण्टा' पुं० शब्द 'घड़ियाल' (जिसको बजाकर किसी बात की सूचना दी जाती है) और 'साठ मिनट का समय' (दिन-रात का चौबीसवाँ भाग) अर्थ में प्रचलित है। 'घण्टा' शब्द का 'घड़ियाल' (जिसको बजाकर सूचना दी जाती है) अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे[2]—नॄन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये (मनु० १०. ३३)।

'घण्टा' शब्द का 'साठ मिनट का समय' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। यह अर्थ आधुनिक काल में ही विकसित हुआ है। दिन-रात के समय का २४ भागों (hours) में (तथा मिनट, सेकिंड आदि में) विभाजन पाश्चात्य विभाजन है। भारत में इसका प्रचलन सम्भवतः अंग्रेजों के आने पर हुआ। 'घण्टा' शब्द का 'साठ मिनट का समय' (hour) अर्थ इस शब्द के 'घड़ियाल' (जिसको बजाकर किसी बात की सूचना दी जाती है) अर्थ से ही विकसित

---

१. गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत् (मनु० ७.२२४);
क्रान्तानि पूर्वं कमलासनेन कक्षान्तराण्यद्रिपतेर्विवेश (कुमार० ७.७०);
'कक्षा कच्छे वस्त्रायां काञ्च्यां गेहे प्रकोष्ठके' इति यादवः।

२. दासेरकग्रीवायां महती घण्टा प्रतिबद्धा। पञ्च० ४, कथा ६.

हुआ है। पहिले तहसील आदि स्थानों पर ६० मिनट के समय (hour) की सूचना 'घण्टा' (घड़ियाल) बजाकर दी जाती थी, अतः 'घण्टा' शब्द के साथ "साठ मिनट' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'घण्टा' शब्द 'साठ मिनट के समय' को भी लक्षित करने लगा। गैलेट्टी ने अपने तेलुगु भाषा के कोश में 'गण्ट' शब्द के 'साठ मिनट का समय' (hour) अर्थ के विकास की यही प्रक्रिया मानी है।[१] यूल और बर्नेल ने भी अपने ऐंग्लो इण्डियन शब्दों के कोश में gong शब्द का अर्थ करते हुये लिखा है कि gong शब्द सामान्यतः हिन्दुस्तानी घण्टा (अथवा दक्षिण भारतीय भाषाओं में गण्ट) अथवा घड़ियाल के लिये ही प्रयुक्त किया जाता है, जोकि मोटी धातु का एक टुकड़ा होता है और जिसका प्रयोग भारत में : साठ मिनट के समय) की सूचना देने के लिये किया जाता है।[२] यूल और बर्नेल ने gong (जिसका प्रयोग साठ मिनट के समय की सूचना देने के लिये किया जाता था) शब्द के भी 'साठ मिनट का समय' (hour) अर्थ में प्रयोग का उल्लेख किया है।[३]

'घण्टा' शब्द के 'घड़ियाल' और 'साठ मिनट का समय' अर्थ पंजाबी, उर्दू, मराठी, बंगला, असमिया और उड़िया भाषाओं में भी पाये जाते हैं। इन अर्थों में कश्मीरी में 'गाण्टु', कन्नड़ में 'गण्टे' और तेलुगु में 'गण्ट' शब्द मिलते हैं, जोकि 'घण्टा' शब्द से ही विकसित हुये हैं।

(ई) सूचितवाची से सूचकवाची

किसी भाव को सूचित करने के लिये जिस चिह्न का प्रयोग किया जाता है, उस चिह्न को भी बहुधा भाव-साहचर्य से सूचित भाव के वाचक शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगता है।

अवग्रह

हिन्दी में 'अवग्रह' शब्द 'ऽ' चिह्न के लिये प्रयुक्त होता है, जिसे अधिकतर

---

१. ganṭa, gong, and so hour, the hour being beaten on a gong at taluk offices and such places.

२. The word (gong) is commonly applied by Anglo-Indians also to the Hind. ghanṭā (or ganṭa, Dec.) or gharī, a thicker metal disc, not musical, used in India for striking the hour.

३. The gong being used to strike the hour we find the word applied by Fryer (like gurry) to the hour itself, or interval denoted. Yule and Burnell : A Glossary of Anglo-Indian Colloquial words and phrases, p. 295.

सन्धि के कारण लुप्त हुये अकार की पूर्व-उपस्थिति का सूचक माना जाता है। 'अवग्रह' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'अवग्रह' पुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'पृथक्करण'। इसी मूल अर्थ में समस्तपदों तथा व्याकरण-सम्बन्धी अन्य रूपों के अवयवभूत शब्दों अथवा शब्द-भागों को पृथक् करके दर्शाने के लिये 'अवग्रह' शब्द का प्रयोग प्रचलित हुआ। शब्दों अथवा शब्द-भागों के पृथक्करण (अवग्रह) को सूचित करने के लिये जिस चिह्न (ऽ) का प्रयोग किया जाता था, कालान्तर में उसे भी 'अवग्रह' कहा जाने लगा। वस्तुतः यह चिह्न 'अवग्रह' का सूचक था। ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रन्थों में पद-पाठ में पदों को पृथक् करके रखने के लिये इस चिह्न का प्रयोग किया गया है। संस्कृत में सन्धि का भी एक नियम है,[1] जिसके अनुसार पदान्त ए, ओ (एङ्) के परे ह्रस्व अ (अत्) होने पर पूर्वरूप एकादेश हो जाता है अर्थात् पूर्ववर्ण और परवर्ण को मिलाकर पूर्ववर्ण (ए, ओ) हो जाता है। भाव यह है कि पदान्त 'ए', 'ओ' से परे ह्रस्व अ का लोप हो जाता है। इस लुप्त हुये अकार के स्थान में अवग्रह-चिह्न (ऽ) लगाया जाता है। हिन्दी में इसी प्रकार के स्थलों पर लुप्त हुये अकार की पूर्व-उपस्थिति को सूचित करने के लिये 'ऽ' चिह्न लगाया जाता है और इसे 'अवग्रह' कहा जाता है।

हलन्त

हिन्दी भाषा में 'हलन्त' शब्द दो अर्थों में प्रचलित है—एक तो विशेषण के रूप में ऐसे शब्द के लिये 'जिसके अन्त में स्वररहित व्यञ्जन वर्ण हो' और दूसरे पुं० संज्ञा के रूप में 'हल्-चिह्न' (्) के लिये। इनमें पहिला अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु दूसरे अर्थ का विकास हिन्दी में ही हुआ है।

प्रसिद्ध संस्कृत-वैयाकरण पाणिनि द्वारा लाघव और सुविधा की दृष्टि से संस्कृत के समस्त वर्णों के कुछ समूह बनाये गये हैं। इन वर्ण-समूहों को प्रत्याहार कहते हैं।[2] इन प्रत्याहारों में 'हल्' भी एक प्रत्याहार है, जिसके

---

१. एङः पदान्तादति। अष्टा० ६.१.१०९।

२. पाणिनि-व्याकरण में निम्नलिखित चौदह माहेश्वर-सूत्रों के आधार पर बनाये गये ४२ प्रत्याहारों का प्रयोग होता है—

अइउण।१। ऋऌक्।२। एओङ्।३। ऐऔच्।४। हयवरट्।५।लण्।६। ञमङणनम्।७। झभञ्।८। घढधष्।९। जबगडदश्।१०। खफछठथचटतव्।११। कपय।१२। शषसर्।१३। हल्।१४।

अन्तर्गत समस्त व्यञ्जन वर्ण आ जाते हैं।[१] 'हल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत समस्त व्यञ्जनों के आ जाने के कारण संस्कृत व्याकरण में 'हल्' शब्द व्यञ्जनमात्र का बोधक है। अतः जिस शब्द के अन्त में व्यञ्जन वर्ण हो उसे 'हलन्त' वि० कहा जाता है।

हिन्दी एवं संस्कृत की वर्णमाला में जो व्यञ्जन वर्ण लिखे जाते हैं, उनमें उच्चारण की सुविधा के लिये अ स्वर मिला रहता है (जैसे—क=क्+अ), क्योंकि स्वररहित शुद्ध व्यञ्जन[२] का उच्चारण नहीं हो सकता। शुद्ध व्यञ्जन को लिखने के लिये उसके नीचे ् चिह्न लगाया जाता है। 'हलन्त' अर्थात् व्यञ्जनान्त शब्द के ् चिह्न से युक्त होने के कारण अज्ञानवश 'हलन्त' (अर्थात् व्यञ्जनान्त) के सूचक इस ् चिह्न को ही 'हलन्त' समझा जाने लगा है। वस्तुतः यह हल्-चिह्न है। समझदार हिन्दी लेखक इस ् चिह्न के लिये 'हल्-चिह्न' शब्द का ही प्रयोग करते हैं।

(उ) कालवाची से कार्यवाची

काल अथवा समय के वाचक शब्द बहुधा उस काल या समय पर किये जाने वाले किसी कार्य अथवा क्रिया को लक्षित करने लगते हैं।

पर्व (पर्वन्)

हिन्दी में 'पर्व' पुं० शब्द अधिकतर 'त्यौहार' अर्थ में प्रचलित है, यद्यपि महाभारत के प्रसङ्ग में 'पुस्तक का भाग' अर्थ भी समझा जाता है। संस्कृत में इसका शुद्ध रूप 'पर्वन्' नपुं० है। हिन्दी में संस्कृत शब्दों के प्रथमा विभक्ति एकवचन के रूप में ग्रहण किये जाने के कारण यह हिन्दी में 'पर्व' रूप में प्रचलित है। संस्कृत में 'पर्वन्' शब्द का 'त्यौहार' अर्थ भी पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में 'पर्वन्' शब्द का मौलिक अर्थ है 'गाँठ अथवा जोड़' (विशेषकर सरकण्डे, बाँस अथवा किसी अन्य पौधे की गाँठ या जोड़)। वैदिक साहित्य में 'पर्वन्' शब्द का इस अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।[३]

---

१. हयवरट् के ह से लेकर हल् के ल् तक के वर्णों को समाहित करने वाले 'हल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी व्यञ्जन वर्ण आ जाते हैं।

२. शुद्ध व्यञ्जन स्वररहित ही होता है।

३. अथर्व० १२.३.३१; तैत्तिरीयसंहिता १.१.२.१; शतपथब्राह्मण ६.३.१.३१ आदि।

सरकण्डे, बाँस आदि में गाँठों की उपस्थिति से उनके अनेक अवयव अथवा भाग से दिखाई पड़ते हैं। अतः उनके सादृश्य से संस्कृत में 'गाँठ' के वाचक 'पर्वन्' शब्द के 'शरीरावयव'[1], 'अङ्ग, भाग', 'पुस्तक का भाग'[2], 'समय का भाग', 'जीने की सीढ़ी'[3] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

'समय के भाग' के लिये 'पर्वन्' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम चातुर्मास्य के लिये पाया जाता है। वैदिक काल में वर्ष को चार-चार महीने के तीन विभागों (ऋतुओं) में विभाजित किया गया था। इन विभागों को 'पर्वन्' कहा जाता था। इन तीनों ऋतुओं के प्रारम्भ में विशेष-यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता था, जिनको क्रमशः वैश्वदेव, वरुणप्रघास और शाकमेध कहा जाता था। वर्ष के विभागों पर किये जाने वाले इन यज्ञों को भी बाद में 'पर्वन्' कहा जाने लगा। ऋग्वेद १.६४.४ में 'पर्वन्' शब्द से सम्भवतः चातुर्मास्य यज्ञों की ओर ही सङ्केत है।[4] बाद में 'पर्वन्' शब्द का प्रयोग समय के अन्य भागों अथवा निश्चित समयों[5] के लिये भी किया जाने लगा। विशेषकर चन्द्रमा के चार परिवर्तनों के दिनों[6] (अर्थात् पूर्णमासी, अमावस्या और प्रत्येक पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी) को तथा इनमें होने वाले यज्ञानुष्ठानों को भी 'पर्वन्' कहा जाने लगा। 'पर्वन्' शब्द का 'उत्सव अथवा त्यौहार' अर्थ इन्हीं अर्थों से विकसित हुआ है। प्राचीन काल में उत्सव अथवा त्यौहार पूर्णमासी, अमावस्या आदि समय के निश्चित विभागों पर ही किये जाते थे। अतः पूर्णमासी, अमावस्या आदि के वाचक 'पर्वन्' शब्द के साथ उत्सव या त्यौहार

---

१. ऋग्वेद १.६१.१२, ४.१६.६; अथर्ववेद १.११.१, १.१२.२; कर्कशाङ्गुलिपर्वया। रघु० १२.४१.

२. जैसे—महाभारत के अठारह 'पर्व'।

३. सोपानपर्वाणि। रघु० १६.४६.

४. भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम्। ऋग्वेद १.६४.४.

५. विष्णुपुराण में पाँच 'पर्वन्' कहे गये हैं—
चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावस्याथ पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र! रविसंक्रान्तिरेव च॥

६. सावित्राञ्छान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः।
पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च॥ मनु० ४.१५०.

के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'पर्वन्' शब्द 'उत्सव अथवा त्यौहार' को लक्षित करने लगा। संस्कृत साहित्य में 'पर्वन्' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में पाया जाता है।[१] विश्वकोश में कहा गया है—'पर्व स्यादुत्सवे गन्थौ प्रस्तावे लक्षणान्तरे।' आजकल हिन्दी में होली, दीवाली, दशहरा आदि त्यौहारों के लिये 'पर्व' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

जहाँ 'पर्व' (सं० पर्वन्) शब्द के अर्थ में इतना भेद हुआ है, वहाँ इसके तद्भव रूप 'पोर' में अधिक अर्थ-भेद नहीं हुआ है। हिन्दी में 'अङ्गुलि के दो गाँठों के बीच के भाग' को 'पोर' कहा जाता है और 'गन्ने अथवा बाँस आदि की दो गाँठों के बीच के भाग' को 'पोरी' कहते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि अनेक पर्वों अर्थात् गाँठों या शिलाखण्डों के जोड़ों वाला होने के कारण ही संस्कृत में 'पहाड़' को 'पर्वत' कहा गया। पहिले 'पर्वत' शब्द का प्रयोग 'पहाड़' के वाचक शब्दों के विशेषण के रूप में होता था।[२]

(ऊ) ऋतुवाची से वर्षवाची

ऋतु अथवा ऋतुविशेष को लक्षित करने वाले शब्द बहुधा भाव-साहचर्य से 'वर्ष' को लक्षित करने लगते हैं। प्रत्येक ऋतु एक वर्ष बाद आती है, अतः 'वर्ष' को ऋतुवाची शब्दों द्वारा लक्षित किया जाने लगता है।

वर्ष

हिन्दी में 'वर्ष' पुं० शब्द 'साल' (बारह महीनों का काल) अर्थ में प्रचलित है। इस अर्थ में 'वर्ष' शब्द का प्रयोग संस्कृत में भी पाया जाता है[३], किन्तु संस्कृत में 'वर्ष' पुं० एवं नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है 'वर्षा'। इस अर्थ से ही इसके 'वर्षा ऋतु' और उससे 'साल' अर्थ विकसित हुये हैं।[४]

---

१. स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ (कृष्णरामौ)। भागवत १०.४१.४१.

२. देखिये 'पर्वत' शब्द का अर्थ-विकास।

३. वर्षभोग्येण शापेन। मेघ० १.

४. Varṣa denotes primarily 'rain', then 'rainy season' and 'year'. Macdonell and Keith : Vedic Index of Names and Subjects, vol. II (varṣa-).

ऋग्वेद में 'वर्ष' शब्द का प्रयोग 'वर्षा' अर्थ में ही पाया जाता है।[1] बाद के संस्कृत साहित्य में भी 'वर्ष' शब्द का प्रयोग 'वर्षा'[2] अथवा 'बौछार'[3] अर्थ में पाया जाता है। 'वर्षा' अर्थ के पश्चात् 'वर्ष' शब्द का प्रयोग 'वर्षा ऋतु' अर्थ में प्रचलित हुआ।

'वर्षा ऋतु' एक साल (अर्थात् बारह महीने) में आती है। अतः 'वर्षा ऋतु' के वाचक 'वर्ष' शब्द द्वारा 'साल' अर्थात् दो वर्षाओं के बीच के (बारह महीने के) काल को लक्षित किया जाने लगा। 'साल' अर्थ में 'वर्ष' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऐतरेय[4] तथा शतपथ[5] आदि ब्राह्मणों में पाया जाता है, इससे पूर्व अर्थात् ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि ग्रन्थों में 'वर्ष' शब्द का 'साल' अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'साल' अर्थ में 'वर्ष' शब्द प्रायः नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होता रहा है। 'वर्ष' शब्द का 'साल' अर्थ मराठी, गुजराती, उड़िया, कन्नड़ आदि भाषाओं में भी पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'ऋतु' को लक्षित करने वाले कई अन्य शब्दों का भी 'वर्ष' अर्थ विकसित हुआ है। संस्कृत में **हिमा**[6] शब्द का मौलिक अर्थ 'जाड़े की ऋतु' है। किन्तु वैदिक साहित्य में 'हिमा' शब्द के 'जाड़े की ऋतु' अर्थ से 'साल' अर्थ का भी विकास पाया जाता है। ऋग्वेद[7]

---

१. वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः।
ऋग्वेद ५.५८.७.

२. विद्युत्स्तनितवर्षेषु। मनु० ४.१०३.

३. सुरभि सुरविमुक्तं पुष्पवर्षं पपात। रघु० १२.१०२.

४. ऐतरेयब्राह्मण ४.१७.५.

५. शतं हिमा इति शतं वर्षाणि। शतपथ० १.९.३.१९.

६. इसके सजातीय शब्द कुछ अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'जाड़े की ऋतु' अर्थ में पाये जाते हैं, जैसे—लिथुआनियन žiema, लेटिश, ziema, चर्चस्लैविक, सर्बोक्रोशियन, बोहेमियन, पोलिश और रशन zima, लैटिन hiems. लैटिन में bīmus (bi-himos) शब्द 'दो साल का' अर्थ में मिलता है, जिसमें 'जाड़े की ऋतु' के वाचक hiems का कुछ विकसित रूप विद्यमान दिखाई पड़ता है।

७. त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः—'हे रुद्र, मैं तुम्हारे द्वारा दी गई अत्यधिक कल्याणकर ओषधियों से सौ वर्ष प्राप्त करूँ' (ऋग्वेद २. ३३. २)।

में तथा बाद के वैदिक साहित्य[1] में 'हिमा' शब्द का 'साल' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है (लौकिक संस्कृत साहित्य में 'हिमा' शब्द का 'साल' अर्थ नहीं पाया जाता, केवल वैदिक साहित्य में ही पाया जाता है)।

संस्कृत में **समा** स्त्री० शब्द का प्रयोग भी (अधिकतर बहुवचन में) 'साल' अर्थ में पाया जाता है। मैकडॉनेल और कीथ के अनुसार 'समा' शब्द का मौलिक अर्थ 'ग्रीष्म ऋतु'[2] (summer) था। उस के बाद 'ऋतु' और 'साल' अर्थों का विकास हुआ।[3] वैदिक साहित्य[4] तथा लौकिक संस्कृत साहित्य[5] में 'समा' (अधिकतर बहुवचन) शब्द का 'साल' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

संस्कृत में **शरद्** स्त्री० शब्द का प्रयोग भी 'साल' अर्थ में पाया जाता

---

१. शतं हिमा इति शतं वर्षाणि। शतपथ० १.९.३.१९. वैदिक साहित्य में 'हिमा' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'शत' के साथ ही पाया जाता है।

२. Samā appears originally to have denoted 'summer', a sense which may be seen in a few passages of the Atharvaveda. Hence it also denotes more generally 'season', a rare use. More commonly it is simply 'year'. Macdonell and Keith : Vedic Index of Names and Subjects, vol. I, p. 429 (samā).

यह उल्लेखनीय है कि 'समा' शब्द के कुछ सजातीय शब्द अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'ग्रीष्म ऋतु' अर्थ में पाये जाते हैं, जैसे—आयरिश sam, प्राचीन नोर्स sumar, डैनिश sommer, स्वीडिश sommar, प्राचीन अंग्रेज़ी sumor, मध्यकालीन अंग्रेज़ी sumer, आधुनिक अंग्रेज़ी summer, डच zomer, प्राचीन हाई जर्मन sumar, मध्यकालीन हाई जर्मन sumer, आधुनिक हाई जर्मन sommer, अवेस्तन ham.

३. ग्रामीण खड़ी बोली में उपलब्ध 'समा' पुं० शब्द संस्कृत का 'समा' ही प्रतीत होता है, केवल लिङ्गभेद हो गया है। 'समा' पुं० शब्द का प्रयोग ग्रामीण लोगों द्वारा 'मौसम' अथवा 'साल' अर्थ में ही किया जाता है, जैसे—'अब का समा बड़ा अच्छा रहा', 'यह समा तो बड़ा खराब रहा' आदि।

४. ऋग्वेद ४.५७.७, १०.८५.५, १०.१२४.४; अथर्व० ५.८.८; ईशोपनिषद् मन्त्र २ (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः) आदि।

५. तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथञ्चित् (रघु० ८.९२);
इसी प्रकार रघु० १२.६,१९.४; महावीर० ४.४१ आदि में।

है। वैदिक साहित्य[१] तथा लौकिक संस्कृत साहित्य[२] में 'शरद्' शब्द का 'साल' अर्थ में प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'शरद्' शब्द का मौलिक अर्थ 'शरद् ऋतु' है (जोकि आश्विन् और कार्तिक मास में होती है)। इस शब्द के इसी अर्थ से ही 'साल' अर्थ का विकास हुआ है। यह ऋतु कृषिप्रधान लोगों के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि इसमें फ़सल पक जाती है। अतः इस ऋतु के वाचक 'शरद्' शब्द द्वारा ही 'साल' को भी लक्षित किया जाने लगा। वैदिक साहित्य में 'साल' अर्थ में 'शरद्' शब्द का ही सबसे अधिक प्रयोग पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि 'ऋतु' के वाचक शब्दों द्वारा 'साल' (अर्थात् बारह महीने के समय) को लक्षित किये जाने के उदाहरण अन्य भाषाओं में भी पाये जाते हैं। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है—" 'वर्ष' के लिये अन्य अधिकतर शब्द 'समय' अथवा 'समय की निश्चित अवधि', जिसके अन्तर्गत 'वर्ष की विभिन्न ऋतुओं' और 'दिन' अथवा 'घंटे' के वाचक शब्द भी आ जाते हैं, के वाचक शब्दों के सजातीय भी हैं।"[३] आधुनिक स्लैविक भाषा में lëto शब्द 'ग्रीष्म ऋतु' अर्थ में भी प्रचलित है और बहुधा 'वर्ष' अर्थ में भी प्रयुक्त किया जाता है। अवेस्तन भाषा में 'वर्ष' के लिये sarəd शब्द पाया जाता है, जोकि संस्कृत के 'शरद्' शब्द का सजातीय है। आधुनिक फ़ारसी भाषा का 'साल' शब्द भी अवेस्तन भाषा के sarəd शब्द से विकसित हुआ है।[४]

(ए) छन्दोवाची से मन्त्रवाची

किसी विशिष्ट छन्द का वाचक शब्द बहुधा उस छन्द में रचित किसी मन्त्रविशेष को लक्षित करने लगता है।

---

१. तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
ऋग्वेद १.७२.३.

२. त्वं जीव शरदः शतम् (रघु० १०.१); ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परःसहस्रं शरदां तपांसि (उत्तर० १.१५)।

३. Most of the other words for 'year' are also cognate with the words for 'time' or 'fixed period of time', including terms for various seasons of the year and for 'day' or 'hour'. Buck, C. D.: A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages (14.73; year), p. 1011.

४. वही, पृष्ठ १०१२.

गायत्री

संस्कृत में 'गायत्री' स्त्री० शब्द के मुख्यतया दो अर्थ हैं—१. एक वैदिक छन्द, जिसमें आठ-आठ अक्षरों के तीन पाद होते हैं, २. उक्त छन्द में रचित ऋग्वेद का एक मन्त्रविशेष, जिसका उच्चारण बहुत से लोगों द्वारा प्रातःकालीन और सायंकालीन सन्ध्याओं में तथा अन्य विभिन्न अवसरों पर किया जाता है। इस मन्त्र को बड़ा पवित्र माना जाता है। यह इस प्रकार है—'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' (ऋग्वेद ३.६२.१०)। हिन्दी में 'गायत्री' स्त्री० शब्द अधिकतर इसी मन्त्र के लिये प्रयुक्त होता है। 'गायत्री' शब्द के इस अर्थ के विकास की प्रक्रिया बिल्कुल स्पष्ट है। वैदिक साहित्य में 'गायत्री' एक प्रमुख छन्द है। ऋग्वेद का लगभग एक चौथाई भाग इसी छन्द में रचा गया है। ऋग्वेद के छन्दों में व्यवहार की दृष्टि से त्रिष्टुप् के पश्चात् इसी का स्थान है। उपर्युक्त मन्त्र (तत्सवितु...... ......प्रचोदयात्) गायत्री छन्द में है, जिसमें 'सविता' देवता की स्तुति की गई है। इसका अर्थ है—'हम सविता देवता के उस श्रेष्ठ तेज को प्राप्त करें। वह हमारे विचारों को प्रेरित करे'। इस मन्त्र का भाव बड़ा उदात्त और प्रेरणाप्रद होने के कारण इसको प्रातःकालीन और सायंकालीन प्रार्थनाओं में तथा अन्य विशिष्ट अवसरों पर प्रयुक्त किया जाता रहा है। 'गायत्री' छन्द में होने के कारण इसको 'गायत्री' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा और कालान्तर में 'गायत्री' इस मन्त्र का नाम पड़ गया।

चतुर्थ भाग

विविध प्रवृत्तियों पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

चतुर्थ भाग

विविध प्रवृत्तियों पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

प्रस्तुत भाग में ऐसे अर्थ-परिवर्तनों को रक्खा गया है, जिनमें अर्थ-परिवर्तन की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। प्रत्येक प्रवृत्ति को एक पृथक् अध्याय में रक्खा गया है। इस प्रकार इस भाग में निम्नलिखित अध्याय हैं :—

(अ) अज्ञान पर आधारित अर्थ-परिवर्तन,
(आ) शब्द-साहचर्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन,
(इ) विशेषण से संज्ञा,
(ई) सामान्यार्थक से विशेषार्थक,
(उ) विशेषार्थक से सामान्यार्थक,
(ऊ) शोभनशब्दप्रयोग,
(ए) प्रकीर्णक।

जैसा कि पहिले भी उल्लेख किया गया है, बहुत से अर्थ-परिवर्तनों को कई प्रकार से देखा जा सकता है। भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से उनको भिन्न-भिन्न श्रेणियों अथवा अध्यायों में रक्खा जा सकता है। यह बात प्रस्तुत भाग के विभिन्न अध्यायों में आये हुये अर्थ-परिवर्तनों के विषय में भी समान रूप से लागू होती है। इस भाग के विभिन्न अध्यायों में आये हुये बहुत से अर्थ-परिवर्तन ऐसे हैं जिनको अन्य अध्यायों में भी रक्खा जा सकता था तथा अन्य अध्यायों में आये हुये बहुत से अर्थ-परिवर्तनों को इन अध्यायों में भी रक्खा जा सकता था।

अध्याय १३

अज्ञान पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

प्रस्तुत अध्याय में ऐसे अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है, जो अज्ञान पर आधारित हैं। अज्ञान पर आधारित अर्थ-परिवर्तनों को कई श्रेणियों में रक्खा जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में इन्हें तीन श्रेणियों में रक्खा गया है—

(अ) शब्द-सादृश्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन,

(आ) अज्ञानवश दुहरे प्रयोग से अर्थ-परिवर्तन,

(इ) शब्दरूप का ज्ञान न होने से अशुद्ध प्रयोग से अर्थ-भेद।

(अ) शब्द-सादृश्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

समान ध्वनि अथवा स्वरूप वाले दो शब्द बहुधा मस्तिष्क में एक दूसरे से सम्बद्ध हो जाते हैं और उनमें से एक शब्द का अर्थ दूसरे शब्द के अर्थ से प्रभावित हो जाता है। शब्दों की ध्वनि अथवा स्वरूप के सादृश्य से एक शब्द कालान्तर में दूसरे शब्द का भाव ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। अंग्रेज़ी का sand-blind शब्द 'कुछ अन्धा, जिसको कुछ धुँधला दिखाई दे' अर्थ में प्रचलित है। पहिले इस शब्द का स्वरूप sam-blind था। sam-blind में sam शब्द 'semi' (= आधा) का विकसित रूप था, किन्तु बाद में sam का sand शब्द से स्वरूप में सादृश्य होने के कारण उसको भूल से sand समझा जाने लगा और sam-blind के स्थान पर sand-blind शब्द प्रचलित हो गया। इसी प्रकार अंग्रेज़ी का shamefast शब्द shamefaced बन गया है। shamefast शब्द पहिले 'शर्मालु' अर्थ में प्रचलित था। किन्तु बाद में अंग्रेज़ी के face शब्द से fast का स्वरूप में सादृश्य होने के कारण shamefast शब्द को shamefaced (जिसके चेहरे पर शर्म हो) समझा जाने लगा। आजकल shamefaced शब्द ही 'शर्मालु' अथवा 'लज्जायुक्त' अर्थ में प्रचलित है।

शब्दों की ध्वनि अथवा स्वरूप के सादृश्य से अर्थ में परिवर्तन हो जाने की प्रक्रिया भ्रान्त-व्युत्पत्ति (popular etymology) का ही एक प्रकार है। इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तन अज्ञान पर आधारित होते हैं।

हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में ऐसे शब्द बहुत कम संख्या में पाये जाते हैं, जिनके अर्थों में परिवर्तन अन्य शब्दों की ध्वनि अथवा स्वरूप के सादृश्य के कारण हो गया है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि संस्कृत शब्दों के शुद्ध रूप में प्रयोग की प्रवृत्ति हिन्दी तथा संस्कृत के लेखकों में पर्याप्त मात्रा में रही है। संस्कृत शब्दों के स्वरूप को व्याकरण के नियमों द्वारा बाँध दिये जाने के कारण भी ऐसे अर्थ-परिवर्तन बहुत कम हुये हैं, तथापि कुछ उदाहरण पाये जाते हैं, जिनका विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

कलम

हिन्दी में 'कलम' स्त्री० शब्द के अर्थ हैं—(१) लेखनी, (२) बहीखाते में लिखा जाने वाला कोई पद (item), जैसे—'इसमें एक कलम छूट गई है,' (३) पेड़ की वह टहनी जो दूसरी जगह बैठाने या दूसरे पेड़ में पैबन्द लगाने के लिये काटी जाये, (४) वे बाल जो हजामत बनवाने में कनपटियों के पास छोड़ दिये जाते हैं, (५) बालों या गिलहरी की पूँछ की बनी हुई वह कूँची जिससे चित्रकार चित्र बनाते हैं या रंग भरते हैं, (६) चित्र अङ्कित करने की किसी विशेष स्थान या परम्परा की शैली, जैसे—पहाड़ी कलम, राजस्थानी कलम, (७) शीशे का कटा हुआ लम्बा टुकड़ा जो झाड़ में लगाया जाता है, (८) किसी चीज़ का जमा हुआ छोटा टुकड़ा, रवा, (९) वह औज़ार जिससे महीन चीज़ काटी, खोदी या नकाशी जाये।[1]

'कलम' शब्द का 'लेखनी' अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु हिन्दी में प्रचलित अन्य उपर्युक्त अर्थ संस्कृत में नहीं पाये जाते। वस्तुतः संस्कृत में 'कलम' शब्द का 'लेखनी' अर्थ बहुत बाद के साहित्य में पाया जाता है। मोनियर विलियम्स और आप्टे आदि ने अपने कोशों में यद्यपि 'कलम' शब्द का एक अर्थ 'लेखनी, सरकण्डे की बनी हुई लेखनी' (pen, a reed for writing with) भी दिया है,[2] किन्तु 'कलम' शब्द के 'लेखनी' अर्थ

---

१. रामचन्द्र वर्मा : प्रामाणिक हिन्दी कोश।

२. शब्दकल्पद्रुम में 'कलम' शब्द का 'लेखनी' अर्थ देते हुये उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है—कलते कलयति वा अक्षरं प्रकाशयति जनयति वा (कल+'कलिकर्द्योरमः' उणादि० ४.८४ इति अमः)।

में प्रयोग के न तो उदाहरण ही दिये हैं और न किसी ग्रन्थ का निर्देश ही दिया है। केवल रौथ और बोथलिंक के 'संस्कृत-वोर्टरबुक' में 'कलम' शब्द के 'लेखनी' अर्थ में त्रिकाण्डशेषकोश और मेदिनीकोश में पाये जाने का उल्लेख मिलता है।[1] त्रिकाण्डशेषकोश को लगभग तेरहवीं शताब्दी का माना जाता है, अतः 'कलम' शब्द का यह अर्थ तेरहवीं शताब्दी के आस-पास रहा होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृत में 'कलम' शब्द का 'लेखनी' अर्थ बहुत बाद का है। लिखने के उपकरण के लिये संस्कृत में अधिकतर 'लेखनी' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में pen के पर्यायवाची शब्द के रूप में 'कलम' शब्द भी दिया है, किन्तु उसने यह स्पष्ट लिखा है कि संस्कृत में 'लेखनी' अर्थ में 'कलम' शब्द बाद का है।

संस्कृत में 'कलम' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'धान' (शालि, जो मई-जून में बोया जाता है और दिसम्बर-जनवरी में पकता है) अर्थ में पाया जाता है, जैसे[2]—कलमगोपवधू—'धान के खेत की रखवाली करने वाली स्त्री' (शिशु० ६. ४९)।

'कलम' शब्द से स्वरूप और अर्थ की दृष्टि से सादृश्य रखने वाले शब्द अरबी, फ़ारसी, ग्रीक, लैटिन, इटैलियन आदि भाषाओं में भी पाये जाते हैं। अरबी और फ़ारसी[3] में 'क़लम' शब्द 'लेखनी' अर्थ में तथा हिन्दी में प्रचलित कतिपय अन्य अर्थों में पाया जाता है। ग्रीक में καλαμοσ शब्द का मौलिक अर्थ 'सरकण्डा' था, बाद में (लिखने के उपकरण के रूप में) इस शब्द का 'सरकण्डे की कलम' अर्थ भी विकसित हुआ। लैटिन भाषा में भी calamus शब्द के

१. कलमा लेखनीचौरशालयः। त्रिकाण्डशेष, श्लोक २९४.
कलमः पुंसि लेखन्यां शालौ पाटच्चरेऽपि च। मेदिनी।

२. कलमस्य गोपिकाम् (किरात० ४.९); उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः कपोलदेशे कलमाग्रपिङ्गलाः (कुमार० ५. ४७)।

३. Qalam, a pen, reed; a pen-knife; a knife, poniard; sword; an engraving tool; a character, mode of writing; an arrow for gaming or drawing lots; a slip; a section, a paragraph; the upper part of a beard tapering into a point; a kind of firework; a crystal (as of salts). Steingass, F.: Persian-English Dictionary, p. 985.

'सरकण्डा', 'सरकण्डे की लेखनी' अर्थ पाये जाते हैं। इन्हीं से सम्बद्ध इटैलियन भाषा का calamo शब्द है। अतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'लेखनी' अर्थ में यह शब्द मूलतः किस भाषा का है। इसके समाधान के लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। मोनियर विलियम्स आदि ने अपने कोशों में तुलनात्मक रूप में अरबी, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के उपर्युक्त शब्द दिये हैं, किन्तु यह नहीं लिखा है कि इस अर्थ में 'कलम' शब्द मूलतः किस भाषा का है। बृहत् हिन्दी कोश में 'कलम' शब्द अरबी भाषा से आया हुआ लिखा है। बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में pen के पर्यायवाची शब्द के रूप में संस्कृत के 'कलम' शब्द को देते हुये लिखा है कि यह शब्द ग्रीक भाषा से आया है।[१] बक ने इस विषय में अपने मत की पुष्टि के लिये वेबर के एक लेख का भी निर्देश दिया है।[२] बक का यह मत कि संस्कृत में 'कलम' शब्द 'लेखनी' अर्थ में ग्रीक भाषा से आया है, युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यदि यह शब्द ग्रीक भाषा से आया हुआ होता तो इस शब्द के 'लेखनी' अर्थ में प्रयोग के संस्कृत-साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों में भी कुछ प्रमाण अवश्य मिलते। संस्कृत-साहित्य में 'कलम' शब्द के लेखनी अर्थ में पाये जाने का सम्भवतः तेरहवीं शताब्दी से पहिले का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस कारण तथा 'कलम' शब्द के 'लेखनी' अर्थ में अरबी (जोकि सेमेटिक परिवार की भाषा है) तथा फ़ारसी भाषाओं में पाये जाने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं में 'लेखनी' अर्थ में 'कलम' शब्द मुसलमानों के शासन-काल में अरबी तथा फ़ारसी भाषाओं से आया है (क्योंकि उस काल में भारतीय भाषाओं पर अरबी और फ़ारसी भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था)। यह भी सम्भव है कि अरबी तथा फ़ारसी भाषाओं में 'कलम' शब्द ग्रीक भाषा से आया हो और मुसलमानों के शासन-काल में उन भाषाओं से भारतीय भाषाओं में फैला हो। मुसलमानों के शासनकाल में अरबी तथा फ़ारसी भाषाओं के प्रभाव से 'कलम' शब्द के 'लेखनी' अर्थ में प्रचलित हो जाने के कारण संस्कृत में भी इसको 'लेखनी' अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा

---

१. Skt. late kalama-, fr. Grk. κάλαμοσ. Buck, C.D.: A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages (18.57; pen), p. 1290.

२. Weber, Ber. Preuss. Akad. 1890.912 ff.

होगा और स्वरूप में सादृश्य रखने वाले 'कलम' शब्द के 'धान' अर्थ में संस्कृत में भी पाये जाने के कारण बाद में इसको 'लेखनी' अर्थ में संस्कृत शब्द ही समझा जाने लगा होगा। यह स्पष्ट है कि 'लेखनी' अर्थ में 'कलम' शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का शब्द नहीं है, चाहे यह अरबी भाषा से आया हो अथवा ग्रीक भाषा से।

'कलम' शब्द का 'लेखनी' अर्थ पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगला तथा कन्नड़ आदि अन्य भारतीय भाषाओं में भी पाया जाता है।

कार्यवाही

हिन्दी में 'कार्यवाही' स्त्री० शब्द 'कार्रवाई' (किसी सभा आदि की कार्रवाई) अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'कार्यवाही' शब्द का प्रयोग नहीं पाया जाता। यह शब्द आधुनिक काल में ही बनाया गया है।

'कार्यवाही' शब्द फ़ारसी भाषा के 'कार्रवाई' शब्द का बिना सोचे-समझे किया हुआ हिन्दी रूपान्तर है। 'कार्रवाई' शब्द के भाव को व्यक्त करने के लिये हिन्दी में उससे ध्वनि तथा रूप में सादृश्य रखने वाला 'कार्यवाही' शब्द बना लिया गया है। संस्कृत-शब्दरचना के अनुसार इस अर्थ में 'कार्यवाही' शब्द का प्रयुक्त किया जाना अनुपयुक्त है, क्योंकि संस्कृत में 'कार्यवाही' शब्द का अर्थ हो सकता है—'कार्य (या उसके भार) को वहन करने वाला'। यह अर्थ इस शब्द के प्रचलित अर्थ से मेल नहीं खाता। अतः 'कार्रवाई' अर्थ में 'कार्यवाही' शब्द को संस्कृत शब्द नहीं समझा जाना चाहिये (यद्यपि स्वरूप से यह संस्कृत शब्द दिखाई पड़ता है)।

यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी में 'कार्यवाही' शब्द का प्रयोग 'सभा आदि की कार्रवाई' के लिये ही किया जाता है, 'कार्रवाई' शब्द के अन्य अर्थों को यह शब्द लक्षित नहीं करता। फ़ारसी भाषा में 'कार्रवाई' शब्द के उपयोगिता, किसी कार्य को चलाना, व्यवसाय, प्रबन्ध, चलाना आदि कई अर्थ पाये जाते हैं।[१] उर्दू तथा बोलचाल की हिन्दी भाषा में 'कार्रवाई' शब्द के गुप्त प्रयत्न, चाल आदि अर्थ भी पाये जाते हैं।

'कार्यवाही' शब्द मराठी, गुजराती, बंगला आदि अन्य भाषाओं में नहीं

---

१. स्टीनगैस : पर्शियन-इंगलिश डिक्शनरी।

पाया जाता ।[1] हिन्दी शब्द सागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश, भाषा शब्दकोश बृहत् हिन्दी कोश आदि हिन्दी के कोशों में भी 'कार्यवाही' शब्द नहीं दिया हुआ है । सम्भवतः 'कार्यवाही' शब्द के आधुनिक काल में ही बनाये जाने के कारण यह शब्द इन कोशों में नहीं दिया हुआ है ।

दम्पति

हिन्दी में 'दम्पति' पुं० शब्द 'पति और पत्नी का जोड़ा' अर्थ में प्रचलित है । संस्कृत में 'पति और पत्नी का जोड़ा' अर्थ में 'दम्पती' शब्द का प्रयोग पाया जाता है,[2] जोकि 'दम्पति' शब्द का द्विवचन का रूप है। हिन्दी में भूल से 'दम्पति' को ही शुद्ध शब्द समझ लिया गया है। इस भूल का कारण 'दम्पती' में 'पति' शब्द का पाया जाना प्रतीत होता है। 'पति' शब्द में अन्त में ह्रस्व इ होती है, अतः 'दम्पती' शब्द में भी भूल से ह्रस्व इ ही समझ कर 'दम्पति' शब्द को ठीक मान लिया गया, यह ध्यान नहीं दिया गया कि यह (दम्पती) शब्द 'दम्पति' का द्विवचन का रूप है । हिन्दी में कतिपय विद्वान् लेखक ही शुद्ध 'दम्पती' शब्द का प्रयोग करते हैं ।

यह उल्लेखनीय है कि बहुत से संस्कृत-वैयाकरणों और टीकाकारों ने भी 'दम्पती' शब्द का मौलिक अर्थ समझने में भूल की है। वैयाकरणों ने 'दम्पती' शब्द को 'जाया' (=पत्नी) और 'पति' का द्वन्द्व माना है (जाया च पतिश्च) । 'जाया' के स्थान पर 'दम्' निपातन से मान लिया गया है । काशिका २.२.३१ में कहा गया है—

जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च निपात्यते ।

अमरकोश में 'दम्पती' शब्द के अन्य पर्यायवाची शब्द देते हुये कहा गया है—

दम्पती जम्पती जायापती भार्यापती च तौ । २.७.३८.

वस्तुतः संस्कृत में 'दम्पति' शब्द का मौलिक अर्थ है—'घर का स्वामी' ('दम्'='घर'; 'पति'='स्वामी') । स्त्री और पुरुष दोनों घर के स्वामी

---

१. मोलसवर्थ के मराठी भाषा के कोश, मेहता के गुजराती भाषा के कोश, आशुतोष देव के बंगला भाषा के कोश आदि में 'कार्यवाही' शब्द नहीं दिया हुआ है ।

२. तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम् । रघु० १.३५.

होते हैं, इस कारण 'दोनों के जोड़े' को 'दम्पती' कहा गया। ऋग्वेद में 'दम्पति' शब्द का प्रयोग 'गृह-स्वामी' अर्थ में ही पाया जाता है। ऋग्वेद १.१२७.८ में 'अग्नि' को 'दम्पति' (गृहस्वामी) कहा गया है।[१] ऋग्वेद १.१५३.४ में 'गृहस्वामी' के लिये 'पतिर् दन्' का भी प्रयोग पाया जाता है[२]। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'पति और पत्नी के जोड़े' के लिये प्रचलित 'दम्पती' शब्द 'दम्पति' (गृहस्वामी) का द्विवचन का रूप है। 'दम्' (=जाया) और 'पति' का द्वन्द्व नहीं।

यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद में 'गृह' अर्थ में पाये जाने वाले 'दम्' अथवा 'दम' शब्द से स्वरूप और अर्थ की दृष्टि से मिलते-जुलते शब्द अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी पाये जाते हैं। सी० डी० बक ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश (पृष्ठ ४५८) में 'दम' शब्द का भारत-यूरोपीय रूप *domo अथवा *domu 'घर' माना है और जिसकी उत्पत्ति *dem 'बनाना' (=ग्रीक δεμω) से मानी है। 'घर' अर्थ में ही इससे सम्बद्ध ग्रीक δόμos, लैटिन domus, चर्चस्लैविक domŭ, सर्बोक्रोशियन dom, बोहेमियन dům, पोलिश dom, रशन dom शब्द पाये जाते हैं। अंग्रेज़ी के domestic 'घरेलू' शब्द का भी पूर्वभाग 'दम्' अथवा 'दम' का ही सजातीय है।

निर्भर

हिन्दी में 'निर्भर' वि० शब्द अधिकतर 'अवलम्बित' अथवा 'आश्रित' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'निर्भर' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'निर्भर' शब्द का मौलिक अर्थ है 'अत्यधिक[३], अतिशय' (निःशेषेण भरो भरणं यत्र)। इसी से संस्कृत में 'निर्भर' शब्द के 'प्रगाढ़'[४] और 'परि-

---

१. विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे।

२. उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः।

३. तन्व्यास्तिष्ठतु निर्भरप्रणयिता मानोऽपि रम्योदयः। अमरु० ४७.

४. 'प्रगाढ़' अर्थ में 'निर्भर' शब्द का प्रयोग आलिङ्गन, निद्रा आदि के लिये पाया जाता है, जैसे—परिरभ्य निर्भरमुरः—'वक्षःस्थल का प्रगाढ़ आलिङ्गन करके' (गीत० १); निर्भरनिद्रा—'गहरी नींद' (हितोपदेश)।

पूर्ण[1], भरा हुआ' आदि अर्थों का भी विकास पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन हिन्दी में अर्थात् तुलसीदास आदि के ग्रन्थों में 'निर्भर' शब्द का प्रयोग 'भरा हुआ, परिपूर्ण' अर्थ में ही पाया जाता है, जैसे—

सबके उर निर्भर हरष, पूरित पुलक शरीर।
कबहिं देखिबै नयन भरि, रामलषन दोउ वीर॥[2]

हिन्दी में 'निर्भर' शब्द का 'अवलम्बित, आश्रित' अर्थ संस्कृत के 'निर्भर' शब्द के अत्यधिक, प्रगाढ़, परिपूर्ण आदि अर्थों से विकसित हुआ नहीं प्रतीत होता। 'अवलम्बित, आश्रित' अर्थ में 'निर्भर' शब्द हिन्दी में बंगला भाषा से आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि बंगला भाषा में 'निर्भर' शब्द का 'आश्रित, अवलम्बित' अर्थ इस शब्द में पाये जाने वाले 'भर' (=भरा हुआ) शब्द के ('भर'='भार' के सादृश्य से) 'भार' अर्थ में समझे जाने के कारण विकसित हुआ है ('भर' शब्द का 'भार' अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है)। 'निर्भर' शब्द के 'आश्रित, अवलम्बित' अर्थ में कुछ भार के भाव का ही बोध होता है (अर्थात् जिस पर निःशेषेण अर्थात् पूर्ण रूप से भार हो)।

'निर्भर' शब्द का 'अवलम्बित, आश्रित' अर्थ मराठी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम आदि अन्य भाषाओं में नहीं पाया जाता। इन भाषाओं में 'निर्भर' शब्द के अर्थ अत्यधिक, प्रगाढ़, परिपूर्ण, भरा हुआ आदि ही हैं।

विश्रान्त

हिन्दी में 'विश्रान्त' वि० शब्द अधिकतर 'थका हुआ' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'विश्रान्त' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

'विश्रान्त' शब्द वि उपसर्गपूर्वक √श्रम् धातु से क्त प्रत्यय लगकर बना है। अतः संस्कृत में 'विश्रान्त' शब्द का मौलिक अर्थ है 'विश्राम किया हुआ'। विश्राम करने के लिये ठहरना अथवा रुकना पड़ता है, इस भाव-सम्बन्ध से संस्कृत में 'विश्रान्त' शब्द के 'ठहरा हुआ, रुका हुआ' अर्थ का भी विकास पाया जाता है।[3]

---

१. सरजसमकरन्दनिर्भरासु (शिशु० ७.४२); इसी प्रकार 'आनन्द-निर्भर', 'गर्वनिर्भर' आदि।

२. शब्दसागर तृतीय भाग (पृष्ठ १८५३) से उद्धृत।

३. शून्येवाभरणैः स्वकालविरहाद्विश्रान्तपुष्पोद्गमा। विक्रम० ४.६६.
"पुष्पोदयकाल न होने से रुका हुआ है पुष्पों का प्रादुर्भाव जिसमें, ऐसी यह लता आभूषणों से शून्य के समान है।"

हिन्दी में 'विश्रान्त' शब्द का 'थका हुआ' अर्थ विकसित होने का कारण इस शब्द का 'थका हुआ' अर्थ में प्रयुक्त किये जाने वाले 'श्रान्त' शब्द से ध्वनि अथवा रूप की दृष्टि से सदृश होना तथा 'विश्रान्त' शब्द के वि उपसर्ग को पार्थक्य (दूर होना) अर्थ में न ग्रहण करके 'विशिष्टता' अर्थ में (अथवा निरर्थक रूप में) ग्रहण किया जाना प्रतीत होता है। सम्भवतया 'विश्रान्त' शब्द को 'थका हुआ' अर्थ में पहिले किसी लेखक द्वारा 'श्रान्त' (थका हुआ) शब्द से प्रभावित होकर प्रयुक्त किया गया होगा। बाद में देखादेखी 'विश्रान्त' शब्द 'थका हुआ' अर्थ में प्रचलित हो गया।

यह उल्लेखनीय है कि बहुधा हिन्दी में 'विश्रान्त' शब्द के अनुकरण पर **विश्रान्ति** शब्द का भी 'थकावट' अर्थ में प्रयोग किया जाता है।[१] इस अर्थ में 'विश्रान्ति' शब्द अधिक प्रचलित नहीं है। संस्कृत में 'विश्रान्ति' शब्द का प्रयोग 'विश्राम' अर्थ में पाया जाता है[२], 'थकावट' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। मराठी, गुजराती, तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं में भी 'विश्रान्ति' शब्द 'विश्राम' अर्थ में प्रचलित है।[३]

'विश्रान्त' शब्द का 'थका हुआ' अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है।[४] मराठी[५], गुजराती[६], कन्नड़[७] और मलयालम[८] आदि भाषाओं में 'विश्रान्त' शब्द का अर्थ 'विश्राम किया हुआ, आराम किया हुआ' ही पाया जाता है।

(आ) अज्ञानवश दुहरे प्रयोग से अर्थ-परिवर्तन

जब किसी विशिष्ट वस्तु का वाचक शब्द ऐसा समस्त शब्द होता है, जिसमें कोई एक पद उस प्रकार की वस्तु-सामान्य का वाचक हो तो दीर्घकाल

---

१. रामचन्द्र वर्मा : प्रामाणिक हिन्दी कोश।
२. जीर्णस्यास्य शरीरस्य विश्रान्तिमभिरोचये। रामायण २.२.८.
"मैं अब इस वृद्ध शरीर को विश्राम देना चाहता हूँ।"
३. व्यवहारकोश।
४. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।
५. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।
६. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।
७. किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।
८. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

तक उसी रूप में प्रयुक्त होते रहने से बहुधा भ्रम या अज्ञान के कारण उस समस्त शब्द को विशिष्ट वस्तु का नाम समझा जाने लगता है और नाम समझकर उसके आगे उस प्रकार की वस्तुसामान्य के वाचक किसी अन्य शब्द को प्रयुक्त किया जाने लगता है। इस प्रकार भ्रम या अज्ञान के कारण कुछ शब्दों का दुहरा प्रयोग चल पड़ता है, जिसके कारण पहिले समस्त शब्द के अर्थ में उसके मूल अर्थ से भेद उत्पन्न हो जाता है।

संस्कृत में **'हिमाचल'** (पुं०), **'विन्ध्याचल'** (पुं०), **'मलयाचल'** (पुं०), **'उदयाचल'** (पुं०) शब्द पर्वत-विशेषों के वाचक हैं, जिनमें 'पर्वत' का वाचक 'अचल' शब्द विद्यमान है, अर्थात् 'हिमाचल' का अर्थ है—'हिम (पुं०) नाम का पर्वत', 'विन्ध्याचल' का अर्थ है—'विन्ध्य (पुं०) नाम का पर्वत', 'मलयाचल' का अर्थ है—'मलय[1] (पुं०) नाम का पर्वत', 'उदयाचल' का अर्थ है—'उदय (पुं०) नाम का पर्वत'। किन्तु हिम, विन्ध्य, मलय, उदय आदि पर्वतों के नामों के साथ 'अचल' शब्द के दीर्घकाल तक प्रयुक्त होते रहने से हिन्दी में भ्रमवश हिमाचल, विन्ध्याचल, मलयाचल, उदयाचल आदि को पर्वत-विशेषों का नाम समझा जाने लगा है और नाम समझकर इनके आगे दुबारा 'अचल' का पर्यायवाची 'पर्वत' शब्द प्रयुक्त किया जाने लगा है, जैसे—हिमाचल पर्वत, विन्ध्याचल पर्वत, मलयाचल पर्वत, उदयाचल पर्वत।

इसी प्रकार हिम, विन्ध्य, मलय, उदय आदि पर्वतों के नामों के साथ 'पर्वत' के वाचक 'गिरि' एवं 'अद्रि' शब्दों के प्रयुक्त होते रहने से **'हिमगिरि'**, **'विन्ध्यगिरि'**, **'मलयगिरि'**, **'उदयगिरि'** और इसी प्रकार **'हिमाद्रि'**, **'विन्ध्याद्रि'** आदि को पर्वत-विशेषों का नाम समझा जाने लगा है और नाम समझ कर इनके आगे भी 'पर्वत' या इसका वाचक कोई अन्य शब्द प्रयुक्त किया जाने लगा है, जैसे—हिमगिरि पर्वत, विन्ध्यगिरि पर्वत, मलयगिरि पर्वत, उदयगिरि पर्वत और इसी प्रकार हिमाद्रि पर्वत आदि।

---

१. द्रविड़ भाषाओं में 'मलय' शब्द का अर्थ 'पर्वत' है, जैसे—तमिल 'मलै' (पर्वत, पहाड़ी); मलयालम 'मल' (पर्वत, पहाड़ी भूमि); कन्नड़ 'मले' (पर्वत, वन); तूलू 'मले' (वन, जंगलों से भरी पहाड़ी); तेलुगु 'मल' (पर्वत)। पर्वत-विशेष अर्थात् मलाबार के पूर्व में स्थित पर्वत के लिये प्रयुक्त होते रहने से यह उस पर्वत-विशेष का नाम बन गया है। संस्कृत में यह पर्वत-विशेष का नाम ही समझा जाता है।

यज्ञ-विशेषों के वाचक भी कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनमें 'यज्ञ' का वाचक शब्द पहिले से विद्यमान है, जैसे—**अश्वमेध, नरमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध** आदि। इन समस्त शब्दों में 'यज्ञ' के वाचक 'मेध' (पुं०) शब्द के प्रयुक्त होते रहने से यह ('मेध' शब्द) यज्ञ-विशेष के नाम का अङ्ग बन गया है। परिणाम-स्वरूप अश्वमेध, नरमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि के आगे दुबारा 'यज्ञ' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है, जैसे अश्वमेध यज्ञ आदि। इस प्रकार 'यज्ञ' के वाचक शब्दों के दुहरे प्रयोग से 'अश्वमेध' आदि शब्दों के अर्थ में मूल अर्थ से भेद हो गया है।

सस्कृत में '**सज्जन**' पुं० शब्द का अर्थ है 'अच्छा व्यक्ति, भला व्यक्ति' (सत्+जन; सन् चासौ जनश्चेति)। किन्तु इसके ठीक स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण हिन्दी में बहुधा इसके आगे दुबारा 'व्यक्ति' या इसके वाचक 'पुरुष', 'आदमी' आदि किसी अन्य शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है। प्रयोक्ता को यह ध्यान नहीं रहता कि 'सज्जन' शब्द में 'व्यक्ति' का वाचक 'जन' शब्द पहिले से विद्यमान है। 'सज्जन व्य क्त', 'सज्जन पुरुष' आदि प्रयोगों में 'सज्जन' का भाव 'अच्छा व्यक्ति' न होकर केवल 'अच्छा' (वि०) होता है। इस प्रकार यह शब्द संज्ञा से विशेषण बन रहा है।

उर्वरा

हिन्दी में 'उर्वरा' शब्द 'भूमि' अथवा इसके वाचक शब्दों के विशेषण के रूप में 'उपजाऊ' अर्थ में प्रचलित है। 'उर्वरा' शब्द संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में इसके अर्थ हैं 'उपजाऊ भूमि', 'फ़सल उगाने वाली भूमि', 'भूमि', 'खेत' आदि। 'कृषि के लिये जोती जाने वाली भूमि' के लिये ऋग्वेद में 'क्षेत्र' और 'उर्वरा'[1] इन दोनों शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। अतः 'खेत' या 'खेती के काम आने वाली भूमि' ही 'उर्वरा'[2] शब्द का प्रारम्भिक अर्थ प्रतीत होता है। 'उर्वरा' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—उरु शस्यादिकमृच्छति, ऋ+अच्। लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'उर्वरा' शब्द के 'उपजाऊ भूमि' अथवा 'खेती के काम आने वाली भूमि' अर्थ में प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं, जैसे—पततां गणैः पिबतु सार्धमुर्वरा (शिशु० १५.६६)।

---

१. १.१२७.६, ४.४१.६, ६.२५.४, १०.३०.३ आदि; तथा अथर्व० १०.६.३३, १०.१०.८ आदि।

२. मिलाइये—ग्रीक ἄρουρα; लैटिन arvum 'खेती के योग्य भूमि'; अवेस्तन urvarā 'पौधा'।

'उर्वरा' शब्द का प्रयोग 'उपजाऊ भूमि' के लिये होते रहने के कारण कालान्तर में अज्ञानवश इस शब्द के प्रयोक्ताओं द्वारा इसके अन्दर निहित 'भूमि' का भाव भुला दिया गया और इसे विशेषण-मात्र समझकर इसके साथ 'भूमि' या इसके वाचक किसी अन्य शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार 'उर्वरा' शब्द केवल 'उपजाऊ' अर्थ में विशेषण के रूप में प्रचलित हो गया। हिन्दी में 'उर्वरा' स्त्री० के अनुकरण पर 'उर्वर' पुं० शब्द का प्रयोग भी 'उपजाऊ' अर्थ में प्रचलित हो गया है और बहुधा भूमि के विशेषण के रूप में इस ('उर्वर') शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है, यद्यपि व्याकरण के अनुसार यह अशुद्ध है, क्योंकि स्त्रीलिङ्ग विशेष्य का विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग में ही होना चाहिये। आजकल हिन्दी में 'खाद' के लिये 'उर्वरक' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। भूमि को उपजाऊ (उर्वरा या उर्वर) बनाने की विशेषता के कारण ही इसे यह नाम दिया गया है।

(इ) शब्दरूप का ज्ञान न होने से अशुद्ध प्रयोग से अर्थभेद

बहुधा किसी शब्द की रचना की जानकारी न होने से उसको कुछ का कुछ समझ लिया जाता है। इस प्रकार उसके व्यवहार में लाये जाने वाले रूप और अर्थ में मूल रूप और अर्थ से भेद हो जाता है।

निशि

हिन्दी में 'निशि' स्त्री० शब्द 'रात्रि' र्थ में प्रचलित है। यह शब्द संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में यह 'निश्' स्त्री० (रात्रि) का सप्तमी विभक्ति एकवचन का रूप है। अतः संस्कृत में 'निशि' का अर्थ है—'रात्रि में'। 'निशि' शब्द के 'रात्रि में' अर्थ से 'रात्रि' अर्थ विकसित हो जाने का कारण यह है कि यह शब्द कुछ ऐसे समस्त शब्दों में प्रयुक्त होता है, जिनमें अलुक् समास होता है अर्थात् जिनमें समास में बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। साधारणतया तो समास में बीच की विभक्ति का लोप हो जाता है, किन्तु अलुक् समास में लोप नहीं होता। संस्कृत में 'निशिचर' आदि शब्दों में 'निश्' के साथ-साथ सप्तमी विभक्ति भी निहित थी, किन्तु हिन्दी में उसे 'रात्रि' का वाचक शब्द समझ लिया गया है। इस प्रकार हिन्दी में 'निशि' शब्द अज्ञानवश 'रात्रि' अर्थ में प्रचलित हो गया है।

अध्याय १४

शब्द-साहचर्य पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

किसी शब्द-समुदाय में दो शब्दों के प्राय: एक साथ एक ही प्रसङ्ग में प्रयुक्त होते रहने से उनका एक ऐसा संक्षिप्त रूप हो जाता है, जिसमें कि एक शब्द ही दोनों के भाव को व्यक्त करने लगता है। उनके एक साथ अत्यधिक प्रयोग से एक शब्द का भाव दूसरे में इतना संक्रान्त हो जाता है कि दोनों शब्दों का उल्लेख करने की आवश्यकता ही नहीं रहती, एक शब्द द्वारा ही सम्पूर्ण वाक्य अथवा शब्द-समुदाय का भाव व्यक्त हो जाता है। मिशेल ब्रेआल ने इस प्रक्रिया को संक्रमण (contagion) कहा है। इसका अर्थ यह है कि एक शब्द किसी ऐसे दूसरे शब्द के भाव से, जिसके साथ प्राय: उसका प्रयोग होता है, संक्रान्त (infected) हो जाता है। अंग्रेज़ी के (capital) शब्द के स्वतन्त्र संज्ञा के रूप में प्रसङ्ग के अनुसार 'मूलधन' (capital fund), 'राजधानी' (capital city), 'बड़ा अक्षर' (capital letter) आदि अर्थ हैं। Fund, letter और city के साथ capital शब्द का प्रयोग होते रहने से fund, letter और city आदि शब्दों के भाव भी capital शब्द में संक्रान्त हो गये और कालान्तर में capital शब्द ही प्रसङ्ग के अनुसार capital fund, capital city, capital letter के भाव को व्यक्त करने लगा।

हिन्दी में प्रचलित ऐसे बहुत से संस्कृत शब्द हैं, जिनके वर्तमान अर्थों का विकास अन्य शब्दों के साथ साहचर्य से भाव-संक्रम होने पर हुआ है। शब्द-साहचर्य से भाव-संक्रम होकर हुये अर्थ-विकासों में कई प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं, जैसे शब्द-साहचर्य से भाव-संक्रम होने पर बहुधा विशेषण शब्द संज्ञा शब्द बन जाते हैं, बहुधा क्रिया-विशेषण शब्द संज्ञा शब्द बन जाते हैं, तथा साहचर्य से भाव-संक्रम होने पर साथ-साथ प्रयुक्त होने वाले विविध प्रकार के शब्दों में से कोई एक शब्द अवशिष्ट रह जाता है। अत: जिन संस्कृत शब्दों में अन्य शब्दों के साथ साहचर्य के कारण अर्थ-परिवर्तन हुआ

है, उनको निम्न श्रेणियों में रक्खा जा सकता है :—
(अ) विशेषण से संज्ञा, (आ) क्रिया-विशेषण से संज्ञा, (इ) विविध शब्द-साहचर्यों पर आधारित अर्थ-परिवर्तन ।

(अ) विशेषण से संज्ञा

किसी विशेषण शब्द के किसी संज्ञा शब्द के साथ निरन्तर प्रयुक्त होते रहने से धीरे-धीरे संज्ञा शब्द का भाव विशेषण शब्द में संक्रान्त हो जाता है और इस प्रकार कालान्तर में वह (विशेषण) शब्द ही उन दोनों शब्दों के भाव के लिये संज्ञा शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगता है। हिन्दी में ऐसे बहुत से संस्कृत शब्द हैं, जो मूलतः विशेषण[1] शब्द थे, किन्तु जो संज्ञा शब्दों के साथ साहचर्य से भाव-संक्रम होने पर संज्ञा शब्द बन गये हैं।

अधर

हिन्दी में 'अधर' पुं० शब्द 'नीचे का होंठ', 'होंठ' अर्थों में प्रचलित है। 'अधर' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु संस्कृत में 'अधर' शब्द मूलतः एक तुलनासूचक विशेषण शब्द था। इसका मूल अर्थ था—'निम्नतर' (lower)। ऋग्वेद में 'अधर' शब्द इसी अर्थ में उपलब्ध होता है, जैसे—यो दासं वर्णमधरं गुहाकः—'जिसने दास वर्ण को निम्नतर (अर्थात् अधीन) किया है और उसे लुप्त किया है' (ऋग्वेद २.१२.४)। लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'अधर' वि० शब्द का 'निम्नतर (lower), नीचे का' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।[2]

'अधर' शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न प्रकार से की जाती है। आप्टे के कोश में दी हुई व्युत्पत्ति (जो परम्परागत मार्ग का अनुसरण करने वाले अन्य कोशों में भी मिलती है) इस प्रकार है—न ध्रियते (धृ+अच्, नञ् तत्पुरुषसमास)

---

१. इस श्रेणी में विवेचित शब्दों के अतिरिक्त भी अन्य अनेक संस्कृत शब्द ऐसे हैं, जो विशेषण से संज्ञा बने हैं। ये (विशेषण) शब्द अपने द्वारा सूचित विशेषता से युक्त पदार्थों, वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त होने से संज्ञा शब्द बने हैं। इस प्रकार के शब्दों को पृथक् अध्याय में रक्खा गया है। प्रस्तुत श्रेणी में केवल ऐसे शब्दों को लिया गया है, जो अन्य शब्दों के साथ साहचर्य से भाव-संक्रम होने पर विशेषण से संज्ञा शब्द बने हैं।

२. असितमधरवासो बिभ्रतः (किरात० ४.३८); सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बराम् (शिशु० १.६); पक्वबिम्बाधरोष्ठी (मेघ० ८४) आदि।

अर्थात् 'जो ठहराया नहीं जाता है'। यह व्युत्पत्ति सर्वथा अविश्वसनीय है, 'होंठ' अर्थ को दृष्टि में रखकर कल्पित की गई प्रतीत होती है। यास्क[1] ने 'अधर' शब्द की व्युत्पत्ति अधस्+अर (< ऋ) से मानी है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—'नीचे जाने वाला'। सिद्धेश्वर वर्मा[2] का विचार है कि यह शब्द भारत-यूरोपीय n̥dh+ero प्रत्यय, गोथिक undar, अंग्रेजी under से सम्बद्ध है। मोनियर विलियम्स[3] इसे 'अधस्' क्रि० वि० 'नीचे' से सम्बद्ध मानते हैं। क्षितीशचन्द्र चटर्जी[4] का विचार है कि इसमें र तुलनासूचक प्रत्यय है और इससे सम्बद्ध शब्द अवेस्तन भाषा में aδara और लैटिन भाषा में inferus हैं। अधिकतर आधुनिक विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि 'अधर' वि० शब्द का मूल अर्थ 'निम्नतर, नीचे का' था।

'अधर' शब्द के 'नीचे का होंठ' अर्थ का विकास इसके 'निम्नतर अथवा नीचे का' अर्थ से ही हुआ है। संस्कृत में 'नीचे का' अर्थ में 'अधर' शब्द का 'ओष्ठ' शब्द के साथ प्रचुर प्रयोग होता रहा है, जैसे[5]—पक्वबिम्बाधरोष्ठी—'पके हुये बिम्बाफल के समान नीचे के होंठ वाली' (मेघ० ८४)। 'नीचे का' अर्थ में 'अधर' वि० शब्द का 'ओष्ठ' के साथ प्रयोग होते रहने से 'ओष्ठ' शब्द का भाव भी 'अधर' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'अधरोष्ठ' (नीचे का होंठ) के भाव को 'अधर' शब्द ही लक्षित करने लगा। इस अर्थ में यह शब्द पुंलिङ्ग में प्रचलित हुआ। संस्कृत में 'नीचे का होंठ' अर्थ में 'अधर' पुं० शब्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है, जैसे—प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना (कुमार० ५.२७); बिम्बाधरालक्तकः (मालविका० ३.५)।

'अधर' पुं० शब्द के 'नीचे के होंठ' के लिये प्रयुक्त होते रहने से कालान्तर में इसके अर्थ में विस्तार हुआ और यह सामान्य रूप में 'होंठ' को लक्षित करने लगा, चाहे वह नीचे का हो या ऊपर का। संस्कृत साहित्य में 'अधर' पुं० शब्द का प्रयोग यद्यपि अधिकतर 'नीचे के होंठ' के लिये हुआ है, तथापि कहीं-कहीं सामान्य रूप में 'होंठ' के लिये भी मिल जाता है, जैसे—स्फुरितोत्तराधरः (कुमार० ५.८३)।

---

१. अधोऽरः। निरुक्त २.११.

२. एटिमोलोजीज़ ऑफ़ यास्क, पृष्ठ ७२.

३. संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

४. वैदिक सेलेक्शंस, पृष्ठ १६९.

५. शाकु० ३.२४ आदि।

यद्यपि हिन्दी में 'अधर' पुं० शब्द के 'नीचे का होंठ' और 'होंठ' दोनों ही अर्थ मिल जाते हैं, तथापि आजकल यह शब्द सामान्य रूप में 'होंठ' अर्थ में अधिक प्रचलित है।

चन्द्र

हिन्दी में 'चन्द्र' पुं० शब्द 'चाँद' अर्थ में प्रचलित है। 'चन्द्र' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में 'चन्द्र' शब्द मूलतः एक विशेषण शब्द था और इसका मूल अर्थ था 'चमकीला'।[1] वैदिक साहित्य में 'चन्द्र' शब्द का इस अर्थ में प्रचुर प्रयोग मिलता है, जैसे—यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान—'जिसने महान् और चमकदार जलों को उत्पन्न किया' (ऋग्वेद १०.१२१.६)। ऋग्वेद ३.६१.२ में 'उषा' को 'चन्द्ररथा' (चमकीले रथ वाली) कहा गया है। इसी प्रकार सोम तथा अन्य विभिन्न देवताओं को ऋग्वेद में 'चन्द्र' (चमकीला) कहा गया है। ऋग्वेद के बाद के अन्य वैदिक ग्रन्थों में भी 'चन्द्र' शब्द 'चमकीला' अर्थ में पाया जाता है (जैसे तैत्तिरीयसंहिता ६.४.२.४)। भाषा-वैज्ञानिकों द्वारा इस शब्द का मूल रूप 'श्चन्द्र' (चमकीला) माना गया है।[2] यह मूल रूप हरिश्चन्द्र तथा वैदिक साहित्य में उपलब्ध सुश्चन्द्र, विश्वश्चन्द्र आदि शब्दों में सुरक्षित बताया जाता है।

'चन्द्र' शब्द के 'चमकीला' अर्थ से 'चाँद' अर्थ के विकास का कारण है चाँद के चमकीला होने से उसके लिये इस (चन्द्र) विशेषण का प्रयोग। 'चन्द्र' विशेषण ही कालान्तर में पुं० संज्ञा शब्द के रूप में प्रयुक्त होने लगा।

वैदिक भाषा में 'चन्द्र' शब्द का प्रयोग 'चाँद' के वाचक 'मास्' (उत्तर-कालीन 'मस्') शब्द के विशेषण के रूप में भी होता रहा है। वैदिक साहित्य

---

१. 'चन्द्र' शब्द से सम्बद्ध शब्द कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी मिलते-जुलते अर्थों में पाये जाते हैं, जैसे—ग्रीक kándaros 'चमकता हुआ कोयला', लैटिन candére 'चमकना', अंग्रेज़ी candid 'चमकीला, शुभ्र', अल्बानियन hanë 'चाँद'। संस्कृत में 'चन्द्र' शब्द √चन्द् धातु (जो मोनियर विलियम्स द्वारा √श्चन्द् से विकसित मानी गई है) से रक् प्रत्यय लगकर निष्पन्न माना जाता है (चन्दयति आह्लादयति, चन्दति दीप्यति इति वा)। संस्कृत का 'चन्दन' शब्द भी जिसका शाब्दिक अर्थ 'चमकीला वृक्ष' है, √चन्द् धातु से ही निष्पन्न है।

२. मोनियर विलियम्स; क्षितीशचन्द्र चटर्जी : वैदिक सेलेक्शंस, पृष्ठ ३५८ आदि।

में 'मास्'[1] शब्द के 'चाँद' अर्थ में प्रयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ऋग्वेद १०.६४.३, १०.६८.१०, १०.९२.१२, १०.९३.५ आदि में सूर्य और चाँद के द्वन्द्व के लिये प्रयुक्त 'सूर्यामासा' शब्द में 'मास्' (अथवा 'मास') शब्द 'चाँद' अर्थ में ही है। 'चन्द्रमस्'[2] शब्द में (जोकि वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में 'चाँद' के लिये सर्वाधिक प्रचलित शब्द रहा है) 'मस्', 'मास्' का ही विकसित रूप है। वस्तुतः यह शब्द मूलतः 'चन्द्रमास्' (कर्मधारयसमास) था और इसका मूल अर्थ था 'चमकीला चाँद'। 'चाँद' के वाचक 'मास्' (अथवा 'मस्') शब्द के साथ विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते रहने से 'मास्' (अथवा 'मस्') का भाव भी 'चन्द्र' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'चन्द्र' शब्द ही 'चन्द्रमास्' अथवा 'चन्द्रमस्' के भाव को लक्षित करने लगा। यह उल्लेखनीय है कि 'चन्द्रमास्' अथवा 'चन्द्रमस्' शब्द में से कालान्तर में चमकीले होने का भाव सर्वथा लुप्त हो गया और 'चन्द्रमस्' शब्द सामान्य

---

१. 'चाँद' का वाचक 'मास्' शब्द भारत-यूरोपीय शब्द है। इसकी निष्पत्ति भारत-यूरोपीय *me 'नापना' से मानी जाती है। इससे सम्बद्ध शब्द बहुत सी अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'चाँद' अर्थ में पाये जाते हैं, जैसे—गोथिक mēna ; प्राचीन नोर्स māni ; डैनिश maane ; स्वीडिश måne ; प्राचीन अंग्रेज़ी mōna, मध्यकालीन अंग्रेज़ी mone, आधुनिक अंग्रेज़ी moon; डच maan; प्राचीन हाई जर्मन māno, मध्यकालीन हाई जर्मन māne, आधुनिक हाई जर्मन mond; लिथुआनियन mėnuo, mėnulis ; लेटिश mēnesis ; चर्चस्लैविक mesečí ; सर्बोक्रोशियन mjesic; बोहेमियन měsíc; अवेस्तन माह्।

२. संस्कृत-वैयाकरणों ने 'चन्द्रमस्' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में खूब कल्पनायें दौड़ाई हैं। यास्क ने (निरुक्त ११.५ में) 'चन्द्रमस्' शब्द की कई व्युत्पत्तियाँ प्रस्तुत की हैं—१. चायन् द्रमति इति—'जो देखता हुआ चलता है', २. चन्द्रो माता—'जो कान्तिमान् है और काल-निर्माता है', ३. चान्द्रं मानमस्येति—'जिसके कारण चान्द्र काल-निर्माण है'। कुछ अन्य व्युत्पत्तियाँ भी कल्पना से पूर्ण मिलती हैं, जैसे—चन्द्रमानन्दं मिमीते, यद्वा चन्दं कर्पूरं सादृश्येन माति परिमातीति, चन्द्रं रजतम् अमृतं च तदिव मीयते, चन्द्र इति वा मीयते (चन्द्र+मा+'चन्द्रे मो डित्' इति असि स च डित्)। वस्तुतः 'चन्द्रमस्' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, 'चमकीला चाँद' है। संस्कृत-वैयाकरण इसका मूल अर्थ नहीं समझ सके हैं।

रूप में 'चाँद' अर्थ में प्रयुक्त होने लगा[1]। ऋग्वेद में भी 'चन्द्रमस्' शब्द सामान्य रूप में 'चाँद' के लिये पाया जाता है (जैसे—१.१०२.२, ५.५१.१५, १०.१९०.३ आदि में)।

'चाँद' अर्थ में 'चन्द्र' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अथर्ववेद[2] में मिलता है। इसके पश्चात् तो वाजसनेयिसंहिता (२२.२८, ३९.२), शतपथब्राह्मण (६.२. २.१६) आदि वैदिक ग्रन्थों में एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में 'चन्द्र' पुं० शब्द का 'चाँद' अर्थ में प्रचुर प्रयोग हुआ है।

वैदिक भाषा में 'चन्द्र' शब्द के 'चमकीला' अर्थ से चाँदी[3], सोना[4] आदि अर्थों का विकास भी पाया जाता है। स्पष्टतः चाँदी-सोने के चमकीला होने के कारण ही उन्हें 'चन्द्र' कहा गया होगा।

हिन्दी के साथ-साथ अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी 'चन्द्र' शब्द तत्सम एवं तद्भव रूपों में 'चाँद' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—मराठी, गुजराती, बंगला, असमिया, उड़िया, कन्नड़—'चन्द्र'; पंजाबी—'चन्'; सिन्धी—'चंडु'; तेलुगु—'चन्दुडु'; तमिल—'चन्दिरन्'; मलयालम—'चन्द्रन्' (व्यवहारकोश)

पर्वत

हिन्दी में 'पर्वत' पुं० शब्द 'पहाड़' अर्थ में प्रचलित है। 'पर्वत' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'पर्वत' मूलतः एक विशेषण शब्द था और 'पर्वन्'[5] (गाँठ, जोड़) से निष्पन्न होने के कारण इसका मूल अर्थ था 'गाँठों वाला, जोड़ों वाला'। पहिले 'गाँठों वाला, जोड़ों वाला'

---

१. 'चाँद' के लिये हिन्दी में प्रचलित 'चन्द्रमा' शब्द संस्कृत के 'चन्द्रमस्' (अथवा 'चन्द्रमास्') का ही प्रथमा विभक्ति एकवचन का विसर्गहीन रूप है। प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'चन्द्रमस्' शब्द का 'चन्द्रमाः' रूप होता है। हिन्दी में संस्कृत शब्दों को अधिकतर प्रथमा विभक्ति एकवचन के रूपों में ग्रहण किया गया है। जहाँ इन रूपों में विसर्ग था, उसको छोड़ दिया गया है।

२. २.१५.२, २.२२.१, ३.३१.६ आदि।

३. ऋग्वेद १०.१०७.७.

४. ऋग्वेद २.२.४; अथर्ववेद १२.२.५३; वाजसनेयिसंहिता ४.२६, १९.९३ आदि।

५. अष्टाध्यायी ५.२.१२२; वार्तिक 'पर्वमरुद्भ्यां तप्' (५.२.१२२.१०)।

अर्थ में 'पर्वत' शब्द का प्रयोग पहाड़ के वाचक 'गिरि' आदि शब्दों के साथ विशेषण के रूप में किया जाता था। वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर 'पर्वत' शब्द 'गिरि' (पहाड़) शब्द के साथ विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जैसे—जिहीत पर्वतो गिरिः— 'गाँठ-गठीला पहाड़ भी चालित हो जाता है' (ऋग्वेद १.३७.७); 'पर्वतं गिरिं' (ऋग्वेद ५.५६.४)। इसी प्रकार अथर्ववेद[1] में भी 'पर्वत' शब्द का विशेषण के रूप में ('गिरि' शब्द के साथ) प्रयोग मिलता है। पहाड़ में चट्टानें एक दूसरी के ऊपर उठती चली जाती हैं। अतः 'गांठ-गठीला, जोड़ों से युक्त' सा होने के कारण उसे 'पर्वत' कहा गया।

'गाँठ-गठीला, जोड़ों वाला' अर्थ में 'पर्वत' वि० शब्द के साथ पहाड़ के वाचक 'गिरि' शब्द के प्रयुक्त होते रहने से 'गिरि' (पहाड़) का भाव भी 'पर्वत' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में केवल 'पर्वत' शब्द ही 'पर्वतगिरि' (अर्थात् गाँठ-गठीले या जोड़ों वाले पहाड़) के लिये प्रयुक्त किया जाने लगा। धीरे-धीरे 'गाँठ-गठीला या जोड़ों वाला' होने का भाव लुप्त हो गया और 'पर्वत' शब्द सामान्य रूप में 'पहाड़' का वाचक बन गया। इस प्रकार 'पर्वत' शब्द विशेषण से संज्ञा शब्द हो गया। 'पहाड़' अर्थ में 'पर्वत' पुं० शब्द ऋग्वेद[2] से लेकर बाद के वैदिक साहित्य, लौकिक संस्कृत साहित्य में होता हुआ आधुनिक काल तक हिन्दी तथा अन्य विभिन्न भारतीय भाषाओं में चला आया है।

भगवद्गीता, गीता

हिन्दी में (तथा संस्कृत में भी) 'भगवद्गीता' एक ग्रन्थविशेष का नाम है, जिसमें महाभारत युद्ध के अवसर पर श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया हुआ उपदेश निहित माना जाता है। इस ग्रन्थ के लिये हिन्दी तथा संस्कृत में केवल 'गीता' शब्द भी काफ़ी प्रचलित है। 'गीता' शब्द का मूल अर्थ है—'गाई हुई अथवा कही हुई' (√गै='गाना'+क्त)। तदनुसार 'भगवद्गीता' का मूल अर्थ है—'भगवान् द्वारा गाई हुई या कही हुई'। 'गीता' तथा 'भगवद्गीता' के इसी अर्थ से ग्रन्थविशेष अर्थ विकसित हुआ है। वस्तुतः श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये उपदेश के भाग को महाभारत से पृथक् निकाले जाने पर इसका नाम 'श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद्' अर्थात् 'श्रीमान् भगवान् (श्रीकृष्ण)

१. ४.६.८, ६.१२.३, ६.१७.३; ९.१.१८ आदि।
२. १.८५.१०, २.१२.२, २.११.१३ आदि।

द्वारा गाया गया या कहा गया उपनिषद्' रक्खा गया। सम्भवतः इस ग्रन्थ में सब उपनिषदों का सार निहित माना जाने के कारण ही इसे उपनिषद् कहा गया। संस्कृत में 'उपनिषद्' शब्द स्त्रीलिङ्ग शब्द है (जबकि हिन्दी में पुंल्लिङ्ग शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है), अतः इसका विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग में 'श्रीमद्भगवद्गीता' हुआ। इस ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय के अन्त में अध्याय की समाप्ति का सूचक जो वाक्य मिलता है, उसमें अब भी इसका नाम 'श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद्' है, जैसे—इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे······आदि। अध्याय की समाप्ति के सूचक वाक्य में ग्रन्थ के नाम में बहुवचन का प्रयोग सम्मानार्थ किया गया है। इस ग्रन्थ के लिये 'श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषद्' का प्रचलन रहने के कारण धीरे-धीरे साहचर्य से 'उपनिषद्' का भाव भी विशेषण 'श्रीमद्भगवद्-गीता' में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में इसे संक्षेप में विशेषण शब्द 'श्री-मद्भगवद्गीता' अथवा 'भगवद्गीता' द्वारा अभिहित किया जाने लगा। बाद में और भी संक्षेप करके केवल 'गीता' ही कहा जाने लगा। ग्रन्थों के नामों को संक्षेप में बोलने की प्रवृत्ति काफ़ी प्राचीन है। बहुत से संस्कृत ग्रन्थों के संक्षिप्त नाम प्रचलित हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि यदि ग्रन्थ के मूल नाम में 'उपनिषद्' शब्द न होता तो इस ग्रन्थ का नाम 'भगवद्गीतम्' या केवल 'गीतम्' ही प्रचलित होता। इस ग्रन्थ का 'गीता' नाम काफ़ी प्राचीन है। शङ्कराचार्य (९वीं शताब्दी) ने 'गीता' शब्द का प्रयोग किया है। श्रीधर स्वामी द्वारा उद्धृत निम्न श्लोक में भी इसका प्रयोग किया गया है—

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

'भगवद्गीता' के लिये 'गीता' शब्द के प्रयोग के सादृश्य पर अन्य बहुत से ज्ञानविषयक ग्रन्थों का नाम 'गीता' पड़ा, जैसे—पराशरगीता, हंसगीता, ब्राह्मणगीता, अवधूतगीता, ईश्वरगीता, रामगीता, शिवगीता आदि।

महिष, महिषी

हिन्दी में 'महिष' पुं० शब्द 'भैंसा' अर्थ में और 'महिषी' स्त्री० शब्द 'भैंस' और 'पटरानी'[1] अर्थ में पाये जाते हैं। इन अर्थों में ये शब्द संस्कृत में

---

१. 'महिषी' शब्द के 'पटरानी' अर्थ का 'भैंस' अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'महिषी' शब्द का मौलिक अर्थ 'शक्तिशालिनी' होने के कारण ही 'पटरानी'

भी पाये जाते हैं। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'महिष' शब्द मूलतः एक विशेषण शब्द था और इसका मौलिक अर्थ था—'शक्तिशाली' (√मह् ='शक्तिशाली होना'+टिषच् उणादि० १.४५)। इसी अर्थ में 'महिष' शब्द का प्रयोग बहुधा ऋग्वेद में 'मृग' (जंगली पशु) शब्द के साथ[1] और कभी-कभी अकेले[2] भी 'भैंसे' के लिये पाया जाता है। जिस प्रकार हाथी के लिये 'हस्तिन् मृग' का प्रयोग होते रहने से कालान्तर में विशेषण 'हस्तिन्' (हाथ अर्थात् सूंड वाला) शब्द ही 'हाथी' (हस्तिन् मृग) का वाचक बन गया, इसी प्रकार 'भैंसे' के लिये 'महिषमृग' (शक्तिशाली जंगली पशु) का प्रयोग होते रहने से कालान्तर में 'महिष' विशेषण शब्द द्वारा ही 'महिष-मृग' अर्थात् 'भैंसे' के भाव को लक्षित किया जाने लगा। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 'भैंसे' के लिये 'महिष' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद से ही पाया जाता है। बाद में उसी जाति की मादा अर्थात् 'भैंस' के लिये 'महिषी' स्त्री० शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। 'भैंस' अर्थ में 'महिषी' शब्द का प्रयोग बाद की संहिताओं[3] से प्रारम्भ होता है।

(आ) क्रिया-विशेषण से संज्ञा

बहुधा क्रिया-विशेषण शब्द भी किसी अन्य शब्द के साथ साहचर्य से भाव-संक्रम होने पर संज्ञा शब्द बन जाते हैं।

को जिसका राजवंश में बड़ा महत्त्वपूर्ण एवं सम्माननीय स्थान होता था, 'महिषी' कहा गया। वैदिक काल में राजा लोग साधारणतया चार पत्नियाँ रखते थे, जिनको क्रमशः महिषी, परिवृक्ती, वावाता और पालागली कहा जाता था। सबसे प्रधान पत्नी (पटरानी) जो अधिकतर सर्वप्रथम विवाहित होती थी, 'महिषी' कहलाती थी। 'पटरानी' अर्थ में 'महिषी' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी माना जाता है और बाद के साहित्य में तो होता ही रहा है। लौकिक संस्कृत साहित्य में 'महिषी' शब्द के रानी, मादा पक्षी, परिचारिका, व्यभिचारिणी स्त्री आदि कई अन्य अर्थ भी विकसित पाये जाते हैं। तथापि सबसे अधिक प्रचलित अर्थ 'भैंस' और 'पटरानी' ही रहे हैं। हिन्दी में इन्हीं दोनों अर्थों को ग्रहण किया गया है।

१. ऋग्वेद ८.५८.१५, ९.९२.६, १०.१२३.४ आदि।

२. ऋग्वेद ५.२९.७, ६.६७.११, ८.१२.८, ९.८७.७ आदि तथा वाजसनेयिसंहिता २४.२८ आदि।

३. काठकसंहिता २५.६; मैत्रायणीसंहिता ३.८.५; षड्विंशब्राह्मण ५.७.११ आदि।

दण्डवत्

हिन्दी में 'दण्डवत्' (पुं०, स्त्री०) शब्द 'डण्डे के समान पृथ्वी पर पड़कर किया जाने वाला प्रणाम' अथवा 'प्रणाम' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'दण्डवत्' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'दण्डवत्' विशेषण शब्द का अर्थ है 'डण्डे वाला, दण्डधारी' और 'दण्डवत्' क्रिया-विशेषण शब्द का अर्थ है 'डण्डे के समान'। 'दण्डवत्' शब्द का 'डण्ड के समान पृथ्वी पर पड़कर किया जाने वाला प्रणाम' अथवा सामान्य रूप में 'प्रणाम' अर्थ इस शब्द के 'डण्डे के समान' अर्थ से ही विकसित हुआ है। पहिले 'दण्डवत्' शब्द प्रणाम करने की एक विधि को लक्षित करता था। इसमें प्रणाम किये जाने वाले व्यक्ति के सामने डण्डे के समान सीधा पड़ना पड़ता था। संस्कृत में 'दण्डवत्' शब्द का प्रयोग 'प्रणाम'[1] शब्द के साथ अथवा 'प्रणाम करना' की वाचक किसी धातु (जैसे प्र-पूर्वक √ नम् आदि[2]) के साथ काफ़ी पाया जाता है। इस प्रकार 'प्रणाम' अथवा 'प्रणाम करना' की वाचक किसी क्रिया के साथ प्रयुक्त होने से 'दण्डवत्' शब्द में प्रणाम करने का भाव भी संक्रान्त हो गया और कालान्तर में यह शब्द ही 'डण्डे के समान पड़कर प्रणाम करने' को लक्षित करने लगा। आधुनिक काल में इस शब्द के अर्थ में और विस्तार हो गया है और सामने सीधे पड़कर न किये जाने वाले अर्थात् सामान्य रूप में किये जाने वाले 'प्रणाम' को भी, जो बहुधा केवल औपचारिक होता है, 'दण्डवत्' कह दिया जाता है। 'दण्डवत्' का तद्भव 'डंडौत' शब्द भी ग्रामीण खड़ी बोली में प्रचलित है, जिसका प्रयोग किसी ब्राह्मण आदि को शिष्टाचारवश अभिवादन करने के लिये किया जाता है। आजकल डण्डे के समान पृथ्वी पर पड़कर प्रणाम करने की परिपाटी लुप्त हो गई है।

(इ) विविध शब्द-साहचर्यों पर आधारित अर्थ-परिवर्तन

पहिले दो परिच्छेदों में विशेषण और क्रियाविशेषण शब्दों के अन्य (संज्ञा आदि) शब्दों के साथ साहचर्य से हुये अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। एक शब्द का दूसरे शब्द से साहचर्य अन्य प्रकार से भी हो सकता है। एक शब्द का दूसरे शब्द से साहचर्य किसी ऐसे समस्त शब्द में

---

१. दण्डवत् प्रणामं कृत्वा। आप्टे के कोश से उद्धृत।

२. दण्डवत् प्रणम्य (अध्यात्मरामायण भूमिका ५)।

हो सकता है, जहाँ दोनों शब्द संज्ञा शब्द हों। एक शब्द का दूसरे शब्द से साहचर्य समस्त पद में न होकर वाक्य में साथ-साथ भी हो सकता है और उस अवस्था में भी एक शब्द का भाव दूसरे शब्द में संक्रान्त हो सकता है। अतः प्रस्तुत परिच्छेद में पहिले दो परिच्छेदों में वर्णित शब्द-साहचर्यों से भिन्न रूप में हुये शब्द-साहचर्यों पर आधारित अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है।

कटि

हिन्दी में 'कटि' स्त्री० शब्द का अर्थ है—'शरीर का मध्यभाग- जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है'।[१] संस्कृत में 'कटि' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'कटि' स्त्री० शब्द का प्रयोग 'कूल्हा' और 'नितम्ब'[२] अर्थों में पाया जाता है।

मोनियर विलियम्स और आप्टे के कोशों में 'कटि' शब्द के 'कूल्हा' और 'नितम्ब' (hip, buttocks) अर्थ ही दिये हैं, 'शरीर का मध्यभाग' अर्थ नहीं दिया है। संस्कृत में 'शरीर के मध्यभाग' के लिये कटितट, कटिदेश, कटिकूप आदि शब्द पाये जाते हैं।

हिन्दी में 'कटि' शब्द का 'शरीर का मध्यभाग' अर्थ इस शब्द के 'कूल्हा' अथवा 'नितम्ब' अर्थ से ही विकसित हुआ है। 'शरीर का मध्यभाग' (जिसको आजकल हिन्दी में 'कटि' कहा जाता है), कूल्हे अथवा नितम्ब के ऊपर का भाग होता है। शरीर के इस भाग के लिये संस्कृत में 'कटितट' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। सूर आदि हिन्दी कवियों के काव्य में भी इस भाग के लिये 'कटितट' शब्द का प्रयोग मिलता है।[३] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि शरीर के मध्यभाग के लिये 'कटितट' शब्द का प्रयोग होते रहने के कारण 'तट' का भाव भी 'कटि' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'कटितट' को 'कटि' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। आजकल हिन्दी में 'कटितट'

---

१. यह उल्लेखनीय है कि प्रामाणिक हिन्दी कोश आदि हिन्दी के कोशों में 'कटि' शब्द का अर्थ 'कमर' दिया है। यद्यपि 'कमर' शब्द का मौलिक अर्थ फ़ारसी भाषा में 'शरीर का मध्यभाग' ही है, किन्तु हिन्दी में 'कमर' शब्द के 'पीठ' अर्थ में प्रचलित होने के कारण 'कटि' शब्द का 'कमर' अर्थ देना ठीक नहीं है, क्योंकि इससे इसके अर्थ के विषय में भ्रान्ति हो सकती है।

२. तपनीयशिलाशोभा कटिश्च ते हरते मनः।

३. क्षुद्रघण्टिका कटितट शोभित नूपुर शब्द रसाल। सूर।

के लिये ही 'कटि' शब्द का प्रयोग किया जाता है, इसके 'कूल्हा' और 'नितम्ब' अर्थ प्रचलित नहीं हैं।

कोश

हिन्दी में 'कोश' पुं० शब्द आगार, भण्डार, खजाना, शब्दकोश (डिक्शनरी) आदि अर्थों में प्रचलित है। 'कोश' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु संस्कृत में 'कोश'[1] शब्द का मूल अर्थ 'धारक' (जिसमें कोई वस्तु रक्खी जाये) प्रतीत होता है। ऋग्वेद में 'कोश' शब्द का प्रयोग 'डोल'[2] के लिये पाया जाता है, जिससे कि रस्सी की सहायता से कुएँ से पानी खींचा जाता था। यज्ञीय कर्मकाण्ड के प्रसङ्ग में सोम रखने के एक प्रकार के पात्र को भी 'कोश' कहा गया है।[3] 'जिसमें कोई वस्तु रक्खी जाये' यह 'कोश' शब्द का मूलभाव होने के कारण बाद में चलकर 'तलवार रखने की जगह' (म्यान), 'धन रखने की जगह' (धनागार) आदि को 'कोश'[4] कहा गया। भाव-साहचर्य से 'कोश' शब्द का 'धनागार' से 'सञ्चित धन' अथवा 'निधि' अर्थ भी विकसित हो गया है। 'आगार' अथवा 'धनागार' आदि के सादृश्य से ही किसी ऐसे ग्रन्थ को, जिसमें किसी भाषा के शब्द वर्णानुक्रम से संगृहीत किये गये हों और उनके अर्थ, प्रयोग आदि दिये हों, 'शब्द-कोश' कहा गया। 'शब्द' शब्द का प्रयोग 'कोश' शब्द के साथ निरन्तर होते रहने से 'शब्द' का भाव भी 'कोश' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में केवल 'कोश' शब्द ही 'शब्दकोश' (डिक्शनरी) के भाव को लक्षित करने लगा।

---

१. 'कोश' शब्द की व्युत्पत्ति √कुश् धातु से मानी जाती है। सम्भवतः इसका सम्बन्ध कुक्षि, कोष्ठ आदि शब्दों से भी है। मूल भारत-यूरोपीय *(s) keu 'ढकना' से विकसित प्राचीन नोर्स, प्राचीन अंग्रेज़ी hūs 'घर' आदि शब्द भी 'कोश' से सम्बद्ध कहे जाते हैं।

२. ऋग्वेद १.१३०.२,२.३२.१५ आदि।

३. ऋग्वेद ६.७५.३; अथर्ववेद १८.४.३० आदि।

४. हिन्दी में 'धनागार' एवं 'निधि' अर्थों में 'कोष' शब्द का प्रयोग होता है। यह उल्लेखनीय है कि मूल शब्द 'कोश' ही था, जैसा कि वैदिक साहित्य में इसके प्रयोगों से पता चलता है। लौकिक संस्कृत में 'धनागार', 'निधि' आदि अर्थों में तथा अन्य विभिन्न अर्थों में 'कोश' एवं 'कोष' दोनों शब्दों का प्रचलन हो गया था।

घटा

हिन्दी में 'घटा' स्त्री० शब्द का अर्थ है—'बादलों का समूह'। संस्कृत में 'घटा' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'घटा' शब्द का मौलिक अर्थ है 'समूह'। संस्कृत साहित्य में 'समूह' अर्थ में 'घटा' शब्द का भौंरे[1], उल्लू[2], बादल[3], हाथी[4] आदि के वाचक शब्दों के साथ प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे 'मातङ्गघटा' का अर्थ है—'हाथियों का समूह'; 'घनघटा' का अर्थ है—'बादलों का समूह'।

'बादल' के वाचक 'घन' आदि शब्दों के साथ 'घटा' शब्द का अत्यधिक प्रयोग होते रहने से 'बादल' का भाव भी 'घटा' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में केवल 'घटा' शब्द ही 'घनघटा' को लक्षित करने लगा।

संस्कृत के कोशों में 'घटा' शब्द का एक अर्थ 'हाथियों का समूह' अथवा 'सैनिक-कार्य के लिये जमा हुये हाथियों का समूह' भी दिया है।[5] 'घटा' शब्द का यह अर्थ 'बादलों का समूह' अर्थ के समान ही 'हाथी' के वाचक 'मातङ्ग', 'कुञ्जर' आदि शब्दों के साथ प्रयुक्त होते रहने से विकसित हुआ है।

हिन्दी में आजकल 'घटा' शब्द 'बादलों का समूह' अर्थ में ही प्रचलित है, 'समूह' अर्थ सर्वथा लुप्त हो गया है। यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों में 'घटा' शब्द 'समूह' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—

रजनीचर मत्तगयन्दघटा विघटै मृगराज के साज लरै। तुलसीदास।

'घटा' शब्द का 'बादलों का समूह' अर्थ मराठी और गुजराती भाषा में भी पाया जाता है। किटेल ने अपने कन्नड़ भाषा के कोश में 'घटा' शब्द का अर्थ 'समूह' और 'युद्ध के लिये आयोजित हाथियों की सेना' भी दिया है, 'बादलों का समूह' अर्थ नहीं दिया है। तमिल लेक्सीकन में 'कटकम्' (< घटा) शब्द का अर्थ 'हाथियों का समूह' और 'समूह' तथा 'कटम्' (< घटा) शब्द का अर्थ 'हाथियों का समूह' दिया है। तमिल में एक

---

१. उत्कण्ठाघटमानषट्पदघटा। काव्य० ७.३००.

२. गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटा। उत्तर० २.२९.

३. प्रलयघनघटा। कादम्बरी १११.

४. तदीयमातङ्गघटाविघट्टितैः। शिशु० १.६४.

५. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

'कटिकै' शब्द भी है, जिसका अर्थ है 'ग्राम-सभा'। तमिल लेक्सीकन में इसको 'घटा' शब्द से ही विकसित माना गया है। बंगला भाषा में 'घटा' शब्द के 'समूह' के अतिरिक्त सजधज, ठाठ-बाट, समारोह आदि अर्थ भी हैं, जैसे—'घटा करिया विवाह' का अर्थ है 'समारोहपूर्वक किया गया विवाह।'[1]

चकित

हिन्दी में 'चकित' वि० शब्द 'विस्मत, आश्चर्यान्वित' अर्थ में प्रचलित है, (जैसे—'मैं अमुक वस्तु के सौन्दर्य को देखकर चकित रह गया')। संस्कृत में 'चकित' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'चकित' शब्द का प्रयोग 'कांपता आ'[2], हु'भयभीत'[3], 'चौंका हुआ'[4], 'भीरु', 'शङ्कित'[5] आदि अर्थों में पाया जाता है। 'भय' और 'साध्वस' आदि शब्दों के साथ भी 'चकित' शब्द के प्रयोग का उल्लेख आप्टे ने अपने कोश में किया है। 'चकित' शब्द का 'विस्मित' अर्थ इस शब्द के 'आश्चर्य' शब्द के साथ, अथवा 'आश्चर्य' के वाचक किसी अन्य शब्द के साथ प्रयुक्त होते रहने से विकसित हुआ प्रतीत होता है। पहिले 'आश्चर्य-चकित' शब्द का प्रयोग 'आश्चर्य से चौंका हुआ' अर्थ में किया जाता होगा, जैसे किसी अद्वितीय विलक्षण वस्तु को देखकर कहा जा सकता है कि 'मैं अमुक वस्तु को देखकर आश्चर्यचकित रह गया', किन्तु 'आश्चर्य' के साथ 'चकित' शब्द के निरन्तर प्रयुक्त होते रहने से 'आश्चर्य' शब्द का भाव भी 'चकित' शब्द में ही संक्रान्त हो गया होगा और कालान्तर में 'चकित' शब्द ही 'आश्चर्यचकित' के भाव को लक्षित करने लगा होगा। हिन्दी में आजकल 'चकित' शब्द 'आश्चर्यान्वित, विस्मित' अर्थ में ही प्रचलित है, घबराया हुआ, काँपता हुआ, शङ्कित आदि अर्थ लुप्त हो गये हैं।

गुजराती भाषा में भी 'चकित' शब्द का 'विस्मित' अर्थ मिलता है। मेहता ने अपने गुजराती-इंगलिश कोश में 'चकित' शब्द के 'भयभीत', 'चौंका हुआ', 'शङ्कित', 'भीरु' आदि अर्थों के साथ यह अर्थ भी दिया है। मोल्सवर्थ ने

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश-डिक्शनरी।

२. यथा—'भयचकित' (भय से काँपता हुआ), 'साध्वस-चकित' आदि में; विद्युद्दामस्फुरितचकितैः (मेघ० २७)।

३. व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि। मृच्छ० १.१७.

४. दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः। मेघ० १४.

५. पौलस्त्यचकितेश्वराः। रघु० १०.७३.

अपने मराठी भाषा के कोश में 'विस्मित' अर्थ नहीं दिया है। बंगला में 'चकित' शब्द के 'भयभीत', 'काँपता हुआ' और 'भीरु' अर्थ तो हैं ही ('विस्मित' अर्थ नहीं है), इनके अतिरिक्त 'क्षण' अर्थ भी है, जैसे 'चकिते'='क्षण भर में'।[१] किटेल ने अपने कन्नड़ भाषा के कोश में 'भयभीत', 'काँपता हुआ', 'भीरु' आदि अर्थ दिये हैं। गण्डर्ट ने मलयालम भाषा के कोश में 'काँपता हुआ' अर्थ दिया है। तमिल लेक्सीकन में 'चकितम्' शब्द का 'भीरु, कापुरुष' अर्थ ही दिया है।

मन्दिर

हिन्दी में 'मन्दिर' पुं० शब्द 'देवालय' अर्थ में प्रचलित है। 'मन्दिर' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'मन्दिर' शब्द का मौलिक अर्थ है—'रहने का घर, निवास-स्थान, भवन'।[२]

'मन्दिर' शब्द के 'घर अथवा भवन' अर्थ से ही 'देवालय' अर्थ का विकास हुआ है। 'देवालय' किसी देवता के स्थान अथवा घर को कहते हैं। संस्कृत साहित्य में 'गृह, घर' अर्थ में 'मन्दिर' शब्द का प्रयोग 'देवता' के वाचक शब्द के साथ पाया जाता है, जैसे कादम्बरी में 'देवालय' अर्थ में प्रयुक्त 'अमरमन्दिर'[३] शब्द में 'मन्दिर' शब्द 'देवता' के वाचक 'अमर' शब्द के साथ प्रयुक्त हुआ है, मालतीमाधव (अङ्क ६) में 'देवतामन्दिर' शब्द में 'मन्दिर' शब्द 'देवता' शब्द के साथ प्रयुक्त हुआ है। अतः किसी देवताविशेष के नाम के साथ अथवा सामान्य रूप में 'देवता' के वाचक किसी शब्द के साथ 'घर अथवा रहने के स्थान' के वाचक 'मन्दिर' शब्द के प्रयुक्त होते रहने से 'मन्दिर' शब्द में 'देवता' का भाव भी संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'घर अथवा रहने के स्थान' का वाचक 'मन्दिर' शब्द ही 'देवता के घर' अथवा 'देवता के स्थान' को लक्षित करने लगा।

'मन्दिर' शब्द पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगला, असमिया आदि भाषाओं

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

२. निर्ययावथ पौलस्त्यः पुनर्युद्धाय मन्दिरात्। रघु० १२.८३

३. तुषारगिरिशिखरैरमरमन्दिरैर्विराजितशृङ्गाटका। कादम्बरी (चौखम्बा-संस्करण, १९५३) पृष्ठ १५२.

में भी 'देवालय' अर्थ में पाया जाता है। कश्मीरी में 'मन्दर्' और सिन्धी में 'मन्दरु' शब्द मिलते हैं, जोकि 'मन्दिर' के ही तद्भव रूप हैं।[1]

'मन्दिर' के वाचक कतिपय अन्य शब्दों में भी सामान्य रूप से 'देव' अथवा 'देवविशेष' के वाचक शब्दों के साथ संयुक्त 'घर' के वाचक शब्द पाये जाते हैं, जैसे 'मन्दिर' के वाचक 'देवालय'[2] एवं 'देवगृह'[3] शब्दों का मूल अर्थ है 'देवता का घर'। इसी प्रकार 'विष्णुगृह', 'शिवालय' आदि शब्दों में भी 'घर' के वाचक शब्द हैं[4]।

बक[5] ने अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में इस बात का उल्लेख किया है कि भारत-यूरोपीय भाषाओं में 'मन्दिर' (temple) के वाचक बहुत से शब्द 'निवासस्थान, घर' के वाचक शब्दों से विकसित हुये हैं (जिनमें 'देव' का वाचक शब्द या तो स्पष्टतः पाया जाता है या उसका भाव निहित है)। चर्चस्लैविक भाषा में chramŭ शब्द का अर्थ 'घर' था, किन्तु बाद में इसका अर्थ temple भी विकसित हो गया और बहुधा इसका प्रयोग church के लिये भी पाया जाता है। चर्चस्लैविक chramŭ (घर) से विकसित हुये सर्बोक्रोशियन hram, बोहेमियन chrám, रशन chram शब्द भी temple अर्थ में पाये जाते हैं। 'मन्दिर' के वाचक कुछ अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं के शब्दों में, 'देवालय' आदि शब्दों के समान, 'देव' का वाचक शब्द 'घर' के वाचक शब्द के साथ संयुक्त पाया जाता है, जैसे गोथिक भाषा में 'मन्दिर' (temple) के लिये gudhūs शब्द मिलता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'भगवान् का घर' (house of god); लिथुआनियन भाषा के dievnamis और लेटिश भाषा के dievnams (अथवा

---

१. व्यवहारकोश।

२. 'मन्दिर' के लिये मराठी में 'देऊल', उड़िया में 'देउल' और तेलुगु में 'देवालयमु' शब्द भी मिलते हैं (व्यवहारकोश), जोकि संस्कृत 'देवालय' से ही विकसित हुये हैं।

३. देवगृहाश्रिते नर्तक्यौ। राजतरङ्गिणी ४.२६६.

४. शिवालये विष्णुगृहे सूर्यस्य भवने तथा। अग्निपुराण २११.५७.

५. "Many of the words for 'temple' are from 'dwelling, house' (with 'god' expressed or understood)". A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages (22.13; temple), p. 1465-66.

dieva nams) शब्दों का भी शाब्दिक अर्थ 'देवता का घर' है।[१]

शृङ्गार

हिन्दी में 'शृङ्गार'[२] पुं० शब्द साहित्यशास्त्र के नवरसों में से 'एक रसविशेष', 'स्त्री अथवा पुरुष के शरीर के बनाव-सजाव' और 'किसी वस्तु के सजाव' के लिये प्रयुक्त होता है। 'शृङ्गार' शब्द का पहिला अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु अन्य अर्थ आधुनिक काल में ही विकसित हुये हैं।

संस्कृत में 'शृङ्गार' पुं० शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—शृङ्गं कामोद्रेकमृच्छतीति. (ऋ गतौ + 'कर्मण्यण्' इत्यण्)। भरत ने 'शृङ्गार' की परिभाषा इस प्रकार की है—"स्त्री में पुरुष के साथ और पुरुष में स्त्री के साथ सम्भोग की रतिक्रीडादिमूलक स्पृहा को शृङ्गार कहते हैं।"[३] संस्कृत साहित्यशास्त्र में 'शृङ्गार' नौ रसों में से एक प्रमुख रस माना गया है। साहित्यदर्पण में 'शृङ्गार' रस का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—"शृङ्ग का अर्थ है (कामुकयुगल का उत्पीड़क) कामाविर्भाव, उस कामाविर्भाव से सम्भूत रस शृङ्गार कहलाता है। इसके आलम्बन प्रायः उत्तम प्रकृति के प्रेमीजन होते हैं।"[४] साहित्यशास्त्र में शृङ्गार रस के दो भेद माने गये हैं १. सम्भोग शृङ्गार, और २. विप्रलम्भ या विप्रयोग शृङ्गार। एक दूसरे के प्रति अनुरक्त नायक और नायिका के परस्पर मिलन से युक्त शृङ्गार 'सम्भोग शृङ्गार' कहलाता है। इसके अन्तर्गत परस्पर अवलोकन, आलिङ्गन, अधरपान, चुम्बन आदि आ जाते हैं। विप्रलम्भ या विप्रयोग शृङ्गार उसे कहते हैं, जहाँ उत्कट प्रेम होने पर भी प्रिय-समागम न हो सके। यह अभिलाष, ईर्ष्या, विरह, प्रवास, शाप आदि विभिन्न प्रकार का माना गया

---

१. सी० डी० बक: ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ १४६५-६६.

२. हिन्दी में 'शृङ्गार' शब्द बहुधा अशुद्ध रूप में 'श्रङ्गार' लिखा जाता है। इस प्रकार की भूल शृ और श्र के भेद का ज्ञान न होने के कारण होती है।

३. पुंसः स्त्रियां स्त्रियाः पुंसि संयोगं प्रति या स्पृहा।
स शृङ्गार इति ख्यातो रतिक्रीडादिकारणम्॥

४. शृङ्गं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृङ्गार इष्यते॥ ३.१८३॥

है। शृङ्गार रस को रसराज कहा गया है। संस्कृत साहित्य में 'शृङ्गार' शब्द का प्रयोग रस के अतिरिक्त 'कामवासना' अर्थ में भी काफ़ी पाया जाता है, जैसे[1]—शकुन्तला शृङ्गारलज्जां रूपयति—'शकुन्तला कामवासना के कारण लज्जा का अभिनय करती है' (शाकु० अङ्क १)।

'कामवासना' और 'शृङ्गाररस' अर्थों के पश्चात् 'शृङ्गार' शब्द का अर्थ विकसित हुआ—'सुन्दर एवं आकर्षक वेशभूषा, जिसे धारण करके प्रेमी एवं प्रेमिका कामक्रीड़ायें करते हैं'। 'शृङ्गार' शब्द का यह अर्थ 'शृङ्गार' शब्द के 'वेश' शब्द के साथ निरन्तर प्रयुक्त होते रहने से विकसित हुआ है[2] अर्थात् निरन्तर साथ-साथ प्रयुक्त होते रहने से 'वेश' शब्द का भाव भी 'शृङ्गार' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में केवल 'शृङ्गार' शब्द ही 'शृङ्गार-वेश' के भाव को व्यक्त करने लगा। संस्कृत में 'शृङ्गारवेश' शब्द के उपर्युक्त अर्थ में पाये जाने से इस प्रकार अर्थ-विकास स्वाभाविक प्रतीत होता है। पहिले कामक्रीड़ा के योग्य सुन्दर एवं आकर्षक वेशभूषा को ही 'शृङ्गार' कहा जाता था, किन्तु बाद में धीरे-धीरे इसके अर्थ में विस्तार हो गया और सामान्य रूप में 'सुन्दर एवं आकर्षक वेशभूषा'[3] को भी 'शृङ्गार' कहा जाने लगा, चाहे उसे कामक्रीड़ा के उद्देश्य से न भी धारण किया गया हो। आज-कल हिन्दी में इस अर्थ में कुछ और विकास हो गया है अर्थात् 'स्त्री या पुरुष के शरीर के बनाव-सजाव' या 'किसी वस्तु के सजाव' को 'शृङ्गार' कहा जाता है।

सन्तति

हिन्दी में 'सन्तति' स्त्री० शब्द 'औलाद, बाल-बच्चे' अर्थ में प्रचलित है। 'सन्तति' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे—सन्ततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे (रघु० १.६६)।

'सन्तति' शब्द सम् उपसर्गपूर्वक √ तन् 'फैलना' धातु से क्तिन् प्रत्यय लगकर बना है। अतः इसका मौलिक अर्थ है 'फैलाव, विस्तार'। 'सन्तति' शब्द पहिले भौतिक वस्तुओं के क्षेत्र में 'फैलाव, विस्तार' को लक्षित करता था, किन्तु बाद में इसका सूक्ष्म भाव भी प्रचलित हो गया और यह शब्द

---

१. शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः। रघु० ६.१२.

२. आप्टे और मोनियर विलियम्स आदि के कोशों में 'शृङ्गारवेश' शब्द का यह अर्थ दिया हुआ है।

३. आप्टे, मोनियर विलियम्स आदि।

किसी कार्य आदि के 'फैलाव, विस्तार' को लक्षित करने लगा, जैसे— विदधाद् यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् (भागवत १.४.१९)।

'सन्तति' शब्द के 'फैलाव, विस्तार' अर्थ से ही संस्कृत में धारा[1], अविच्छिन्नता, पंक्ति[2], अविच्छिन्न क्रम[3] आदि और उनसे वंश, औलाद आदि अर्थों का विकास हुआ है। 'औलाद' से वंश का फैलाव (विस्तार) भी होता है और वंश का क्रम भी जारी रहता है। अतः इस निहित भाव के कारण वंश, परिवार, औलाद आदि को 'फैलाव,' 'अविच्छिन्न क्रम' आदि के वाचक 'सन्तति' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा होगा। संस्कृत में 'सन्तति' शब्द के वंश, परिवार, औलाद आदि अर्थों के विकास में 'सन्तति' शब्द का 'क्रम' या 'अविच्छिन्नक्रम' अर्थ में 'कुल'[4] आदि शब्दों के साथ अथवा 'कुल' के प्रसङ्ग में प्रयोग भी मुख्य कारण रहा है। कुल आदि शब्दों के साथ अथवा कुल के प्रसङ्ग में 'सन्तति' शब्द का 'क्रम या अविच्छिन्न क्रम' अर्थ में प्रयोग होते रहने से 'कुल' का भाव भी 'सन्तति' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'कुल, वंश,' 'औलाद' आदि को 'सन्तति' शब्द द्वारा ही लक्षित किया जाने लगा।

हिन्दी में 'सन्तति' शब्द केवल 'औलाद' (सन्तान) अर्थ में ही प्रचलित है। 'सन्तति' शब्द का 'औलाद' अर्थ मराठी, गुजराती, बंगला, नेपाली, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में भी पाया जाता है।

सन्तान

हिन्दी में 'सन्तान' स्त्री० शब्द 'औलाद, बालबच्चे' अर्थ में प्रचलित है। 'सन्तान' शब्द का 'औलाद' अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[5] 'सन्तान' शब्द सम् उपसर्ग-पूर्वक √तन् 'फैलना' धातु से बना है। अतः इसका मौलिक अर्थ

---

१. तच्छ्रुत्वा नेत्रयुगलात् स तत्याजाश्रुसन्ततिम्। कथा० ११.५१.

२. कुसुमसन्ततिसन्ततसङ्गिभिः। शिशु० ६.३६.

३. निदानमिक्ष्वाकुकुलस्य सन्ततेः। रघु० ३.१.

४. दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम् (मनु० ५.१५९); देखिये, पादटिप्पणी ३ भी।

५ सन्तानार्थाय विधये (रघु० १.३४); मनु० ३.१८५ आदि। यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'औलाद' अर्थ में 'सन्तान' शब्द पुं० और नपुं० दोनों लिङ्गों में पाया पाता है, जबकि हिन्दी में यह 'स्त्रीलिङ्ग' में प्रचलित है।

है 'फैलाव, विस्तार'। पहिले 'सन्तान' शब्द भौतिक वस्तुओं के किसी क्षेत्र में 'फैलाव' को लक्षित करता था, जैसे—सन्तानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः—'क्षीण होने से अदृश्य हुये जल वाली नदियाँ फैलाव के कारण प्रकटता को प्राप्त कर रही हैं' (शाकु० ७.८)। किन्तु बाद में चलकर यह 'फैलाव, विस्तार' के सूक्ष्म भाव अर्थात् किसी कार्य, कुल, परिवार आदि के 'फैलाव' को भी लक्षित करने लगा।[1] महाभारत में कुल के 'फैलाव' के लिये 'सन्तान' शब्द का प्रयोग मिलता है, जैसे—तयोरुत्पादयापत्यं सन्तानाय कुलस्य नः (१.१०३.१०)।

संस्कृत में 'सन्तान' शब्द के 'फैलाव, विस्तार' अर्थ से ही धारा, अजस्र प्रवाह[2], अविच्छिन्न क्रम[3], पंक्ति आदि अर्थों का विकास हुआ है। संस्कृत में इन अर्थों में 'सन्तान' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

'सन्तान' शब्द का 'औलाद, बालबच्चे' अर्थ भी इस शब्द के फैलाव, अविच्छिन्न क्रम आदि अर्थों से हुआ है। 'औलाद' से वंश का फैलाव (विस्तार) भी होता है और वंश का क्रम भी जारी रहता है, अतः इस निहित भाव के कारण वंश, परिवार, औलाद आदि को 'विस्तार' अथवा 'अविच्छिन्न-क्रम' के वाचक 'सन्तान' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा होगा। संस्कृत में 'सन्तान' शब्द के 'वंश, परिवार', 'औलाद' आदि अर्थों के विकास में 'सन्तान' शब्द का 'कुल' आदि शब्दों के साथ (जैसा कि ऊपर महाभारत के उदाहरण में) अथवा कुल, वंश आदि के प्रसङ्ग में प्रयोग भी मुख्य कारण रहा है। 'कुल' आदि शब्दों के साथ अथवा कुल के प्रसङ्ग में 'सन्तान' शब्द का 'विस्तार' या 'क्रम' अर्थ में प्रयोग होने से 'कुल' का भाव भी 'सन्तान' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'कुल', 'वंश', 'औलाद' आदि को 'सन्तान' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा।

यह उल्लेखनीय है कि 'सन्तान' शब्द का प्रयोग अधिकतर लौकिक संस्कृत साहित्य में ही पाया जाता है, ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। 'सन्तान' शब्द का 'औलाद' अर्थ मराठी, गुजराती, बंगला और कन्नड़ भाषाओं में भी पाया जाता है। तमिल में 'चन्तानम्' और तेलुगु में 'सन्तानमु' शब्दों का भी यही अर्थ है।

---

१. चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः। रामायण ४.१८.९.

२. अच्छिन्नामलसन्तानाः समुद्रोर्म्यनिवारिताः। कुमार० ६.६९.

३. सन्तानवाहीनि दुःखानि। उत्तर० ४.८.

प्राचीन जावानीज़ ग्रन्थों में 'सन्तान' शब्द वंश, कुल, परिवार आदि अर्थों में पाया जाता है। बालिनीज़ में इसका अर्थ सङ्कुचित होकर 'औलाद' हो गया है, यद्यपि 'गोद लिया हुआ बालक' अर्थ भी पाया जाता है।

आधुनिक जावानीज़ भाषा में 'सन्तान' शब्द का अर्थ 'किसी राजकुमार अथवा कुलीन व्यक्ति के परिवार का निम्नस्थिति का सदस्य' (विशेषकर प्रथम पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य पत्नी का सम्बन्धी) है। सूडानीज़ भाषा में इसका अर्थ है—'निम्नस्थिति की पत्नियों से उत्पन्न कुलीन व्यक्ति की औलाद'। मलय भाषा में इसका अर्थ है—'राजकीय परिवार'[१]। डा० गोंडा ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत इन इण्डोनेशिया' में एक अन्य स्थल पर लिखा है—"प्राचीन जावानीज़ भाषा में सन्तान (सन्तति, वंश, परिवार) 'औलाद' को ही लक्षित नहीं करता, अपितु 'भृत्यवर्ग, परिचारकवर्ग को भी लक्षित करता है और आजकल इस शब्द के कई विशिष्ट अर्थ हो गये हैं। आधुनिक जावानीज़ भाषा में 'किसी राजकुमार या कुलीन व्यक्ति के निम्नस्थिति के सम्बन्धी', 'ग्राम के मुखिया के सम्बन्धी और परिचारक' अर्थ भी हैं"।[२]

---

१. "The Skt. saṃtāna-सन्तान 'extension, expansion ; lineage, race, decent, family' is found in Old-Javanese texts in the latter group of meanings, which, in Balinese tended to be narrowed to 'issue, offspring' though we also find the sense of 'adoptive child'; in Mod. Javanese it came to mean 'member of a family of lower rank (of a prince, a man of gentle birth etc., especially applied to the relatives of a wife other than the first lady).' Whereas the Sudanese meaning is 'offspring of the native nobility by wives of lower rank', the Malay sense came to be 'the (royal) family' ; a *peneram sentana* is a 'prince of the blood'." Sanskrit in Indonesia, p. 347.

२. "We know that in O. Jav. the Skt. saṃtāna-सन्तान 'continuity, lineage, family, progeny' is not only denotative of 'child, offspring etc.' but also of 'retinue', and that the word now-a-days has various specialised meanings; Mod. Jav. 'relatives of lower rank of a prince or nobleman' (regional), 'attendents and also relatives of a village-head'." Sanskrit in Indonesia, p. 381.

'सन्तान' शब्द के वंश, कुल, परिवार आदि अर्थों से आधुनिक जावानीज़ भाषा में 'किसी राजकुमार अथवा कुलीन व्यक्ति के परिवार का निम्नस्थिति का सदस्य (विशेषकर प्रथम पत्नी के अतिरिक्त अन्य पत्नी के सम्बन्धी)', 'किसी राजकुमार या कुलीन व्यक्ति के निम्नस्थिति के सम्बन्धी', "ग्राम के मुखिया के सम्बन्धी और परिचारक' आदि अर्थ और सूडानीज भाषा में 'निम्नस्थिति की पत्नियों से उत्पन्न कुलीन व्यक्ति की औलाद' अर्थ विकसित हो जाने से प्राचीन काल में राजा-महाराजाओं, जागीरदारों तथा अन्य धनाढ्य व्यक्तियों द्वारा बहुत सी पत्नियों से विवाह किये जाने और इसके बदले में उनके सम्बन्धियों को अपनी सेवा में रखने की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प्राचीन काल में अधिकतर राजा-महाराजा एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे। उनमें बहुधा कुछ ऐसी भी पत्नियाँ होती थीं, जोकि समाज के निम्नवर्ग की होती थीं[1] और राजा-महाराजा उनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर (और बहुधा उनके सम्बन्धियों पर ज़ोर देकर अथवा धन आदि देने का या उनको अपनी सेवा में अच्छे पदों पर रखने का प्रलोभन देकर) उनसे विवाह कर लेते थे। ऐसी पत्नियों के सम्बन्धी जो राजा की सेवा में रहते थे, राजा के सम्बन्धी होने के कारण परिवार के सदस्य भी माने जाते थे और परिचारक भी। संस्कृत नाटकों में (जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अङ्क में) नगर के रक्षाधिकारी के लिये 'श्याल' (साला) शब्द का प्रयोग पाया जाता है। उस अधिकारी के राजा का साला होने के कारण ही उसको 'श्याल' कहा जाता होगा। अतः यह स्पष्ट है कि राजा-महाराजाओं अथवा सम्पन्न व्यक्तियों की पत्नियों के सम्बन्धियों और परिचारकों के बहुधा एक ही व्यक्तियों के होने के कारण भाव-साहचर्य से जावानीज़ आदि भाषाओं में 'सन्तान' शब्द के उपर्युक्त अर्थ विकसित हो गये होंगे।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'विस्तार' अथवा 'अविच्छिन्न-क्रम' के वाचक कई अन्य शब्दों के भी 'औलाद' अर्थ का विकास पाया जाता है। √तन् 'फैलना' धातु से बने हुये **'तन्'** शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में 'अविच्छिन्न-क्रम' तथा 'औलाद' (सन्तान) अर्थ में पाया जाता है। ऋग्वेद में **'तन'** शब्द का प्रयोग भी 'औलाद' अर्थ में पाया जाता है (जैसे ऋग्वेद १.३९.७; ८.

१. प्राचीन भारतीय साहित्य में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। राजा शान्तनु द्वारा मछियारे की लड़की सत्यवती से विवाह किये जाने की महाभारत की कथा प्रसिद्ध ही है।

१८.१८ आदि) । इसी प्रकार √तन् धातु से बने हुये **'तनय'** और **'तनया'** शब्द लौकिक संस्कृत में भी क्रमशः 'पुत्र' और 'पुत्री' अर्थ में पाये जाते हैं। **'वंश'** शब्द के 'कुल' अर्थ का विकास इस शब्द के मौलिक अर्थ 'बाँस' से उसकी गाँठों के 'अविच्छिन्न-क्रम' के सादृश्य पर हुआ है ।[1] संस्कृत में **'अन्वय'** शब्द का भी 'वंश' अर्थ इसके मौलिक अर्थ 'क्रम, सङ्गति' (एक के बाद एक होना) से विकसित हुआ है ।

सन्ध्या

हिन्दी में 'सन्ध्या' स्त्री० शब्द 'दिन और रात के संयोग का समय', 'सायंकाल', 'प्रातः सायं की जाने वाली एक विशेष प्रकार की उपासना' आदि अर्थों में प्रचलित है । 'सन्ध्या' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं । किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'सन्ध्या' शब्द का मौलिक अर्थ है—'संयोग, मेल, मिलन' । इसी अर्थ में 'सन्ध्या' शब्द विशेष रूप से दिन और रात के मिलन के लिये प्रचलित हुआ । दिन और रात के मिलन के समय को 'सन्ध्याकाल'[2] (पुं०) या 'सन्ध्या-समय'[3] (पुं०) कहा गया । 'सन्ध्या' शब्द के साथ काल या इसके वाचक समय आदि शब्दों का प्रयोग होते रहने से 'काल' का भाव भी 'सन्ध्या' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में अकेला 'सन्ध्या' शब्द ही 'सन्ध्याकाल' के भाव को लक्षित करने लगा ।

सर्वप्रथम दिन और रात के मिलने के दोनों समयों को 'सन्ध्या' कहा गया । ब्राह्मणग्रन्थों और गृह्यसूत्रों में 'सन्ध्या' शब्द इसी अर्थ में उपलब्ध होता है । वराहमिहिर की बृहत्संहिता में दिन के तीनों विभागों (प्रातःकाल, दोपहर और सायंकाल) के सन्धि-समयों को 'सन्ध्या' कहा गया है । प्राचीन काल में दिन के इन तीनों समयों में उपासना की जाती थी, जिसमें आचमन किया जाता था और मन्त्रों (विशेष रूप से गायत्री मन्त्र) आदि का उच्चारण होता था । सन्ध्यासमयों की उपासना के लिये प्राचीन साहित्य में 'सन्ध्योपासन'[4] नपुं० शब्द का और 'सन्ध्याकालीन उपासना करना' के लिये

---

१. देखिये 'वंश' ।

२. वाल्मीकीय रामायण, वराहमिहिर की बृहत्संहिता, हितोपदेश आदि ।

३. हितोपदेश, वासवदत्ता आदि ।

४. मनु० २.६९ आदि । बहुत सी पुस्तकों के नामों में भी 'सन्ध्योपासन' शब्द मिलता है, जैसे 'सन्ध्योपासनविधि' पुं० बहुत सी पुस्तकों का नाम है ।

'सन्ध्याम् √आस्', 'सन्ध्याम् अनु+√आस्, 'सन्ध्याम् उप+√आस्' आदि का प्रयोग मिलता है। 'सन्ध्या' शब्द के साथ 'उपासना' के वाचक 'उपासन' शब्द अथवा 'उपासना करना' की वाचक उपर्युक्त क्रियाओं का प्रयोग होते रहने से 'उपासना' का भाव भी 'सन्ध्या' शब्द में संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'सन्ध्या' शब्द ही 'सन्ध्योपासन' के भाव को लक्षित करने लगा। आजकल भी 'सन्ध्या' शब्द ऐसी विशेष प्रकार की उपासना के लिये प्रचलित है, जिसमें आचमन किया जाता है और कुछ विशिष्ट मन्त्रों का जाप किया जाता है। दिन और रात के संयोग के दोनों समयों में से दिन के अन्त और रात्रि के प्रारम्भ के संयोग के समय अर्थात् सायंकाल् के लिये 'सन्ध्या' शब्द अधिक प्रचलित रहा है।[१] हिन्दी में भी आजकल 'सन्ध्या' शब्द का 'सायंकाल' के लिये काफ़ी प्रयोग होता है।[२] बहुधा इस अर्थ में 'सन्ध्या' शब्द का आलङ्कारिक प्रयोग भी किया जाता है, जैसे—'जीवन की सन्ध्या' आदि।

सामग्री

हिन्दी में 'सामग्री' स्त्री० शब्द 'आवश्यक वस्तुओं का समूह', 'सामान', 'हवन में डाला जाने वाला एक मिश्रित पदार्थविशेष' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'सामग्री' शब्द के पहिले दो अर्थ ('आवश्यक वस्तुओं का समूह', 'सामान') तो संस्कृत में भी पाये जाते हैं, किन्तु तीसरा अर्थ (हवन में डाला जाने वाला एक मिश्रित पदार्थविशेष) संस्कृत में नहीं पाया जाता। यह अर्थ हिन्दी में ही विकसित हुआ है।

संस्कृत में 'सामग्री' स्त्री० शब्द का मूल अर्थ है—'समग्रता, पूर्णता' (समग्रस्य भावः; समग्र+ष्यञ् स्त्रीत्वपक्षे ङीषि यलोपः)। 'सामग्री' शब्द का मूल अर्थ 'समग्रता, पूर्णता' होने के कारण किसी व्यक्ति अथवा कार्य के लिये आवश्यक सभी वस्तुओं के समूह को 'सामग्री' कहा गया। हवन के प्रसङ्ग में उन सब वस्तुओं के समूह को, जिनकी हवन में अग्नि में आहुतियाँ डाली जाती हैं, 'हवन-सामग्री' कहा गया। कालान्तर में 'हवन' का भाव भी 'सामग्री' शब्द में संक्रान्त हो गया और अकेला 'सामग्री' शब्द ही 'हवन-सामग्री' के भाव को लक्षित करने लगा। आजकल बोलचाल की हिन्दी में 'सामग्री' शब्द का यही प्रमुख अर्थ है।

---

१. सन्ध्यामङ्गलदीपिका (वेणी० ३.२); पञ्च० १.१९४ आदि।

२. 'सन्ध्या' से विकसित हुआ 'सांझ' तद्भव शब्द भी हिन्दी में 'सायंकाल' अर्थ में ही प्रचलित है।

अध्याय १५

विशेषण से संज्ञा

विशेषण शब्द बहुधा अपने द्वारा सूचित किसी गुण अथवा विशेषता से युक्त किसी क्रिया, वस्तु, भाव, व्यक्ति आदि को लक्षित करने लगते हैं। इस प्रकार वे विशेषण से संज्ञा शब्द बन जाते हैं और उनका प्रयोग पुं०, नपुं० और स्त्री० में से किसी भी लिङ्ग में प्रचलित हो जाता है। हिन्दी में प्रचलित ऐसे बहुत से संस्कृत शब्द हैं, जो मूलतः विशेषण शब्द थे, किन्तु कालान्तर में संज्ञा शब्द बन गये हैं। जो विशेषण शब्द अन्य शब्दों के साहचर्य में प्रयुक्त होते रहने से भाव-संक्रम होने पर संज्ञा शब्द बने हैं, उनके अर्थ-विकास का पिछले अध्याय में विवेचन किया जा चुका है।

असमञ्जस

हिन्दी में 'असमञ्जस' पुं० शब्द 'दुविधा' (अर्थात् उपस्थित दो बातों में से कोई बात स्थिर न कर सकने की क्रिया या भाव) अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'असमञ्जस' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

'असमञ्जस' शब्द मूलतः अ+समञ्जस से मिलकर बना विशेषण शब्द था। संस्कृत में 'समञ्जस' वि० शब्द का प्रयोग उपयुक्त, उचित[1], भला[2] (सज्जन) आदि अर्थों में पाया जाता है। इस प्रकार 'असमञ्जस' वि० शब्द का मौलिक अर्थ है—'अनुचित, अनुपयुक्त'। संस्कृत में 'असमञ्जस' शब्द का प्रयोग अधिकतर इसी अर्थ में पाया जाता है, जैसे[3]—अतिप्रणयादेतन्मयोक्तमसमञ्जसम्—'अत्यधिक प्रेम के कारण मुझसे यह अनुपयुक्त बात कही गई' (कथा०)।

---

१. आहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः। भागवत ६.९.३५.

२. समञ्जसं जनम्–'सज्जन को' (किरात० १४.१२)।

३. यद्यपि न कापि हानिर्द्राक्षामन्यस्य रासभे चरति। असमञ्जसमिति मत्वा तथापि तरलायते चेतः। उद्भट (एल० आर० वैद्य के कोश से उद्धृत)।

संस्कृत में 'असमञ्जस' शब्द के 'अनुपयुक्त, अनुचित' अर्थ से 'असङ्गत, अस्पष्ट' अर्थ का भी विकास पाया जाता है, जैसे—

अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितं ते ।।

"तुम्हारे शिशुरूप में, कारण के विना भी रोने और हंसने वाले, कलियों के अग्रभागों के तुल्य कुछ दाँतों से शोभित, अधूरे अक्षरों वाले, अस्पष्ट (अस्फुट) और सुन्दर वचनों से युक्त कमल के तुल्य मुख की याद करता हूँ" (उत्तर० ४.४) ।

'असमञ्जस' शब्द के 'असङ्गत, अस्पष्ट' अर्थ से ही हिन्दी में 'दुविधा' अर्थ का विकास हुआ प्रतीत होता है । पहिले किसी असङ्गत अथवा अस्पष्ट क्रिया या भाव को 'असमञ्जस' विशेषणरूप में कहा जाता होगा, बाद में उस क्रिया अथवा भाव को भी संज्ञा के रूप में 'असमञ्जस' कहा जाने लगा । दुविधा की स्थिति में किसी व्यक्ति के विचार अस्पष्ट होते हैं, उसके विचारों में सङ्गति नहीं होती, इस कारण उपस्थित दो बातों में से कोई बात स्थिर करने में वह असमर्थ रहता है ।

ईश्वर

हिन्दी में 'ईश्वर' पुं० शब्द 'परमात्मा, भगवान्' अर्थ में प्रचलित है । 'ईश्वर' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है ।[1] संस्कृत में 'ईश्वर' शब्द मूलतः एक विशेषण शब्द था और इसका सबसे प्राचीन अर्थ सम्भवतः 'स्वामी' था । वैदिक साहित्य में √ईश् धातु का प्रयोग स्वामी होना, अधिकार रखना, वश में रखना, अभिभूत करना[2], नियन्त्रण करना, शासन करना आदि अर्थों में पाया जाता है । बाद में चलकर √ईश् धातु का 'समर्थ होना' अर्थ भी विकसित हुआ । तदनुसार विशेषण के रूप में

---

१. ईश एवाहमत्यर्थं न च मामीशते परे ।
ददामि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्तितः ।। स्कन्दपुराण (आप्टे) ;
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।। भग० १८.६१.

२. मा नो निद्रा ईशत—'निद्रा हमें अभिभूत न करे' (ऋग्वेद ८.४८.१४)

'ईश्वर' शब्द संस्कृत में 'समर्थ'[१] अर्थ में भी पाया जाता है। पुं० संज्ञा शब्द के रूप में 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग संस्कृत में स्वामी[२], राजा (शासक[३]), धनी व्यक्ति[४], महापुरुष[५], पति[६] आदि अर्थों में भी पाया जाता है। 'शिवजी' के लिये भी 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग पाया जाता है।[७] स्पष्टतः 'भगवान्' के लिये अथवा 'शिवजी' के लिये 'ईश्वर' शब्द उनको स्वामी माना जाने के कारण प्रचलित हुआ होगा। यह उल्लेखनीय है कि 'परमात्मा, भगवान्' अर्थ में 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में नहीं पाया जाता। यह अर्थ वैदिक साहित्य के पश्चात् विकसित हुआ है।

हिन्दी में 'ईश्वर' शब्द का 'भगवान्' अर्थ ही प्रचलित है, समर्थ, स्वामी, धनी, राजा, महापुरुष, पति आदि अर्थ लुप्त हो गये हैं। 'ईश्वर' शब्द का 'भगवान्' अर्थ मराठी, गुजराती और बंगला आदि भाषाओं में भी पाया जाता है।

उत्तर

हिन्दी में 'उत्तर' पुं० शब्द अधिकतर 'उत्तर दिशा', 'जवाब' आदि अर्थों में प्रचलित है, 'बाद का' अर्थ में 'उत्तर' वि० शब्द का प्रयोग बहुत कम किया जाता है (केवल उत्तरार्ध, उत्तरकालीन आदि कुछ संयुक्त शब्दों में ही 'उत्तर' शब्द 'बाद का' अर्थ में मिलता है)।

'उत्तर' शब्द 'उद्' (ऊपर, बाहर) शब्द में तुलनासूचक तर (तरप्)

---

१. वसति प्रिय कामिनीनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः— 'हे प्रिय, अभिसारिकाओं को अपने प्रेमियों के घर तक पहुँचाने में तुम्हारे अतिरिक्त कौन समर्थ है' (कुमार० ४.११)।

२. ऐश्वर्यादनपेतमीश्वरमयं लोकोऽर्थतः सेवते। मुद्रा० १.१४;
इसी प्रकार कपीश्वर, कोशलेश्वर, हृदयेश्वर आदि शब्दों में।

३. राज्यमस्तमितेश्वरम्। रघु० १२.११; मनु० ४.१५३; ९.२७८ आदि।

४. दरिद्रान्भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्। हितोपदेश १.१५.

५. पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम्। रघु० ३.४६.

६. नेश्वरे परुषता सखी साध्वी। किरात० ९.३९.

७. यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः। विक्रम० १.१.

प्रत्यय लगकर बना है। अतः इसका मौलिक अर्थ है 'ऊपर का' (upper), 'अधिक ऊँचा' (higher)। वैदिक साहित्य में 'उत्तर' शब्द का प्रयोग 'ऊपर का'[१] (upper), 'अधिक ऊँचा' (higher), 'अधिक अच्छा' (superior) आदि अर्थों में काफ़ी पाया जाता है। 'उत्तर' शब्द का 'उत्तरी' (दक्षिण दिशा से उल्टी दिशा का; northern) अर्थ इस शब्द के 'अधिक ऊँचा' (higher) अर्थ से विकसित हुआ है। भारतवर्ष के उत्तरी भाग के ऊँचा होने के कारण ही उसे पहिले 'अधिक ऊँचा' अर्थ में 'उत्तर' कहा गया[२], किन्तु भाव-साहचर्य से कालान्तर में उसे 'दक्षिण से उल्टी दिशा का' (northern) का वाचक समझा जाने लगा। इस अर्थ में 'उत्तर' शब्द का प्रयोग अथर्ववेद में तथा लौकिक संस्कृत साहित्य में मिलता है।

'उत्तर' शब्द के 'उत्तरी' (northern) अर्थ से 'उत्तर दिशा' अर्थ का विकास हुआ। 'उत्तरी' (northern) अर्थ में 'उत्तर' शब्द के 'दिश्' अथवा दिशावाची किसी अन्य शब्द के साथ विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते रहने से दिशा का भाव भी 'उत्तर' शब्द में संक्रान्त हो गया और परिणामस्वरूप कालान्तर में 'उत्तर' नपुं० शब्द ही 'उत्तर दिशा' को लक्षित करने लगा। संस्कृत में इसी प्रकार 'उत्तरा' शब्द का 'उत्तर दिशा' अर्थ विकसित पाया जाता है। 'उत्तर दिशा' अर्थ में 'उत्तर' शब्द हिन्दी में पुं० संज्ञा शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

संस्कृत में 'उत्तर' वि० शब्द के 'ऊपर का'[३], 'अधिक ऊँचा', 'उत्तरी' आदि अर्थों के अतिरिक्त 'बायाँ' (दायें का उल्टा, क्योंकि पूर्वदिशा की ओर मुँह करके प्रार्थना करने पर उत्तरी दिशा बायें हाथ की ओर ही होती है[४]), 'बाद का'[५] (क्योंकि साधारणतया ऊपर की वस्तु ही बाद की होती है),

---

१. यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थम्—'जिसने ऊपर के लोक को स्थापित किया' (ऋग्वेद १.१५४.१)।

२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

३. अवनतोत्तरकायम्। रघु० ६.६०.

४. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

५. जैसे—उत्तरमेघः, उत्तरमीमांसा, उत्तरार्धः, उत्तररामचरितम् आदि में।

'अन्तिम', 'भावी', 'मुख्य'[१], 'प्रमुख', 'बढ़कर'[२], 'अधिक'[३], 'युक्त'[४], 'उत्तम' आदि विभिन्न अर्थों का विकास पाया जाता है।

'उत्तर' शब्द के 'जवाब' अर्थ का विकास इसके 'बाद का' अर्थ से हुआ है। किसी बात का अथवा प्रश्न आदि का जवाब, उस बात के अथवा प्रश्न आदि के कहने के बाद ही दिया जाता है। अतः 'जवाब' को 'बाद का' के वाचक 'उत्तर' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। इस अर्थ में 'उत्तर'[५] शब्द संस्कृत में नपुंसकलिङ्ग में प्रचलित हुआ। 'उत्तर' शब्द के 'जवाब' अर्थ के विकास में प्राचीन काल में वाद-विवाद अथवा शास्त्रार्थ में पाये जाने वाले दो पक्षों अर्थात् पूर्व-पक्ष और उत्तर-पक्ष का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'उत्तर-पक्ष' का अर्थ है 'बाद का पक्ष'। किसी वाद-विवाद अथवा शास्त्रार्थ में पहिले किये गये निरूपण या प्रश्न का खण्डन या समाधान करने वाले को उत्तरपक्ष कहा जाता है। एक प्रकार से उत्तरपक्ष द्वारा पहिले किये गये प्रश्न का 'जवाब' ही प्रस्तुत किया जाता है। इसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में किसी अभियोग के विषय में दो पक्षों अर्थात् पूर्ववादी और उत्तरवादी का उल्लेख पाया जाता है। अपने पर लगाये गये आरोपों का खण्डन करने वाले अथवा उनका जवाब देने वाले को 'उत्तरवादी'[६] कहा गया है। उत्तरपक्ष, उत्तरवादी आदि शब्दों में 'बाद का' अर्थ में 'उत्तर' शब्द का, किसी प्रश्न आदि का अथवा आरोपों का जवाब देने के प्रसङ्ग में, प्रयोग किये जाने के कारण 'उत्तर' शब्द में 'जवाब' का भाव भी संक्रान्त हुआ दिखाई पड़ता है।

---

१. व्याकरणं नामेयमुत्तरा विद्या। महाभाष्य १.२.३२.

२. तर्कोत्तराम्। महावीर० २.६.

३. अधिकतर समास के अन्तिम पद के रूप में, जैसे—षडुत्तरा विंशतिः (=२६), अष्टोत्तरं शतम् (=१०८)।

४. राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव (शाकु० अङ्क ५); उत्सवोत्तरो मङ्गलविधिः (दश० ३६.१६६)।

५. वचसस्तस्य सपदि क्रिया केवलमुत्तरम् (शिशु० २.२२);
प्रचक्रमे च प्रतिवक्तुमुत्तरम् (रघु० ३.४७)।

६. साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः।
पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः। याज्ञ० २.१७.

'उत्तर' शब्द का 'जवाब' अर्थ मराठी, गुजराती, बंगला और कन्नड़ आदि भाषाओं में भी पाया जाता है। तेलुगु भाषा में 'उत्तरुवु' शब्द का अर्थ 'जवाब' है और 'उत्तरमु' शब्द का अर्थ 'पत्र' (letter) है। 'पत्र-व्यवहार' (correspondence) को तेलुगु भाषा में 'उत्तरप्रत्युत्तरमुलु' कहा जाता है।[1]

चित्र

हिन्दी में 'चित्र' पुं० शब्द 'रेखाओं या रंगों से बनी हुई किसी वस्तु की आकृति, तसवीर' अर्थ में प्रचलित है। 'चित्र' नपुं० शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[2] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'चित्र' शब्द मूलतः एक विशेषण शब्द था और √चित् 'देखना' धातु से निष्पन्न होने के कारण इसका मूल अर्थ सम्भवतः 'स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने वाला, स्पष्ट' था। ऋग्वेद में 'चित्र' वि० शब्द का प्रयोग स्पष्ट, उत्तम, चमकीला[3], चमकदार रंगों का आदि अर्थों में पाया जाता है। इन अर्थों से बाद में चलकर 'चित्र' वि० शब्द के रंगबिरङ्गा[4], क्षुब्ध[5] (जैसे समुद्र), विभिन्न[6], विभिन्न प्रकारों का, अद्भुत[7], आश्चर्यजनक, रोचक[8] आदि अर्थों का विकास हुआ।

विशेषण से 'चित्र' शब्द का प्रयोग नपुं० संज्ञा शब्द के रूप में किसी चमकीली या रंगीन वस्तु (जिस पर सहसा दृष्टि जाये) के लिये प्रारम्भ हुआ। ऋग्वेद-संहिता, वाजसनेयिसंहिता, तैत्तिरीयसंहिता, शतपथब्राह्मण, ताण्ड्यब्राह्मण (१८.९) आदि में 'चित्र' नपुं० शब्द इसी अर्थ में मिलता है। ऋग्वेद १.९२.१३ और शतपथब्राह्मण २.१३ में 'चित्र' नपुं० शब्द का प्रयोग 'चमकीले आभूषण' अथवा 'आभूषण' के लिये पाया जाता है। बाद में चलकर 'चित्र'

---

१. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

२. चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा (शाकु० २.९); पुनरपि चित्रीकृता कान्ता (शाकु० ६.२०)।

३. अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तात्—'चमकीली उषायें पूर्वदिशा में स्थित हुई हैं' (ऋग्वेद ४.५१.२)।

४. नलोपाख्यान ४.८; शिशु० १.८.

५. रामायण ३.३९.१२.

६. मनु० ९. २४८; याज्ञ० १.२८७.

७. राज० ६.२२७.

८. चित्राः कथा वाचि विदग्धता च। मालती० १.४.

नपुं० शब्द के 'चमकीला अथवा असाधारण रूप', 'आश्चर्य', 'धब्बा', 'तसवीर' आदि अर्थों का विकास हुआ। तसवीर चमकीली भी होती है और उसमें प्राय: विभिन्न प्रकार के रंग भरे रहते हैं, अत: उसके लिये भी 'चित्र' नपुं० शब्द प्रचलित हुआ। हिन्दी में 'चित्र' शब्द अधिकतर इसी अर्थ में प्रचलित है।

मराठी, गुजराती, बंगला, उड़िया और कन्नड़ भाषाओं में 'चित्र' शब्द का, मलयालम में 'चित्रम्' शब्द का और तेलुगु में 'चित्रमु' शब्द का 'तसवीर' अर्थ पाया जाता है।[1]

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि हिन्दी में 'चित्र' शब्द का 'दाग अथवा धब्बा' अर्थ प्रचलित नहीं है, 'चित्र' शब्द से विकसित हुये 'चित्ती' तद्भव शब्द का 'दाग अथवा धब्बा' अर्थ आजकल भी प्रचलित है (जैसे—चित्तीदार केला)। 'चितकबरा' (=सं० 'चित्रकर्बुर') शब्द में 'चित्र' शब्द का तद्भव रूप 'चित' 'रंग-बिरंगा अथवा धब्बों वाला' अर्थ में ही है। इसी प्रकार संस्कृत के 'चित्रल' (विभिन्न रंगों वाला अथवा धब्बों वाला) शब्द से हिन्दी के 'चितला' (चितकबरा) और 'चीतल' (एक प्रकार के हिरन और सर्प का नाम, जिनके शरीर पर रंग-बिरंगे धब्बे होते हैं) शब्द विकसित हुये तथा 'चित्रक' शब्द से 'चीता' (एक प्रकार का हिंसक जंगली पशु जिसके शरीर पर रंग-बिरंगे धब्बे होते हैं) शब्द विकसित हुआ।

पवन

हिन्दी में 'पवन' पुं० शब्द 'वायु' अर्थ में प्रचलित है। 'पवन' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'पवन' पुं० (√पू+ल्यु) शब्द का मूल अर्थ था 'शुद्ध करने वाला'। इसी मूल अर्थ में 'पवन' शब्द का प्रयोग अथर्ववेद[2] में अनाज को भूसे से पृथक् करने के उपकरण (सम्भवत: 'ओसाने की टोकरी') के लिये पाया जाता है। संस्कृत में √पू[3] धातु का मूल अर्थ 'साफ़ करना अथवा शुद्ध करना'[4] ही है, 'पवित्र करना' अर्थ बाद में

---

१. व्यवहारकोश।

२. ४.३४.२, १८.३.११.

३. मि० लैटिन pūrus 'शुद्ध'; प्राचीन हाई जर्मन fowen 'अनाज साफ़ करना' आदि।

४. √पू धातु से निष्पन्न 'पावक', 'पवमान', 'पवित्र' आदि शब्दों के वैदिक साहित्य में उपलब्ध अर्थों में यही भाव विद्यमान है। देखिये, 'पावक'।

विकसित हुआ है। 'औसाने की टोकरी' अनाज को साफ़ करने वाली होती है, अतः उसे 'पवन' कहा गया। अनाज को भूसे से पृथक करने के उपकरण को निरुक्त (४.९.१०) में 'परिपवन' कहा गया है। आश्वलायन-गृह्यसूत्र (४.५.७) में 'पवन' का अन्त्येष्टि के पश्चात् मृतक की अस्थियों को साफ़ करने के लिये प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है।

वैदिक साहित्य में 'पवन' शब्द का प्रयोग 'वायु' अर्थ में नहीं पाया जाता। यह अर्थ बाद में लौकिक संस्कृत साहित्य में विकसित हुआ है। यह स्पष्ट है कि पहिले 'वायु' के लिये 'पवन' शब्द का प्रयोग इसे शुद्ध करने वाला माना जाने के कारण विशेष नाम (epithet) के रूप में किया गया होगा। बाद में यह (पवन) शब्द 'वायु' का वाचक ही समझा जाने लगा। लौकिक संस्कृत में 'वायु' के विभिन्न रूपों के लिये 'पवन' शब्द का प्रयोग मिलता है।

पाप

हिन्दी में 'पाप' पुं० शब्द के अर्थ हैं—'बुरे कामों से उत्पन्न होने वाला वह अदृष्ट जिससे मनुष्य बुरी गति को प्राप्त होता है', 'ऐसा अदृष्ट उत्पन्न करने वाला कृत्य', 'कुकृत्य' आदि। 'पाप' शब्द के ये अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं, किन्तु संस्कृत में 'पाप' मूलतः एक विशेषण शब्द था और इसका मूल अर्थ था 'बुरा'। बक[1] का विचार है कि यह ग्रीक भाषा के παπαι, ποπόι 'हाय' के समान एक पुनरावृत्तियुक्त नर्सरी शब्द है, जोकि ग्रीक भाषा के πημα 'पाप, अभाग्य, अपकार' में उपलब्ध धातु से बना है। परम्परागत संस्कृत कोशों के अनुसार 'पाप' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है—पाति रक्षति अस्मादात्मानमिति (पा+अपादाने प; उणादि० ३.२३)। स्पष्टतः यह व्युत्पत्ति काल्पनिक है। यास्क[2] ने 'पापः' (दुष्ट व्यक्ति) शब्द की व्युत्पत्ति √पा 'पीना' अथवा √पत् 'गिरना' धातु से मानकर इसका मूल अर्थ ग्रहण किया है—'जो न पीने योग्य को पीता है' अथवा 'जो गिरा हुआ होने पर भी गिरता है'। ये व्युत्पत्तियाँ सर्वथा अविश्वसनीय हैं। इनमें कल्पना का कौशल है, न कि कोई सार। सिद्धेश्वर वर्मा[3] का विचार है कि

---

१. ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ ११७९.

२. निरुक्त ५.२.

३. दि एटिमोलोजीज़ ऑफ़ यास्क, पृष्ठ १३८.

इस शब्द का भारत-यूरोपीय pēi 'शाप देना', गोथिक faian 'दोष लगाना' से दूर का सम्बन्ध है। इस प्रकार 'पाप' शब्द की व्युत्पत्ति सन्दिग्ध है। इसकी वास्तविक व्युत्पत्ति कुछ भी हो, वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में इसके प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि इसका मूल अर्थ 'बुरा' था, इसी से दुष्ट, निकृष्ट, नीच, अशुभ आदि अर्थों का विकास हुआ। वैदिक साहित्य के ऋग्वेद आदि ग्रन्थों में 'पाप' वि० शब्द का बुरा, दुष्ट, निकृष्ट, नीच आदि अर्थों में प्रयोग पाया जाता है। विशेषण से यह कालान्तर में संज्ञा शब्द के रूप में पुंल्लिङ्ग में 'दुष्ट व्यक्ति' अर्थ में और नपुंसकलिङ्ग में दुर्भाग्य, अनिष्ट[१], कुकृत्य, दोष, अपराध आदि अर्थों में प्रयुक्त किया जाने लगा। फिर भाव-साहचर्य से बुरे कर्मों से उत्पन्न उस अदृष्ट को भी, जिससे मनुष्य बुरी गति को प्राप्त होता है, 'पाप' कहा गया। आजकल हिन्दी में 'पाप' शब्द पुं० संज्ञा शब्द के रूप में ही प्रयुक्त होता है, विशेषण के रूप में नहीं।

पावक

हिन्दी में 'पावक' पुं० शब्द अधिकतर 'अग्नि' अर्थ में प्रचलित है। 'पावक' पुं० शब्द का 'अग्नि' अर्थ में प्रयोग संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'पावक'[२] शब्द का मूल अर्थ 'शुद्ध' अथवा 'शुद्ध करने वाला' (शोधक) था और इसका प्रयोग विशेषण के रूप में होता था। ऋग्वेद में 'पावक' शब्द इसी अर्थ में पाया जाता है। इसी (शुद्ध करने वाला) अर्थ में ऋग्वेद ४.५१.२ में उषाओं को, ऋग्वेद ७.४९.२,३ में जलों को, ऋग्वेद १.६४.२ और ७.५६.१२ में मरुतों को, ऋग्वेद २.३.१, ५.४.३ आदि में 'अग्नि'[३] को 'पावक' कहा गया है। 'अग्नि' को शुद्ध करने वाला माना जाने के कारण उसका यह विशेष नाम ही कालान्तर में उसका वाचक बन गया। लौकिक संस्कृत साहित्य में 'पावक' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'अग्नि' अर्थ में ही हुआ है, यद्यपि अपने मूल अर्थ में विशेषण के रूप में भी कहीं-कहीं इसका

---

१. संस्कृत नाटकों में 'शान्तं पापम्' (अनिष्ट शान्त हो) आदि प्रयोगों में 'पाप' नपुं० शब्द का 'अनिष्ट' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।

२. ऋग्वेद १.१६०.३ में 'अग्नि' को 'पवित्रवान्' कहा गया है। 'पवित्रवान्' का भी 'शोधक' अर्थ है।

३. पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः। रघु० ११.७५.

प्रयोग मिल जाता है।[1] हिन्दी में तो यह शब्द 'अग्नि' का ही वाचक है।

पाखण्ड, पाषण्ड

हिन्दी में 'पाखण्ड' पुं० शब्द 'ढोंग, दिखावटी उपासना या भक्ति, पूजा-पाठ आदि का आडम्बर' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'पाखण्ड' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। वस्तुतः मूलतः यह शब्द 'पाषण्ड' था। 'पाषण्ड' का ही अशुद्ध (अर्थात् 'ष' के स्थान पर 'ख') उच्चारण किये जाने के कारण 'पाखण्ड' शब्द प्रचलित हो गया। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में 'पाषण्ड' शब्द के आगे कोष्ठक में लिखा है—wrongly spelt pākhaṇḍa. 'पाषण्ड' मूलतः विशेषण शब्द प्रतीत होता है। सम्भवतः इसका प्रारम्भिक अर्थ 'नास्तिक, अधर्मी' था। महाभारत और पुराणों में 'पाषण्ड' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है। बाद में चलकर 'नास्तिक व्यक्ति, अधर्मी' के लिये भी पुं० संज्ञा शब्द के रूप में 'पाषण्ड' अथवा 'पाखण्ड' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। लौकिक संस्कृत साहित्य में 'पाषण्ड' और 'पाखण्ड' दोनों ही शब्द समान अर्थों में प्रचलित रहे हैं। परन्तु धीरे-धीरे 'पाषण्ड' शब्द के स्थान पर 'पाखण्ड' शब्द का प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती गई है। लौकिक संस्कृत साहित्य में 'पाखण्ड' शब्द का 'नास्तिक व्यक्ति, अधर्मी' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—पाखण्डचण्डालयोः (मालती० ५.२४); दुरात्मन् पाखण्डचण्डाल (मालती० अङ्क ५)। 'पाखण्ड' शब्द प्रचलित हो जाने पर 'पाखण्ड' शब्द की व्युत्पत्ति की इस प्रकार कल्पना की गई—

"जो दुष्कृतों से रक्षा करता है वह 'पा' अर्थात् त्रयीधर्म (वेदधर्म), उसका जो खण्डन करता है वह 'पाखण्ड'" (पातीति पाः; पा+क्विप्; पास्त्रयीधर्मस्तं खण्डयतीति)।

अमरकोश की टीका में भानुदीक्षित ने 'पाखण्ड' की परिभाषा लगभग इसी प्रकार की है—

पालनाच्च त्रयीधर्मः पाशब्देन निगद्यते।
तं खण्डयन्ति ते यस्मात् पाखण्डास्तेन हेतुना॥
नानाव्रतधरा नानावेशाः पाखण्डिनो मताः।

संस्कृत में कालान्तर में 'वेदविरुद्ध आचरण, नास्तिकता' अर्थ में भी 'पाषण्ड' और 'पाखण्ड' शब्दों का प्रयोग भाववाचक संज्ञा शब्दों के रूप में

१. पन्थानं पावकं हित्वा जनको मौढ्यमास्थितः। महा० १२.१८.४.

नपुं० में प्रचलित हुआ। संस्कृत साहित्य में 'वेदविरुद्ध आचरण करने वाला; नास्तिक' अर्थ में 'पाषण्डिन्', 'पाषण्डक', 'पाखण्डिन्', 'पाखण्डिक' आदि शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी में केवल 'पाखण्ड' शब्द प्रचलित है, 'पाषण्ड' शब्द प्रचलित नहीं है, जबकि मूलतः यह 'पाषण्ड' शब्द ही था। पुराणों और स्मृतियों में अधिकतर 'पाषण्ड' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। पद्मपुराण में 'पाषण्डाचरण' नाम का एक अध्याय है, जिसमें नास्तिकों के कृत्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि 'पाषण्ड' शब्द अशोक के काल में अबौद्ध साधुओं के एक सम्प्रदाय को लक्षित करता था। हेमन्तकुमार सरकार ने लिखा है—

"पाषण्ड शब्द का इतिहास बड़ा रोचक है। यह शब्द पहिले अच्छे भाव में प्रयुक्त होता था, किन्तु अब इसका अर्थ सर्वथा विपरीत हो गया है। अशोक अबौद्ध साधुओं के एक सम्प्रदाय को पाषण्डा (पासंडा) कहा करता था और उन्हें राजकीय भेंट भी प्रदान किया करता था। मनु ने इस शब्द का प्रयोग अहिन्दु अर्थ में किया है। बाद में वैष्णवों ने इस शब्द का प्रयोग अपने सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों के लिये करना प्रारम्भ कर दिया और इस शब्द का एक सामान्य अर्थ 'नास्तिक' और उससे 'पापी', 'दुष्ट' हो गया"।[1]

'पाषण्ड' अथवा 'पाखण्ड' शब्द का प्रयोग 'नास्तिक, अधर्मी' अर्थ में प्रचलित हो जाने पर इसका प्रयोग एक सम्प्रदाय के कट्टर अनुयायियों द्वारा दूसरे सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिये उनको हीन समझकर भी किया जाने लगा। वैदिक मतावलम्बी सब अवैदिक सम्प्रदायों के अनुयायियों (अधिकतर कापालिकों और बौद्धों, जैनों आदि) को 'पाषण्ड' अथवा 'पाखण्ड' कहा करते थे। अवैदिक सम्प्रदायों (अथवा किसी भी सम्प्रदाय) के अनुयायियों (पाषण्डों) के कृत्यों को अधार्मिक, ढोंग अथवा आडम्बर समझा जाने के कारण कालान्तर में उस ढोंग अथवा आडम्बर को भी (जोकि पाषण्डों का स्वभाव-मात्र था) 'पाषण्ड' अथवा 'पाखण्ड' नपुं० कहा जाने लगा। इस प्रकार यह शब्द भाववाचक संज्ञा बन गया।

---

१. सर आशुतोष मुकर्जी सिल्वर जुबिली वोल्यूम ३, पार्ट २, पृष्ठ ७१२.

बंगला, मराठी तथा गुजराती भाषाओं में भी 'पाखण्ड' शब्द का 'ढोंग, आडम्बर' अर्थ पाया जाता है। नेपाली भाषा में 'पाखण्ड' शब्द का अर्थ 'दुष्टता, नास्तिकता' है। नेपाली भाषा में कई प्रकार के मुहावरों में 'पाखण्ड' शब्द का एक विशिष्ट अर्थ भी विकसित हो गया है, जैसे—'पाखण्ड गर्नु' अथवा 'उखण्ड पाखण्ड गर्नु' अथवा 'खण्ड पाखण्ड गर्नु' का अर्थ है—'अधिक से अधिक प्रयत्न करना।'[१]

प्रभु

हिन्दी में 'प्रभु' पुं० शब्द अधिकतर 'ईश्वर, भगवान्' अर्थ में प्रचलित है। 'प्रभु' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[२] किन्तु संस्कृत में 'प्रभु' शब्द मूलतः एक विशेषण शब्द था और प्र-पूर्वक √भू धातु से निष्पन्न होने के कारण इसका मूल अर्थ सम्भवतः 'बढ़कर, शक्तिशाली' था। ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रन्थों में 'प्रभु' वि० शब्द का प्रयोग अधिकतर 'बढ़कर', 'शक्तिशाली', 'धनी', 'अधिक' आदि अर्थों में पाया जाता है। 'प्रभु' वि० शब्द के 'शक्तिशाली' अर्थ से कई अर्थ विकसित हुये। पुं० संज्ञा शब्द के रूप में इसका प्रयोग 'शक्तिशाली व्यक्ति' अर्थात् 'स्वामी', 'राजा' आदि के लिये किया जाने लगा। ऋग्वेद में 'स्वामी' अर्थ में 'प्रभु' शब्द का प्रयोग सूर्य, अग्नि,[३] त्वष्टा[४] आदि देवताओं के लिये पाया जाता है। मनुस्मृति में 'प्रजापति' के लिये, छान्दोग्योपनिषद् में 'ब्रह्मा' के लिये, रामायण में 'इन्द्र' के लिये, महाभारत में 'शिव' के लिये और कुछ प्राचीन कोशों में 'विष्णु' के लिये 'प्रभु' पुं० शब्द का प्रयोग किया गया है।[५] यह स्पष्ट है कि विभिन्न देवताओं को 'स्वामी' (अर्थात् अपनी सारी गतिविधियों का नियामक) माना जाने के कारण ही उनके लिये 'प्रभु' पुं० शब्द का प्रयोग विशेष नाम (epithet) के रूप में प्रारम्भ हुआ। बाद में चलकर यह शब्द सामान्य रूप में 'ईश्वर, भगवान्' अर्थ में प्रचलित

---

१. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।

२. न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। भग० ५.१४.

३. ऋग्वेद ८ ११.८, ८.४३.२१ आदि।

४. त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्समानजे—'स्वामी त्वष्टा ने सब रूपों को और सब पशुओं को बनाया है' (ऋग्वेद १.१८८.९)।

५. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

हो गया। आजकल हिन्दी में यह शब्द इसी अर्थ में प्रचलित है, किसी विशिष्ट देवता के लिये नहीं।

संस्कृत में 'प्रभु' वि० शब्द के 'शक्तिशाली' अर्थ से 'समर्थ'[१], 'जोड़ का'[२], 'श्रेष्ठ'[३] आदि अर्थों का भी विकास पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि हिन्दी में 'प्रभु' शब्द 'स्वामी' अर्थ में सामान्यतया प्रचलित नहीं है, तथापि इससे बने हुये 'प्रभुता', 'प्रभुत्व' (=स्वामित्व, अधिकार) आदि भाव-वाचक शब्दों में 'स्वामी' अर्थ निहित है। किसी देवता के लिये अथवा भगवान् के लिये 'प्रभु' शब्द का प्रयोग मराठी, गुजराती और नेपाली भाषाओं में भी पाया जाता है। किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश में 'प्रभु' शब्द के शक्तिशाली, समर्थ, स्वामी आदि; गण्डर्ट के मलयालम भाषा के कोश में स्वामी, राजकुमार, गवर्नर, ३०००० नायरों का सरदार आदि; तमिल लेक्सीकन में 'पिरपु' (<प्रभु) शब्द के स्वामी, धनवान् व्यक्ति, शक्तिशाली, उपकारी आदि; और गैलेट्टी के तेलुगु भाषा के कोश में 'प्रभुवु' शब्द के स्वामी, राजा आदि अर्थ दिये हैं (किन्तु एक कलेक्टर अपने चपरासियों के लिये इससे भी बढ़कर है, उसको 'नाप्रोभो'='महान् स्वामी' कहा जाता है), 'ईश्वर, भगवान्' अर्थ नहीं दिया है। आशुतोष देव के बंगला भाषा के कोश में भी 'प्रभु' शब्द का 'स्वामी' अर्थ ही पाया जाता है।

भगवान्

हिन्दी में 'भगवान्' पुं० शब्द अधिकतर 'ईश्वर, परमात्मा' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'भगवान्' शब्द 'भगवत्' वि० शब्द का प्रथमा विभक्ति एकवचन का रूप है। 'भगवत्' शब्द 'भग' पुं० शब्द में वत् प्रत्यय लगकर बना है। ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में 'भग' पुं० शब्द का प्रयोग सौभाग्य, समृद्धि, कल्याण आदि अर्थों में पाया जाता है, अतः 'भगवत्' वि० शब्द का प्रारम्भिक अर्थ 'सौभाग्यशाली, भाग्यशाली, समृद्धिशाली'

---

१. ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः—'महर्षि की शक्ति से यमराज भी मुझ पर प्रहार करने में समर्थ नहीं हैं, दूसरे हिंस्र पशुओं का तो कहना ही क्या' (रघु० २.६२); समाधिभेदप्रभवो भवन्ति (कुमार० ३.४०)।

२. प्रभुर्मल्लो मल्लाय। महाभाष्य (आप्टे के कोश से उद्धृत)।

३. वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः। मनु० १०.३.

प्रतीत होता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि ग्रन्थों में 'भगवत्' वि० शब्द का यह अर्थ मिलता है। बाद में चलकर 'भगवत्' शब्द के दिव्य, पूज्य आदि अर्थ भी विकसित हुये और इसका प्रयोग देवताओं, महात्माओं, महापुरुषों आदि के लिये किया जाने लगा। संस्कृत में दिव्य अथवा पूज्य व्यक्ति के लिये 'भगवत्' शब्द का पुं० में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। विष्णु, कृष्ण, शिव आदि देवताओं को 'भगवान्' कहा गया है। अन्य दिव्य अथवा महान् व्यक्तियों के लिये भी 'भगवत्' शब्द का प्रयोग विशेषण अथवा विशेष नाम (epithet) के रूप में मिलता है, जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल के पाँचवें अङ्क में महर्षि कण्व को 'भगवान्' कहा गया है।[1] विष्णु, कृष्ण, शिव आदि देवताओं के लिये 'भगवत्' शब्द का पुं० में प्रयोग होने के कारण हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में इसका प्रथमा विभक्ति एकवचन का रूप 'भगवान्' शब्द सामान्य रूप में 'ईश्वर, परमात्मा' अर्थ में प्रचलित हो गया है।

यह उल्लेखनीय है कि 'भग' पुं० शब्द का प्रयोग ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में दाता, उदार स्वामी आदि अर्थों में भी पाया जाता है। देवताओं, विशेषरूप से सविता देवता, के लिये इसका प्रयोग हुआ है। 'भग' एक आदित्य का नाम भी है, जिसको धन-धान्य तथा समृद्धि प्रदान करने वाला माना गया है। वैदिक भाषा में उपलब्ध इसी 'भग' शब्द के कुछ सजातीय शब्द कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में 'ईश्वर, देव' (god) अर्थ में पाये जाते हैं[2], जैसे—चर्चस्लैविक bogŭ, सर्बोक्रोशियन bog, बोहेमियन bůh, पौलिश bóg, रशन bog, अवेस्तन baγa, प्राचीन फ़ारसी baga.

रक्त

हिन्दी में 'रक्त' पुं० शब्द 'खून' अर्थ में प्रचलित है। 'रक्त' नपुं० शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है।[3] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'रक्त' शब्द मूलतः क्त-प्रत्ययान्त विशेषण शब्द था (√रञ्ज् अथवा √रज् +क्त) और इसका मूल अर्थ था 'रंगा हुआ'। ब्राह्मणग्रन्थों एवं गृह्य तथा श्रौतसूत्रों में 'रक्त' शब्द का इस अर्थ में प्रयोग पाया जाता है। 'रंगा हुआ'

---

१. अथ भगवान् कुशली काश्यपः।

२. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (२२. १२; god), पृष्ठ १४६४.

३. रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम्। भावप्रकाश।

अर्थ से 'रक्त' शब्द का 'लाल रङ्ग का' अथवा 'लाल' अर्थ विकसित हुआ। संस्कृत साहित्य में 'लाल' अर्थ में 'रक्त' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।[१] संस्कृत में 'लाल' अर्थ में 'रक्त' वि० शब्द का प्रचुर प्रयोग होने से कालान्तर में लाल रङ्ग की विशिष्ट वस्तु 'खून' को भी 'रक्त' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। इस अर्थ में 'रक्त' शब्द नपुं० में प्रचलित हुआ। इस प्रकार 'रक्त' शब्द विशेषण से संज्ञा शब्द बन गया। 'केसर' के लाल होने के कारण संस्कृत में 'केसर' के लिये भी 'रक्त' नपुं० शब्द का प्रयोग पाया जाता है।

मराठी, बंगला, उड़िया, कन्नड़ आदि भाषाओं में भी 'रक्त' शब्द 'खून' अर्थ में पाया जाता है। 'खून' के लिये कश्मीरी में 'रथ', सिन्धी में 'रतु', तमिल में 'रत्तम्' और मलयालम में 'रक्तम्' शब्द मिलते हैं, जोकि 'रक्त' से ही विकसित हुये हैं।

यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'रक्त' शब्द के 'रंगा हुआ' अर्थ से अनुरक्त, आसक्त, प्रिय, मनोहर आदि अर्थों का भी विकास पाया जाता है। प्रेम से युक्त व्यक्ति को पहिले आलङ्कारिक रूप में 'रक्त' (रंगा हुआ अर्थात् प्रेम के रंग में रंगा हुआ) कहा गया होगा। बाद में उसी से प्रिय, मनोहर आदि अर्थ विकसित हुये।

संस्कृत में 'खून' के वाचक कई अन्य शब्द ऐसे हैं, जिनका मूल अर्थ 'लाल' था।[२] बक[३] ने भी अपने प्रमुख भारत-यूरोपीय भाषाओं के चुने हुये पर्यायवाची शब्दों के कोश में लिखा है कि 'खून' के वाचक कतिपय शब्द (विशेषकर संस्कृत में) 'लाल' अर्थ वाले उपलब्ध होते हैं।

रुधिर

हिन्दी में 'रुधिर' पुं० शब्द 'खून' अर्थ में प्रचलित है। 'रुधिर' नपुं० शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि 'रुधिर' शब्द

---

१. सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः (मेघ० ३६); इसी प्रकार रक्ताशोक, रक्तांशुक आदि में।

२. देखिये, 'रुधिर', 'शोणित'।

३. ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (४.१५; blood), पृष्ठ २०६—

"Other words are from such sources as 'red' (notably in Sanskrit)........".

का मूल अर्थ 'लाल' था। अथर्ववेद (५.२९.१०) में 'रुधिर' शब्द का 'लाल' अर्थ में प्रयोग पाया जाता है। 'रुधिर' शब्द की व्युत्पत्ति √रुध् 'लाल होना' धातु से मानी जाती है। यह माना जाता है कि 'लाल होना' अर्थ में √रुध् धातु पहिले प्रचलित रही होगी, बाद में यह लुप्त हो गई। इसकी समानान्तर भारत-यूरोपीय *reudh धातु की कल्पना की गई है, जिससे विकसित हुये शब्द बहुत सी भारत-यूरोपीय भाषाओं में 'लाल' अर्थ में पाये जाते हैं, जैसे—ग्रीक ερυθρός; लैटिन ruber, और rūfus अधिकतर 'हल्का लाल' (विशेष रूप से बालों के लिये), लैटिन rubeus 'कुछ-कुछ लाल' (> फ्रेंच rouge), और (*rudhtos) russus (> इटैलियन rosso; फ्रेंच roux बालों के लिये), russeus 'कुछ-कुछ लाल' (> स्पैनिश rojo, पोर्चुगीज़ roxo); आयरिश rūad, वेल्श rhudd, ब्रेटन ruz; प्राचीन नोर्स raudr, डैनिश rod, स्वीडिश röd, प्राचीन अंग्रेज़ी rēad, rēod मध्यकालीन अंग्रेज़ी reed, आधुनिक अंग्रेज़ी red, डच rood, प्राचीन हाई जर्मन rōt, मध्यकालीन हाई जर्मन rōt, आधुनिक हाई जर्मन rot; लिथुआनियन raudas, अब अधिकतर raudonas, इसके अतिरिक्त rudas 'लाल-भूरा', लेटिश ruds 'कुछ-कुछ लाल', चर्चस्लैविक rŭdrŭ; वैदिक संस्कृत rohita[१] (बाद में लोहित), अवेस्तन raoiδita.[२]

'रुधिर' शब्द के उपर्युक्त सजातीय शब्दों की विद्यमानता से यह स्पष्ट है कि यह एक भारत-यूरोपीय शब्द है और इसका मूल अर्थ 'लाल' था। 'रुधिर'

---

१. √रुध् धातु के स्थान पर प्रचलित हुई √रुह् धातु से निष्पन्न **रोहित् और रोहित** शब्दों का भी मल अर्थ 'लाल' था। ऋग्वेद में 'रोहित' शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में 'लाल' अर्थ में और पुं० संज्ञा शब्द के रूप में 'लाल घोड़ा' अर्थ में पाया जाता है। बाद में 'रोहित' नपुं० शब्द का भी 'रक्त' और 'रुधिर' शब्दों के समान 'खून' अर्थ विकसित पाया जाता है। **लोहित** शब्द भी जोकि र के स्थान पर ल हो जाने से 'रोहित' से ही विकसित हुआ है, संस्कृत में 'लाल' और 'खून' इन दोनों अर्थों में पाया जाता है। हिन्दी में 'लोहित' शब्द तो बहुधा 'लाल' अर्थ में देखने में आता है, 'रोहित' शब्द प्रचलित नहीं है (यद्यपि हिन्दी के कोशों में ये दोनों शब्द बहुत से अर्थों में दिये हुये हैं)।

२. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड् सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (१५.६६; red), पृष्ठ १०५६.

शब्द का 'लाल' अर्थ में प्रयोग होने से कालान्तर में लाल रङ्ग की विशिष्ट वस्तु 'खून' को भी 'रुधिर' शब्द द्वारा लक्षित किया जाने लगा। इस अर्थ में 'रुधिर' शब्द नपुं० में प्रचलित हुआ। इस प्रकार 'रुधिर' शब्द विशेषण से संज्ञा शब्द बन गया। 'केसर' के लाल होने के कारण संस्कृत में 'केसर' के लिये भी 'रुधिर' नपुं० शब्द का प्रयोग पाया जाता है।

वह्नि

हिन्दी में 'वह्नि'[1] स्त्री० शब्द 'अग्नि' अर्थ में प्रचलित है। 'वह्नि' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'वह्नि' पुं० शब्द का मूल अर्थ था 'ले जाने वाला' (√वह् + नि)। इसी मूल अर्थ में 'वह्नि' शब्द वैदिक साहित्य में ले जाने वाले विभिन्न प्रकार के पशुओं के लिये पाया जाता है, जैसे ऋग्वेद २.२४.१३, २.३७.३, ३.६.२ आदि में 'घोड़े' के लिये, ऋग्वेद ६.५७.३ में 'बकरे' के लिये और तैत्तिरीयब्राह्मण (१.८.२.५) में 'बैल' के लिये 'वह्नि' शब्द का प्रयोग हुआ है।

'वह्नि' शब्द के 'अग्नि' अर्थ का विकास इसके मूल अर्थ 'ले जाने वाला' से ही हुआ है। वैदिक साहित्य में 'अग्नि' की देवता के रूप में स्तुति की गई है। ऋग्वेद में 'अग्नि' के स्वरूप का वर्णन बड़े विशद रूप में पाया जाता है। 'अग्नि' देवता की कल्पना मनुष्यों और देवताओं के मध्यस्थ अथवा दूत के रूप में की गई है। उसे अनेक बार, यज्ञों में डाली गई हवि को देवताओं तक ले जाने वाला[2] (हव्यवाट्[3]) और देवताओं को मनुष्यों द्वारा किये जाने वाले यज्ञों में यज्ञ-वेदी तक लाने वाला कहा गया है। 'अग्नि' देवता की यह कल्पना ही 'वह्नि' शब्द के 'अग्नि' अर्थ के विकास का कारण है। प्रारम्भ में अग्नि को देवताओं तक हवि ले जाने वाले और देवताओं को यज्ञ तक लाने वाले के रूप में ही 'ले जाने वाला' अर्थ में 'वह्नि' कहा गया था, जैसे—स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्—'वह पृथ्वी और द्यौ-रूपी माता-पिता का पुत्र, ले जाने वाला,

---

१. आजकल हिन्दी में 'वह्नि' शब्द बहुधा अशुद्ध रूप में 'वन्हि' लिखा जाता है। इसका यह रूप अशुद्ध उच्चारण में वर्णविपर्यय के कारण प्रचलित हो गया है। हिन्दी में 'वह्नि' शब्द का लिङ्ग भी बदल गया है। हिन्दी में यह शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, जबकि संस्कृत में यह पुंल्लिङ्ग शब्द है।

२. ऋग्वेद ७.११.५ आदि।

३. ऋग्वेद १.७२.७ आदि।

शुद्ध करने वाला' (ऋग्वेद १.१६०.३)। कालान्तर में 'अग्नि' का यह विशेषण अथवा विशेष नाम (epithet) ही 'अग्नि' का बोधक बन गया।

शोणित

हिन्दी में 'शोणित' पुं० शब्द 'खून' अर्थ में प्रचलित है। 'रक्त', 'रुधिर' आदि शब्दों के समान इसका भी मूल अर्थ 'लाल' था। यह शब्द √शोण् 'लाल होना' धातु से (इतच् प्रत्यय लगकर) निष्पन्न माना जाता है। संस्कृत में यह भी पहिले विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता था, किन्तु कालान्तर में 'रक्त' और 'रुधिर' शब्दों की भाँति ही नपुं० संज्ञा शब्द के रूप में 'खून' के लिये प्रयुक्त होने लगा।[1]

साधु

हिन्दी में 'साधु' पुं० शब्द 'सन्त' अर्थ में प्रचलित है। 'साधु' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे—साधोः प्रकोपितस्यापि मनो नायाति विक्रियाम्—'क्रुद्ध हुये सन्त का भी मन विकार को प्राप्त नहीं होता' (सुभाषित)। किन्तु संस्कृत में 'साधु' (√साध्+उण्) शब्द मूलतः एक विशेषण शब्द था, जिसका प्रयोग संस्कृत में अधिकतर 'अच्छा'[2], 'उत्तम', 'अच्छे व्यवहार वाला', 'सदाचारवान्', 'गुणी' आदि अर्थों में पाया जाता है। 'सन्त' व्यक्ति में ये सब गुण होते हैं, अतः उसके लिये 'साधु' शब्द का प्रयोग प्रचलित हुआ और इस अर्थ में 'साधु' शब्द पुं० में प्रचलित हुआ। संस्कृत में 'साधु' शब्द का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में भी पाया जाता है, जैसे—साधु गीतम्—'अच्छा गाया' (शाकु० अङ्क १)।

'साधु' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में भी पाया जाता है। मोनियर विलियम्स के अनुसार 'साधु' वि० शब्द वैदिक साहित्य में सीधा, लक्ष्य तक सीधा पहुँचने वाला, अचूक (जैसे 'बाण' अथवा 'वज्र'), दयालु, आज्ञाकारी, सफल, प्रभावशाली (जैसे मन्त्र), तैयार (जैसे सोम), शान्तिपूर्ण, सुरक्षित, शक्तिशाली, अच्छा, उत्तम, उचित आदि अर्थों में पाया जाता है। पुं० में संज्ञा शब्द के रूप में भी 'साधु' शब्द का प्रयोग शतपथब्राह्मण में

---

१. उपस्थिता शोणितपारणा मे। रघु० २.३९.

२. आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्—'जब तक विद्वानों को सन्तोष न हो जाये तब तक मैं अपने अभिनय-कौशल को अच्छा नहीं समझता हूँ' (शाकु० १.२); इसी प्रकार शाकु० ६.१३ आदि।

'अच्छा अथवा गुणी अथवा सदाचारवान् पुरुष' अर्थ में पाया जाता है। 'साधु' शब्द के ये सब अर्थ इसके 'सीधा' अर्थ से आलङ्कारिक प्रयोग के कारण विकसित हुये हैं।[१] √साध् धातु का मूल अर्थ 'सीधा जाना' होने के कारण उससे निष्पन्न 'साधु' शब्द का मूल अर्थ 'सीधा' प्रतीत होता है।[२] 'साधु' शब्द का यह अर्थ ऋग्वेद में भी उपलब्ध होता है, जैसे—द्रव साधुना पथा—'सीधे मार्ग से जाओ' (ऋग्वेद १०.१४.१०)। 'अच्छे, गुणी, सदाचारवान्' व्यक्ति के लिये प्रयुक्त होते रहने से कालान्तर में यह शब्द 'सन्त' के लिये रूढ़ हो गया।

---

१. इसी प्रकार 'सरल' शब्द के भी 'निश्छल', 'सीधे स्वभाव का', 'आसान' आदि अर्थों का विकास इसके मूल अर्थ 'सीधा' से हुआ है; मि० 'सरल'।

२. 'साधु' शब्द की सिद्धान्तकौमुदी में उपलब्ध तथा विभिन्न वैयाकरणों द्वारा मानी गई व्युत्पत्ति (साध्नोति परकार्यमिति अर्थात् 'जो दूसरों का कार्य सिद्ध करता है') सर्वथा अविश्वसनीय है। यह व्युत्पत्ति 'साधु' शब्द के प्रचलित अर्थ को दृष्टि में रखकर गढ़ी गई है। 'साधु' शब्द के विभिन्न अर्थों का विकास 'सीधा' अर्थ से हुआ स्वाभाविक प्रतीत होता है।

अध्याय १६

सामान्यार्थक से विशेषार्थक

किसी सामान्य वस्तु, क्रिया, भाव आदि को लक्षित करने वाले शब्द बहुधा कालान्तर में उस प्रकार की किसी विशेष वस्तु, क्रिया, भाव आदि को लक्षित करने लगते हैं। इस प्रकार वे सामान्यार्थक से विशेषार्थक बन जाते हैं। सामान्यार्थक से विशेषार्थक हुये शब्द प्रत्येक भाषा में काफ़ी संख्या में होते हैं। हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों में ऐसे शब्द काफ़ी संख्या में हैं, जिनमें कालान्तर में विशेषार्थकता आई है। यहाँ इस प्रकार के कुछ थोड़े से शब्दों के अर्थ-विकास का विवेचन किया जा रहा है। इस प्रकार के अर्थ-परिवर्तनों को अनेक वर्गों में रक्खा जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में इन्हें निम्न वर्गों में रक्खा गया है :—

(अ) पशुसामान्यार्थक से पशुविशेषार्थक,
(आ) अन्नसामान्यार्थक से अन्नविशेषार्थक,
(इ) नदीसामान्यार्थक से नदीविशेषार्थक,
(उ) अन्य विविध विशेषार्थक शब्द।

(अ) पशुसामान्यार्थक से पशुविशेषार्थक

सामान्य रूप में 'पशु' के वाचक शब्द बहुधा कालान्तर में किसी पशु-विशेष को लक्षित करने लगते हैं।

मृग

हिन्दी में 'मृग' पुं० शब्द 'हरिण' अर्थ में प्रचलित है। 'मृग' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'मृग' शब्द का मूल अर्थ 'पशु' है। ऋग्वेद में 'मृग' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'जंगली पशु' के लिये पाया जाता है[1], जैसे—मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः—

---

१. ऋग्वेद १.१७३.२, ८.१.२०, १०.१४६.६ आदि; इसी प्रकार अथर्ववेद ४.३.६, १०.१.२६, १२.१.४८; पञ्चविंशब्राह्मण ६.७.१०; ऐतरेयब्राह्मण ३.३१.२ आदि।

'स्वेच्छानुसार पर्वत पर विचरण करने वाले भयङ्कर पशु के समान' (१.१५४.२)। ऋग्वेद में बहुत से स्थलों पर 'भीम'[1] (भयङ्कर) शब्द का 'मृग' के विशेषण के रूप में प्रयोग पाया जाता है, जिससे इस शब्द के 'जंगली पशु' अर्थ की पुष्टि होती है। 'हाथी' के लिये 'हस्तिन् मृग'[2] (हाथ वाला पशु) और 'भैंसे' के लिये 'महिषमृग'[3] (शक्तिशाली पशु) शब्दों के प्रयोगों में भी 'मृग' शब्द स्पष्टतः सामान्य रूप से 'जंगली पशु' का वाचक है।

'मृग' पुं० शब्द की व्युत्पत्ति बहुधा इस प्रकार की जाती है—मृगयते अन्वेषयति तृणादिकम् अथवा मृग्यते अन्विष्यतेऽसौ व्याधैः (√मृग् 'खोजना' +क)। यह व्युत्पत्ति सन्दिग्ध है, क्योंकि जैसा कि मोनियर विलियम्स ने माना है, √मृग् धातु ही 'मृग' शब्द से विकसित नामधातु प्रतीत होती है।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह निस्सन्दिग्ध रूप से स्पष्ट हो जाता है कि 'मृग' शब्द का मूल अर्थ सामान्य रूप में 'जंगली पशु' था। धीरे-धीरे इस शब्द के अर्थ में सङ्कोच हुआ और यह एक पशुविशेष अर्थात् 'हरिण' को लक्षित करने लगा। 'हरिण' अर्थ में 'मृग' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद[4] से लेकर सारे वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में पाया जाता है।

संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त बहुत से पशुओं के वाचक शब्दों में 'मृग' शब्द 'पशु' अर्थ में विद्यमान है, जैसे 'बन्दर' के लिये प्रयुक्त पर्णमृग, लतामृग, विटपिमृग, शाखामृग आदि शब्दों में, 'गीदड़' के लिये प्रयुक्त मृगधूर्त, मृगधूर्तक, मृगमत्तक, निशामृग, शालामृग आदि शब्दों में, 'गिलहरी' के लिये प्रयुक्त पर्णमृग, शाखामृग आदि शब्दों में, 'एक विशेष प्रकार के हाथी' के लिये प्रयुक्त भद्रमृग शब्द में, 'हाथी', 'शरभ' आदि बड़े पशुओं के लिये प्रयुक्त महामृग शब्द में, 'सिंह' के लिये प्रयुक्त मृगपति, मृगेन्द्र, मृगाधिराज, मृगप्रभु, मृगराज, मृगारि, मृगाशन आदि शब्दों में, 'आखेट' के लिये प्रयुक्त मृगया शब्द में, 'व्याध' के लिये प्रयुक्त मृगार और मृगयु शब्दों में 'मृग' शब्द 'पशु' का ही वाचक है। 'सिंह' के लिये मृगेन्द्र, मृगराज, मृगाधिप आदि शब्द

---

१. ऋग्वेद १.१९०.३, २.३३.११, २.३४.१ आदि।

२. ऋग्वेद १.६४.७, ४.१६.१४.

३. ऋग्वेद ८.६९.१५, ९.९२.६, १०.१२३.४. देखिये, 'महिष'।

४. ऋग्वेद १.३८.५, १.१०५.७, ६.७५.११ आदि; तैत्तिरीयब्राह्मण ३.२.५.६; शतपथब्राह्मण ११.८.४.३ आदि।

हिन्दी में भी पाये जाते हैं, किन्तु बहुधा भूल से इनका शाब्दिक अर्थ 'हरिणों का स्वामी या राजा' समझ लिया जाता है। वस्तुतः इनका शाब्दिक अर्थ 'पशुओं का राजा' है। हिन्दी में 'मृग' शब्द का केवल 'हरिण' अर्थ ही प्रचलित होने के कारण यह भ्रान्ति होती है।

यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी के deer शब्द के 'हरिण' अर्थ का विकास भी 'मृग' शब्द के समान ही हुआ है। deer शब्द का भी पहिले 'जंगली पशु' अर्थ था। प्राचीन अंग्रेज़ी भाषा में deor शब्द (जिससे आधुनिक deer शब्द विकसित हुआ है) 'जंगली पशु' अर्थ में मिलता है। जिन जंगली पशुओं का शिकार किया जाता है, उनमें 'हरिण' प्रमुख होता है। इसी प्रमुखता के कारण 'जंगली पशु' का वाचक 'मृग' शब्द 'हरिण' के लिये प्रचलित हो गया है। इसी प्रकार कुछ भारत-यूरोपीय भाषाओं में 'कुत्ते' के लिये ऐसे शब्द पाये जाते हैं, जिनका मूल अर्थ सम्भवतः 'पशु' था। जैसे चर्चस्लैविक pĭsŭ, सर्बो-क्रोशियन pas, बोहेमियन pes, पोलिश pies, रशन pes शब्द 'कुत्ते' के वाचक हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध भारत-यूरोपीय *peḱu और संस्कृत 'पशु' से है। पहिले ये शब्द 'पशुओं की देखभाल करने वाले कुत्ते' को लक्षित करते थे। इटैलियन भाषा में 'भेड़' के लिये pecora शब्द पाया जाता है, जोकि लैटिन भाषा से ग्रहण किया गया है। लैटिन में pecora शब्द pecus (पशु, भेड़) का बहुवचन का रूप है, और जोकि भारत-यूरोपीय *peḱu एवं संस्कृत 'पशु' से सम्बद्ध है।

(आ) अन्नसामान्यार्थक से अन्नविशेषार्थक

सामान्य रूप में 'अन्न' के वाचक शब्द बहुधा कालान्तर में किसी अन्न-विशेष को लक्षित करने लगते हैं।

धान्य

हिन्दी में 'धान्य' पुं० शब्द अधिकतर 'धान' अर्थ में प्रचलित है (यद्यपि कुछ समस्त शब्दों में सामान्य रूप में 'अनाज' अर्थ भी विद्यमान है)। 'धान्य' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में 'धान्य'[1] नपुं० शब्द का मूल अर्थ 'अन्न, अनाज' था। ऋग्वेद[2] में तथा

---

१. 'धान्य' शब्द 'धाना' (बहु० धानाः ='अनाज के दाने') से विकसित माना जाता है। मिलाइये—अवेस्तन दान 'अनाज' (आधुनिक फ़ारसी दान 'अनाज')।

२. ऋग्वेद ६.१३.४.

बाद[1] के वैदिक साहित्य के अन्य ग्रन्थों में 'धान्य' शब्द 'अनाज' अर्थ में ही मिलता है। पहिले चावल, गेहूँ, जौ, तिल, उड़द, सरसों, मसूर आदि सामान्य रूप में सभी प्रकार के अन्नों के लिये 'धान्य' शब्द का प्रयोग होता था, किन्तु कालान्तर में एक अन्नविशेष अर्थात् 'धान' के लिये इसका प्रयोग सीमित हो गया। हिन्दी में 'धन-धान्य' आदि शब्दों में 'धान्य' का 'अन्न' अर्थ अब भी निहित है। कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में भी 'धान्य' शब्द विविध रूपों में 'अनाज' अर्थ में मिलता है, जैसे—मराठी में 'धान्यें', उड़िया में 'धान्य', तेलुगु में 'धान्यमुलु', तमिल में 'दानियम्', कन्नड़ में 'धान्यगलु', मलयालम में 'धान्यङ्ङल' आदि शब्द 'अनाज' अर्थ में मिलते हैं।[2] यह उल्लेखनीय है कि 'धान' शब्द, जो हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, असमिया, उड़िया आदि भाषाओं में भी मिलता है, 'धान्य' का ही तद्भव रूप है।

यव

'धान्य' शब्द के समान ही 'यव' शब्द का भी मूल अर्थ 'अनाज' ही बतलाया जाता है।[3] कीथ और मैकडॉनेल[4] का विचार है कि ऋग्वेद[5] में 'यव' शब्द केवल 'जौ' का ही नहीं, प्रत्युत किसी भी प्रकार के 'अनाज' के लिये सामान्य शब्द प्रतीत होता है। 'यव' शब्द का 'जौ' अर्थ सर्वप्रथम सम्भवत: अथर्ववेद[6] में उपलब्ध होता है। इसके बाद तो वैदिक[7] एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में 'यव' शब्द का 'जौ' अर्थ ही प्रचलित रहा है। 'यव' शब्द का भारत-यूरोपीय रूप *yewo माना जाता है। इससे सम्बद्ध शब्द अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी पाये जाते हैं, जैसे—अवेस्तन yava 'अनाज' (yavan, yəvin 'अनाज का खेत'), आधुनिक फ़ारसी ǰav 'जौ'; लिथुआनियन

---

१. अथर्ववेद ३.२४.२.४, ५.२९.७; कौषीतकिब्राह्मण ११.८ आदि।

२. व्यवहारकोश।

३. मोनियर विलियम्स।

४. वैदिक इण्डैक्स (यव)।

५. १.२३.१५, १.११७.२१, २.५.६, २.१४.११, ५.८५.३ आदि।

६. २.८.३, ६.३०.१, ८.७.२० आदि।

७. तैत्तिरीयसंहिता ६.२.१०.३, ६.४.१०.५; काठकसंहिता २५.१० आदि।

javai (बहु०) 'अनाज'; ग्रीक ζειαι (बहु०) 'एक प्रकार का गेहूँ' (spelt)।[1]

'यव' शब्द जो पहिले सामान्य रूप में 'अनाज' का वाचक था, कालान्तर में अन्नविशेष अर्थात् 'जौ' को लक्षित करने लगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है 'यव' शब्द का 'जौ' अर्थ वैदिक साहित्य में ही विकसित हो गया था। हिन्दी में 'यव' शब्द केवल 'जौ' अर्थ में ही प्रचलित है। 'जौ' शब्द 'यव' का ही तद्भव रूप है। कतिपय अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी 'यव' शब्द अथवा उसके तद्भव रूप 'जौ' अर्थ में मिलते हैं।

संसार की कुछ अन्य भाषाओं में भी अन्नसामान्य के वाचक शब्दों से अन्नविशेष अर्थ का विकास पाया जाता है, जैसे—अंग्रेज़ी में corn शब्द मूलतः 'अनाज' का वाचक था, किन्तु अमेरिका में यह शब्द 'मक्का' के लिये प्रचलित हो गया है, जबकि अमेरिका के अतिरिक्त संसार के अन्य देशों में अंग्रेज़ी corn शब्द 'अनाज' का ही वाचक है। आधुनिक ग्रीक σῖτοσ, फ्रेंच froment, इटैलियन frumento, grano, फ्रेंच blé, सर्बोक्रोशियन žito शब्द 'गेहूँ' के वाचक हैं, जबकि इनका मूल अर्थ 'अनाज' था। राई (rye) के लिये प्रचलित बोहेमियन žito, पोलिश żyto, आधुनिक हाई जर्मन korn शब्द मूलतः 'अनाज' के ही वाचक थे। मूलतः 'अनाज' का वाचक korn शब्द स्वीडिश भाषा में 'जौ' के लिये प्रचलित है।[2] साधारणतया यह देखा जाता है कि किसी प्रदेश में जिस अन्नविशेष की मुख्य पैदावार होती है, बहुधा उस अन्नविशेष के लिये 'अनाज' का वाचक शब्द प्रचलित हो जाता है। उपर्युक्त शब्दों के अर्थ-विकास के मूल में यही बात दिखाई पड़ती है।

(इ) नदीसामान्यार्थक से नदीविशेषार्थक

सामान्य रूप में 'नदी' के वाचक शब्द बहुधा कालान्तर में किसी विशेष नदी को लक्षित करने लगते हैं।

---

१. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़ (८.४२; grain), पृष्ठ ५१३.

२. वही।

सिन्धु

हिन्दी भाषा में 'सिन्धु' शब्द अधिकतर पंजाब (आजकल के पश्चिमी पाकिस्तान) की एक प्रसिद्ध नदी के नाम के रूप में प्रचलित है, 'समुद्र' अर्थ में भी बहुधा काव्यों आदि में इस शब्द का प्रयोग मिल जाता है। 'सिन्धु' शब्द के ये दोनों अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु संस्कृत में 'सिन्धु' शब्द का मूल अर्थ 'जलधारा, स्रोत, नदी' था। ऋग्वेद में 'सिन्धु' शब्द का 'जलधारा' अथवा 'नदी' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे[१]—यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्—'जिसने सर्प को मारकर सात नदियों को बहाया' (ऋग्वेद २.१२.३)। इस प्रकार 'सिन्धु' शब्द पहिले सामान्यरूप में 'नदी' के लिये प्रयुक्त होता था, किन्तु कालान्तर में पंजाब की नदीविशेष के लिये प्रयुक्त होते रहने से उसी का वाचक रह गया। अवेस्तन और प्राचीन फ़ारसी में इस नदी को 'हिन्दु' नाम से सम्बोधित किया गया है। इसी का ग्रीक रूप Indos हो गया। नदी के नाम के रूप में भी 'सिन्धु' शब्द का संस्कृत साहित्य में प्रचुर प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में एक पूरे सूक्त में 'सिन्धु' नदी का यशोगान किया गया है। 'सिन्धु' शब्द ऋग्वेद में पुंलिङ्ग भी है और स्त्रीलिङ्ग भी (सम्भवतः पुंल्लिङ्ग में केवल इसी नदी का नाम मिलता है)।

वैदिक साहित्य में 'सिन्धु' शब्द के 'जलधारा अथवा नदी' अर्थ से 'समुद्र' अर्थ का भी विकास पाया जाता है। ऋग्वेद में 'समुद्र' अर्थ में 'सिन्धु' शब्द का प्रयोग हुआ है (जैसे १.११५.६ में)। लौकिक संस्कृत साहित्य में भी इस अर्थ में 'सिन्धु' शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है।

'सिन्धु' शब्द के नदीविशेष के लिये प्रचलित हो जाने पर उस नदी के आस-पास के प्रदेश को भी 'सिन्धु' शब्द द्वारा सम्बोधित किया गया और यह एक प्रदेश का नाम हो गया। आज भी 'सिन्धु' का तद्भव रूप 'सिन्ध' पाकिस्तान के एक प्रान्त का नाम है।

---

१. अवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्—'सात नदियों को बहने के लिये छोड़ा' (ऋग्वेद २.१२.१२)। ऋग्वेद के बाद के वैदिक साहित्य में तथा लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'सिन्धु' शब्द का 'नदी' अर्थ में प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे—रघु० १३.६, मेघ० ४८, शाकु० ५.२१, कुमार० ३.६ आदि में।

यह उल्लेखनीय है कि संसार की अन्य अनेक भाषाओं में नदीविशेष के वाचक ऐसे शब्द मिलते हैं, जो मूलतः सामान्य रूप में 'नदी' के वाचक थे।

(उ) अन्य विविध विशेषार्थक शब्द

प्रस्तुत परिच्छेद में अन्य विविध प्रकार के ऐसे शब्दों को रक्खा गया है, जो सामान्यार्थक से विशेषार्थक हुये हैं।

अकाल

हिन्दी में 'अकाल' पुं० शब्द अधिकतर 'दुर्भिक्ष' अर्थ में प्रचलित है। यद्यपि 'अकालमृत्यु' आदि शब्दों में 'अकाल' शब्द बहुधा विशेषण के रूप में 'असामयिक' अर्थ में भी मिल जाता है, तथापि 'असामयिक' अर्थ में 'अकाल' शब्द का प्रयोग ऐसे प्रयोगों तक ही सीमित है। संस्कृत में 'अकाल' शब्द का प्रयोग 'दुर्भिक्ष' अर्थ में नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'अकाल' शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में 'असामयिक, असमय' अर्थ में मिलता है, जैसे—अकाल-मृत्युः (उत्तर० अङ्क २); अकालभवो मृत्युः (रघु० १५.४४)। पुं० में संज्ञा शब्द के रूप में 'अकाल' शब्द का प्रयोग 'कुसमय, बुरा समय', 'अनुपयुक्त समय', 'अशुभ समय' आदि अर्थों में मिलता है। 'अकाल' शब्द का 'दुर्भिक्ष' अर्थ इसके 'कुसमय, बुरा समय' अर्थ से विकसित हुआ है। पहिले 'अकाल' शब्द सामान्य-रूप में 'कुसमय, बुरे समय' को लक्षित करता था। किसी भी प्रकार के बुरे समय को 'अकाल' कह दिया जाता था। किन्तु कालान्तर में 'अकाल' शब्द एक विशेष प्रकार के बुरे समय अर्थात् 'दुर्भिक्ष' के लिये रूढ़ हो गया। आजकल हिन्दी में 'अकाल' शब्द अधिकतर 'दुर्भिक्ष' को ही लक्षित करता है। किसी वस्तु की 'अत्यधिक कमी' को भी 'दुर्भिक्ष' के सादृश्य पर बहुधा उसका 'अकाल' कह दिया जाता है।

'अकाल' शब्द का 'दुर्भिक्ष' अर्थ बंगला भाषा में भी पाया जाता है।[1] मेहता के गुजराती भाषा के कोश तथा मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश में यह अर्थ नहीं दिया हुआ है। कन्नड़, तमिल, मलयालम आदि भाषाओं में भी 'अकाल' शब्द का 'दुर्भिक्ष' अर्थ नहीं पाया जाता।

कीर्तन

हिन्दी में 'कीर्तन' पुं० शब्द का अर्थ है—'ईश्वर या उसके अवतारों के

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

सम्बन्ध में भजन और कथा आदि गाते-बजाते हुये कहना'। 'कीर्तन' में ईश्वर के सम्बन्ध में भजन आदि गाने का कार्य सामूहिक रूप में किया जाता है और भक्त लोग बड़े उत्साहपूर्वक गाते-बजाते हैं। संस्कृत में 'कीर्तन' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।

संस्कृत में 'कीर्तन' (कॄत्+ल्युट्) नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'कथन, वर्णन'[1]। ईश्वर या उसके अवतारों के लिये भजन आदि कहने अथवा उनके गुणों या यश का वर्णन करने के प्रसङ्ग में 'कीर्तन' शब्द के 'कथन, वर्णन' अर्थ में लगातार प्रयुक्त होते रहने से 'कीर्तन' शब्द में ईश्वर या उसके अवतारों से सम्बद्ध भजनों का भाव भी संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'कीर्तन' शब्द ईश्वर या उसके अवतारों के सम्बन्ध में गाते-बजाते हुये भजन और कथा आदि कहने को लक्षित करने लगा। ईश्वर या उसके अवतारों के प्रसङ्ग में 'कथन, वर्णन' अर्थ में 'कीर्तन' शब्द का प्रयोग संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे[2]—रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम (मार्कण्डेयपुराण ९२.२२)। इस प्रकार 'कीर्तन' शब्द, जो पहिले सामान्य रूप में 'कथन, वर्णन' का वाचक था, एक विशेष प्रकार के 'कथन, वर्णन' अर्थात् ईश्वर या उसके अवतारों के सम्बन्ध में गाते-बजाते हुये भजन और कथा आदि कहने को लक्षित करने लगा है।

'कीर्तन' शब्द का हिन्दी में प्रचलित अर्थ मराठी, गुजराती, बंगला, कन्नड़ आदि भाषाओं में भी पाया जाता है।

देश

हिन्दी में 'देश' पुं० शब्द 'राष्ट्र, एक शासन-पद्धति के अन्दर रहने वाला भू-भाग' अर्थ में प्रचलित है। 'देश' शब्द का यह अर्थ यद्यपि संस्कृत में भी पाया जाता है[3], किन्तु संस्कृत में 'देश' शब्द का मौलिक अर्थ है—'स्थान, स्थल' (सामान्य रूप में), जैसे—देशः को नु जलावसेकशिथिलः—'निरन्तर जल के पड़ते रहने के कारण (दीवार का) कौन सा स्थल ढीला पड़ गया है'? (मृच्छ० ३.१२)।

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

२. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ भागवत ७.५.२३.

३. यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्। हितोपदेश १.१५०.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृत में 'देश' शब्द मूलतः सामान्य रूप में 'स्थल, स्थान' को लक्षित करता था। कपोल, स्कन्ध[1], अंस, नितम्ब आदि शब्दों के साथ 'स्थान, स्थल' अर्थ में 'देश' शब्द का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। संस्कृत में 'भाग' अर्थ में भी 'देश' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, जैसे—'एकदेश', 'एकदेशीय' आदि शब्दों में।

'देश' शब्द के 'स्थान, स्थल' अर्थ से ही 'राष्ट्र, एक शासन-पद्धति के अन्दर रहने वाला भू-भाग' अर्थ विकसित हुआ है। पहिले 'देश' शब्द सामान्य रूप में 'स्थान, स्थल' को लक्षित करता था, किन्तु कालान्तर में यह एक विशेष स्थान अर्थात् 'एक शासन-पद्धति के अन्दर रहने वाले भू-भाग' अर्थात् 'राष्ट्र' को लक्षित करने लगा। 'देश' शब्द तत्सम एवं तद्भव रूपों में अन्य भारतीय भाषाओं में भी 'राष्ट्र, एक शासन-पद्धति के अन्दर रहने वाला भू-भाग' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—मराठी, गुजराती, बंगला, असमिया, उड़िया, कन्नड़—'देश'; पंजाबी—'देस'; तेलुगु—'देशमु'; मलयालम—'देशम्'।

निवेदन

हिन्दी में 'निवेदन' पुं० शब्द 'प्रार्थना' (नम्रतापूर्वक किसी से कुछ कहना) अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'निवेदन' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'निवेदन' (नि + विद् + ल्युट्) नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ है—'कहना, सूचना देना' (निविद्यते विज्ञाप्यतेऽनेनेति), जैसे[2]—न कदाचित् प्रियनिवेदनं निष्फलीकृतं मया—'मैंने प्रिय सूचना को कभी निष्फल नहीं होने दिया' (मृच्छ० अङ्क ५)।

संस्कृत में 'निवेदन' शब्द के 'कहना, सूचना देना' अर्थ से 'प्रकटीकरण', 'घोषणा' तथा 'समर्पण'[3] आदि अर्थों का भी विकास पाया जाता है। इसी प्रकार नि-पूर्वक √ विद् धातु का प्रयोग भी संस्कृत में कहना,

---

१. स्कन्धदेशे। शाकु० १.१९.

२. इदमार्यपुत्रः प्रियनिवेदनानुरूपं पारितोषिकं प्रतीच्छतिवति। मालविका० अङ्क ५.

३. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ भागवत. ७.५.२३.

सूचना देना[१], घोषणा करना[२], प्रकट करना[३], समर्पित करना[४] आदि अर्थों में पाया जाता है।

'निवेदन' शब्द का 'नम्रतापूर्वक किसी से कुछ कहना' अथवा 'प्रार्थना' अर्थ इस शब्द के 'कहना, सूचना देना' अर्थ से ही विकसित हुआ है। लोक-व्यवहार में यह देखा जाता है कि गुरुजनों को अथवा अन्य मान्य लोगों को शिष्टाचारपूर्वक जो कुछ कहना होता है, सदैव नम्रतापूर्वक कहा जाता है। अतः नम्रतापूर्वक कहने के प्रसङ्गों में 'निवेदन' शब्द के 'कहना' अर्थ में प्रयुक्त किये जाने के कारण 'निवेदन' शब्द में 'नम्रता' का भाव भी संक्रान्त हो गया और कालान्तर में 'निवेदन' शब्द ही 'नम्रतापूर्वक किसी से कुछ कहना' को लक्षित करने लगा। इस प्रकार यह शब्द सामान्य रूप में 'कहना' के वाचक से विशेष प्रकार के कहने अर्थात् 'नम्रतापूर्वक कहने' का वाचक बन गया। यह भी सम्भव है कि 'कहना' अर्थ में प्रयुक्त 'निवेदन' शब्द के साथ पहिले कोई 'नम्रता' का वाचक शब्द प्रयुक्त किया जाता हो (जैसे 'सविनय निवेदन है'[५] आदि प्रयोगों में 'निवेदन' शब्द 'विनय' शब्द के साथ प्रयुक्त किया जाता है) और इस प्रकार प्रयुक्त होते रहने से 'नम्रता' का भाव भी 'निवेदन' शब्द में संक्रान्त हो गया हो और कालान्तर में 'निवेदन' शब्द ही 'नम्रतापूर्वक कुछ कहने' के भाव को व्यक्त करने लगा हो।[६]

---

१. उपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि—'उपस्थित होमवेला की गुरु जी को सूचना देता हूँ' (शाकु० अङ्क ४)।

२. कथमात्मानं निवेदयामि—'किस प्रकार अपने को घोषित करूँ' (शाकु० अङ्क १)।

३. दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु—'उनके नंगे रहने से ही उनका धन प्रकट होता है' (कुमार० ५.७२)।

४. स्वराज्यं चन्द्रापीडाय न्यवेदयत्—'अपने राज्य को चन्द्रापीड को समर्पित कर दिया' (कादम्बरी ३६७)।

५. यह उल्लेखनीय है कि 'सविनय निवेदन है' आदि प्रयोगों में 'निवेदन' शब्द पहिले 'कहना, कथन' अर्थ में ही प्रयुक्त किया होगा और उसका भाव होगा 'नम्रतापूर्वक कथन है'।

६. अर्थ-विकास का एक ऐसा भी उदाहरण पाया जाता है जहाँ कि 'नम्रता' के वाचक शब्द से ही 'प्रार्थना' अर्थ विकसित हो गया है। देखिये, 'विनय' शब्द के अर्थ-विकास का विवेचन, पृष्ठ २१२-१३.

'निवेदन' शब्द का 'प्रार्थना' अथवा 'आवेदन' अर्थ नेपाली[1] और बंगला[2] भाषा में भी पाया जाता है। कन्नड़[3] भाषा में 'निवेदन' शब्द के 'सूचना', 'भेंट', 'मनुष्यों अथवा देव-प्रतिमाओं को भेंट' आदि अर्थ हैं। मलयालम[4] भाषा में 'निवेदनम्' का अर्थ 'सूचना' (informing) ही है। तेलुगु[5] में 'निवेदनमु' का अर्थ है—'आहुति अथवा बलि (भेंट)'। तमिल[6] में भी 'निवेतनम्' शब्द के अर्थ 'भेंट, समर्पण', 'किसी देवता को चावल आदि की बलि अथवा भेंट' आदि हैं।

प्रजा

हिन्दी में 'प्रजा' स्त्री० शब्द का अर्थ है—'वह जनसमूह जो किसी एक राजा के अधीन या एक राज्य के अन्तर्गत रहता हो'। इस अर्थ में 'प्रजा' शब्द का प्रयोग किसी राजा, शासक, राज्य आदि के प्रसङ्ग में ही किया जाता है। 'प्रजा' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, जैसे—प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा—'प्रजाओं को अपनी सन्तानों के समान नियन्त्रित करके' (शाकु० ५.५)।

'प्रजा' शब्द प्र-पूर्वक √ जन् 'उत्पन्न होना' धातु से बना है। अतः 'प्रजा' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है 'प्रसव, उत्पत्ति, फैलाव'। तदनुसार उत्पन्न प्राणियों, सन्तान, बाल-बच्चों आदि को 'प्रजा' कहा गया। ऋग्वेद में प्र-पूर्वक √ जन् धातु का प्रयोग बहुधा 'प्रजा' (सन्तान) शब्द के साथ सन्तानों से विस्तार अथवा फैलाव होने के प्रसङ्ग में पाया जाता है, जैसे—प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः— 'हे रुद्र हम सन्तानों से विस्तार को प्राप्त हों अर्थात् सन्तानों से समृद्ध हों' (२.३३.१); वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः—'उसके अङ्कुरों के रूप में अन्य प्राणी और पौधे सन्तानों

---

१. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।

२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

३. एफ० किटेल : कन्नड़-इंगलिश डिक्शनरी।

४. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

५. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी (निवेदनमु—offering, oblation)।

६. तमिल लेक्सीकन (निवेतनम्—1. offering, dedicating, 2. offering of rice etc. made to a deity)।

से विस्तार को प्राप्त होते हैं' (२.३५.८)। ऋग्वेद में 'प्रजा' शब्द का प्रयोग सामान्य रूप में 'प्राणी, जन, मनुष्य' अर्थ में भी पाया जाता है, जैसे—उत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम्—'और तूने प्राणियों अर्थात् लोगों से स्तुति प्राप्त कर ली है' (५.८३.१०)। लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'प्रजा' शब्द का प्रयोग 'प्राणी,[1] जन', अर्थ में पाया जाता है और 'सन्तान' अर्थ में तो 'प्रजा' शब्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है।[2] 'प्रजा' शब्द के 'प्राणी, जन, मनुष्य' अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण संस्कृत में किसी राजा के अधीन अथवा राज्य के अन्तर्गत रहने वाले जनसमूह को 'प्रजाः' (बहु०) कहा गया। बाद में किसी राजा के अधीन या राज्य के अन्तर्गत रहने वाले 'जनसमूह' के लिये 'प्रजा' शब्द एकवचन में भी प्रचलित हो गया। इस प्रकार 'प्रजा' शब्द जो पहिले सामान्य रूप में 'प्राणी, जन' का वाचक था, राजा के सम्बन्ध से विशिष्ट प्रसङ्ग में प्रयुक्त होते रहने से राजा के अधीन या राज्य के अन्तर्गत रहने वाले जनसमूह को लक्षित करने लगा।

हिन्दी में 'प्रजा' शब्द केवल इसी अर्थ में प्रचलित रह गया है, 'सन्तान' अर्थ सर्वथा लुप्त हो गया है। 'किसी राजा के अधीन या राज्य के अन्तर्गत रहने वाला जनसमूह' अर्थ में 'प्रजा' शब्द तत्सम एवं तद्भव रूपों में अन्य भारतीय भाषाओं में भी पाया जाता है, जैसे—सिन्धी, मराठी, गुजराती, बंगला, असमिया, उड़िया—'प्रजा'; पंजाबी—'परजा'; कश्मीरी—'प्रज्' तेलुगु, मलयालम—'प्रज'; कन्नड़—'प्रजे'।

यह उल्लेखनीय है कि कतिपय अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'प्रजा' अथवा प्र पूर्वक √ जन् धातु से सम्बद्ध शब्द 'सन्तान' अर्थ में पाये जाते हैं, जैसे—लैटिन progenies, आधुनिक अंग्रेज़ी progeny, अवेस्तन frazainti (अवेस्तन frazan = संस्कृत प्र–जन्)। आधुनिक फ़ारसी भाषा में farzand (फ़र्ज़न्द) शब्द 'पुत्र, सन्तान' अर्थ में प्रचलित है।

डा० गोंडा ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत इन इण्डोनेशिया' में लिखा है कि प्राचीन जावानीज़ साहित्य में 'प्रजा' शब्द का प्रयोग 'राज्य में रहने वाला जनसमूह अथवा जनता' अर्थ में तो पाया ही जाता है, इसके अतिरिक्त इस शब्द के इस अर्थ से 'राज्य' (kingdom); 'राजा का स्थान' और उससे

---

१. सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। मनु० १.८.

२. अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा (मनु० ३.४२); प्रजायै गृहमेधिनाम् (रघु० १.७) आदि।

'सरकार का स्थान, राजधानी' अर्थ भी विकसित हो गये हैं।[1]

यजमान

हिन्दी में 'यजमान' पुं० शब्द अधिकतर पुरोहित के सम्बन्ध से उस व्यक्ति को कहा जाता है, जो दक्षिणा आदि देकर पुरोहित से हवन आदि धार्मिक कृत्य कराता है। नाई, धोबी, भंगी आदि के संरक्षक भी उनके 'यजमान' कहे जाते हैं।

'यजमान' शब्द √ यज् 'यज्ञ करना' धातु से शानच् प्रत्यय लगकर बना है। अतः संस्कृत में मूलतः यह विशेषण[2] शब्द था और इसका मौलिक अर्थ था 'यज्ञ करता हुआ'। विशेषण से यह पुंल्लिङ्ग में संज्ञा शब्द के रूप में यज्ञ करने वाले व्यक्ति (यज्ञकर्ता) के लिये प्रयुक्त किया जाने लगा। इस रूप में 'यजमान' शब्द के वैदिक साहित्य में दो अर्थ विकसित हुये, एक तो 'यज्ञ करने वाला व्यक्ति'[3] और दूसरा 'पुरोहित अथवा पुरोहितों के द्वारा अपने लिये यज्ञ कराने वाला व्यक्ति', क्योंकि यज्ञ करने वाले व्यक्ति और पुरोहित अथवा पुरोहितों से यज्ञ कराने वाले व्यक्ति दोनों को ही यज्ञकर्ता (यजमान) कहा जा सकता है। यद्यपि वैदिक साहित्य में 'यजमान' शब्द का प्रयोग दोनों ही अर्थों में पाया जाता है, तथापि यह उल्लेखनीय है कि 'यजमान' शब्द का दूसरा अर्थ अधिक प्रचलित रहा है।[4] लौकिक संस्कृत साहित्य में भी 'यजमान'

---

१. Skt. prajā प्रजा 'offspring, creature (s), subjects (of a king)' came to denote 'subjects, people, public' and, in addition, 'a kingdom' in Old-Javanese literature; afterwards this meaning became prevalent; another likewise literary sense 'the seat of the king', and hence, also 'the seat of government, capital' has no doubt developed from the former. Gonda. J. : Sanskrit in Indonesia, p. 348.

२. 'यजमान' शब्द के इस रूप में प्रयोग के उदाहरण नहीं मिलते, तथापि यह स्पष्ट है कि प्रारम्भ में इस शब्द का प्रयोग कुछ समय तक इसी रूप में रहा होगा।

३. असिक्न्यां यजमानो न होता—'असिक्नी (चिनाव) पर यज्ञकर्ता होता के समान' (ऋग्वेद ४.१७.१५)।

४. इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु—'इन्द्र ने सारे युद्धों में आर्य यजमान की रक्षा की' (ऋग्वेद १.१३०.८)।

शब्द का प्रयोग दूसरे अर्थ में ही अधिक रहा है। सामान्य रूप में 'यज्ञकर्ता' अर्थ में भी 'यजमान' शब्द के प्रयोग के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल में स्वयं यज्ञ करने वाले महर्षि कण्व को 'यजमान' कहा गया है।[१] 'पुरोहित द्वारा यज्ञ कराने वाले व्यक्ति' के लिये 'यजमान' शब्द के प्रचलन के कारण 'यजमान' शब्द के साथ पुरोहित के सम्बन्ध का भाव भी दृढ़ हो गया और कालान्तर में पुरोहित के सम्बन्ध से ही 'यजमान' समझा जाने लगा अर्थात् किसी यज्ञ कराने वाले को पुरोहित का ही 'यजमान' कहना इष्ट हो गया। इस प्रकार यह शब्द सामान्यार्थक से विशेषार्थक हो गया। आजकल भी यज्ञ आदि कराने वाले किसी व्यक्ति को पुरोहित के सम्बन्ध से ही 'यजमान' कहा जाता है।

उन व्यक्तियों को, जिनके यहाँ यज्ञ आदि धार्मिक कृत्य करके दक्षिणा प्राप्त करते हुये पुरोहित अपनी जीविका चलाते हों, पुरोहितों के सम्बन्ध से 'यजमान' कहा जाने के कारण भाव-सादृश्य से अन्य पेशों वाले लोगों को संरक्षण प्रदान करने वाले व्यक्तियों को भी उनके सम्बन्ध से 'यजमान' कहा जाने लगा। इस प्रकार संस्कृत में 'यजमान' शब्द के संरक्षक, आश्रयदाता, धनी व्यक्ति आदि अर्थों का विकास हुआ। हिन्दी में भी 'यजमान' शब्द का 'संरक्षक' अर्थ विद्यमान है। विभिन्न पेशों वाले लोग जिनके यहाँ कोई कार्य नियमित रूप से करके अपनी जीविका कमाते हैं, उनको अपना 'यजमान' (या तद्भव 'जिजमान') कहते हैं। इस प्रकार नाइयों, धोबियों, भंगियों आदि के भी 'यजमान' (या 'जिजमान') होते हैं।

१. ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः—'इसके पश्चात् स्वयं यज्ञ करने वाले महर्षि कण्व का शिष्य कुशों को लेकर प्रवेश करता है' (शाकु० अङ्क ४)।

अध्याय १७

विशेषार्थक से सामान्यार्थक

किसी विशेष वस्तु, क्रिया, भाव आदि को लक्षित करने वाले शब्द बहुधा कालान्तर में उस प्रकार की किसी सामान्य वस्तु, क्रिया, भाव आदि को लक्षित करने लगते हैं। इस प्रकार वे विशेषार्थक से सामान्यार्थक बन जाते हैं। यहाँ कुछ थोड़े से ऐसे शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है, जो विशेषार्थक से सामान्यार्थक हुये हैं। इनको दो परिच्छेदों में रक्खा गया है :—

(अ) सर्वाधिकतासूचक से सामान्यार्थक,
(आ) अन्य विविध सामान्यार्थक शब्द।

(अ) सर्वाधिकतासूचक से सामान्यार्थक

मूलतः सर्वाधिक का भाव रखने वाले अर्थात् बहुतों में से एक का अतिशय प्रकट करने वाले विशेषण शब्द बहुधा कालान्तर में सामान्य विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने लगते हैं। हिन्दी में संस्कृत के ऐसे बहुत से शब्द प्रचलित हैं, जो मूलतः सर्वाधिक का भाव रखते थे, किन्तु कालान्तर में जिनमें से सर्वाधिकता का भाव लुप्त हो गया और जो सामान्य विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने लगे।

उत्तम

'उत्तम' वि० शब्द 'उद्' (ऊपर, ऊँचे) उपसर्ग में सर्वाधिकतासूचक तम (तमप्) प्रत्यय लगकर बना है। अतः 'उत्तम' शब्द का मूल अर्थ है 'सबसे ऊपर का, सर्वोच्च'। संस्कृत में 'उत्तम' शब्द का प्रयोग सबसे ऊपर का, सर्वोच्च, मुख्य, सबसे अच्छा, सर्वश्रेष्ठ, प्रथम, सबसे बड़ा आदि अर्थों में पाया जाता है। हिन्दी में इस शब्द में सर्वाधिकता का भाव भुला दिया गया है और इसका प्रयोग सामान्य रूप में अच्छा या उत्कृष्ट अर्थ में किया जाता है, जैसे—अत्युत्तम आदि शब्दों में। अच्छेपन या उत्कृष्टता के अतिशय को प्रकट करने के लिये 'अति', 'बहुत' आदि क्रिया-विशेषणों का प्रयोग किया जाता है।

कनिष्ठ

पाणिनि द्वारा 'कनिष्ठ' वि० शब्द की व्युत्पत्ति 'अल्प' और 'युवन्' शब्दों से इष्ठन् प्रत्यय लगकर मानी गई है[१]। यह व्युत्पत्ति सर्वथा काल्पनिक है। 'कनिष्ठ' शब्द कण, कणा, कणी, कणिक, कणिका, कना, कनी, कनीन, कनीनक, कन्या आदि शब्दों से सम्बद्ध है, क्योंकि इनमें भी छोटेपन का भाव निहित है। वस्तुतः इनमें निहित किसी रूप (कन् या कन) में ही सर्वाधिकता-सूचक इष्ठ (इष्ठन्) प्रत्यय लगकर 'कनिष्ठ' शब्द बना है। अतः 'कनिष्ठ' शब्द का मूल अर्थ है—'सबसे छोटा' ('ज्येष्ठ' का उल्टा)। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में 'कनिष्ठ' शब्द का प्रयोग 'आकार में सबसे छोटा' और 'आयु में सबसे छोटा'[२] इन दोनों अर्थों में पाया जाता है। आजकल हिन्दी में 'कनिष्ठ' शब्द का प्रयोग अधिकतर छोटे भाई के लिये भाई के वाचक शब्दों के विशेषण के रूप में किया जाता है, जैसे कनिष्ठ भ्राता। वस्तुतः किसी व्यक्ति के सभी भाइयों में जो सबसे छोटा हो, उसे ही 'कनिष्ठ' कहना चाहिये, किन्तु हिन्दी में बहुधा सर्वाधिकता के भाव का ध्यान नहीं रक्खा जाता। किसी ऐसे छोटे भाई को भी 'कनिष्ठ' कह दिया जाता है, जो सबसे छोटा न हो।

गरिष्ठ

'गरिष्ठ' वि० शब्द 'गुरु' (भारी) शब्द में सर्वाधिकतासूचक इष्ठ (इष्ठन्) प्रत्यय लगकर बना है[३]। अतः इसका मूल अर्थ है—'(वज़न में) सबसे अधिक भारी'। धीरे-धीरे इस शब्द में से भी सर्वाधिक का भाव लुप्त हो गया और यह सामान्य रूप में 'भारी' अर्थ में प्रचलित रह गया। आजकल हिन्दी में यह शब्द 'वज़न में भारी' अर्थ में नहीं, प्रत्युत 'पचने में भारी' अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे—'बादाम बड़ा गरिष्ठ होता है'। भारीपन के अतिशय को प्रकट करने के लिये 'बड़ा', 'बहुत' आदि क्रिया-विशेषणों का प्रयोग किया जाता है। 'पचने में भारी' के लिये संस्कृत में 'गुरु' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। (जैसे—महा० १.३३३४, सुश्रुत० आदि)। यह उल्लेखनीय है कि

---

१. युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् (अष्टाध्यायी ५.३.६४)। एतयोः कनादेशो वा स्यादिष्ठेयसोः, यथा—सर्व इमे युवानः, अयमेषामतिशयेन युवा–कनिष्ठः; सर्व इमेऽल्पाः अयमतिशयेनाल्पः–कनिष्ठः।

२. पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः (ऋग्वेद १०.८.२८)।

३. अष्टाध्यायी ६.४.१५७.

संस्कृत में 'गरिष्ठ' शब्द का प्रयोग 'अत्यधिक आदरणीय'[1], 'अत्यधिक मोटा'[2] 'सबसे बुरा' आदि अर्थों में भी पाया जाता है।

ज्येष्ठ

मैकडॉनेल[3] के अनुसार 'ज्येष्ठ' वि० शब्द √ज्या 'जीतना' धातु में सर्वाधिकतासूचक इष्ठ प्रत्यय लगकर बना है। किन्तु पाणिनि तथा उसके अनुयायी भारतीय वैयाकरण इसे 'प्रशस्य'[4] और 'वृद्ध'[5] शब्दों में इष्ठन् प्रत्यय लगकर निष्पन्न मानते हैं। 'ज्येष्ठ' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रशस्य' और 'वृद्ध' शब्दों से नहीं हो सकती। इसकी व्युत्पत्ति √ज्या धातु से अथवा इससे सम्बद्ध किसी शब्द से (जो बाद में प्रचलित नहीं रहा) ही हो सकती है। ऋग्वेद में 'ज्येष्ठ' वि० शब्द का प्रयोग सर्वोत्तम, सबसे अच्छा, सबसे बड़ा, प्रथम, मुख्य, आयु में सबसे बड़ा आदि अर्थों में पाया जाता है। बाद के साहित्य में भी इन अर्थों में 'ज्येष्ठ' शब्द का प्रयोग होता रहा है। 'ज्येष्ठ' शब्द के अर्थ में से सर्वाधिकता का भाव ऋग्वेद-काल में ही लुप्त होने लगा था, क्योंकि ऋग्वेद २.१६.१, ६.६७.१ आदि में दूसरे सर्वाधिकतासूचक तम (तमप्) प्रत्यय से युक्त 'ज्येष्ठतम' शब्द का प्रयोग मिलता है। लौकिक संस्कृत साहित्य में बहुधा तर (तरप्) प्रत्यय से युक्त 'ज्येष्ठतर' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। आजकल हिन्दी में 'ज्येष्ठ' शब्द का प्रयोग अधिकतर बड़े भाई के लिये भाई के वाचक शब्दों के विशेषण के रूप में किया जाता है, जैसे—ज्येष्ठ भ्राता। वस्तुतः किसी व्यक्ति के सभी भाइयों में जो सबसे बड़ा हो, उसे ही 'ज्येष्ठ' कहना चाहिये। किन्तु हिन्दी में बहुधा सर्वाधिकता के भाव का ध्यान नहीं रक्खा जाता, किसी ऐसे बड़े भाई को भी 'ज्येष्ठ' कह दिया जाता है, जो सबसे बड़ा न हो।

---

१. भागवत ७.१२; साहित्यदर्पण (३)।

२. गीत० १.६.

३. वैदिक ग्रैमर फ़ोर स्टुडैण्ट्स, १०३.२.

४. ज्यच (अष्टाध्यायी ५.३.६१)। प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यादिष्ठेयसोः, यथा—सर्व इमे प्रशस्या अयमतिशयेन प्रशस्यः—ज्येष्ठः।

५. वृद्धस्य च (अष्टाध्यायी ५ ३.६२)। वृद्धशब्दस्य च ज्यादेशः स्यादजाद्योः, यथा—सर्व इमे वृद्धा अयमतिशयेन वृद्धः—ज्येष्ठः।

बलिष्ठ

'बलिष्ठ' वि० शब्द 'बलिन्' (शक्तिशाली) शब्द में सर्वाधिकतासूचक इष्ठ (इष्ठन्) प्रत्यय लगकर बना है। अतः इसका मूल अर्थ है—'सबसे अधिक शक्तिशाली'। वैदिक साहित्य में 'बलिष्ठ' शब्द का प्रयोग 'सबसे अधिक शक्तिशाली', 'अत्यधिक शक्तिशाली' आदि अर्थों में पाया जाता है। रघुवंश में 'बलिष्ठ' शब्द का प्रयोग तुलनात्मक रूप में 'से अधिक शक्तिशाली' अर्थ में भी हुआ है[1]। 'बलिष्ठ' शब्द से सर्वाधिकता के भाव का लोप वैदिक साहित्य में ही होता हुआ दिखाई पड़ता है, क्योंकि ऐतरेयब्राह्मण में 'सबसे अधिक शक्तिशाली' अर्थ में दूसरे सर्वाधिकतासूचक तम (तमप्) प्रत्यय से युक्त 'बलिष्ठतम' शब्द का प्रयोग मिलता है[2]। हिन्दी में 'बलिष्ठ' शब्द सर्वाधिकता के भाव से रहित सामान्य रूप में 'बलशाली, शक्तिशाली' अर्थ में प्रचलित है, जैसे—अमुक व्यक्ति बड़ा बलिष्ठ है। शक्तिशाली होने के अतिशय को प्रकट करने के लिये 'बड़ा' क्रिया-विशेषण का प्रयोग किया जाता है।

वरिष्ठ

'वरिष्ठ' वि० शब्द 'उरु' (चौड़ा, बड़ा, विस्तृत) शब्द में सर्वाधिकता-सूचक इष्ठ (इष्ठन्) प्रत्यय लगकर बना है[3]। अतः इसका मूल अर्थ है—'सबसे अधिक चौड़ा, सबसे अधिक बड़ा, सबसे अधिक विस्तृत'। वैदिक साहित्य में 'वरिष्ठ' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है।[4] लौकिक संस्कृत साहित्य में इसके अतिरिक्त 'सबसे अच्छा, सर्वोत्तम', 'सबसे भारी', 'अत्यधिक नीच' आदि अर्थ भी पाये जाते हैं।[5] हिन्दी में 'वरिष्ठ' वि० शब्द सामान्य रूप में 'बड़ा' अर्थ में प्रचलित रह गया है, सर्वाधिकता का भाव सर्वथा लुप्त हो गया है, जैसे—'अमुक व्यक्ति अमुक विभाग में वरिष्ठ अधिकारी है'। इसके अतिरिक्त 'सबसे अधिक चौड़ा' या 'सबसे अधिक विस्तृत' या 'अत्यधिक विस्तृत' आदि कोई अन्य अर्थ प्रचलित नहीं है।

श्रेष्ठ

'श्रेष्ठ' वि० शब्द का मूल अर्थ 'सबसे अधिक सुन्दर, सबसे अधिक अच्छा'

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

२. वही।

३. अष्टाध्यायी ६.४.१५७.

४. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

५. आप्टे : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

है। मोनियर विलियम्स[1], मैकडॉनेल[2] आदि विद्वान् इसे √श्रि या √श्री 'चमकना' धातु से इष्ठ (इष्ठन्) प्रत्यय लगकर निष्पन्न मानते हैं, किन्तु पाणिनि आदि संस्कृत-वैयाकरणों के अनुसार इसे 'प्रशस्य' शब्द में इष्ठन् प्रत्यय लगकर व्युत्पन्न माना जाता है, 'प्रशस्य' को 'श्र' आदेश हो जाता है[3]। 'श्रेष्ठ' शब्द की 'प्रशस्य' से व्युत्पत्ति मानना सर्वथा असङ्गत है, क्योंकि आदेश आदि की बात बुद्धिग्राह्य नहीं है। वस्तुतः 'श्रेष्ठ' शब्द के एक अत्यन्त प्राचीन शब्द होने के कारण पाणिनि आदि संस्कृत-वैयाकरणों को अन्य अनेक शब्दों की भाँति इसकी ठीक व्युत्पत्ति ज्ञात ही नहीं थी। इसीलिये उपर्युक्त कल्पना की गई। 'श्रेष्ठ' शब्द की व्युत्पत्ति √श्रि या √श्री 'चमकना' धातु से मानी जा सकती है। ध्वनि और अर्थ के साम्य की दृष्टि से यह तो स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि इसका सम्बन्ध संस्कृत के 'श्री' (स्त्री०) 'सौन्दर्य, कान्ति' और अवेस्तन के 'स्री' शब्द से है। ऋग्वेद में 'श्रेष्ठ' शब्द का प्रयोग 'सबसे अधिक सुन्दर'[4], 'सबसे अधिक अच्छा' अर्थ में उपलब्ध होता है[5]। धीरे-धीरे प्रयोगातिशय के कारण इस शब्द में से सर्वाधिकता का भाव लुप्त होता गया और यह सामान्य रूप में 'उत्कृष्ट, अच्छा' अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। ऋग्वेद में ही इस शब्द का सामान्य अर्थ विकसित हो गया था और बहुधा पुनः सर्वाधिकतासूचक तम (तमप्) प्रत्यय लगाकर 'श्रेष्ठतम' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा था। महाभारत आदि ग्रन्थों में तुलनासूचक तर (तरप्) प्रत्यय से युक्त 'श्रेष्ठतर' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। आजकल हिन्दी में 'श्रेष्ठ' शब्द में सर्वाधिकता के भाव को न समझे जाने के कारण 'सबसे अच्छा, सर्वोत्कृष्ट' के लिये पुनः सर्वाधिकतासूचक तम प्रत्यय लगाकर 'श्रेष्ठतम' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

---

१. संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

२. वैदिक ग्रैमर फ़ोर स्टुडैण्ट्स, १०३.२ a.

३. प्रशस्यस्य श्रः। अष्टाध्यायी ५.३.६०.

४. श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि—'हे रुद्र तुम सौन्दर्य की दृष्टि से पैदा हुओं में सबसे अधिक सुन्दर हो' (२.३३.३); दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् (५.६२.१)।

५. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

स्वादिष्ठ

'स्वादिष्ठ' वि० शब्द, 'स्वादु'[1] (खाने में रुचिकर, जायकेदार) शब्द में सर्वाधिकतासूचक इष्ठ (इष्ठन्) प्रत्यय लगकर बना है। अतः इसका मूल अर्थ है—'खाने में सबसे अधिक रुचिकर'। ऋग्वेद आदि ग्रन्थों में 'स्वादिष्ठ' शब्द का 'खाने में सबसे अधिक रुचिकर' या 'अत्यधिक रुचिकर' अर्थ में प्रयोग पाया जाता है, जैसे—स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया—'हे सोम, तुम अत्यधिक रुचिकर और अत्यधिक मदयुक्त धारा से क्षरित होओ' (९.१.१)। हिन्दी में इस शब्द में से भी 'सबसे अधिक' का भाव लुप्त हो गया है और यह सामान्य रूप में 'खाने में रुचिकर, जायकेदार'[2] अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे—'अमुक पदार्थ बड़ा स्वादिष्ठ है'। रुचिकर या जायकेदार होने के अतिशय को प्रकट करने के लिये 'बड़ा', 'बहुत' आदि क्रिया-विशेषण शब्दों का प्रयोग किया जाता है। आजकल हिन्दी में यह शब्द प्रायः अशुद्ध रूप में 'स्वादिष्ट' लिखा जाता है, यहाँ तक कि बहुत से बड़े-बड़े विद्वान् भी अज्ञान-वश 'स्वादिष्ठ' के स्थान पर 'स्वादिष्ट' लिखने देखे जाते हैं।

(आ) अन्य विविध सामान्यार्थक शब्द

प्रस्तुत परिच्छेद में अन्य विविध प्रकार के ऐसे शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है, जो पहिले किसी विशेष भाव को लक्षित करते थे, किन्तु कालान्तर में उस प्रकार के सामान्य भाव को लक्षित करने लगे। यहाँ केवल थोड़े से शब्द रक्खे गये हैं। पिछले अध्यायों में आये हुये अन्य बहुत से शब्दों में भी अर्थ-परिवर्तन की यह प्रवृत्ति मिलती है।

दक्षिणा

हिन्दी में 'दक्षिणा' स्त्री० शब्द अधिकतर 'यज्ञादि कर्म अथवा किसी

---

१. 'स्वादु' शब्द से सम्बद्ध शब्द अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'मधुर, रुचिकर' (sweet) अर्थ में पाये जाते हैं, जैसे—ग्रीक ηδύΣ; लैटिन svāvis; प्राचीन नोर्स sœtr, डैनिश sod, स्वीडिश söt, प्राचीन अंग्रेज़ी swēte, swōt, मध्यकालीन अंग्रेज़ी swete, sote, आधुनिक अंग्रेज़ी sweet, डच zoet, प्राचीन हाई जर्मन suozi, मध्यकालीन हाई जर्मन suoze, आधुनिक हाई जर्मन süss आदि।

२. इस अर्थ में संस्कृत में 'स्वादु' शब्द का प्रयोग मिलता है, जैसे ऋग्वेद ६.४७.१–२, ८.४८.१ आदि; वैराग्यशतक ९२; मेघ० २४ आदि।

अन्य शुभ कार्य के अवसर पर ब्राह्मण अथवा पुरोहित को दी जाने वाली भेंट' के लिये प्रचलित है। 'दक्षिणा' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु √ दक्ष् 'समर्थ होना' धातु से निष्पन्न होने के कारण संस्कृत में 'दक्षिणा' स्त्री० वि० शब्द का मूल अर्थ था—'समर्थ, योग्य'[1]। 'समर्थ, योग्य' अर्थ में 'दक्षिणा' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऐसी गाय के लिये पाया जाता है, जो 'बछड़े देने एवं खूब दूध देने योग्य' हो।[2] ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में 'दक्षिणा' शब्द के इस अर्थ में प्रयोग के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।[3]

ऋग्वेद में 'दक्षिणा' शब्द का प्रयोग 'पुरोहित को दी जाने वाली भेंट' अर्थ में भी पाया जाता है। ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त (१०.१०७) में 'दक्षिणा' की स्तुति की गयी है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि पहिले यज्ञ में पुरोहित को जो भेंट दी जाती थी, वह गाय के रूप में ही होती थी।[4] ऋग्वेद ८.२४.२९ में कहा गया है—

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः।
स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥

'नार्य की दक्षिणा सोम पीने वाले व्यश्व-पुत्रों (हम लोगों) के पास आवे और वह स्थूल धन सैकड़ों, हज़ारों में हो'।

---

१. मिलाइये—संस्कृत 'दक्षिण' (समर्थ, चतुर, दाहिना, दक्षिण दिशा में स्थित); 'दक्ष' (समर्थ, योग्य, चतुर, शक्तिशाली)।

२. Monier Williams : Sanskrit-English Dictionary.
Dakṣiṇā—'able to calve and give milk', a prolific cow, good milch-cow; RV.; AV.

३. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
ऋग्वेद २.११.२१.

४. A fee or present to the officiating priest (consisting originally of a cow). Monier Williams : Sanskrit-English Dictionary.

"Dakṣiṇā appears repeatedly in the Rigveda and later as the designation of the gift presented to the priests at the sacrifice, apparently because a cow-a prolific (dakṣiṇā) one-was the usual 'fee' on such an occasion." Macdonell and Keith : Vedic Index of Names and Subject, vol.I,p.336.

यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत ऋचा में दक्षिणा के रूप में मिलने वाले धन को सैकड़ों, हज़ारों में कहने से सैकड़ों, हज़ारों गायों से ही तात्पर्य है। कात्यायन-श्रौतसूत्र (१५.२.१३) और लाट्यायन-श्रौतसूत्र (८.१.२) में दक्षिणा-विषयक नियम में कहा गया है कि जहाँ स्पष्ट उल्लेख न हो वहाँ गाय ही दक्षिणा होती है। इससे यह स्पष्ट है कि पहिले पुरोहित को यज्ञ में भेंट के रूप में गाय ही दी जाती थी।

यज्ञ में पुरोहित को दी जाने वाली भेंट के दुधारू गाय[1] के रूप में होने के कारण 'दुधारू गाय' के वाचक 'दक्षिणा' शब्द के साथ 'भेंट' के भाव का भी साहचर्य हो गया और कालान्तर में 'दक्षिणा' शब्द सामान्य रूप में 'पुरोहित को दी जाने वाली भेंट' को लक्षित करने लगा, चाहे उसमें गाय न भी हो। स्पष्टतः पहिले गाय की भेंट को ही 'दक्षिणा' कहा जाता था, बाद में इसके अर्थ में विस्तार हो गया और अन्य वस्तुओं (अश्व, अलङ्कार, वस्त्र, रुपये-पैसे आदि) की भेंट को भी सामान्य रूप में 'दक्षिणा' कहा जाने लगा।

'दक्षिणा' शब्द का 'दुधारू गाय' अर्थ यद्यपि उत्तर-वैदिक अथवा लौकिक संस्कृत साहित्य में नहीं पाया जाता, तथापि इसके बाद में विकसित हुये 'उदार' अर्थ में मूल भाव की पुट अवश्य मिलती है। अभिज्ञानशाकुन्तल (४.१८) में कण्व ने शकुन्तला को परिजनों के प्रति उदार (दक्षिणा) रहने का जो उपदेश[2] दिया है, उसमें 'खूब दूध देने वाली गाय' की उदारता से साम्य देखा जा सकता है।

---

१. प्राचीन काल में बछड़े वाली तथा खूब दूध देने वाली गाय (दक्षिणा) ही पुरोहितों को भेंट के रूप में दी जाती थी, इसका कारण यह था कि प्राचीन भारतीय धर्माचार्यों ने, जोकि प्रायः ब्राह्मण पुरोहित ही होते थे, अपने लाभ की दृष्टि से पुरोहितों को बछड़े वाली और खूब दूध देने वाली गाय को ही भेंट के रूप में देने का विधान कर रक्खा था। ऐसा न करने पर यजमान को अनिष्ट-फल का भय दिखाया गया था। कठोपनिषद् (१.१.२–४) में नचिकेता अपने पिता द्वारा जीर्ण-शीर्ण गायों को पुरोहितों को भेंट के रूप में दी जाती देखकर ही अनिष्ट-फल की आशङ्का से अभिभूत होकर अपने पिता को वैसा करने से रोकने के उद्देश्य से कहता है—'हे तात, आप मुझे किस ऋत्विग्विशेष को दक्षिणा के रूप में देंगे'।

२. भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने।

संस्कृत में 'दक्षिणा' शब्द का प्रयोग पुरोहित के अतिरिक्त गुरु आदि को दी जाने वाली 'भेंट' के लिये भी पाया जाता है, जैसे—'गुरुदक्षिणा'[1], 'प्राणदक्षिणा' आदि। यह अर्थ हिन्दी में भी प्रचलित है।

संस्कृत में 'गाय' अथवा 'दुधारू गाय' के वाचक 'धेनु' स्त्री० शब्द का भी 'गाय के स्थान पर अथवा गाय के रूप में ब्राह्मण को दी जाने वाली भेंट' अर्थ विकसित पाया जाता है, जैसे—गुडधेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, क्षीरधेनु, मधुधेनु, शर्कराधेनु, दधिधेनु, रसधेनु आदि (मत्स्यपुराण)।

यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी के fee शब्द के 'पारिश्रमिक, फ़ीस' अर्थ का विकास भी 'दक्षिणा' शब्द के समान ही हुआ है। Fee शब्द का मौलिक अर्थ 'पशु' था। Fee शब्द संस्कृत के 'पशु' शब्द का सजातीय है। इसका विकास भारत-यूरोपीय *peḱu शब्द से माना जाता है ('पशु' के सजातीय शब्द आज भी बहुत सी भारत-यूरोपीय भाषाओं में 'पशु' अथवा किसी 'पशुविशेष' के अर्थ में पाये जाते हैं)। प्राचीन हाई जर्मन fehu, fihu, मध्यकालीन हाई जर्मन vihe, आधुनिक हाई जर्मन vieh शब्दों का अर्थ 'पशु' (cattle) ही है। प्राचीन सैक्सन fehu, प्राचीन फ्रीज़ियन fia, ऐंग्लो सैक्सन feoh, प्राचीन आइसलैण्डिक fe शब्दों के अर्थ 'पशु' और 'धन अथवा सम्पत्ति' दोनों हैं। मध्यकालीन अंग्रेज़ी में fee शब्द का प्रयोग 'पशु' अर्थ में पाया जाता है (यथा—ne for or fee=nor for our cattle. Curson Mundi, 14th century)। गोथिक में faihu शब्द का अर्थ केवल 'धन अथवा सम्पत्ति' ही पाया जाता है। आधुनिक अंग्रेज़ी में fee शब्द 'शुल्क, पारिश्रमिक' (किसी सेवा के बदले में दिया हुआ धन) अर्थ में प्रचलित हैं (जैसे—a lawyer's fee, a doctor's fee)। प्राचीन काल में पशुओं के ही धन-सम्पत्ति के रूप में होने के कारण संसार की बहुत सी भाषाओं में पशु-वाचक शब्द 'धन' के वाचक बन गये हैं।[2]

नमस्ते

हिन्दी में 'नमस्ते' शब्द का प्रयोग अभिवादन के लिये किया जाता है,

---

१. रघु० ५.२०.

२. लैटिन के pecūnia (धन, सम्पत्ति), अंग्रेज़ी के peculiar (अपनी सम्पत्ति, धन) और pecuniary (धन-सम्बन्धी, आर्थिक) शब्दों के भी मूल में 'पशु' के सजातीय शब्द विद्यमान हैं।

जैसे—'मदन जी, नमस्ते'। पहिले हिन्दी में यह शब्द अव्यय के रूप में था, किन्तु अब इसका प्रयोग स्त्री० संज्ञा शब्द के रूप में भी किया जाता है, जैसे—'उनसे मेरी नमस्ते कहना'। 'नमस्ते' का प्रयोग संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में 'नमस्ते' दो शब्दों का एक वाक्य है, जिसका अर्थ है—'तुझे (अथवा आपको) नमस्कार'। 'नमस्ते' में दो शब्द हैं—'नमस्' और 'ते'। 'नमस्' एक अव्यय शब्द है, जिसका अर्थ है—'प्रणाम, अभिवादन' और 'ते' 'युष्मद्' का चतुर्थी विभक्ति एकवचन का रूप है[1], जिसका अर्थ है—'तेरे लिये' (या 'आपके लिये')। प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'नमस्' और 'ते' का वाक्य में साथ-साथ प्रयोग पाया जाता है, जैसे—नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य—'हे अमर रुद्र, तुझ सहस्रनेत्र को हम नमस्कार करते हैं' (अथर्व० ११.२.३); नमस्ते अस्तु पश्यत—'हे द्रष्टा, तुझे नमस्कार' (अथर्व० १३.४.४८)।

अभिवादन के लिये 'नमस्' और 'ते' से युक्त वाक्य के निरन्तर प्रयुक्त होते रहने से इन दोनों शब्दों का एक ही सामान्य भाव अर्थात् 'अभिवादन, प्रणाम, नमस्कार' (जोकि मूलतः 'नमस्' का भाव है) समझा जाने लगा, 'ते' (तेरे या आपके लिये) का भाव भुला दिया गया और किसी भी पुरुष (प्रथम, मध्यम, उत्तम) और किसी भी वचन (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) के व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को 'नमस्ते' कहा जाने लगा (मूलतः तो मध्यमपुरुष एकवचन को ही अभिवादन करते हुये 'नमस्ते' कहा जा सकता था)।

पंक्ति

हिन्दी में 'पंक्ति' स्त्री० शब्द 'रेखा, कतार' अर्थ में प्रचलित है। 'पंक्ति' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'पंक्ति' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'पाँच का समूह'। मोनियर विलियम्स ने 'पंक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'पञ्चन्' (पाँच) से मानी है, जो स्वाभाविक प्रतीत होती है। आप्टे के कोश में 'पंक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति √पञ्च्='विस्तार करना, विस्तृत होना' धातु से क्तिन् प्रत्यय लगकर मानी गई है, जो 'पंक्ति' शब्द के बाद में विकसित हुये अर्थ को दृष्टि में रखकर गढ़ी गई प्रतीत होती है। यह निस्सन्दिग्ध है कि 'पंक्ति' शब्द का मूल अर्थ 'पाँच का समूह' था। ऋग्वेद में 'पंक्ति' नाम का एक छन्द भी पाया जाता है, जिसमें आठ-आठ

---

१. संस्कृत-व्याकरणानुसार 'नमस्' के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।

अक्षरों के पाँच पाद होते हैं। स्पष्टतः इसमें पाँच पाद होने के कारण ही इसे 'पंक्ति' नाम दिया गया। वैदिक साहित्य में 'पाँच का समूह' और 'पाँच' इन अर्थों में 'पंक्ति' शब्द के प्रयोग के उदाहरण भी मिलते हैं, जैसा कि मोनियर विलियम्स द्वारा दिये गये अथर्ववेद तथा ब्राह्मणग्रन्थों आदि के निर्देशों से पता चलता है।

'पाँच के समूह' को लक्षित करने वाले 'पंक्ति' शब्द के अर्थ में क्रमशः विस्तार हुआ और कालान्तर में यह शब्द संख्याविशेष (पाँच) के समूह को ही न लक्षित करके सामान्य रूप में किसी भी संख्या के 'समूह' को लक्षित करने लगा। समूह कई प्रकार का हो सकता है, जैसे एक सीध में एक रेखा में रक्खी हुई वस्तुओं का समूह, किसी क्रम से रक्खी हुई वस्तुओं का समूह, एक प्रकार की वस्तुओं का एक स्थान पर एकत्र श्रेणी के रूप में समूह आदि। इसलिये 'समूह' के वाचक 'पंक्ति' शब्द के साथ 'रेखा' एवं 'श्रेणी' आदि के भावों का भी साहचर्य हुआ और कालान्तर में यह शब्द 'रेखा', 'क्रमगत श्रेणी', 'श्रेणी' आदि के भावों को भी प्रकट करने लगा।

'क्रमगत श्रेणी' अर्थ में 'पंक्ति' शब्द का प्रयोग रौथ के अनुसार ऋग्वेद (१०.११७.८) में भी पाया जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक (१०.३८.३९) में किसी व्यक्ति के पूर्वजों की क्रमगत श्रेणी (series) को 'पंक्ति' कहा गया है। लौकिक संस्कृत साहित्य में 'रेखा'[1], 'क्रमगत श्रेणी'[2], 'समूह' आदि अर्थ तो पाये ही जाते हैं, इनके अतिरिक्त 'एक ही जाति के व्यक्तियों की भोजन के लिये बैठी रेखा'[3], 'प्रसिद्धि', 'यश' आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। आजकल हिन्दी में 'पंक्ति' शब्द का 'रेखा, कतार' अर्थ ही सबसे अधिक प्रचलित है।

---

१. पक्ष्मपंक्तिः (रघु० २.१९); पदपंक्तिः (वेणी० ४.१६) आदि।

२. कुमार० ४.१५; रघु० ६.५ आदि।

३. इसी अर्थ के वाचक 'पंक्ति' शब्द का तद्भव रूप 'पंगत' आज भी हिन्दी में पाया जाता है। अन्तर इतना है कि 'पंगत' के अर्थ में एक ही जाति का भाव नहीं रह गया है। उसमें विभिन्न जातियों के व्यक्ति भी हो सकते हैं।

अध्याय १८

शोभनशब्दप्रयोग

सभ्य समाज में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि मनुष्य अपने व्यवहार में शोभन शब्दों का प्रयोग करना चाहता है। वह अशोभन बातों, भावनाओं और कार्यों को अशोभन शब्दों द्वारा व्यक्त न करके उनके लिये शोभन अथवा श्लील शब्दों का प्रयोग करने का प्रयत्न करता है। बहुधा मनुष्य भयङ्कर वस्तुओं को भी उनको प्रसन्न करने की दृष्टि से शोभन शब्दों द्वारा लक्षित करने लगता है। शिष्टाचारवश भी समाज में पारस्परिक व्यवहार में शोभन एवं नम्र शब्दों का प्रयोग किया जाता है। अतः प्रस्तुत अध्याय में जिन शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है, उनको निम्न श्रेणियों में रक्खा गया है :—

(अ) गन्दे अथवा अश्लील भावों के लिये शोभनशब्दप्रयोग,
(आ) भयभावना पर आधारित शोभनशब्दप्रयोग,
(इ) अन्धविश्वास पर आधारित शोभनशब्दप्रयोग,
(ई) अपशुकननिवारणार्थ शोभनशब्दप्रयोग,
(उ) अशुभ बातों के उल्लेख में शोभनशब्दप्रयोग,
(ऊ) आदर अथवा शिष्टाचारवश शोभनशब्दप्रयोग,
(ए) नम्र शब्दों का प्रयोग।

(अ) गन्दे अथवा अश्लील भावों के लिये शोभनशब्दप्रयोग

जो भाव अथवा कार्य गन्दे अथवा अश्लील समझे जाते हैं, उनको प्रायः सभी भाषाओं में घुमा-फिरा कर ऐसे शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाने लगता है, जिनसे गन्दापन अथवा अश्लीलता प्रकट न हो। जब प्रचलित शब्दों में गन्देपन अथवा अश्लीलता की गन्ध आने लगती है, तभी नये शब्दों का प्रचलन होता

है। गन्देपन अथवा अश्लीलता से युक्त शब्द कई प्रकार के होते हैं—(क) पेशाब, टट्टी आदि के वाचक शब्द, (ख) गुप्ताङ्गों के वाचक शब्द, (ग) मैथुन-सम्बन्धी शब्द। इनके लिये हिन्दी में भी संस्कृत के ऐसे बहुत से शब्द प्रचलित हैं, जिनका मूल भाव कुछ और ही था।

(क) पेशाब, टट्टी आदि के वाचक शब्द

पेशाब, टट्टी आदि के कार्यों को गन्दा समझा जाता है। अतएव इनके लिये गन्देपन के भाव से रहित शब्दों का प्रयोग होने लगता है।

लघुशङ्का

आजकल हिन्दी में 'पेशाब' के लिये 'लघुशङ्का' स्त्री० शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसके लिये पहिले से प्रचलित 'मूत्र' शब्द का उच्चारण अब असभ्य समझा जाता है। 'मूत्र' शब्द के प्रयोग को अश्लील अथवा असभ्य समझा जाने के कारण ही इसके लिये 'लघुशङ्का' शब्द बनाया गया है। 'लघुशङ्का' शब्द का प्रयोग संस्कृत में नहीं पाया जाता। यह शब्द संस्कृत के 'लघु' और 'शङ्का' शब्दों से मिलकर बना है। लघु का अर्थ है—'छोटा, हल्का, थोड़ा' और 'शङ्का' का अर्थ है—'सन्देह, डर, सङ्कोच'। इस प्रकार 'लघुशङ्का' शब्द का अर्थ 'थोड़ा भय' अथवा 'थोड़ा सङ्कोच' हो सकता है 'पेशाब' के भाव के साथ थोड़े सङ्कोच का भाव भी सहचरित होता है, क्योंकि पेशाब करने में, विशेषकर खुले स्थान में पेशाब करने में, पेशाब करने वाले को कुछ सङ्कोच होता है। अतः इस भाव-साहचर्य के कारण ही 'पेशाब' के लिये अश्लील प्रतीत होने वाले 'मूत्र' शब्द के स्थान पर शोभन शब्द का प्रयोग करने की भावना से 'लघुशङ्का' (थोड़ा सङ्कोच) शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ होगा। 'पेशाब' अर्थ में 'लघुशङ्का' शब्द कुछ अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी पाया जाता है। मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश तथा किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश में 'लघुशङ्का' शब्द 'पेशाब करना' अर्थ में पाया जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि 'लघुशङ्का' शब्द सन् १८४७ (मोल्सवर्थ के कोश के प्रकाशित होने के वर्ष) से पहिले ही मराठी भाषा में प्रचलित हो गया था। किटेल ने अपने कोश में 'लघुशङ्का' शब्द को 'पेशाब करना' अर्थ देते हुये इसके प्रयोग के विषय में कोष्ठक में मैसूर और महाराष्ट्र प्रदेश का निर्देश दिया है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द इस अर्थ में सर्वप्रथम मराठी भाषा में प्रयुक्त किया गया और उससे हिन्दी आदि अन्य भाषाओं में

फैला। नेपाली भाषा में भी 'लघुशङ्का' शब्द का 'पेशाब करना' अर्थ पाया जाता है। नेपाली भाषा में 'पेशाब करने' के लिये प्रयुक्त 'लघुशङ्का' शब्द के अनुकरण पर 'टट्टी जाने अथवा करने' को 'दीर्घशङ्का' कहा जाता है।[१] आशुतोष देव के बंगला-इंगलिश कोश में 'लघुशङ्का' शब्द नहीं दिया हुआ है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि बंगला में यह शब्द प्रचलित नहीं है।

यह उल्लेखनीय है कि 'मूत्र' के लिये फ़ारसी भाषा का 'पेशाब' शब्द भी 'अशोभन के लिये शोभन शब्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति' के कारण ही प्रचलित हुआ है। 'पेशाब' शब्द का मौलिक अर्थ है—'आगे का पानी' ('पेश'='आगे'; 'आब'='पानी')।

गू

बोलचाल की ग्रामीण हिन्दी में 'टट्टी' के लिये 'गू' पुं० शब्द प्रचलित है। इसका प्रयोग अधिकतर बड़े ही असभ्य एवं गँवार लोगों द्वारा किया जाता है। मोनियर विलियम्स और आप्टे ने अपने कोशों में संस्कृत में भी 'टट्टी' अर्थ में 'गू' स्त्री० शब्द का उल्लेख किया है। संस्कृत में 'टट्टी' के लिये इससे सम्बद्ध 'गूथ' शब्द भी पाया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि ये शब्द 'गो' से सम्बद्ध मूल भारत-यूरोपीय *gwou, *gwu से विकसित हुये माने जाते हैं। *gwou, *gwou का मूल अर्थ 'गाय का गोबर' था।[२] 'गू' (एवं 'गूथ') शब्द की ध्वनि में ही 'गो' का कोई रूप निहित दिखाई पड़ता है। भाव-सादृश्य से 'टट्टी' के लिये मूलतः 'गोबर' के वाचक 'गू' एवं 'गूथ' शब्द प्रचलित हो गये होंगे। 'गू' से सम्बद्ध शब्द कुछ अन्य भारत-यूरोपीय भाषाओं में भी 'टट्टी' अर्थ में पाये जाते हैं[३], जैसे—चर्चस्लैविक, सर्बोक्रोशियन और रशन भाषाओं में govno, पोलिश में gowno, अवेस्तन में gūθa शब्द 'टट्टी' के लिये पाये जाते हैं। आर्मीनियन भाषा में ku, koy शब्दों का अर्थ 'गोबर' है। प्राचीन अंग्रेज़ी cwēad, प्राचीन हाई जर्मन quāt, मध्यकालीन

१. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।

२. सी० डी० बक : ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ २७६.

३. वही।

हाई जर्मन quāt, kot, kāt, आधुनिक हाई जर्मन kot शब्दों का अर्थ 'टट्टी' भी है और 'गोबर' भी है। इस प्रकार एक अत्यन्त प्राचीन भारत-यूरोपीय शब्द आज भी हमारी ग्रामीण बोली में कुछ भिन्न अर्थ में विद्यमान है।

पुरीष

हिन्दी में 'पुरीष' पुं० शब्द भी 'टट्टी' के लिये प्रचलित है। इसका यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'पुरीष' नपुं० शब्द का मूल अर्थ था—'मिट्टी, भूमि, विशेष रूप से ऐसी ठोस मिट्टी जो भर जाती है'[1] (क्योंकि 'पुरीष' शब्द √पॄ 'भरना' धातु से निष्पन्न माना जाता है)। 'टट्टी' भी ऐसी चीज़ होती है जो मिट्टी में मिलकर, पृथ्वी के छिद्रों अथवा दरारों आदि में भरकर मिट्टी ही बन जाती है, अतः उसे पहिले गन्देपन के भाव से रहित 'भर जाने वाली मिट्टी' के वाचक 'पुरीष' शब्द द्वारा लक्षित किया गया होगा। 'टट्टी' अर्थ में 'पुरीष' शब्द शतपथ-ब्राह्मण, उसके पश्चाद्वर्ती वैदिक ग्रन्थों एवं लौकिक संस्कृत साहित्य में होता हुआ हिन्दी में प्रचलित है।

शौच

आजकल हिन्दी में 'टट्टी' के लिये 'शौच' पुं० शब्द काफ़ी प्रचलित है। प्राचीन संस्कृत में 'शौच' नपुं० शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।[2] 'शौच' शब्द 'शुचि' (शुद्ध, साफ़) वि० शब्द से बना भाववाचक शब्द है (शुचेर्भावः अण्)। अतः संस्कृत में 'शौच' नपुं० शब्द का मौलिक अर्थ

---

१. इन अर्थों में 'पुरीष' शब्द वाजसनेयिसंहिता, तैत्तिरीय-संहिता, शतपथ-ब्राह्मण आदि वैदिक साहित्य के ग्रन्थों में मिलता है।

२. यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि मोनियर विलियम्स और आप्टे आदि ने अपने कोशों में 'शौच' शब्द का 'टट्टी करना' अर्थ दिया है, किन्तु यह अर्थ आधुनिक ही है। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में यह अर्थ देकर उसके आगे MW. लिख रक्खा है, जिसके विषय में मोनियर विलियम्स ने अपने कोश की भूमिका (पृष्ठ १८) में लिखा है कि जिन शब्दों और अर्थों को मैंने अपने नाम से MW. चिह्नित करके लिखा है, उनमें से बहुत से टीकाओं से लिये गये हैं या उन टिप्पणियों से लिये गये हैं, जो मैंने भारतवर्ष में संस्कृत-पण्डितों के साथ हुये वार्तालापों से ली थीं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मोनियर विलियम्स ने भी यह आधुनिक अर्थ ही दिया है।

है 'सफ़ाई', जैसे—शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः (मनु० ५.११४)।

'शौच' शब्द के 'सफ़ाई' अर्थ से ही संस्कृत में 'शुद्धि'[१] और 'पवित्रता'[२] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है। संस्कृत में 'ईमानदारी' के लिये भी 'शौच' अथवा 'अर्थशौच' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, जैसे—सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं विशिष्यते (गरुड० अध्याय ११०)।

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में 'शौच' दो प्रकार का बतलाया गया है, 'बाह्य' और 'आभ्यन्तर'। मिट्टी, जल आदि से की गयी शुद्धि 'बाह्यशौच' है और भावों की शुद्धि 'आभ्यन्तरशौच'[३]।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले 'प्रातःकाल सोकर उठने के पश्चात् की जाने वाली शारीरिक शुद्धि' (जिसके अन्तर्गत टट्टी जाना, दातून करना, स्नान आदि आ जाते हैं) के लिये 'शौच' शब्द का प्रयोग किया जाता होगा, किन्तु बाद में 'टट्टी' के लिये प्रचलित शब्द के अश्लील सा प्रतीत होने पर, शोभन शब्द के प्रयोग की भावना से 'टट्टी' के लिये 'शौच' शब्द का ही प्रयोग किया जाने लगा होगा।

'शौच' शब्द का 'टट्टी' अर्थ बंगला, गुजराती, मराठी, कन्नड़ आदि भाषाओं में भी पाया जाता है। गैलेट्टी ने अपने तेलुगु भाषा के कोश में केवल 'शुद्धि' अर्थ दिया है। तमिल लेक्सीकन में तथा गण्डर्ट के मलयालम भाषा के कोश में 'टट्टी जाने के बाद की जाने वाली शुद्धि' अर्थ दिया है।

यह उल्लेखनीय है कि 'टट्टी' के लिये प्रयुक्त कुछ अन्य शब्दों के भी मौलिक अर्थ कुछ और ही हैं। 'टट्टी' शब्द का अर्थ है—'टट्टर' (ओट के लिये बाँस आदि की पट्टियाँ जोड़कर बनाया हुआ ढाँचा)। टट्टर की ओट में 'पाखाना' किये जाने के कारण ही पाखाने को 'टट्टी' कहा जाने लगा। 'पाखाना' शब्द का मौलिक अर्थ है—'पैर रखने की जगह'। गांवों में 'टट्टी जाने' को 'जंगल जाना' (अथवा जंगल फिरना), 'दिशा जाना' आदि कहा जाता है।

---

१. अद्यासि शौचेन परेण युक्तः। सौन्दर० १८.२४.

२. कुलशौचशुद्धः। बुद्ध० ११.१.

३. शौचन्तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथान्तरम्॥ गरुड़० अध्याय २१५.

(ख) गुप्ताङ्गों के वाचक शब्द

सभ्य समाज में स्त्री-पुरुष की जननेन्द्रिय तथा अन्य गुप्ताङ्गों का उल्लेख करना अश्लील समझा जाता है। अतः उनके वाचक शब्द जब अश्लीलतापूर्ण प्रतीत होने लगते हैं, तो उनको अन्य ऐसे शब्दों से लक्षित किया जाने लगता है, जिनमें अश्लीलता का भाव न हो।

हिन्दी में पुरुष के 'शिश्न' के लिये **'लिङ्ग'** पुं० शब्द प्रचलित है। इस अर्थ में 'लिङ्ग' शब्द संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'लिङ्ग' नपुं० शब्द का मूल अर्थ 'चिह्न'[1] था। 'शिश्न' के पुरुष का विशिष्ट चिह्न होने के कारण ही प्रारम्भ में उसको 'चिह्न' के वाचक 'लिङ्ग' शब्द द्वारा लक्षित किया गया होगा। कालान्तर में 'लिङ्ग' शब्द 'शिश्न' का ही बोधक हो गया। संस्कृत में 'लिङ्ग' शब्द के 'शिश्न' के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से अर्थ पाये जाते हैं, जो इसके मूल अर्थ 'चिह्न' से विकसित हुये हैं।

हिन्दी में स्त्रियों की जननेन्द्रिय के लिये **'योनि'** स्त्री० शब्द प्रचलित है। 'योनि' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'योनि' (पुं०, स्त्री०) शब्द का मूल अर्थ सम्भवतः 'घर' था। ऋग्वेद में 'योनि' शब्द इस अर्थ में मिलता है, जैसे—स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्—'किसी स्त्री को अन्य लोगों की पत्नी के रूप में देखकर और उनके सुव्यवस्थित घर को देखकर जुआरी को दुःख होता था' (१०.३४.११)। इससे सम्बद्ध भारत-यूरोपीय ieuni या iouni शब्द का अर्थ 'उचित स्थान' माना जाता है। अवेस्तन भाषा में yaonəm का अर्थ 'स्थान, घर' है।[2] पहिले 'गर्भाशय' को 'घर' के वाचक 'योनि' शब्द द्वारा लक्षित किया गया होगा, क्योंकि 'गर्भाशय' पैदा होने वाले बच्चे के विकसित होने का घर ही होता है। बाद में गर्भाशय के बाहर स्थित स्त्री की जननेन्द्रिय को भी सामान्य रूप में 'योनि' कहा जाने लगा। 'योनि' शब्द का 'गर्भाशय' अर्थ ऋग्वेद में ही विकसित पाया जाता है (जैसे २.३५.१० आदि में)। संस्कृत में 'योनि' शब्द के उत्पत्तिस्थान (जहाँ से कोई वस्तु पैदा हो), देह, अन्तःकरण, कारण, आकर, प्राणिविभाग (पुराणों के मत में जिनकी संख्या ८४

---

१. यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ (रघु० ८.१६); मुनिर्दोहदलिङ्गदर्शी (रघु० १४.७१) आदि।

२. सिद्धेश्वर वर्मा : दि एटिमोलोजीज़ ऑफ़ यास्क, पृष्ठ ९१.

लाख है) आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। हिन्दी में 'योनि' शब्द स्त्री या पुरुष की जाति (sex) को प्रकट करने के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है।

(ग) मैथुन-सम्बन्धी शब्द

स्त्री-पुरुषों का मैथुन एक गोपनीय कार्य होता है। उसका उल्लेख करना अश्लील समझा जाता है। अतः उसके लिये भी सभी भाषाओं में प्रायः ऐसे शब्द प्रचलित पाये जाते हैं, जिनका मूल अर्थ कुछ और ही था। 'मैथुन' (हिन्दी पुं०, सं० नपुं०) शब्द का मूल अर्थ 'मिथुन अर्थात् जोड़े द्वारा किया जाने वाला कार्य' (मिथुनेन निर्वृत्तम्; मिथुन+अण्) था। इसी प्रकार 'मैथुन' के लिये प्रचलित 'सहवास' पुं० शब्द का मूल अर्थ था—'साथ रहना'; 'समागम' पुं० शब्द का मूल अर्थ था—'साथ आना या मिलना'; 'सम्भोग' पुं० शब्द का मूल अर्थ था—'साथ उपभोग करना या साथ आनन्द लेना'; 'परदारगमन' आदि शब्दों में उपलब्ध 'गमन' नपुं० शब्द का मूल अर्थ था—'जाना, समीप पहुँचना'। संसार की अन्य बहुत सी भाषाओं में भी मैथुन-सम्बन्धी ऐसे शब्द पाये जाते हैं, जिनका मूल अर्थ कुछ और ही था। बक[1] ने इस बात का उल्लेख किया है कि 'सम्भोग करना' के लिये भारत-यूरोपीय भाषाओं में पाये जाने वाले अनेक शब्द ऐसे हैं, जिनका शाब्दिक अर्थ 'साथ आना', 'सम्बन्ध रखना', 'परिचित होना', 'साथ लेटना या सोना' था।

(आ) भयभावना पर आधारित शोभनशब्दप्रयोग

जिनसे मनुष्य को भय लगता है, ऐसी वस्तुओं, बातों, कार्यों अथवा प्राणियों के लिये वह बहुधा शोभन शब्दों का प्रयोग करने लगता है। इसके मूल में यह भावना होती है कि अच्छे शब्दों के प्रयोग से प्रसन्न होकर वह भयङ्कर वस्तु अथवा प्राणी पीड़ित नहीं करेगा और इस प्रकार उसके प्रकोप से बचा जा सकेगा। भयङ्कर के लिये अच्छे शब्दों का प्रयोग पहिले अधिकतर विशेष नाम (epithet) के रूप में किया जाता है, किन्तु कालान्तर में वे उसका सामान्य नाम ही बन जाते हैं। संस्कृत के कई शब्दों का इसी प्रकार अर्थ-विकास हुआ है।

शिव

हिन्दी में 'शिव' शब्द अधिकतर 'महादेव' और 'कल्याणकर' अर्थों में

१. ए डिक्शनरी ऑफ़ सेलेक्टिड़ सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजिज़, पृष्ठ २७८.

पाया जाता है। 'शिव' शब्द के ये दोनों अर्थ संस्कृत में भी पाये जाते हैं। किन्तु यह एक रोचक तथ्य है कि 'शिव' शब्द मूलतः एक विशेषण शब्द था और इसका मूल अर्थ था 'कल्याणकर'। पहिले इसका प्रयोग रुद्र देवता के विशेष नाम के रूप में किया गया। ऋग्वेद में रुद्र देवता का जो वर्णन मिलता है, उसमें उसके अन्य लक्षणों के साथ-साथ भयङ्करता भी प्रकट होती है। उसे उग्र, भीम (भयङ्कर), उपहत्नु (घातक), भीषण अस्त्रों से युक्त बतलाया गया है। ऋग्वेद ४.३.६ में उसे नृघ्न (मनुष्यों का मारने वाला) तक कहा गया है। ऐतरेयब्राह्मण (३.३३.१) में उसे सभी भयानक तनुओं के सम्भार अथवा समवाय से बना हुआ बतलाया गया है। शतपथब्राह्मण (९.१.१.१; ९.१.१.६) में उससे अन्य देवताओं के भी भयभीत होने का उल्लेख मिलता है। उसका क्रोध प्रसिद्ध है। ऋग्वेद में रुद्र से प्रार्थना की गई है कि वह क्रोध में आकर अपने उपासकों तथा उनके परिवारों को हानि न पहुँचाये और रोगों को उनसे दूर रक्खे। रुद्र की स्तुति आपत्ति से बचने के लिये ही नहीं अपितु कल्याण (शम्) की प्राप्ति के लिये भी की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि रुद्र के भयङ्कर और हानिकारक रूप को दृष्टि में रखकर ही ऋग्वेद के स्तोताओं द्वारा उसके लिये 'शिव' (कल्याणकर) इस विशेष नाम का प्रयोग किया गया होगा, जो बाद में चलकर उसका सामान्य नाम बन गया। रुद्र के स्वरूप के क्रमिक विकास का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि ऋग्वेद के रुद्र ही बाद में 'शिव', 'महादेव' आदि नामों से अभिहित किये गये। रुद्र के लिये प्रयुक्त **'शङ्कर', 'शम्भु'** शब्दों का भी मूल अर्थ 'कल्याणकर' ही है। इन शब्दों का प्रयोग भी 'शिव' के समान ही रुद्र की भयङ्करता को दृष्टि में रखते हुये उसे प्रसन्न करने के लिये किया गया प्रतीत होता है। यह उल्लेखनीय है कि वेदोत्तरकालीन साहित्य में 'शिव' देवता को ही सृष्टि का संहार करने वाले के रूप में वर्णित किया गया है, जबकि ब्रह्मा और विष्णु को क्रमशः सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला और सृष्टि का पालन करने वाला बतलाया गया है।

ग्रीक देवता Erinues अथवा Furies का भी Eumenides नाम (जिसका शाब्दिक अर्थ 'दयालु' है) भयङ्कर को कल्याणपरक नाम देने की प्रवृत्ति के कारण ही पड़ा माना जाता है।

(इ) अन्धविश्वास पर आधारित शोभनशब्दप्रयोग

महामारी

हिन्दी भाषा में 'महामारी' स्त्री० शब्द 'व्यापक रोग' (epidemic) अर्थ में प्रचलित है। किसी प्रदेश में हैज़ा, प्लेग आदि के व्यापक रूप में फ़ैल जाने पर उसे 'महामारी' कहा जाता है। संस्कृत साहित्य में 'महामारी' शब्द इस अर्थ में नहीं पाया जाता।[1] संस्कृत में 'महामारी' दुर्गा देवी का एक नाम है। 'महामारी' का मौलिक अर्थ है—'महान् विनाश करने वाली।' दुर्गा देवी का एक रूप विध्वंसक भी माना जाता है, अतः उसे 'महामारी' अथवा 'मारी' कहा गया। 'महामारी' के 'दुर्गा देवी' अर्थ से ही 'व्यापक रोग' अर्थ विकसित हुआ है। इस अर्थ-विकास के मूल में यह अन्ध-विश्वास है कि कोई व्यापक रोग दुर्गा देवी के प्रकोप से फैलता है। पहिले इसी अन्ध-विश्वास के कारण 'व्यापक रोग' को 'महामारी' कहा गया। कालान्तर में 'व्यापक रोग' ही 'महामारी' शब्द का सामान्य अर्थ बन गया। अब अन्ध-विश्वास का भाव सर्वथा लुप्त हो गया है। बंगला और असमिया भाषाओं में भी 'महामारी' शब्द 'व्यापक रोग' (epidemic) अर्थ में पाया जाता है।[2]

समस्त उत्तरी भारत में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में 'चेचक' को **'माता'** (=देवी) कहा जाता है। चेचक के लिये 'माता' शब्द का प्रचलन उस रोग को 'देवी' के प्रभाव से माना जाने के कारण ही हुआ है। चेचक के एक प्रकारविशेष को, जिसमें गर्मी अधिक होती है, **'शीतला'** (=ठण्डी) कहा जाता है। अन्ध-विश्वास के कारण एक शीतला देवी की कल्पना कर ली गई है, जिसके प्रभाव से इस प्रकार की चेचक का निकलना माना जाता है। इस

---

१. यद्यपि मोनियर विलियम्स और आप्टे ने अपने कोशों में 'महामारी' शब्द का अर्थ 'दुर्गा' के साथ-साथ 'व्यापक रोग', 'हैज़ा' भी दिया है, किन्तु किसी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ का निर्देश न दिये जाने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि यह अर्थ आधुनिक ही है। मोनियर विलियम्स ने तो दूसरा अर्थ (अर्थात् व्यापक रोग) देते हुये उसके आगे MW. लिख दिया है, जो इस बात का सूचक है कि यह अर्थ उसने अपने भारत में भ्रमण के अवसर पर प्राप्त हुई जानकारी के आधार पर दिया है। इससे 'महामारी' शब्द के वर्तमान अर्थ की आधुनिकता की पुष्टि होती है

२. व्यवहारकोश।

देवी के सम्मान में माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को 'शीतला-सप्तमी' नामक पर्व मनाया जाता है और फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को शीतला देवी की पूजा होती है।

(ई) अपशकुन-निवारणार्थ शोभनशब्दप्रयोग

अशुभ अथवा अपशकुन-सूचक के लिये भी शोभन शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति पाई जाती है। 'गीदड़' और 'गीदड़ी' को भारतीयों द्वारा प्राचीन काल से ही अशुभ माना जाता रहा है। इनका दर्शन ही नहीं, इनका बोलना भी अशुभ माना जाता है। किसी कार्य के लिये कहीं जाते हुये गीदड़ या गीदड़ी द्वारा रास्ता काटा जाने को कार्य के न होने का सूचक माना जाता है और यदि गीदड़ी बस्ती के निकट आकर रोने लगे तो उसे किसी व्यक्ति की मृत्यु होने का सूचक माना जाता है। इस प्रकार गीदड़ और गीदड़ी को अशुभ एवं अपशकुनसूचक माना जाने के कारण भय की भावना से ही उन्हें प्राचीन काल में **'शिव'** एवं **'शिवा'** (कल्याणकर) ये शुभ नाम दिये गये। संस्कृत साहित्य में 'गीदड़' और 'गीदड़ी' के लिये क्रमशः 'शिव' एवं 'शिवा' शब्दों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है, जैसे – व्याहरत्यशिवं शिवाः (वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड १०); जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतः (किरात० १.३८)। 'गीदड़ी' के लिये 'शिवा' शब्द तो हिन्दी में भी प्रचलित है, यद्यपि उसके प्रयोग के मूल में निहित भावना को कम लोग ही जानते हैं।

(उ) अशुभ बातों के उल्लेख में शोभनशब्दप्रयोग

अशुभ बातों, कार्यों अथवा घटनाओं को प्रायः शिष्टाचारवश घुमा-फिरा कर अच्छे शब्दों द्वारा लक्षित किया जाता है, जैसे किसी के मर जाने पर 'मर जाना' न कह कर 'देहान्त होना' (जिसका अर्थ है—'शरीर का अन्त होना'), 'स्वर्गवास होना' (जिसका अर्थ है—'स्वर्ग में वास होना'), 'गोलोक-वास होना' (जिसका अर्थ है—'स्वर्ग में वास होना'), 'पञ्चत्व को प्राप्त होना' (जिसका अर्थ है—'पाँचों तत्त्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु में लीन हो जाना') आदि कहा जाता है।

(ऊ) आदर अथवा शिष्टाचारवश शोभनशब्दप्रयोग

सभ्य समाज में एक यह प्रवृत्ति भी पाई जाती है कि पारस्परिक व्यवहार में किसी व्यक्ति को सम्बोधित करते हुये उसको अच्छे शब्दों द्वारा पुकारा जाता है। जो व्यक्ति जिस स्थिति का होता है, उसको उसी के नाम से न

कहकर, उससे बढ़ा-चढ़ा कर कहा जाता है। ऐसा इसलिये किया जाता है जिससे उसकी भावनाओं को ठेस न पहुँचे और उसके प्रति आदर का भाव प्रकट हो।

चूड़ा

'चूड़ा' शब्द का प्रयोग यद्यपि आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में नहीं किया जाता, किन्तु ग्रामीण बोलचाल की भाषा में 'चूड़ा' अथवा 'चूहड़ा' पुं० शब्द 'भंगी' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'चूड़ा' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'चूड़ा' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'चोटी, शिखा', जैसे—चूड़ाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयम्—'कङ्कपत्रों से युक्त चोटी को छूने वाले दो तरकशों को' (उत्तर० ४.२०)।

संस्कृत में 'चूड़ा' शब्द का प्रयोग मुर्गे या मोर की कलगी, सिर, चूड़ाकरण संस्कार, शिखर आदि अर्थों में भी पाया जाता है।

'भंगी' को 'चूड़ा' (='सिर' अर्थात् 'श्रेष्ठ') उसको आदरार्थ श्रेष्ठ शब्द द्वारा सम्बोधित करने की भावना से ही कहा गया होगा। आजकल शहरों में भी 'भंगी' को 'मेहतर' (<सं० 'महत्तर') कहा जाता है[1], जिसका मौलिक अर्थ है—'अधिक बड़ा' (greater)।

'चूड़ा' शब्द संस्कृत भाषा में द्रविड़ भाषाओं से आया हुआ माना जाता है।[2]

हरिजन

हिन्दी में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग आजकल चमार, भंगी आदि जातियों के लोगों के लिये, जिन्हें पहिले अछूत कहा जाता था, किया जाता है। अछूतों के लिये 'हरिजन' शब्द का प्रयोग गाँधी जी ने प्रारम्भ किया। संस्कृत में 'हरिजन' शब्द का अर्थ है—'ईश्वर का भक्त'। हिन्दी शब्द सागर में 'हरिजन' शब्द का अर्थ 'ईश्वर का भक्त' ही दिया है। गाँधी जी ने चमार, भंगी आदि निम्न जातियों के लोगों को 'हरिजन' (=भगवान् का भक्त) श्रेष्ठ नाम द्वारा सम्बोधित करने की भावना से प्रेरित होकर ही कहा होगा।

---

१. मिलाइये—पंजाबी, उर्दू—'मेहतर'; सिन्धी—'मेहतरु'; असमिया—'मटोर'; उड़िया—'मेहेन्तर' (व्यवहारकोश)।

२. मिलाइये—तमिल-चूटु 'सर पर पहनना', 'चोटी, शिखा'; मलयालम चूटुक 'सर पर पहनना', चूट्टु 'मुर्गे की कलगी'; कन्नड़-सूडु। टी० बरो: संस्कृत लैंग्वेज, पृष्ठ ३८३.

भारतवर्ष में विभिन्न जातियों के लोगों को श्रेष्ठ शब्दों द्वारा सम्बोधित करने की प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। 'कुम्हार' को 'परजापत' (=प्रजापति) कहा जाता है। संस्कृत में 'प्रजापति' शब्द का प्रयोग अधिकतर ब्रह्मा (जिसको सृष्टि का बनाने वाला माना जाता है) के लिये पाया जाता है। कुम्हार द्वारा बरतनों की सृष्टि की जाने के कारण ही उसको 'प्रजापति' की उपाधि दी गई होगी। गड़रिया जाति के लोगों को 'पधान' (=सं० 'प्रधान'), राजपूतों को 'ठाकुर' (मालिक या बड़ा), ब्राह्मणों को 'पण्डित जी' (सं० 'पण्डित'='विद्वान्') बनिये को 'सेठ जी' (सं० श्रेष्ठिन्='श्रेष्ठ') सिक्खों को 'सरदार' (फ़ा० सरदार=किसी मण्डली का अगुवा) उनको श्रेष्ठ शब्द द्वारा सम्बोधित करने की भावना से ही कहा जाता है।

आदरसूचक शब्द

बहुधा आदरणीय व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के प्रति आदर का भाव व्यक्त करने की दृष्टि से कुछ आदरसूचक शब्दों का प्रयोग किया जाने लगता है। हिन्दी में इस प्रकार के संस्कृत शब्द श्री, श्रीयुक्त, श्रीयुत, श्रीमान्, श्रीमती आदि हैं। पहले इन शब्दों का प्रयोग पूज्य एवं आदरणीय व्यक्तियों अथवा ग्रन्थों आदि के पूर्व किया जाता था, किन्तु अब इनका प्रयोग सर्वसाधारण के लिये होता है। अब इनमें औपचारिकतामात्र रह गई है।

श्री

संस्कृत में 'श्री' स्त्री० (श्रि+क्विप्) शब्द कान्ति, शोभा, सौन्दर्य, सम्पन्नता, समृद्धि, कल्याण, सौभाग्य, गौरव, राजोचित गौरव, (सौन्दर्य एवं समृद्धि की देवी तथा विष्णु की पत्नी के रूप में) लक्ष्मी, सरस्वती आदि अर्थों में तथा 'श्री' पुं० कान्तिमान्, शोभासम्पन्न (यथा—ऋग्वेद ४.४१.८) अर्थ में एवं शुभ, पवित्र अर्थ में नामों के पूर्व आदरसूचक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है। मोनियर विलियम्स ने 'श्री' शब्द के आदरार्थ नामों के पूर्व प्रयोग के विषय में लिखा है—"श्री शब्द का प्रयोग बहुधा आदरसूचक पद के रूप में देवताओं के नामों के पूर्व (यथा—श्रीदुर्गा, श्रीराम) किया जाता है, और आदरातिशय प्रकट करने के लिये इसकी दो, तीन और यहाँ तक कि चार बार भी आवत्ति की जा सकती है (जैसे श्रीश्रीदुर्गा आदि); इसका प्रसिद्ध व्यक्तियों, प्रसिद्ध ग्रन्थों तथा पवित्र वस्तुओं के पूर्व भी (Reverend के समान) आदरसूचक पद के रूप में प्रयोग किया जाता है (यथा—श्रीजयदेव, श्रीभागवत), और

कभी-कभी इसे पत्रों, हस्तलेखों, महत्त्वपूर्ण अभिलेखों के प्रारम्भ में भी रक्खा जाता है; चरण और पाद शब्दों के पूर्व तथा व्यक्तिगत नामों के अन्त में भी रक्खा जाता है" । हिन्दी में 'श्री' शब्द के शोभा, कान्ति, समृद्धि, सौभाग्य, लक्ष्मी आदि अर्थ भी पाये जाते हैं और इसका आदरसूचक पूर्वपद के रूप में भी प्रयोग होता है । जैसा कि ऊपर कहा गया है, पहिले इसका प्रयोग प्रसिद्ध एवं आदरणीय व्यक्तियों के नामों के पूर्व ही होता था, किन्तु अब सभी के (अर्थात् साधारण व्यक्तियों के भी) नामों के पूर्व लगाया जाता है । आजकल प्रयोगातिशय से इसका प्रयोग नामों के पूर्व औपचारिक रह गया है ।

श्रीयुक्त, श्रीयुत

संस्कृत में 'श्रीयुक्त' (श्री + युज् + क्त) एवं 'श्रीयुत' (श्री + यु + क्त) शब्दों का 'श्री से सम्पन्न', 'सौभाग्यशाली', 'धनवान्' आदि अर्थों में तथा मनुष्यों के नामों के पूर्व आदरसूचक पद के रूप में प्रयोग पाया जाता है । हिन्दी भाषा में भी इन अर्थों में (विशेषकर आदरसूचक पूर्वपद के रूप में) प्रयोग किया जाता है । इन शब्दों का भी प्रयोग अब नामों के पूव औपचारिक रह गया है ।

श्रीमत्, श्रीमान्, श्रीमती

'श्रीमत्', 'श्रीमान्' और 'श्रीमती', 'श्री' शब्द में मतुप् प्रत्यय लगकर बने हुये 'श्रीमत्' शब्द के क्रमशः नपुं०, पुं० एवं स्त्री० के रूप हैं । इनके भी संस्कृत में सुन्दर, गौरवशाली, सौभाग्यशाली, धनवान्, आदरणीय आदि अर्थ हैं और इनका आदरणीय व्यक्तियों एवं वस्तुओं के नामों के पूर्व आदरसूचक पद के रूप में प्रयोग पाया जाता है (यथा—श्रीमद्भागवत, श्रीमच्छङ्कराचाय आदि) । हिन्दी भाषा में भी इन शब्दों का प्रयोग सौभाग्यशाली, धनवान् आदि अर्थों में एवं आदरसूचक पूर्वपद के रूप में होता है । आदरसूचक पद के रूप में इनका प्रयोग पहिले आदरणीय व्यक्तियों एवं वस्तुओं के नामों के पूर्व होता था, किन्तु अब आदर प्रदर्शित करने के लिये औपचारिक रूप में होता है । 'श्रीमती' शब्द आजकल बोलचाल में बहुधा 'पत्नी' के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है । बोलचाल में आदर का भाव दिखाने की प्रवृत्ति के कारण ही यह प्रचलित हो गया है ।

(ए) नम्र शब्दों का प्रयोग

साधारणतः यह देखा जाता है कि जब कोई व्यक्ति अपने विषय में कोई बात कहता है तो उस समय बड़ी नम्रता प्रदर्शित करता है, जैसे—जब कोई

व्यक्ति किसी व्यक्ति को अपने घर पर आमन्त्रित करता है, तो कहता है—'हमारे ग़रीबखाने पर भी आइये'। इस प्रकार वह 'अपने घर' को नम्रतापूर्वक 'ग़रीबखाना' कहता है। शिष्टाचारवश नम्र शब्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति के कारण ही हिन्दी में 'जलपान' शब्द के अर्थ में परिवर्तन हुआ है।

जलपान

हिन्दी में 'जलपान' पुं० शब्द 'थोड़ा और हल्का भोजन, नाश्ता' अर्थ में प्रचलित है। प्राचीन संस्कृत में 'जलपान' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'जलपान' शब्द का अर्थ है—'पानी पीना'। थोड़े और हल्के भोजन के लिये 'जलपान' शब्द का प्रयोग आधुनिक काल में ही किया जाने लगा है। 'थोड़े और हल्के भोजन' अर्थात् नाश्ते के साथ बहुधा पीने के लिये पानी भी रक्खा जाता है (सम्भवतः पहिले चाय आदि का अधिक प्रचलन न होने के कारण पानी नाश्ते के अङ्ग के रूप में आवश्यक रूप से रक्खा जाता होगा)। अतः इस भाव-साहचर्य के कारण ही 'नाश्ते' को शिष्टाचारवश नम्रतापूर्वक 'जलपान' कहा जाने लगा होगा।

'जलपान' शब्द का 'थोड़ा और हल्का भोजन' अर्थ बंगला[1], असमिया और नेपाली[2] भाषाओं में भी पाया जाता है। बंगला में 'जलपान' के लिये 'जलयोग' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। उड़िया भाषा में इसी अर्थ में 'जलखिया' शब्द का प्रयोग होता है।

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

२. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।

अध्याय १९

प्रकीर्णक

प्रस्तुत अध्याय में कुछ ऐसे विविध प्रकार के शब्दों के अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन किया गया है, जो पिछले अध्यायों में नहीं आ सके हैं। इनको निम्न वर्गों में रक्खा गया है:—

(अ) बंगला से आये हुये शब्द,
(आ) फुटकर शब्द,
(इ) भिन्न शब्द।

(अ) बंगला से आये हुये शब्द

आधुनिक काल में हिन्दी में बहुत से संस्कृत शब्द अपने नवीन अर्थों में मराठी, गुजराती, बंगला आदि अन्य भारतीय भाषाओं से आये हैं। हिन्दी में नवीन भावों को व्यक्त करने के लिये तो बहुत से संस्कृत शब्द इन भाषाओं से ग्रहण किये ही गये हैं, कुछ शब्द ऐसे भी आ गये हैं, जिनके भावों को व्यक्त करने के लिये हिन्दी में शब्द विद्यमान थे। इस प्रकार ऐसे शब्दों का उन भाषाओं में प्रचलित अर्थ भी (जोकि बहुधा संस्कृत में पाये जाने वाले अर्थों से भिन्न हो गया है) हिन्दी में प्रचलित हो गया है।

आधुनिक काल में जो शब्द अन्य भारतीय भाषाओं से आये हैं, उनमें सबसे अधिक संख्या बंगला भाषा से आये हुए शब्दों की है। मराठी तथा गुजराती से भी शब्द आये हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। बंगला भाषा के अत्यन्त संस्कृत-निष्ठ तथा उच्चकोटि के साहित्य वाली भाषा होने के कारण उसकी शब्दावली का साहित्यिक हिन्दी पर बहुत प्रभाव पड़ा है। हिन्दी में नवीन अर्थों में बंगला भाषा से आये हुये बहुत से संस्कृत शब्दों के अर्थ-विकास का विवेचन पहिले किया जा चुका है। किन्तु कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके अर्थ-विकास की प्रक्रिया कुछ स्पष्ट नहीं है। उनके वर्तमान अर्थों का विकास बंगला भाषा में ही विशिष्ट परिस्थितियों में होने के कारण यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उनके अर्थ का विकास किस प्रकार

हुआ। तथापि उनके अर्थ के विकास की प्रक्रिया का कुछ विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है।

अभिभावक

हिन्दी भाषा में 'अभिभावक' पुं० शब्द 'देखरेख करने वाला, संरक्षक' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'अभिभावक' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'अभिभावक' शब्द का अर्थ है—'अभिभूत करने वाला, पराजित करने वाला'।[1] अभि+भू धातु का प्रयोग भी संस्कृत में 'अभिभूत करना, पराजित करना' अर्थ में पाया जाता है।[2]

'देखरेख करने वाला, संरक्षक' अर्थ में 'अभिभावक' शब्द हिन्दी में बंगला भाषा से आया है।[3] हिन्दी तथा बंगला भाषा के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि अन्य भारतीय भाषाओं में 'अभिभावक' शब्द ही नहीं पाया जाता।[4]

संरक्षक का एक काम बच्चों के ऊपर नियन्त्रण रखना, उनको वश में रखना भी होता है, जिससे कि वे उच्छृंखल अथवा स्वच्छन्द न हो जायें। सम्भवत: इसी भाव को दृष्टि में रखते हुये बंगला भाषा में 'देखरेख करने वाले' अथवा 'संरक्षक' को 'अभिभावक' कहा जाने लगा होगा।

अभ्यर्थना

हिन्दी भाषा में 'अभ्यर्थना' स्त्री० शब्द अधिकतर 'सम्मान के लिये आगे बढ़कर किया जाने वाला स्वागत, अगवानी' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'अभ्यर्थना' स्त्री० शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'अभ्यर्थना' शब्द का अर्थ है 'प्रार्थना', जैसे[5]—

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

२. सर्वतेजोऽभिभाविना। रघु० १.१४.

३. रामचन्द्र वर्मा : अच्छी हिन्दी, पृष्ठ १०८.

४. मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश, मेहता के गुजराती भाषा के कोश, तमिल लेक्सीकन, गैलेट्टी के तेलुगु भाषा के कोश, किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश और गण्डर्ट के मलयालम भाषा के कोश में 'अभिभावक' शब्द ही नहीं पाया जाता। आशुतोष देव के बंगला भाषा के कोश में 'अभिभावक' शब्द 'संरक्षक', 'रक्षक' आदि अर्थों में दिया हुआ है।

५. सुन्दरी इयमिदानीं मेऽभ्यर्थना—'सुन्दरी, अब मेरी एक प्रार्थना है' (विक्रम० अङ्क ३)।

अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे—'प्रार्थना भङ्ग हो जाने के भय से सज्जन अभीष्ट कार्य में भी मध्यस्थता का आश्रय लेता है' (कुमार० १.५२)।

'अभ्यर्थना' शब्द के 'सम्मान के लिये आगे बढ़कर किया जाने वाला स्वागत, अगवानी' अर्थ का विकास हिन्दी भाषा में नहीं हुआ है। इस शब्द के इस अर्थ का विकास बंगला भाषा में हुआ और बंगला भाषा के प्रभाव से यह शब्द इस अर्थ में हिन्दी में प्रचलित हुआ है।[1] बंगला में 'अभ्यर्थना' शब्द केवल 'स्वागत' अर्थ में ही प्रचलित है। बंगला में 'अभ्यर्थना करा' का अर्थ है—'स्वागत करना'। 'स्वागतसमिति' (Reception Committee) को बंगला में 'अभ्यर्थना समिति' कहा जाता है[2]। मराठी[3] और गुजराती[4] भाषाओं में 'अभ्यर्थना' शब्द का अर्थ 'प्रार्थना' ही है, 'स्वागत' अर्थ नहीं पाया जाता।

आपत्ति

हिन्दी में 'आपत्ति' स्त्री० शब्द 'विपत्ति' और 'एतराज़' (किसी बात को ठीक न मानकर उसके सम्बन्ध में कुछ कहना) अर्थों में प्रचलित है। 'आपत्ति' शब्द का 'विपत्ति' अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु 'एतराज़' अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। 'आपत्ति' शब्द आ उपसर्गपूर्वक √पद् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगकर बना है। संस्कृत में 'आपत्ति' शब्द का प्रयोग 'विपत्ति' के अतिरिक्त 'प्राप्ति',[5] 'दोष', 'अनिष्ट प्रसङ्ग' आदि अर्थों में भी पाया जाता है।

वस्तुतः 'आपत्ति' शब्द का 'एतराज़' अर्थ हिन्दी में बंगला भाषा से आया है। मराठी, गुजराती, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि अन्य भारतीय भाषाओं में 'आपत्ति' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता।[6] ऐसा

---

१. रामचन्द्र वर्मा : अच्छी हिन्दी, पृष्ठ १०८.

२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

३. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

४. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

५. स्थानापत्तेर्द्रव्येषु धर्मलाभः। कात्यायन (आप्टे के कोश से उद्धृत)।

६. मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश, मेहता के गुजराती भाषा के कोश, किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश, तमिल लेक्सीकन, गैलेट्टी के तेलुगु भाषा के कोश तथा गण्डर्ट के मलयालम भाषा के कोश में 'आपत्ति' शब्द का 'एतराज़' अर्थ नहीं पाया जाता। आशुतोष देव के बंगला भाषा के कोश में

प्रतीत होता है कि 'एतराज़' के लिये 'आपत्ति' शब्द पहिले बंगला भाषा में प्रचलित हुआ और उसके अनुकरण पर हिन्दी में प्रचलित हो गया। 'मुझे इसमें कुछ एतराज नहीं है' के लिये 'मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं है' का प्रयोग करने में प्रारम्भिक प्रयोक्ता का यह भाव हो सकता है कि इससे मुझ पर कोई मुसीबत नहीं आयेगी, मुझे कुछ कष्ट नहीं होगा अथवा मेरा कुछ अनिष्ट नहीं होगा।

तत्त्वावधान

हिन्दी में 'तत्त्वावधान' पुं० शब्द 'देखरेख' (auspices) अर्थ में प्रचलित है, (जैसे 'मेरठ कालेज के तत्त्वावधान में अमुक समारोह किया गया')। संस्कृत में 'तत्त्वावधान' शब्द नहीं पाया जाता। यह शब्द संस्कृत के 'तत्त्व' और 'अवधान' शब्दों से मिलकर बना है। संस्कृत में 'तत्त्व' शब्द के अर्थ हैं—वास्तविक दशा या परिस्थिति, वास्तविक या सत्य रूप, सच्चाई, निष्कर्ष, यथार्थ रूप, परमात्मा आदि और 'अवधान' शब्द का अर्थ है—मनोयोग, ध्यान,[1] संलग्नता। इस प्रकार 'तत्त्वावधान' शब्द का अर्थ हो सकता है—'वास्तविक दशा या सत्यरूप या सच्चाई या यथार्थ रूप या परमात्मा के प्रति मनोयोग'। किन्तु समझ में नहीं आता कि 'देखरेख' अर्थ में 'तत्त्वावधान' शब्द कैसे प्रचलित हो गया।

'तत्त्वावधान' शब्द 'देखरेख' अर्थ में हिन्दी में बंगला भाषा से आया है। मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं में 'तत्त्वावधान' शब्द ही नहीं पाया जाता।[2]

रामचन्द्र वर्मा के प्रामाणिक हिन्दी कोश में 'अवधान' शब्द का एक अर्थ 'किसी कार्य या वस्तु की देखरेख' (care) भी दिया हुआ है। 'अवधान' शब्द के 'मनोयोग अथवा ध्यान' अर्थ से 'देखरेख, निगरानी' अर्थ का विकास स्वाभाविक रूप से हो सकता है, क्योंकि बहुधा मनोयोग अथवा ध्यान के भाव

यह अर्थ दिया हुआ है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी में 'आपत्ति' शब्द का 'एतराज़' अर्थ बंगला भाषा से आया है।

१. श्रणुत जना अवधानात् क्रियामिमां कालिदासस्य—'सज्जनों, कालिदास की इस रचना को ध्यानपूर्वक सुनो' (विक्रम० अङ्क १)।

२. मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश, मेहता के गुजराती भाषा के कोश, तमिल लेक्सीकन, गैलेट्टी के तेलुगु भाषा के कोश, किटेल के कन्नड़ भाषा के कोश तथा गण्डर्ट के मलयालम भाषा के कोश में 'तत्त्वावधान' शब्द नहीं पाया जाता। आशुतोष देव के बंगला भाषा के कोश में 'तत्त्वावधान' शब्द 'देखरेख', 'पथप्रदर्शन' आदि अर्थों में दिया हुआ है।

का निगरानी करने के भाव के साथ सम्बन्ध होता है। जब कोई व्यक्ति किसी नाटक आदि को मनोयोगपूर्वक देखता है तो उसकी घटनाओं पर उसकी दृष्टि रहती है (अर्थात् वह सब घटनाओं को अपनी दृष्टि से देखता है)। देखरेख अथवा निगरानी में भी 'देखने' का भाव ही मुख्य रहता है। इस कारण 'अवधान' शब्द का 'देखरेख, निगरानी' अर्थ विकसित हो सकता है।[१] किन्तु 'तत्त्व' के साथ 'अवधान' शब्द का 'देखरेख, निगरानी' अर्थ में प्रयोग करने से तो 'तत्त्वावधान' शब्द का अर्थ 'तत्त्व की देखरेख' होगा। यह सम्भव है कि 'तत्त्वावधान' शब्द के प्रथम प्रयोक्ता के मस्तिष्क में 'तत्त्व' का भाव 'वास्तविक दशा या वास्तविक रूप' के स्थान पर 'वास्तविक' रहा हो और इस प्रकार 'वास्तविक देखरेख' अर्थ में 'तत्त्वावधान' शब्द का प्रयोग करना उसे अभीष्ट रहा हो। वस्तुतः 'देखरेख' अर्थ में 'तत्त्वावधान' शब्द का प्रयोग सङ्गत नहीं प्रतीत होता।

वक्तृता

हिन्दी में 'वक्तृता' स्त्री० शब्द अधिकतर 'व्याख्यान, भाषण' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'वक्तृता' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'वक्तृता' शब्द का अर्थ है—'बोलने की योग्यता, वाक्पटुता'।[२]

'व्याख्यान अथवा भाषण' अर्थ में 'वक्तृता' शब्द हिन्दी में बंगला भाषा से आया हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि बंगला भाषा में ही 'वक्तृता' शब्द इस अर्थ में अधिक प्रचलित है। बंगला में 'वक्तृता करा' का अर्थ है—'भाषण देना'; 'तोमार वक्तृता राख' का अर्थ है—'अपना भाषण बन्द करो'।[३]

मराठी तथा गुजराती आदि भाषाओं में 'वक्तृता' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश तथा बी० एन० मेहता के गुजराती भाषा के कोश में 'वक्तृता' शब्द ही नहीं दिया हुआ है।

सम्भ्रान्त

हिन्दी में 'सम्भ्रान्त' वि० शब्द 'प्रतिष्ठित, आदरणीय' अर्थ में प्रचलित

---

१. यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ी के care शब्द के भी इसी प्रकार 'ध्यान' (जैसे carefully शब्द में) और 'देखभाल' (जैसे—take care of में) अर्थ पाये जाते हैं।

२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

३. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

है (जैसे सम्भ्रान्त व्यक्ति, सम्भ्रान्त परिवार आदि)। 'सम्भ्रान्त' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'सम्भ्रान्त' वि० शब्द का प्रयोग 'भयभीत', 'घबराया हुआ'[1], 'व्याकुल' आदि अर्थों में पाया जाता है।

हिन्दी में 'सम्भ्रान्त' शब्द 'प्रतिष्ठित, आदरणीय' अर्थ में बंगला भाषा से आया है। बंगला भाषा में 'सम्भ्रान्त' शब्द का 'प्रतिष्ठित' अथवा 'आदरणीय' अर्थ में प्रचुर प्रयोग किया जाता है। बंगला में House of Lords के लिये 'सम्भ्रान्त सभा' शब्द प्रचलित है और 'aristocracy' को 'सम्भ्रान्त तन्त्र' कहा जाता है।[2] मराठी[3] तथा गुजराती[4] आदि अन्य भाषाओं में 'सम्भ्रान्त' शब्द का 'प्रतिष्ठित, आदरणीय' अर्थ नहीं पाया जाता, 'भयभीत', 'घबराया हुआ', 'व्याकुल' आदि अर्थ ही पाये जाते हैं।

बंगला भाषा में 'सम्भ्रान्त' शब्द के 'प्रतिष्ठित, आदरणीय' अर्थ में प्रचलित होने का कारण है 'सम्भ्रम' शब्द का 'आदर, प्रतिष्ठा' अर्थ में प्रयोग।[5] बंगला के अतिरिक्त हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि अन्य भाषाओं में 'सम्भ्रम' शब्द 'आदर, सम्मान' अर्थ में प्रचलित नहीं है। बंगला भाषा में 'सम्भ्रम' शब्द का 'आदर' अर्थ संस्कृत से ही ग्रहण किया गया है। संस्कृत में 'सम्भ्रम' शब्द का प्रयोग त्वरा, घबराहट, हड़बड़ाहट, जल्दबाज़ी, अज्ञान आदि के अतिरिक्त 'आदर, सम्मान' अर्थ में भी पाया जाता है।[6] अतः बंगला में 'सम्भ्रम' शब्द के 'आदर, प्रतिष्ठा' अर्थ में प्रचलित होने के कारण 'प्रतिष्ठित, आदरणीय' के लिये 'सम्भ्रान्त' शब्द बना लिया गया।

---

१. यः कश्चित्त्वरितगतिर्निरीक्षते मां
सम्भ्रान्तं द्रुतमुपसर्पति स्थितं वा। मृच्छ० ४.२.

२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

३. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

४. बी० एन० मेहता : मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

५. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।
'सम्भ्रम करा'='आदर करना'; 'सम्भ्रमशाली'='प्रतिष्ठित, आदरणीय'।

६. भर्तृभिः प्रणयसम्भ्रमदत्तां वारुणीमतिरसां रसयित्वा—'अप्सराओं ने अपने प्रेमियों द्वारा प्रेम और आदर के साथ दी हुई मदिरा का आस्वादन करके' (किरात० ९.५४)। 'सम्भ्रम' शब्द का 'आदर' अर्थ में प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में भी पाया जाता है (यथा २.३२.४५ में)।

संस्कृत में 'सम्भ्रम' शब्द के त्वरा, घबराहट, हड़बड़ाहट, व्याकुलता आदि अर्थों से 'आदर' अर्थ के विकसित हो जाने का कारण 'आदर' के भाव के साथ बहुधा घबराहट, हड़बड़ाहट, त्वरा आदि के भावों का साहचर्य होना प्रतीत होता है। जब कोई व्यक्ति किसी बड़े सम्माननीय व्यक्ति का स्वागत करता है अथवा वह सम्माननीय व्यक्ति उसके यहाँ अचानक आ पहुँचता है तो उसके अन्दर सम्माननीय व्यक्ति का समुचित आदर करने की भावना से एक प्रकार की घबराहट अथवा हड़बड़ाहट सी उत्पन्न हो जाती है। जब कोई कर्मचारी अपने किसी उच्च अधिकारी का स्वागत करता है तो उसके अन्दर भय अथवा घबराहट और भी अधिक होती है, क्योंकि उसे यह भय रहता है कि यदि अपने अधिकारी का समुचित आदर नहीं किया गया तो उसका कोपभाजन बनना पड़ेगा। आदर अथवा स्वागत के भाव के साथ भय, घबराहट, हड़बड़ाहट आदि के भावों का साहचर्य होने के कारण संस्कृत में भय, घबराहट, हड़बड़ाहट आदि के वाचक 'सम्भ्रम' शब्द का 'आदर' अर्थ विकसित हुआ। 'आदर' अथवा 'स्वागत' के भाव के साथ भय, घबराहट, हड़बड़ाहट आदि के भावों का साहचर्य होने के कारण ही जावानीज़ भाषा में sĕmbrama (< संस्कृत 'सम्भ्रम') शब्द (जिसका प्रयोग प्राचीन जावानीज़ भाषा में जल्दबाज़ी, व्याकुलता, उत्सुकता और आदर, सम्मान आदि अर्थों में पाया जाता है) के 'किसी अतिथि का सावधानतापूर्वक और आतिथ्यपूर्ण ढंग से स्वागत करने के लिये उत्सुकतापूर्वक तैयार रहना' अर्थ का विकास पाया जाता है। आधुनिक साहित्यिक जावानीज़ भाषा में sĕmbrama शब्द का अर्थ केवल 'आतिथ्यपूर्ण स्वागत', 'स्वागत करना' है।[१]

यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि 'सम्भ्रम' शब्द का 'आदर' अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है, तथापि 'प्रतिष्ठित, आदरणीय' के लिये 'सम्भ्रान्त' शब्द का प्रयुक्त किया जाना अनुपयुक्त है, क्योंकि वस्तुतः 'सम्भ्रान्त' तो वह होगा जिसमें 'सम्भ्रम का भाव हो' अर्थात् 'जो आदर करे' (आदर करने वाले के अन्दर ही घबराहट, हड़बड़ाहट आदि भाव उत्पन्न होते हैं)।

१. We can easily conceive how Skt. saṃbhrama 'hurry, agitation, bustling, eagerness' and also 'respect, honour' already in Old. Javanese came to denote also such ideas as 'eagerly (accepting, agreeing), to receive a guest in an attentive and hospitable way'; in lit. Mod. Jav. sĕmbrama means 'hospitable reception ; to welcome' only. Gonda, J.: Sanskrit in Indonesia, p. 345.

(आ) फुटकर शब्द

कुछ ऐसे शब्द, जिनके अर्थों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है और जो पिछले अध्यायों में नहीं आ सके हैं, उनके अर्थ-परिवर्तनों का विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

प्रस्ताव

हिन्दी में 'प्रस्ताव' शब्द अधिकतर 'किसी सभा में विचार या स्वीकृति के लिये उपस्थित की हुई बात' अथवा 'उपस्थित मन्तव्य' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में 'प्रस्ताव' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। इस अर्थ का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

'प्रस्ताव' शब्द प्र उपसर्ग-पूर्वक √स्तु 'स्तुति करना' धातु से घञ् प्रत्यय लग कर बना है। इस प्रकार 'प्रस्ताव' शब्द का मौलिक अर्थ है—'प्रारम्भिक स्तुति', 'प्रस्तोता नाम के ऋत्विज् द्वारा गाये जाने वाले सामन् का प्रारम्भिक भाग'। ब्राह्मणग्रन्थों[1] तथा छान्दोग्योपनिषद्[2] में 'प्रस्ताव' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में पाया जाता है। 'प्रस्ताव' शब्द के इसी (प्रारम्भिक स्तुति, प्रस्तोता नाम के ऋत्विज् द्वारा गाये जाने वाले सामन् का प्रारम्भिक भाग) अर्थ से ही भाव-सादृश्य से 'नाटक का प्रारम्भिक भाग' अथवा 'प्रस्तावना', 'प्रारम्भिक कथन', 'उपक्रम' आदि अर्थ विकसित हुये और फिर 'प्रारम्भिक कथन'[3] आदि अर्थों से भाव-साहचर्य से 'कथन',[4] 'वर्णन', 'किसी विषय का प्रारम्भिक परिचय',[5] 'वार्तालाप का विषय', 'प्रसङ्ग'[6], 'विषय'[7], 'प्रकरण'[8], 'अवसर'[9]

---

१. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी।

२. प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति। छान्दोग्योपनिषद् १.१०.९.

"हे प्रस्तोता, यदि तू प्रस्ताव (सामन् के प्रारम्भिक भाग) से सम्बन्धित देवता को न जाने हुये ही इसको गायेगा तो तेरा सिर पृथक् गिर जायेगा।"

३. प्रस्तावेनाधिकरणिकस्त्वां द्रष्टुमिच्छतीति। मृच्छ० अङ्क ९.

४. नाममात्रप्रस्तावः—'नाममात्र का कथन'। शाकु० अङ्क ७.

५. अथ प्रासादपृष्ठे सुखोपविष्टानां राजपुत्राणां पुरस्तात् प्रस्तावक्रमेण स पण्डितोऽब्रवीत्। हितोपदेश (मित्रलाभ, प्रस्तावना)।

६. प्रस्तावसदृशं वाक्यम्। सुहृद्भेद, श्लोक ५१.

७. नियोगप्रस्तावे यन्मया श्रुतं तत्कथ्यते। सुहृद्भेद।

८ प्रस्तावदेशकालादेर्वैशिष्ट्यात् प्रतिभाजुषाम्। काव्यप्रकाश।

९. अत्र भयप्रस्तावे प्रज्ञाबलेनाहमेनं स्वामिनमात्मीयं करिष्यामि। सुहृद्भेद।

आदि अर्थ विकसित हुये।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'प्रस्ताव' शब्द का 'वार्तालाप का विषय' अर्थ संस्कृत में भी पाये जाने के कारण तथा प्र+√स्तु का प्रयोग 'उपस्थित करना' अर्थ में पाये जाने के कारण 'किसी सभा में विचार या स्वीकृति के लिये उपस्थित की हुई बात' को 'प्रस्ताव' कहा जाने लगा होगा, क्योंकि 'किसी सभा में विचार या स्वीकृति के लिये उपस्थित की हुई बात' उस सभा में सभासदों के परस्पर वार्तालाप का विषय होती है। यह भी उल्लेखनीय है कि संस्कृत में प्र-पूर्वक √स्तु धातु से क्त-प्रत्यय लगकर बने 'प्रस्तुत' शब्द का प्रयोग 'उपस्थित' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—प्रस्तुतमनुसन्धीयताम्—'अब जो उपस्थित है, उस पर विचार करो' (हितोपदेश)।

'प्रस्ताव' शब्द का 'किसी सभा में विचार या स्वीकृति के लिये उपस्थित की हुई बात' अथवा 'उपस्थित मन्तव्य' अर्थ बंगला[1] तथा नेपाली[2] भाषा में भी पाया जाता है। तमिल[3] भाषा में 'पिरस्तावम्' (<प्रस्ताव) शब्द के कथन, वार्तालाप का विषय, प्रशंसा, प्रचार, अफ़वाह आदि अर्थ पाये जाते हैं। तेलुगु[4] में 'प्रस्तावमु' शब्द का अर्थ 'कथन अथवा वर्णन' है।

पंजाब के क्षेत्र में हिन्दी भाषा के व्यवहार में 'प्रस्ताव' शब्द का प्रयोग 'निबन्ध' अर्थ में भी किया जाता है।[5] संभवतः संस्कृत में 'प्रस्ताव' शब्द का 'विषय' अर्थ में प्रयोग पाया जाने के कारण ही 'निबन्ध' के लिये 'प्रस्ताव' शब्द का प्रचलन हुआ होगा। रामचन्द्र वर्मा ने 'प्रस्ताव' शब्द के 'निबन्ध' अर्थ में प्रयोग को असावधानी का परिणाम कहा है। उन्होंने कहा है कि "साधारणतः होता यही है कि हम कोई शब्द सुनते या पढ़ते हैं किसी और प्रसङ्ग में और उसका प्रयोग कर जाते हैं किसी और प्रसङ्ग में। इसी असावधानी का यह परिणाम है कि पंजाब के विद्यार्थियों में 'निबन्ध' के लिये 'प्रस्ताव' शब्द खूब प्रचलित हो गया है।"[6]

पंजाब में 'प्रस्ताव' शब्द का 'निबन्ध' अर्थ में प्रचलन असावधानी का

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।
२. आर० एल० टर्नर : ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि नेपाली लैंग्वेज।
३. तमिल लेक्सीकन।
४. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।
५. अच्छी हिन्दी, पृष्ठ १११.
६. वही।

परिणाम नहीं दिखाई पड़ता। इस अर्थ में 'प्रस्ताव' शब्द का प्रयोग संस्कृत में भी 'प्रस्ताव' शब्द के 'विषय' अर्थ में पाये जाने के कारण किया गया प्रतीत होता है। प्रो० चारुदेव शास्त्री जैसे संस्कृत के विद्वान् भी 'प्रस्ताव' शब्द का प्रयोग 'निबन्ध' अर्थ में करते हैं। उन्होंने संस्कृत के निबन्धों की अपनी एक पुस्तक का नाम 'प्रस्तावतरङ्गिणी' रक्खा है।

रामचन्द्र वर्मा ने यह भी कहा है—"और अब तो यहाँ के कुछ विद्यार्थी परीक्षा के प्रश्नपत्रों के अलग-अलग प्रश्नों को भी 'प्रस्ताव' कहने लगे हैं, जैसे पहले प्रस्ताव का उत्तर, चौथे प्रस्ताव का उत्तर आदि।"[१] इस अर्थ में 'प्रस्ताव' शब्द का प्रयोग हिन्दी में हमारे देखने में नहीं आया है।

वैमनस्य

हिन्दी में 'वैमनस्य' पुं० शब्द 'वैर,' 'द्वेष', 'मनमुटाव' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में 'वैमनस्य' शब्द के ये अर्थ नहीं पाये जाते। 'वैमनस्य' शब्द 'विमनस्' वि० से बना हुआ भाववाचक संज्ञा शब्द है (अर्थात् 'विमनस्' का भाव 'वैमनस्य' है)। संस्कृत में 'विमनस्' शब्द का प्रयोग अधिकतर 'मन में दुःखी' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय—'इस कारण मन में दुःखी महारानी सीता को सान्त्वना देने के लिये' (उत्तर० १. ७)। तदनुसार संस्कृत में 'वैमनस्य' शब्द का प्रयोग 'मनःसंताप', 'मनोव्याकुलता', 'अव्यवस्थितचित्तता' आदि अर्थों में पाया जाता है, जैसे[२]—अस्मात् प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः—'इस महान् मनःसंताप के कारण वसन्तोत्सव रोक दिया गया है' (शाकु० अङ्क ६)।

संस्कृत में 'वैमनस्य' शब्द का प्रयोग यद्यपि 'वैर', 'द्वेष', 'मनमुटाव' आदि अर्थों में नहीं पाया जाता, तथापि 'विमनस्' शब्द के 'अप्रसन्न', 'वह जिसका मन या भाव बदला हो' और 'विरुद्ध' आदि अर्थ पाये जाते हैं। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में इन अर्थों में 'विमनस्' शब्द के प्रयोग के लिये 'रामायण' का निर्देश दिया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'विमनस्' शब्द के 'अप्रसन्न', 'वह जिसका मन या भाव बदला हुआ हो' और 'विरुद्ध' अर्थ पाये जाने के कारण भाव-सादृश्य से 'वैमनस्य' शब्द का प्रयोग 'वैर', 'द्वेष', 'मनमुटाव' आदि के लिये किया जाने लगा होगा।

'विमनस्' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में 'कुशाग्रबुद्धि'[3] (sagacious) और

१. अच्छी हिन्दी, पृष्ठ १११.

२. तथाह्येवं वैमनस्यपरीतोऽपि प्रियदर्शनो देवः। शाकु० अङ्क ६.

३. विश्वकर्मा विमनाः। ऋग्वेद १०.८२. २.

'बुद्धिहीन'[1] (destitute of mind or senses) इन दोनों, परस्पर विपरीत, अर्थों में भी पाया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'मनस्' के साथ वि उपसर्ग के लगने से 'विशिष्ट मन वाला' अर्थात् 'कुशाग्रबुद्धि' अर्थ भी हो सकता है और 'विकृत मन वाला' (अर्थात् 'दुःखी', 'मन में व्याकुल', 'बुद्धिहीन', 'वह जिसका मन या भाव बदला हो', 'विरुद्ध भावों वाला') अर्थ भी हो सकता है।

बंगला भाषा में 'वैमनस्य' शब्द के अर्थ 'मतभेद' (difference of opinion) और 'अप्रियता' (unpleasantness) हैं।[2] गुजराती भाषा में 'मनोव्याकुलता', 'मनःसंताप', 'बीमारी' आदि अर्थ ही पाये जाते हैं।[3] मराठी भाषा में 'वैमनस्य' शब्द का 'दूसरों के प्रति वैरभाव' अर्थ पाया जाता है।[4] कन्नड़ भाषा में भी 'वैमनस्य' शब्द के 'शोक' और 'मनोव्याकुलता' आदि अर्थों के अतिरिक्त 'दूसरों के प्रति वैर-भाव' अर्थ भी है। किटेल ने अपने कन्नड़ भाषा के कोश में 'वैमनस्य' शब्द का यह अर्थ देते हुए उसके आगे 'मराठी' लिखा है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'वैर-भाव' अर्थ में 'वैमनस्य' शब्द हिन्दी आदि भाषाओं में मराठी भाषा से आया है।

संवाद

हिन्दी में 'संवाद' पुं० शब्द अधिकतर समाचार, सूचना, विवरण आदि अर्थों में प्रचलित है। आजकल समाचार-पत्रों में 'संवाद' शब्द का प्रयोग इन्हीं अर्थों में किया जाता है, (जैसे—संवाददाता, संवाद-समिति आदि में)। हिन्दी में 'संवाद' शब्द का 'वार्तालाप' अर्थ में प्रयोग बहुत कम किया जाता है (केवल नाटकों आदि के प्रसङ्ग में 'संवाद' शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया जाता है)। 'संवाद' शब्द का 'वार्तालाप' अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु समाचार, सूचना, विवरण आदि अर्थ संस्कृत में नहीं पाये जाते हैं।[5]

---

१. कथं नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्य इष्टये— "वह बुद्धिहीन कैसे आप (दोनों) की स्तुति करे। आप उसको समृद्धि को प्राप्त करने के लिए बुद्धि दीजिये" (ऋग्वेद ८.८६.२)।

२. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

३. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

४. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

५. 'संवाद' शब्द के समाचार, सूचना, विवरण आदि अर्थ मोनियर-विलियम्स, आप्टे आदि के कोशों में तथा शब्दकल्पद्रुम में भी दिये हुये हैं।

'संवाद' शब्द सम् उपसर्ग-पूर्वक √वद् 'बोलना' धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना है। इस प्रकार 'संवाद' शब्द का मौलिक अर्थ है—साथ बोलना, बातचीत, वार्तालाप।[1] संस्कृत में 'संवाद' के 'साथ बोलना' अथवा 'वार्तालाप' अर्थ से मिलन,[2] भेंट, स्वीकृति, सादृश्य[3] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

'संवाद' शब्द के 'समाचार', 'सूचना', 'विवरण' आदि अर्थ इस शब्द के 'बातचीत' अर्थ से ही विकसित हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सूचना अथवा समाचार भेजने के प्रसङ्ग में 'संवाद' शब्द का 'बात' अर्थ में प्रयोग होने से (क्योंकि किसी समाचार आदि में कोई बात ही भेजी जाती है) 'बात अथवा बातचीत' के वाचक 'संवाद' शब्द में सूचना अथवा समाचार का भाव भी संक्रान्त हो गया होगा और कालान्तर में 'संवाद' शब्द 'समाचार' अथवा 'सूचना' के भाव को ही लक्षित करने लगा होगा। यह उल्लेखनीय है कि 'संवाद' शब्द के समान ही अंग्रेज़ी के word शब्द के 'वचन, बात' अर्थ से 'सन्देश' अर्थ का विकास पाया जाता है। अंग्रेज़ी के to send word मुहावरे का प्रयोग 'सन्देश भेजना' अर्थ में किया जाता है।

बंगला भाषा में भी 'संवाद' शब्द के 'समाचार', 'सूचना', 'सन्देश' आदि

वस्तुतः ये अर्थ आधुनिक हैं। इन कोशों में 'संवाद' शब्द के समाचार, सूचना, विवरण आदि अर्थों में प्रयोग के विषय में संस्कृत साहित्य के किसी ग्रन्थ का निर्देश नहीं दिया हुआ है। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में 'संवाद' शब्द के समाचार, सूचना, विवरण आदि अर्थ देते हुये विल्सन के कोश का निर्देश दिया है, किसी संस्कृत ग्रन्थ का निर्देश नहीं दिया है। विल्सन के कोश में बहुत से संस्कृत शब्दों के आधुनिक काल में विकसित हुये अर्थ भी पाये जाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि 'संवाद' शब्द के सूचना, समाचार, विवरण आदि अर्थ आधुनिक काल में ही विकसित हुये हैं।

१. अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः। भग० १८.७०.

"हे अर्जुन, हम दोनों के इस वार्तालाप को, जो धर्मपूर्वक है, जो पढ़ेगा उससे मैं ज्ञानरूपी यज्ञ से प्रसन्न हूँगा, यह मेरी सम्मति है।"

२. यदृच्छासंवादः (दैवयोग से मिलन)। उत्तर० ५.१६.

३. नादस्तावद्विकलकुररीकूजितस्निग्धतारश्चित्ताकर्षी परिचित इव श्रोत्रसंवादमेति। मालती० ५.२०.

अर्थ पाये जाते हैं।[१] ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी में 'संवाद' शब्द 'समाचार', 'सूचना' आदि अर्थों में बंगला भाषा से ही आया है। मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि भाषाओं में 'संवाद' शब्द के 'समाचार', 'सूचना' आदि अर्थ नहीं पाये जाते हैं।[२] मराठी भाषा में 'संवाद' शब्द का अर्थ 'बातचीत, वार्तालाप' है।[३] गुजराती भाषा में 'संवाद' शब्द के अर्थ 'वार्तालाप' और 'वाद-विवाद' हैं।[४] तमिल में 'चंवातम्' अथवा 'संवातम्' शब्द के अर्थ 'वाद-विवाद', 'स्वीकृति' (agreement), 'प्रमाण' (authority) आदि हैं।[५] तेलुगु में 'संवादमु' शब्द का अर्थ 'वाद-विवाद' (discussion) है[६] और मलयालम भाषा में 'संवादम्' का अर्थ 'वार्तालाप' (conversation) है।[७]

समाचार

हिन्दी में 'समाचार' पुं० शब्द 'खबर', 'सूचना' आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में 'समाचार' शब्द के ये अर्थ नहीं पाये जाते।[८] 'समाचार' शब्द

---

१. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

२. मोल्सवर्थ के मराठी भाषा के कोश, मेहता के गुजराती भाषा के कोश, तमिल लेक्सीकन, गैलेट्टी के तेलुगु भाषा के कोश तथा गण्डर्ट के मलयालम भाषा के कोश में 'संवाद' शब्द के 'समाचार', 'सूचना' आदि अर्थ नहीं पाये जाते। यह संभव है कि आधुनिक काल में ये अर्थ इन भाषाओं में पहुँच गये हों।

३. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

४. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

५. तमिल लेक्सीकन।

६. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

७. एच० गण्डर्ट : मलयालम-इंगलिश डिक्शनरी।

८. यह उल्लेखनीय है कि मोनियर विलियम्स, आप्टे आदि के कोशों तथा शब्दकल्पद्रुम में 'समाचार' शब्द के 'खबर', 'सूचना' आदि अर्थ भी दिये हुये हैं, किन्तु ये अर्थ आधुनिक ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि इन कोशों में 'समाचार' शब्द के 'खबर', 'सूचना' आदि अर्थों में प्रयोग के विषय में संस्कृत साहित्य के किसी ग्रन्थ का निर्देश नहीं दिया गया है। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में 'समाचार' शब्द के 'खबर', 'सूचना', 'हाल' आदि अर्थ देते हुये विल्सन के कोश का निर्देश दिया है। विल्सन के कोश में बहुत से संस्कृत शब्दों के आधुनिक काल में विकसित हुये अर्थ भी दिये हुये हैं। अतः 'समाचार' शब्द

सम् और आ उपसर्ग-पूर्वक √चर् धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना है। अतः संस्कृत में 'समाचार' शब्द का मौलिक अर्थ है—'सम्यग् आचरण'[1]। संस्कृत में 'समाचार' शब्द के 'सम्यग् आचरण' अर्थ से ही आचरण[2], धर्म,[3] व्यवहार,[4] सामान्य व्यवहार[5], प्रथा, प्रथानुकूल प्रदर्शन[6] आदि अर्थों का विकास पाया जाता है।

'समाचार' शब्द के 'आचरण', 'व्यवहार' आदि अर्थों से ही 'खबर', 'सूचना' आदि अर्थों का विकास हुआ है। 'समाचार' शब्द के 'खबर', 'सूचना' अर्थों के विकास की प्रक्रिया पर बोलचाल की भाषा में प्रचलित 'समाचार' शब्द के एक विशिष्ट प्रकार के प्रयोग से कुछ प्रकाश पड़ता है। बहुधा 'समाचार' शब्द का प्रयोग किसी मित्र आदि की कुशलता अथवा हाल-चाल पूछने के लिये किया जाता है, यथा—'कहिये क्या समाचार है'? इस प्रकार के प्रयोगों में वक्ता का अभिप्राय परिचित व्यक्ति के कार्य, क्रिया-कलाप, स्वास्थ्य, सुख-दुःख की अवस्था आदि सभी व्यवहार-सम्बन्धी बातों का विवरण जानने

के 'खबर', 'सूचना' आदि अर्थ आधुनिक काल में ही विकसित हुये प्रतीत होते हैं।

१. पुण्यस्त्रीणां समाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। मत्स्यपुराण अध्याय ३६.

२. नरः पापसमाचारस्त्यक्तव्यो दूरतो बुधैः। शान्तिपर्व १४३.१३.

'दुष्ट आचरण करने वाला मनुष्य विद्वानों के लिये दूर से ही त्याज्य होता है'।

३. अहमद्यैव तत् सर्वमनुस्मृत्य ब्रवीमि व.।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वन्तु मुनिपुङ्गवाः॥ पराशरस्मृति १.३५

"मैं आज उस सब का स्मरण करके तुमको कहता हूँ। हे मुनिश्रेष्ठों, चारों वर्णों के धर्म को सुनो।"

इस स्थल पर माधवाचार्य ने 'समाचार' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है:—समीचीनः शिष्टाभिमत आचारो यस्य धर्मस्य कारणत्वेन वर्तते, सोऽयं यजनयाजनादिकर्मलक्षणो धर्मः समाचारः।

४. नायं युक्तः समाचारः पाण्डवेषु महात्मसु। सभापर्व ३७.२.

५. उपलम्भात् समाचारान्मायाहस्ती यथोच्यते। गौड़पादीयकारिका ४.४४.

६. कर्णाटलाटसौराष्ट्रमध्यदेशादिदेशजाः।
योषा देशसमाचारै रञ्जयन्ति निजैर्निजैः॥ कथा० ८.४.१०६.

का होता है। संस्कृत में भी 'समाचार' शब्द के आचरण, व्यवहार आदि अर्थों के पाये जाने के कारण 'हाल-चाल' आदि के लिये 'समाचार' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा होगा। मित्र आदि के हाल-चाल (अर्थात् कार्य, क्रिया-कलाप, स्वास्थ्य, सुख-दुःख की अवस्था आदि सभी व्यवहार-सम्बन्धी बातों के हाल) की जानकारी प्रश्नकर्त्ता के लिये एक खबर अथवा सूचना के रूप में ही होती है, क्योंकि उसको उन सब बातों से ही मित्र के हाल-चाल का पता चलता है। अतः 'समाचार' शब्द के इस प्रकार के प्रसङ्ग में प्रयुक्त किये जाने से 'समाचार' शब्द में 'खबर', 'सूचना' आदि के भाव भी संक्रान्त हो गये होंगे और कालान्तर में यह शब्द 'खबर', 'सूचना' आदि को लक्षित करने लगा होगा।

'समाचार' शब्द के 'खबर', 'सूचना' आदि अर्थ मराठी, गुजराती, नेपाली, बंगला, तमिल, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं में भी पाये जाते हैं। मराठी[१] तथा गुजराती[२] भाषा में 'समाचार' शब्द के 'खबर', 'सूचना' अर्थों के अतिरिक्त 'निर्धन, बीमार, पीड़ित आदि के कष्टों तथा आवश्यकताओं के विषय में पूछताछ करना,' 'किसी (मित्र आदि) के स्वास्थ्य तथा परिस्थितियों (हाल-चाल) के विषय में पूछताछ करना' आदि अर्थ भी पाये जाते हैं। गुजराती में 'समाचार जोवा', 'समाचार लेवा' का प्रयोग 'देखभाल करना', 'पूछताछ करना' आदि अर्थों में भी पाया जाता है। मराठी तथा गुजराती में 'समाचार' शब्द के 'निर्धन, बीमार, पीड़ित आदि के कष्टों तथा आवश्यकताओं आदि के विषय में पूछताछ करना तथा उन्हें दूर करना', 'किसी (मित्र आदि) के स्वास्थ्य तथा हाल-चाल के विषय में पूछताछ करना' आदि अर्थों के पाये जाने से इस बात की पुष्टि होती है कि 'समाचार' शब्द के 'खबर', 'सूचना' आदि अर्थों का विकास इस प्रकार के प्रसङ्गों में प्रयुक्त किया जाने से उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा ही हुआ होगा। तेलुगु[३] भाषा में 'समाचारमु' शब्द का अर्थ 'मामला' (affair) है।

सहज

हिन्दी में 'सहज' शब्द 'स्वाभाविक', 'सरल', 'धीरे से' आदि अर्थों में प्रचलित है। 'सहज' शब्द का 'स्वाभाविक' अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता

---

१. मोल्सवर्थ : मराठी-इंगलिश डिक्शनरी।

२. बी० एन० मेहता : ए मोडर्न गुजराती-इंगलिश डिक्शनरी।

३. गैलेट्टी : तेलुगु डिक्शनरी।

है, जैसे—विललाप स वाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्—'वह अपनी स्वाभाविक धीरता को भी छोड़कर अश्रुओं से गद्गद होकर रोने लगे' (रघु० ८.४३)।

'सहज' शब्द के 'सरल' और 'धीरे से' अर्थ संस्कृत में नहीं पाये जाते। इन अर्थों का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है। संस्कृत में 'सहज' वि० शब्द का मौलिक अर्थ है—'साथ उत्पन्न हुआ' (सहजात)। इसी कारण 'सहज' पुं० शब्द का 'सगा भाई' अर्थ भी पाया जाता है।[1] मनुष्य के अन्दर जो जन्मजात विशेषतायें होती हैं, उनको भी 'सहज' कहा गया है। 'सहज' शब्द के 'साथ उत्पन्न हुआ' (जन्मजात) अर्थ से ही संस्कृत में 'प्राकृतिक', 'स्वाभाविक' तथा 'परम्परागत'[2] आदि अर्थों का विकास हुआ है।

'सहज' शब्द के 'सरल' और 'धीरे से' अर्थ इसके 'स्वाभाविक' अर्थ से ही विकसित हुये हैं। वस्तुतः जो बात अथवा कार्य स्वाभाविक होता है, वह करने में 'सरल' होता है। सरल होना 'स्वाभाविक' की एक विशेषता होती है। अतः 'स्वाभाविक' के वाचक 'सहज' शब्द के साथ 'सरल' होने का भाव भी जुड़ गया और कालान्तर में यह (सहज) शब्द 'सरल' को भी लक्षित करने लगा (जैसे 'यह कार्य करना बड़ा सहज है')। 'धीरे से' अर्थ में 'सहज' शब्द का प्रयोग अधिकतर बोलचाल की भाषा में क्रियाविशेषण के रूप में किया जाता है, जैसे—'सहज-सहज चलो', 'इस वस्तु को सहज में उठा लो।' वस्तुतः इन प्रयोगों में 'सहज' शब्द का जो 'धीरे-धीरे' अथवा 'धीरे से' अर्थ है, उसमें स्वाभाविक होने का भाव भी निहित है, क्योंकि 'सहज-सहज चलो' में 'सहज-सहज' का मौलिक भाव यह रहा होगा कि अपनी स्वाभाविक गति से चलो, द्रुत गति से नहीं।

बंगला, असमिया और उड़िया भाषाओं में भी 'सहज' शब्द 'सरल, आसान' अर्थ में प्रचलित है।[3]

हृदयङ्गम

हिन्दी में 'हृदयङ्गम' शब्द 'अच्छी तरह हृदय में या समझ में आया हुआ' अर्थ में प्रचलित है (जैसे—'इस बात को हृदयङ्गम कर लो')। संस्कृत में 'हृदयङ्गम' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं पाया जाता।

---

१. समानोदर्य-सोदर्य-सगर्भ्य-सहजाः समाः। अमरकोश २.६.३४.

२. सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् (शाकु० ६.१); सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् (भग० १८.४८)।

३. व्यवहारकोश।

'हृदयङ्गम' शब्द का मौलिक अर्थ है—'हृदय में गया हुआ' (हृदयं गच्छतीति) अर्थात् 'जो हृदय में प्रवेश करे'। इसी कारण संस्कृत में 'हृदयङ्गम' शब्द का प्रयोग 'हृदय को दहलाने वाला', 'हृदय को आकर्षित करने वाला', 'सुन्दर',[१] 'आकर्षक', 'मधुर',[२] 'मनोहर',[३] 'उचित', 'प्रिय'[४] आदि अर्थों में पाया जाता है। सुन्दर अथवा प्रिय वस्तुयें हृदय को आकर्षित करती हैं, हृदय में प्रवेश करती हैं, अतः संस्कृत में 'हृदयङ्गम' शब्द के 'हृदय में गया हुआ, प्रवेश किया हुआ' अर्थ से सुन्दर, मनोहर, आकर्षक, प्रिय आदि अर्थों का विकास हो गया है।

'हृदयङ्गम' शब्द का मौलिक अर्थ 'हृदय में गया हुआ अथवा प्रवेश किया हुआ' होने के कारण ही किसी बात के अच्छी तरह समझ में आने को हृदयङ्गम करना (हृदय में अच्छी तरह बैठा लेना) कहा गया। आजकल हिन्दी में हृदयङ्गम शब्द का 'अच्छी तरह समझ में आया हुआ' अर्थ ही प्रचलित है, सुन्दर, मनोहर, आकर्षक, प्रिय आदि अर्थ लुप्त हो गये हैं। 'हृदयङ्गम' शब्द का 'समझ में आया हुआ' अर्थ बंगला[५] भाषा में भी पाया जाता है।

(इ) भिन्न शब्द

हिन्दी में कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनके समान रूप वाले अन्य शब्द भी संस्कृत में मिलते हैं। उनसे हिन्दी में प्रचलित शब्दों का भेद ध्यान में रक्खा जाना चाहिये।

केवट

हिन्दी में 'केवट' पुं० शब्द 'मछियारा' अर्थ में प्रचलित है। 'केवट' शब्द संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु संस्कृत में 'केवट'[६] पुं० शब्द ऋग्वेद (६.५४.७) आदि में 'गड्ढा' अर्थ में मिलता है। वस्तुतः हिन्दी में प्रचलित 'केवट' शब्द संस्कृत के 'केवट' शब्द से भिन्न शब्द है, यह संस्कृत के 'कैवर्त'

१. एवमहं तु तस्याः सर्वाकारहृदयङ्गमायाः। मालती० अङ्क १.

२. अहो हृदयङ्गमः परिहासः। मालती० अङ्क ३.

३. इति तेभ्यः स्तुती श्रुत्वा यथार्था हृदयङ्गमाः। कुमार० २.१६.

४. क्व नु ते हृदयङ्गमः सखा कुसुमायोजितकार्मुको मधुः। कुमार० ४.२४.

५. आशुतोष देव : बंगला-इंगलिश डिक्शनरी।

६. मि० ग्रीक kaiáta.

अथवा 'केवर्त' से विकसित हुआ तद्भव शब्द है। संस्कृत साहित्य में 'कैवर्त'[1] और 'केवर्त'[2] शब्द 'मछियारा' अर्थ में पाये जाते हैं।

गर्त

हिन्दी में 'गर्त' पुं० शब्द 'गड्ढा' अर्थ में प्रचलित है। 'गर्त' शब्द का यह अर्थ संस्कृत में भी पाया जाता है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में 'गर्त' दो शब्द हैं। पहिले 'गर्त' पुं० शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में 'ऊँचा स्थान या आसन', 'रथ में बैठने की जगह'[3], 'रथ'[4], 'जुआ खेलने का पटड़ा'[5] आदि अर्थों में पाया जाता है। दूसरा 'गर्त' पुं० शब्द, जिसका प्रयोग शतपथब्राह्मण, शाङ्खायनब्राह्मण, आश्वलायन-गृह्यसूत्र, शाङ्खायनगृह्यसूत्र, कौशिकसूत्र आदि ग्रन्थों में 'गड्ढा', 'छेद', 'गुफ़ा' आदि अर्थों में तथा मनुस्मृति (४.२०३) में 'नाली' अर्थ में पाया जाता है, वस्तुतः 'कर्त' पुं० शब्द से विकसित हुआ शब्द है। ऋग्वेद, अथर्ववेद (४.१२.७), ऐतरेय-ब्राह्मण आदि में 'कर्त' पुं० शब्द 'गड्ढा' अथवा 'छेद' अर्थ में उपलब्ध होता है। इस प्रकार हिन्दी में प्रचलित 'गर्त' शब्द (जो 'कर्त' का विकसित रूप है) वैदिक 'गर्त' से भिन्न शब्द है।

बहुमत

हिन्दी में 'बहुमत' पुं० शब्द 'बहुत से लोगों का एक मत' (majority) अर्थ में प्रचलित है। इस अर्थ में 'बहुमत' शब्द 'बहु' (बहुत) और 'मत' (संस्कृत 'मत' नपुं० ='राय') से मिलकर बना है। यह शब्द अंग्रेज़ी के majority शब्द के भाव को व्यक्त करने के लिये बनाया गया है। किसी व्यक्तिसमूह में किसी विषय में आधे से अधिक व्यक्तियों के एकमत हो जाने को 'बहुमत' कहा जाता है। संस्कृत में भी 'बहुमत' शब्द का प्रयोग पाया जाता है, किन्तु संस्कृत में 'बहुमत' शब्द अधिकतर क्त-प्रत्ययान्त विशेषण शब्द के रूप में 'आदृत, सम्मानित' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जैसे—

> भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
> येषां त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥ भग० २. ३५.

---

१. मनु० ८.२६०, १०.३४ आदि।

२. वाजसनेयिसंहिता ३०.१६ आदि।

३. ऋग्वेद ६.२०.९.

४. ऋग्वेद ५.६२.५ आदि; गौतमधर्मशास्त्र २६.७ आदि।

५. निरुक्त ३.५.

संस्कृत में बहु-पूर्वक √मन् धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बने हुये 'बहुमान' शब्द का प्रयोग भी 'आदर' अर्थ में पाया जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी में प्रचलित 'बहुमत' शब्द संस्कृत में पाये जाने वाले 'बहुमत' से भिन्न प्रकार का बना होने के कारण एक भिन्न शब्द है। यह उल्लेखनीय है कि 'बहुमत' शब्द में विद्यमान 'मत' शब्द संस्कृत में भी 'राय' अर्थ में पाया जाता है।[१]

योगदान

हिन्दी में 'योगदान' पुं० शब्द 'किसी काम में साथ देना या सहायक होना' अर्थ में प्रचलित है। अंग्रेज़ी के contribution शब्द के पर्यायवाची के रूप में भी 'योगदान' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'योगदान' शब्द में 'योग' शब्द 'सहयोग' अर्थ में ग्रहण किया गया है। संस्कृत में 'योग' शब्द का अर्थ 'मेल, संयोग, संसर्ग' भी है और √युज् धातु का प्रयोग सह के साथ भी पाया जाता है। अतः 'योग' शब्द से 'सहयोग' अर्थ का विकास स्वाभाविक है।

संस्कृत में भी 'योगदान' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। मोनियर विलियम्स ने 'योगदान' शब्द के दो अर्थ दिये हैं—१. योग-दर्शन का उपदेश दना, २. छलपूर्वक दान। मनुस्मृति (८.१६५) में 'योगदान' शब्द 'छलपूर्वक दान देना' अर्थ में पाया जाता है, जैसे—

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम्।
यत्र वाऽप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत्॥

यहाँ पर 'योग' शब्द 'छल' अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार हिन्दी में प्रचलित 'योगदान' शब्द को संस्कृत में पाये जाने वाले 'योगदान' शब्द से भिन्न समझना चाहिये।

---

१. कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्। भग० १८.६.

सहायक पुस्तकों की सूची[1]

(अ)

कपिलदेव द्विवेदी	:	अर्थ-विज्ञान और व्याकरणदर्शन ।
कालिका प्रसाद	:	बृहत् हिन्दी कोश ।
तारानाथ तर्कवाचस्पति	:	वाचस्पत्य ।
द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी	:	संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ ।
भोलानाथ तिवारी	:	शब्दों का जीवन ।
भोलानाथ तिवारी	:	भाषा-विज्ञान ।
मैकडॉनेल	:	वैदिक माइथोलोजी का हिन्दी अनुवाद वैदिक देवशास्त्र (डा० सूर्यकान्तकृत) ।
राधाकान्तदेव	:	शब्दकल्पद्रुम ।
रामचन्द्र वर्मा	:	प्रामाणिक हिन्दी कोश ।
वि० दि० नरवणे	:	भारतीय व्यवहारकोश ।
श्यामसुन्दरदास	:	हिन्दी शब्द सागर ।
सुनीतिकुमार चटर्जी	:	भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी ।

(आ)

Agrawal, V. S.	:	India as known to Pāṇini.
Apte, V. S.	:	The Practical Sanskrit-English Dictionary.
Asutosh Dev	:	Students' Favourite Dictionary (Bengali-English), 1953.

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में संस्कृत साहित्य के अनेक मूलग्रन्थों से सहायता ली गई है। उन सबकी सूची काफ़ी लम्बी है। इसके अतिरिक्त यहाँ उनकी सूची देने की कोई विशेष उपयोगिता भी नहीं दिखाई पड़ती। इसलिये यहाँ संस्कृत के मूलग्रन्थों की सूची नहीं दी जा रही है।

Bahari, Hardev	:	Hindi Semantics.
Baldwin	:	Dictionary of Philosophy and Psychology.
Bett, Henry	:	Wandering among Words.
Bothlingk, O. & Roth, R.	:	Sanskrit Wörterbuch.
Buck, C. D.	:	A Dictionary of Selected Synonyms in the Principal Indo-European Languages.
Burrow, T.	:	Sanskrit Language.
Chakravarti, P. C.	:	The Linguistic Speculations of the Hindus.
Chambers's Twentieth Century Dictionary.		
Chatterjee, K. C.	:	Vedic Selections.
Frederick Engels	:	The Origin of Private Property and the State.
Gonda, J.	:	Sanskrit in Indonesia.
Gray, Louis, H.	:	Foundations of Language.
Grierson, G.	:	Linguistic Survey of India, vol. I, part I.
Gundert, H.	:	Malayalam-English Dictionary.
Jayaswal, K. P.	:	Manu and Yājñavalkya.
Kane, P. V.	:	History of Dharmashāstra, vol. IV.
Kellogg	:	A Grammar of the Hindi Language.
Kittel, F.	:	Kannaḍ-English Dictionary, 2 vols.
Kuiper, F. B.	:	Proto-Muṇḍā words in Sanskrit.
Macdonell, A. A.	:	Vedic Grammar for Students.
Macdonell and Keith	:	Vedic Index of Names and Subjects, 2 vols.
Madan Gopal	:	This Hindi and Devanagari.
Maung Tin	:	The Expositor, vol. I.
Mehta, B. N. & Mehta B. B.	:	A Modern Gujrati-English Dictionary.
Molesworth	:	Marathi-English Dictionary.

Monier Williams : Sanskrit-English Dictionary.
Pandey, R. B. : Hindu Saṁskāras.
Pathak Commemoration Volume.
Raghvan, V. : Bhoja's Sṛṅgāraprakāśa, vol. I, part I.
Sarup, L. : The Nighaṇṭu and the Nirukta, Introduction.
Sayce, A. H. : Introduction to the Science of Language, vol. I.
Steingass, F. : A Comprehensive Persian-English Dictionary.
Tamil Lexicon, 6 vols, published by the University of Madras.
Turner, R. L. : A Comparative Dictionary of the Nepali Language.
Ullamann, S. : Principles of Semantics.
Ullamann, S. : Words and their use.
Vendryes, J. : Language.
Verma, Siddheshwar : The Etymologies of Yāsk.
Yule and Burnell : A Glossary of Anglo-Indian Colloquial Words and Phrases.

(इ)

Adyar Library Bulletin, vol. XII, part 4, Dec. 1948.
Indian Linguistics vol. XVII (1955–56), June 1957.

शब्दानुक्रमणिका